आधुनिक विश्व में वैचारिक संघर्ष

लेखक
वी० कोर्तुनोव

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, (प्रा०) लि०

THE BATTLE OF IDEAS IN THE MODERN WORLD
का हिंदी अनुवाद

संपादन :
मोहन श्रोत्रिय

अनुवाद :
याज्ञवल्क्य गुरु
गिरधारीलाल व्यास

दिसंबर 1984 (RPPH-3)

मूल्य : 12.50

भारती प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित तथा रामपाल द्वारा राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि०, जयपुर की ओर से प्रकाशित।

यह पुस्तक कम्युनिस्ट विचारधारा एवं कम्युनिज्म विरोध के संघर्ष की समस्याओं के विस्तृत दायरे को अध्ययन-परिधि में ले आई है। डॉ० कोर्तुनोव ने एक-एक करके इस संघर्ष की विभिन्न अवस्थाओ की पड़ताल की है; बूर्ज्वा विचारधारा के विकास की विभिन्न प्रवृत्तियो का विश्लेषण किया है; कम्युनिस्ट विरोधी सिद्धांतों तथा मनगढ़ंत धारणाओं को खंडित किया है तथा कम्युनिस्ट दृष्टिकोण की व्याख्या को उभारा है। उनकी लेखन शैली तर्कपरक एवं स्पष्ट है।

यह पुस्तक सूचनापरक एवं तर्कपूर्ण होने के कारण पाठकों को रुचेगी।

अनुक्रम

वैचारिक संघर्ष की गहनता और उत्कटता की दृष्टि से हमारे युग की तुलना किसी अन्य युग के साथ नही की जा सकती, भले ही वह अनेक राष्ट्रो के इतिहास के पुन-र्जागरण एव बोधोदय जैसे निर्णायक युग ही क्यो न रहे हों। वर्तमान वैचारिक सघर्ष की तीव्रता हमारे समय मे हो रहे सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों की प्रतिच्छाया है, जो पूँजीवाद और समाजवाद के बीच ऐतिहासिक मुकाबले से उत्पन्न होती है और इसका विद्यमान स्तर सामाजिक और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्तियों की जटिल अन्त.क्रिया से पूर्णता प्राप्त करता है।

लेखक का लक्ष्य, इस पुस्तक को लिखते समय, मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आधार पर पूँजीवाद और समाजवाद के बीच चल रहे वैचारिक संघर्षों की मुख्य मजिल का पता लगाने और उनका मूल्यांकन करने का रहा है। यह कार्य स्वय इस कृति को विवादास्पद बना देता है क्योंकि एक या दूसरे दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए लेखक को अनेक प्रचलित वैचारिक और राजनीतिक अवधारणाओ का आलोचनात्मक विश्लेषण करना पड़ा है।

पुस्तक में उठायी गयी समस्याओं का अधिक पूर्णता के साथ अध्ययन करने की दृष्टि से लेखक ने समस्याओं की, अतीत के ऐतिहासिक अभियान की सहायता से उनके विकास के आधार की, परीक्षा करने का प्रयास किया है। यह युद्ध और शान्ति की समस्या तथा कम्युनिस्ट और कम्युनिस्ट विरोधी विश्व दृष्टिकोणों के बीच संघर्ष के उदय की समस्या के सम्बन्ध मे विशेष रूप से सही है। सभी मामलों मे, लेखक ने उठायी गयी समस्याओ का बुद्धिमत्तापूर्ण विश्लेषण करने और उनके मध्य [illegible] रूप से सुसगत और तर्कपूर्ण सम्बन्ध प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। [illegible] विचार से इस अध्ययन को खंडो मे विभाजित करनेवाली रेखाएँ एक स्वैच्छिक हैं, किन्तु इन विभागो मे निश्चित तर्क सगतता है।

[illegible] के प्रकरणों मे कम्युनिस्ट आन्दोलन के आदि से आज तक के युग के [illegible] परिप्रेक्ष्य से विश्लेषण किया गया है। और इसी के [illegible], वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्तियों के विकास पर आधारित सिद्धान्तों की परीक्षा की गयी है।

अनुवर्ती प्रकरणों में, अति प्रचलित वैचारिक सिद्धान्तों में पूँजीवादी विचारकों द्वारा हाल के वर्षों में उठायी गयी समस्याओं के वैकल्पिक उत्तर प्रस्तुत किये गये हैं। यह कार्य मार्क्सवाद के सिद्धान्तों तथा समाजवाद की आन्तरिक एवं वैदेशिक नीतियों के अनुभवों के निष्कर्षों के आधार पर किया गया है।

अन्त के प्रकरणों में, जो एक प्रकार से पूर्ववर्ती प्रकरणों का उपसंहार है, लेखक ने भविष्य के समाज पर दृष्टिपात किया है और सामाजिक विकास, भावी पथ के लिए मनुष्य की *खोज और तीसरी सहस्राब्दी के आरम्भ काल में सामने आने वाली* समस्याओं की परीक्षा करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार, पुस्तक के पहले भाग में निकटवर्ती अतीत की, दूसरे भाग में, वर्तमान की और तीसरे में भविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत की है। लेखक के विचार से पद्धति के अनुसार बीते कल, आज और आगामी कल की प्रक्रियाओं के द्वन्द्वात्मक अन्तःसम्बन्ध से जो कुछ वर्तमान में घटित हो रहा है उसका पूर्ण चित्र प्राप्त करना सम्भव है।

हमारे समय में सामाजिक-राजनीतिक विषय पर कोई भी कृति, यदि उसका उद्देश्य वास्तविकता को यथार्थ रूप से समझना है तो, कुछ सीमा तक लेखक के अपने अनुसंधान और अपने साथियों के विचारों, विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना से प्राप्त परिणामों, अपने निरीक्षणों, सम्पर्कों और विचार-विनिमयों के निष्कर्षों का समन्वित रूप होगी।

वर्तमान पुस्तक भी लेखक के द्वारा सोवियत संघ और विदेशों में जनता के अनेक साक्षात्कारों का संक्षिप्त विवरण है।

इस सम्बन्ध में, लेखक उन सबके प्रति हार्दिक आभार प्रदर्शित करना चाहता है जिन्होंने किसी भी प्रश्न पर हुई इन बहसों में उत्तरों को खोजने में सहायता की है, *उससे विचार-विमर्श किया है या आलोचना की है।*

निस्सन्देह, प्रस्तुत कृति किसी भी प्रकार, उठाये गये प्रश्नों का अन्तिम उत्तर देने का दावा नहीं करती। यह केवल वर्तमान प्रश्नों को सही ढंग से प्रस्तुत करने और उन पर विचार-विमर्श करने का प्रयास करती है। यह सम्भव है कि पाठक, विशेष रूप से पाश्चात्य पाठक इस पुस्तक की कुछ बातों पर बहस करें अथवा लेखक से अपनी असहमति व्यक्त करें अथवा उसके दृष्टिकोण के पूरी तरह नकार दें, तथापि यह पुस्तक अपना लक्ष्य पूरा करेगी, क्योंकि उनमें इसका यह भी एक लक्ष्य है कि यहाँ बहस की गयी समस्याओं में रुचि उत्पन्न करें। किसी भी प्रकार यह कोई सिद्ध मत प्रस्तुत नहीं करती या लेखक द्वारा दूसरों पर अपने विचार थोपने का प्रयत्न नहीं करती अपितु यह वर्तमान पीढ़ी की विद्यमान समस्याओं पर बहस या विचार-विमर्श करने का आमंत्रण है। इस भावना के साथ यह पाठकों को समर्पित है।

अप्रैल 1977

9314

प्रस्तावना

प्रत्येक पीढ़ी इस बात के लिए कारण खोज लेती है कि उसका अपना काल सभ्यता के इतिहास में एक विशेष काल है और उसका असाधारण और अनुपम रूपों मे वर्णन करती है। वर्तमान पीढ़ी के पास ऐसा करने के पर्याप्त से अधिक आधार विद्यमान हैं।

विद्वानों, लेखकों, समाजशास्त्रियों और राजनीति वैज्ञानिकों ने बीसवीं शताब्दी के सारतत्व को परिभाषित करने का प्रयास करते हुए इसे वैज्ञानिक व्याख्या दी है, शक्तिशाली शब्दों और सुमधुर सूक्तियों का प्रचुर उपयोग किया है, बड़ी ऐतिहासिक समानताएँ दिखायी हैं और आश्चर्यजनक विरोधाभास और लक्षण खोज निकाले हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

अमरीकी राजनीति वैज्ञानिक हांस मॉर्गेन थॉ का कथन है कि आणुविक युग ने इतिहास में एक नये युग के द्वार का उद्‌घाटन किया है, यह पूर्ववर्ती युगों से इतना भिन्न है जितना कि विद्यमान युग मध्य युगों से अथवा मध्य युग प्राचीन युगों से भिन्न था।

फ्रांसीसी अर्थशास्त्री एवं रिपब्लिकन रेडिकल एंड रेडिकल सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव जीन जेक्युइस सर्वन श्राइबर कहते हैं "...औद्योगिक विश्व के कुछ भागों में, दो हजारहवें वर्ष का समाज आज हमारे जाने हुए समाज से इतना भिन्न होगा जितना कि इस समय हमारा भाग मिस्र और नाइजीरिया से है।"[1]

पश्चिमी जर्मनी के पत्रकार और सनसनीखेज पुस्तक 'गाड्स ग्रेव्स एंड स्कालर्स' के रचयिता सी० डब्ल्यू० सेरम का कहना है: "हम बीसवीं शताब्दी में मानवता के पाँच सहस्राब्दियों तक विस्तृत युग का उपसंहार कर रहे हैं... स्पेंगलर के अनुमान के अनुसार पाश्चात्य ईसाइयत के आरम्भ के रोम की स्थिति में नहीं हैं अपितु ईसा पूर्व 3000 की स्थिति में हैं।"[2]

अमरीकी समाजशास्त्री आलविन टॉफ़लर कहते हैं: "अधिकांश विख्यात

1 जीन-जेक्युइस-सर्वन श्राइबर, ले डेफी अमेरिकन, पेरिस 1969, पृ० 44
2 आल्विन टाफ़लर, फ्यूचर शॉक, न्यूयार्क 1971, पृ० 15

सामयिकी कहती है कि वर्तमान युग मानव इतिहास के द्वितीय महाविभाजन से किंचित् भी कम नहीं है, इसकी तुलना केवल ऐतिहासिक आरम्भ में संपन्न हुए महाविभाजन से— बर्बर युग से सभ्य युग में संक्रमण से—की जा सकती है।"[1]

पहली नज़र में, ये और इसी प्रकार के अन्य कथन कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण लगें, परन्तु किसी हद तक उनकी प्रामाणिकता सन्देह से परे है।

निस्सन्देह, बीसवीं शताब्दी मानवता के इतिहास में सर्वाधिक क्रान्तिकारी शताब्दी है। इसका आरम्भ ही असाधारण गम्भीर सामाजिक परिवर्तनों से, विशाल संख्या में साधारणजन के ऐतिहासिक विकास में सक्रिय और अपूर्व योगदान से और बौद्धिक क्षेत्र में व्यापक महत्त्व की प्रगति से चिह्नित किया गया। इसी कारण इतिहास सामाजिक प्रगति के पथ पर इतनी तेज उड़ान भर सका जैसी पहले कभी नहीं भर सका था। इतिहास का एक नया युग आरम्भ हुआ जिसके सारतत्व को लेनिन ने इन शब्दों में प्रकट किया : "पूंजीवाद और उसके अवशेषों का उन्मूलन तथा कम्युनिस्ट व्यवस्था के आधारों की स्थापना।"[2] दूसरे शब्दों में, *इसके सारतत्व की शब्दावली में, हमारा समय पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक संरचना से समाजवाद में संक्रमण का युग है।*

तथापि, वर्तमान युग को केवल दो संरचनाओं के मध्य विभाजन रेखा के रूप में बताना पर्याप्त नहीं है। केवल इस परिस्थिति को ही इसके असाधारण युग होने का कारण मानना पर्याप्त नहीं है। यदि संरचना के परिवर्तन को ही एकमात्र कसौटी माना जाय तो हमारी शताब्दी किसी भी प्रकार उन दूसरी शताब्दियों से भिन्न नहीं है जिनमें एक उत्पादन प्रणाली का स्थान दूसरी ने लिया था। तथापि हमारे मामले में, यह गुणात्मक रूप से नयी संरचना में संक्रमण का प्रश्न है एक ऐसी संरचना में जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देती है। इसी कारण हमारा युग, जैसाकि एंगेल्स का पूर्वानुमान था, केवल एक संरचना के स्थान पर दूसरी की स्थापना का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता अपितु "आवश्यकता के राज्य से स्वतंत्रता के राज्य पर मनुष्य के आरोहण" का भी प्रतिनिधित्व करता है।"[3]

बहुत से पश्चिमी लेखक क्रान्तिकारी संक्रमण का वर्तमान युग की प्रकृति के रूप में उल्लेख करते हुए और उस पर बल देते हुए, कहते हैं कि यह जो पुरानी व्यवस्था का स्थान ले रहा है समाजवाद नहीं है, अपितु पूंजीवाद का ही नया

1. आल्विन टाफलर, फ्यूचर शॉक, न्यूयार्क 1917, पृ० 14
2. वी० आई० लेनिन "इटली की समाजवादी पार्टी के आन्तरिक संघर्ष के सम्बन्ध में" सकलित रचनाएं, खण्ड 31, पृ० 392
3. एफ० एंगेल्स, ऐंटीड्यूरिंग, मास्को, 1975, पृ० 336.

रूपान्तरण है जो 'औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर' समाज में वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के प्रभाव के अन्तर्गत संक्रान्त हुआ है। वे दावा करते हैं कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति पूँजीवाद और समाजवाद के बीच और मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच विरोधों को स्वयमेव हटा देती है। नये के उनके वर्णन में, औद्योगिकोत्तर युग जिसे कि वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति कथित रूप से लगभग स्वतः ही उत्पन्न करती है, सामान्यतया एक पहलू (यद्यपि वह बहुत महत्त्वपूर्ण है)—भौतिक सम्पदा का उत्पादन का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है जबकि समाज की सामाजिक-राजनीतिक संरचना की आवश्यक रूप से उपेक्षा की गयी है। जबकि नयी सामाजिक-आर्थिक संरचना—कम्युनिस्ट समाज—का उदय और विकास केवल भौतिक संपदा में वृद्धि तक ही सीमित नहीं: इसका अर्थ है जनगण के समस्त सामाजिक-राजनीतिक सांस्कृतिक और बौद्धिक जीवन में मूलभूत परिवर्तन। यह 'मानव समाज की प्रागैतिहासिकता की समाप्ति' को और उसके 'वास्तविक इतिहास'[1] के आरम्भ को लक्षित करता है।

अपनी सार्थकता में, इतिहास में इस महान और विश्व-व्यापी परिवर्तन की तुलना वास्तविक रूप में केवल बर्बर युग से वास्तविक सभ्यता में संक्रमण के साथ ही की जा सकती है। जहाँ तक आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति की बात है वह एक प्रकार का विस्फोट (निस्सन्देह तात्कालिक नहीं, अपितु दीर्घकालिक) तथा उत्पादक शक्तियों के उभार के रूप में है जो उत्पादन सम्बन्धों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। निस्सन्देह, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगतियों का स्वयं में एक स्थायी मूल्य है। साथ-ही-साथ, वे सामाजिक प्रक्रियाओं को उत्प्रेरित करती हैं, उनको निरन्तर नया वेग प्रदान करती हैं, सामाजिक क्रान्ति के क़दम को तेज़ करती हैं। यह वह महत्त्वपूर्ण पहलू है जिसे पूँजीवादी देशों के शोधकर्मी प्रायः विस्मृत कर देते हैं।

वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति का तथा वर्तमान की सामाजिक क्रान्तियों का उद्गम इस शताब्दी के आरम्भ तक पहुँचता है। पूरे विज्ञान को अपने सैद्धान्तिक शास्त्रीय आधारों की फिर से परीक्षा करनी पड़ी। इसे बहुत-सी पिछली अवधारणाएँ छोड़नी पड़ी और इससे भी आगे बढ़कर विश्व के सम्बन्धी वर्तमान समझ तक पहुँचने के लिए चिन्तन के समग्र ढाँचे को संशोधित करना पड़ा। जैसाकि हमें ज्ञात है, यह वैज्ञानिक क्रान्ति पिछली 19वीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सिद्धान्त में और प्रयोग में प्राप्त उपलब्धियों में प्रवर्तित हुई थी जिनमें से कुछ ये हैं :—क्वान्टम सिद्धान्त का और सापेक्षवाद के सिद्धान्त का निर्माण,

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, कलेक्टेड वर्क्स तीन खण्डों में खंड 1, मास्को, 1973 पृ॰ 504-505

परमाणु के प्रतिमान का परिष्कार, और रेडियोधर्मिता के परिघटन की खोज। संक्षेप में, ये उपलब्धियाँ विज्ञान के इतिहास में *'भौतिकी में क्रान्ति'* के रूप में दिखायी गयी, जिनके द्वारा अन्ततः श्रम के उपकरणों में *क्रान्ति हुई—अर्थात्* वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति (STR) का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जैसे-जैसे वैज्ञानिक-प्राविधिक क्रान्ति तेज रफ्तार से आगे बढ़ी, उसने पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति पर आधारित समाज की अतिपक्वता के रूप में परिभाषित प्रकृति का पर्दाफ़ाश कर दिया। जैसाकि व्यवहार से ज्ञात होता है, विज्ञान एवं प्राविधिकी की बहुत-सी उपलब्धियाँ साधारणतया अपने उग्र तरीकों से एकरूपता लाने वाली शैया के नीचे दबाकर नही रखी जा सकती, राज्य-इजारेदारी आर्थिक व्यवस्थाके ढांचे में भी उनको नही बैठाया जा सकता। ऐसा करने के प्रयास गुलीवर के बूटों पर लिलीपुटियों के प्रयासों का स्मरण कराते हैं।

दूसरी ओर, वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति की *उपलब्धियों की प्रकृति ही विशाल उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ सम्पृक्त होकर उत्पादन के साधनों पर पूंजी*पतियों के स्वामित्व के सिद्धान्तों के साथ तथा पूंजीवाद की इजारेदारी मंजिल के अन्तर्निहित कानूनों के साथ सुस्पष्ट विरोधों के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाती है। राजा आयटेस (Actes) के बीजों[1] की तरह वैज्ञानिक और प्राविधिक विचारों के आविष्कार, पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की अस्वास्थ्यकर भूमि में बोये जाकर अन्ततः स्वयं बोने वाले के ही विरुद्ध हो जाते हैं, और प्रतिभा की शक्तिशाली उपलब्धियाँ मानव समाज के विरुद्ध हो जाती हैं। उत्पादन की *अराजक पूंजीवादी पद्धति की स्थितियों में वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति की उपलब्धियाँ अनिवार्यतया* भ्रष्ट और कभी-कभी उच्छृंखल हो जाती हैं। *इजारेदार पूंजी की सम्पत्ति बनकर वे इसके द्वारा उसके निजी हितों के लिए काम में लाई जाती हैं और अध्यारोप्य क्रान्तियों तथा इससे भी बुरे आत्मविनाश के ख़तरे मानवता के सामने लाती हैं।*

इस प्रकार वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति पूंजीवाद के उन्मूलन को न केवल आगे प्रगति की पूर्वावश्यकता ही बनाती है, अपितु स्वयं सभ्यता की रक्षा करने की शर्त भी बनाती है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति का सामाजिक क्रान्ति को तीव्र करने वाले कारक के रूप में तथा इसके आदर्शों के जनक के रूप में भी यही सत्य है। इसमें दो प्रक्रियाओं की परस्पर क्रिया अभिव्यक्त होती है, जो यद्यपि स्वभावतः भिन्न हैं,

---

1 यूनानी मिथक के अनुसार [illegible] के राजा आयटेस ने जैसन के कौशल और साहस की परीक्षा की जिसके लिए उसने उसे ड्रैगन के दांतों को बोने के लिए दिया। जब जैसन ने दांतों को बोया, सशस्त्र मनुष्यों की एक फसल उग आयी और उसके विरुद्ध खड़ी हो गयी।

पर ऐतिहासिक रूप से सम्बद्ध है और दोनों साथ मिलकर हमारे युग की संक्रमण की प्रकृति को सुनिश्चित करते हैं।

एक सामाजिक-आर्थिक संरचना से दूसरी में संक्रमण बिना संघर्ष और पीड़ा के नहीं हो सकता क्योंकि यह केवल उत्पादन की आर्थिक पद्धति के स्थान पर दूसरी का स्थापित होना नहीं है अपितु एक महान् सामाजिक और आत्मिक क्रान्ति भी है। इस प्रकार, पुरातन और नवीन के बीच, मरणासन्न और उदीयमान के बीच मुकाबला अपरिहार्य है। और यही है जो अपने क्रम में वैचारिक संघर्ष की उत्तेजना को—विरोधी विश्व दृष्टिकोणों के बीच, दार्शनिक दृष्टियों के बीच और आत्मिक मूल्यों की व्यवस्थाओं के बीच प्रतिस्पर्धा को—तीव्र करता है। इसीलिए वर्तमान युग अन्य किसी भी संक्रमणकालीन युग से भी अधिक वैचारिक संघर्ष से भरा-पूरा है क्योंकि मौलिक सामाजिक उद्भेद होने को है, न केवल पुरानी पूँजीवादी राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है अपितु इसकी मानसिकता के प्रतिमान भी नष्ट हो रहे हैं। जनगण के मस्तिष्कों में एक क्रान्ति, विचारों का संघर्ष, प्रगति पर है। बड़े परिश्रम के साथ नया समाज जन्म ले रहा है, जैसाकि लेनिन ने इसके सम्बन्ध में कहा था—"यह आश्चर्य की बात नहीं है कि यह विश्व तैयार शुदा माल की तरह अस्तित्व में नहीं आता। जुपिटर के सिर से जैसे मिनर्वा निकला था उस प्रकार नहीं आता।"[1]

इतिहास में इस प्रकार का कोई दूसरा युग नहीं देखने में आया जिसमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संकटों का ऐसा संकेन्द्रण हो, इतनी अधिक संख्या में जटिल कार्य भार सामने आये हों और उनका इस प्रकार की अन्तर्विरोधी उलझनों से भर दिया गया हो जैसाकि बीसवीं शताब्दी में। सामाजिक न्याय और समान अधिकार के लिए शोषित वर्गों के युगों से चले आ रहे संघर्ष में बहुत-सी 'शाश्वत' समस्याओं का समाधान अब राष्ट्रों के व्यवहार में प्राप्त हो गया है जिन्होंने समाजवादी रूपान्तरण का मार्ग स्वीकार किया है।

प्रतिदिन जीवन निरन्तर नयी माँगें सामने लाता है। पहले कभी भी मानव समाज के समक्ष उसके अपने अस्तित्व की समस्या इतने विकट रूप से उपस्थित नहीं हुई उदाहरण के लिए, यदि पहले कभी जनगण किसी अलौकिक शक्ति के हाथों विश्व के अन्तर्भासिक विनाश की कल्पना करते थे तो अब पृथ्वी पर विद्यमान प्रत्येक जीवित वस्तु का विनाश स्वयं उनके अपने ही कार्यों के फलस्वरूप आत्मघाती आणविक सर्वनाश के रूप में सामने आ सकता है। मानववंश के सदस्यों ने पहले कभी भी इतने स्पष्ट रूप से अनुभव नहीं किया होगा कि वे सब उसी नाव में

---

1. वी० आई० लेनिन 'अमरीका के मजदूरों के नाम पत्र' संकलित रचनाएँ खण्ड 28 पृ० 74

सवार हैं जिसे कि पृथ्वी कहा जाता है। पहले कभी भी विभिन्न सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के बीच सहयोग इतना आवश्यक नहीं हुआ। और अन्ततः, पहले कभी भी मानवता के भविष्य के दौर का चुनाव इतना कठिन रहा।

विश्व शान्ति अथवा आणविक युद्ध, सामाजिक प्रगति के लिए व्यापक क्रियाशीलता अथवा इजारेदारियों द्वारा किया जाने वाला प्रबल उत्पीड़न, प्रकृति पर मानव की शक्ति का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग अथवा उसके संसाधनों का बर्बरतापूर्ण निश्शेषी करण—ये और इसी प्रकार के अत्यधिक महत्वपूर्ण विकल्प अपूर्व तात्कालिकता प्राप्त करते जा रहे हैं; बिना किसी अतिशयोक्ति के, करोड़ों लोगों के लिए ये जीवन और मृत्यु के प्रश्न बनते जा रहे हैं। एक शब्द में, मानव समाज अपने इतिहास में एक ऐसे बिन्दु पर आ पहुंचा है जिसके परे असाधारण छलांग लगानी पड़ सकती है जहाँ या तो स्वर्ग का नन्दन कानन मिलेगा या अपना सर्वनाश।

बीसवीं शताब्दी ने अभी अपना सम्पूर्ण पथ पूरा नहीं किया और अभी से अगली शताब्दी इसके समक्ष अपनी पर्यावरण, ऊर्जा, जनसांख्यिकी आदि विश्वव्यापी समस्याओं की चुनौती प्रस्तुत कर रही है। इस प्रकार हमारी शताब्दी के कार्यभार की जटिल ग्रन्थि नये समाजवादी विश्व के उदय और विकास, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के विविध परिणामों और सामाजिक क्रान्ति तथा इसकी जटिल अन्तःक्रिया के साथ जुड़ी है।

अतीत में पूंजीवादी व्यवस्था के उदय के आरम्भ में प्रबोध का युग भी संक्रान्ति युग था जिसमें कठोर वैचारिक संघर्ष चल रहा था, जिसमें एक ओर सामंती नौकरशाही-राजशाही गिरोहों के दूसरी ओर तीसरी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे जो समानता, स्वतंत्रता और कल्याण और न्याय के आदर्शों की माँग करते थे।

कम्युनिज्म और कम्युनिज्म विरोधियों के बीच आधुनिक वैचारिक संघर्ष में विशेष रूप से उन आदर्शों को उपलब्ध करने के प्रश्न पर आज परस्पर तलवारें टकरा रही हैं, लेकिन पूर्णतया भिन्न परिस्थिति में। पूंजीवादी समाज के शासक वर्ग के हितों की रक्षा करने वाली पूंजीवादी विचारधारा समानता और मानववाद के आदर्शों की घोषणा के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अस्पष्ट और निराकार स्थापनाओं को आधार बनाकर चलती है जैसेकि वह उनके सम्बन्ध में कहती है 'पवित्र' स्वतंत्रता, 'पवित्र' जनतंत्र, 'सार्वभौम' मानव अधिकार और इसी प्रकार की बातें, भलाई और बुराई के इस प्रकार की अमूर्त विचारों और उनसे उत्पन्न असंख्य भ्रमों के विरुद्ध कम्युनिस्ट विचारधारा ऐतिहासिक प्रक्रिया के वस्तुगत नियमों को प्रस्तुत करती है। उसने सन्तोषप्रद तरीके से दिखा दिया है कि सामाजिक परिघटनाओं के अध्ययन के लिए केवल वर्गीय दृष्टिकोण ही सार्वभौम मानवीय श्रेणियों को उनके उपयुक्त स्थान में रखता है और उनको यथार्थ सारतत्व को पूर्ण करता है। यदि संदर्भ का यह बिन्दु छूट जाता है तो स्वतंत्रता, जनतंत्र, समानता, मानव

अधिकार आदि शब्द अर्थ खोकर खोखले हो जाते हैं।

हमारा विश्वास है कि सार्वभौम मानवीय आदर्शों की व्यावहारिक उपलब्धि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति की उपलब्धियों बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग से जुड़ी है, सर्वोपरि वह सामाजिक क्रान्ति के उच्च पथ से तथा पूंजीवाद से कम्युनिस्ट निर्माण के संक्रमण के साथ जुड़ी है। कम्युनिस्ट अनुभव करते है कि आधुनिक विश्व अपने सम्मुख उपस्थित समस्याओं और भविष्य की विशाल चुनौतियों का सामना कर सकता है। हमारी विचारधारा ऐतिहासिक आशावाद की विचारधारा है।

अध्याय : 1

कम्युनिज्म के विरुद्ध धर्म युद्ध

"तोपों से भी अधिक उच्चस्वर से विश्व में विचारों का गर्जन हो रहा है।"

पैकसटन[1]

विचारों के विरुद्ध बन्दूकें

सौ से अधिक वर्ष हो गये, कम्युनिस्ट आन्दोलन और इसके सैद्धान्तिक आधार, मार्क्सवाद-लेनिनवाद, करोड़ों लोगों के भाग्य को अधिकाधिक प्रभावित करते हुए, समस्त विश्व के वैचारिक जीवन के प्रधान केन्द्र बन गये हैं।

इस काल में, वर्ग-शक्तियों के सन्तुलन में होने वाले परिवर्तनों को आधार बनाते हुए, कम्युनिज्म और कम्युनिज्म-विरोधियों के बीच वैचारिक संघर्ष तीन प्रमुख मंजिलों से गुजरा है, जिनमें से प्रत्येक मानव समाज के वैचारिक और राजनीतिक जीवन में हुए मूलभूत परिवर्तनों से समानता रखती है।

इसकी पहली मंजिल, मजदूर वर्ग के आन्दोलन के उदय के साथ अथवा अधिक स्पष्टता से कहें तो, जब मजदूर वर्ग के राजनीतिक अनुभव की मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की शिक्षाओं में व्याख्या की गयी और उसका सामान्यीकरण किया गया, जिससे कि श्रमिक जनता को पूँजी के विरुद्ध अपने मुक्ति-संघर्ष में हथियार बन्द किया, तब से आरम्भ हुई।

दूसरी मंजिल, 1917 में रूस में हुई अक्तूबर क्रान्ति की विजय से जानी जाती है, जो विश्व समाजवादी क्रान्ति की पहली विजय थी।

तीसरी मंजिल के आरम्भ के लिए दूसरे विश्वयुद्ध तक जाना होगा, जब फासिज्म पर जनवादी शक्तियों की विजय से समाजवादी समुदाय के निर्माण के

. . .

1 डिक्शनरी ऑफ अमेरिकन [illegible], [illegible] द्वारा सम्पादित, न्यूयार्क 1959 पृष्ठ 249

लिए, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट एवं श्रमिक-वर्ग-आन्दोलन के नये शक्तिशाली उभार के लिए और साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था के उन्मूलन के लिए अनुकूल पूर्वस्थितियों का निर्माण हुआ।

प्रत्येक नयी मंजिल में वैज्ञानिक कम्युनिज्म की स्थिति विस्तृत और सुदृढ़ होती गयी और इसके शत्रुओं को अपनी कार्यनीति में संशोधन करने के लिए तथा नयी रक्षात्मक स्थितियों पर पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा। क्योंकि मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी अवधारणाओं के विरुद्ध उस समय संघर्ष करना, जबकि वे केवल सिद्धान्त के रूप में थीं, एक अलग बात थी। और तब यह भिन्न बात बन गयी जबकि अक्तूबर क्रान्ति की विजय से वे अवधारणाएँ समाजवाद के निर्माण में व्यावहारिक रूप से मूर्त होने लगीं। और फिर हमारे समय में यह एक पूर्णतया भिन्न बात है, जबकि समाजवादी देशों का समुदाय अन्तर्राष्ट्रीय विकास की निर्णायक शक्ति बन गया, जबकि श्रमिक वर्ग के मुक्ति संघर्ष ने विश्वव्यापी रूप धारण कर लिया, और जबकि पूँजीवाद के सामान्य संकट की गहनता ने इसके सभी अन्तर्विरोधों को पहले कभी की अपेक्षा अधिक तीव्रता से खुलकर सामने ला दिया।

कम्युनिज्म विरोध को निरन्तर अपने पहलू बदलने को विवश होना पड़ा है। इसलिए अब यह मार्क्सवाद-विरोधी, बोल्शेविज्म-विरोधी रूप में, सोवियतवाद विरोधी के रूप में और कभी इन सबके मिलेजुले रूप में और अन्य रूपों में सामने आता है। एक प्रकार से, कम्युनिज्म विरोध का यह विकास मेहनतकश जनता के मुक्ति संघर्ष के समस्त पथ को प्रतिबिम्बित करता है और यह आधुनिक युग में सामाजिक-राजनीतिक विकास के सामान्य लक्षणों की दृष्टि से बहुत शिक्षाप्रद हो सकता है।

सर्वप्रथम, जब संगठित मज़दूर आन्दोलन अभी उदय होने लगा था और मार्क्सवाद ने प्रगतिशील मज़दूरों के मस्तिष्कों को प्रभावित करना आरम्भ ही किया था, तब कम्युनिज्म-विरोध की अनिवार्य कार्यनीति थी, स्पष्ट रूप से वैज्ञानिक कम्युनिज्म की प्रामाणिकता को नकारना। कम्युनिज्म विरोध सामान्यतया एकदम आरम्भिक रूपों में था, इसके प्रचारक अधिसंख्य मज़दूर जनता की सैद्धान्तिक अनुभवहीनता पर ध्यान देते थे, जो राजनीतिक जीवन में अपने को सम्मिलित करने के लिए केवल शुरुआत कर रही थी। पूँजीवादी पंडित या तो मार्क्सवाद की उपेक्षा करते थे या इसे हानिकारक और मानव-विरोधी दृष्टिकोण समझते थे जो ऐतिहासिक विकास के तर्क का विरोधी और स्वयं मानव स्वभाव के ही विपरीत है।

1848 में 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा पत्र' के प्रकाशन के तुरन्त बाद पूँजीवादी प्रेक्षकों ने कहना आरम्भ किया कि कम्युनिज्म एक मिथ्याविश्वास है और किसी भी समाज का विरोधी है। उस काल में पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थकों को

यह भी आवश्यक नहीं प्रतीत होता था वे अपने लिए उचित शब्दों के चुनाव के लिए श्रम करें। इसके विपरीत, वे कम्युनिस्टों के विरुद्ध कठोर और अपशब्दों से भरी भाषा का प्रयोग करते थे, उस समय जनता को कम्युनिस्टों के 'घातक' प्रभाव से बचाने का यह सर्वोत्तम उपाय समझा जाता था। कम्युनिस्टों को षड्यन्त्रकारियों के छोटे गुट और अशान्ति उत्पन्न करने वालों, समाज का नाश करने वालों, आचार भ्रष्ट और सभ्यता के आधारों की जड़ें खोदने वालों के रूप में चित्रित किया जाता था।

दूसरे शब्दों में, उस मंजिल में कम्युनिज्म-विरोध अनिवार्यतया मार्क्सवाद को मिटा देने का यत्न कर रहा था, पूँजीवादी व्यवस्था के अतिरिक्त किसी अन्य विकल्प को प्रस्तुत किये बिना वह कम्युनिस्ट विचारों को नकार रहा था। मुक्त उद्योग को ही प्रगति की एकमात्र प्रेरक शक्ति माना जाता था। सभ्यता को अभिव्यक्त करने का निजी सम्पत्ति के पवित्र सिद्धान्त के आधार के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। पूँजीपतियों की उदारवादी संस्थाएँ सामाजिक विकास की सर्वोच्च उपलब्धि घोषित की जाती थीं।

मजदूर वर्ग के आन्दोलन के उषाकाल में पूँजीपति कम्युनिस्ट 'षड्यंत्रकारियों' और 'उपद्रवियों' के विरुद्ध संघर्ष के हिंसक उपायों के प्रयोग को स्पष्ट रूप से वरीयता देते थे। इसलिए अभिजात पूँजीवादी शासक, कम्युनिस्ट विचारों की वकालत करने वालों को 'विद्रोही अपराधी' घोषित कर उनका चालान करते, कारावास भेजने, आतंकित करने, निर्वासन आदि, दंड जो उस समय कम्युनिस्टों को दिये जाते थे, को न्यायसंगत समझते थे। कम्युनिस्टों की असहमति को प्रत्यक्ष दमन द्वारा कुचलने की नीति मजदूर वर्ग के समग्र आन्दोलन के विरुद्ध संघर्ष में पूँजीपतियों द्वारा अनुसरण की गयी आम नीति के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। सर्वहारा वर्ग के पहले आन्दोलनों को—फ्रांस में 1831 का लियोन्सका और 1934 का विद्रोह जर्मनी में 1844 में साइलेशिया के बुनकरों के उपद्रव—खून में डुबो दिया गया तथा 1871 के पैरिस कम्यून की वस्तुतः हत्या कर दी गयी।

पैरिस कम्यून के बाद हुए यूरोपीय पूँजीवाद के अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण विकास के दौर में, प्रतिगामियों ने यह भ्रम पाल लिया कि केवल पुलिस दमन के द्वारा ही मजदूर-आन्दोलन को समाप्त किया जा सकता है। यह समझ लिया गया कि किसी कम्युनिज्म का वैचारिक प्रतिरोध करने के लिए किसी वैचारिक प्रत्युत्तर की आवश्यकता नहीं है। यह भ्रम बहुत जल्दी टूट गया।

जैसे ही मुक्त प्रतियोगिता का पूँजीवाद इजारेदार पूँजीवाद के रूप में विकसित हुआ, इसके सभी अन्तर्विरोध एकत्र और तीव्र हो गये। सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी कार्रवाइयों ने अधिकाधिक बढ़ता क्षेत्र, सघनता और राजनीतिक महत्त्व प्राप्त कर लिया। मजदूर वर्ग आन्दोलन में मार्क्सवादी विचार अधिकाधिक फैलने गये।

शताब्दी के बदलने के साथ, वर्ग-संघर्ष पूरी तेज़ी पकड़ चुका था। सत्ताधारी अभिजात वर्ग ने अपना आधिपत्य सुरक्षित रखने के लिए नये मार्ग खोजना आरम्भ कर दिया था। वे मार्क्सवाद के विरुद्ध वैचारिक सुरक्षा के लिए अधिकाधिक सहारा ढूंढ़ने के लिए विवश हो गये।

सर्वहारा जन-आन्दोलन के विकास और मार्क्सवाद के विस्तार ने यूरोप में वैचारिक मोर्चों पर स्थितियों को पूरी तरह बदल दिया। सम्भवतः मुख्य परिवर्तन यह हुआ कि समस्त पूंजीवादी सामाजिक-राजनीतिक सिद्धान्तों को उन्हीं समस्याओं पर आवश्यक रूप से ध्यान केन्द्रित करना पड़ा जिन्हें वैज्ञानिक कम्युनिज्म ने सामने रखा था। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वैचारिक शत्रु ने वैज्ञानिक कम्युनिज्म के निष्कर्षों को ध्यान में रखा और उनके खण्डन के लिए उसे अपने अन्तहीन प्रयासों से नये तरीके खोजने पड़े। यह महत्वपूर्ण है कि प्रबोध युग के पूंजीवादी विचारकों के मानववाद की तुलना में इजारेदार पूंजीपति वर्ग के विचारकों ने मनुष्य की उपेक्षा की अपनी नयी स्वरलहरी चुनी : विवेक हेय समझा जाने लगा, और विवेकहीन, नैसर्गिक वृत्ति की पूजा की जाने लगी। दूसरे शब्दों में, ऐतिहासिक पहल को खोते हुए पूंजीपति वर्ग ने वैचारिक आक्रमण की अपनी स्थितियाँ भी खो दीं। पूंजीवादी सामाजिक-राजनीतिक विचार अब अधिकाधिक मार्क्सवाद-विरोध के रूप में प्रवाहित होने लगा क्योंकि उसने मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं को विशेष रूप से सामाजिक प्रक्रिया के वैज्ञानिक संज्ञान को और समाजवादी आदर्शों के मूल्य को कलंकित एवं खण्डित करने का निश्चय कर लिया था।

पूंजीवादियों के समर्थकों और अवसरवादियों की मैत्री

इसे केवल संयोग की बात नहीं समझा जा सकता कि आर्थर शोपेन हावर का विनाश के आदर्शवादी दर्शन[1], जो नियम शासित प्रकृति और मानव अस्तित्व की सार्थकता को ही नकारता है और जिसे लगभग विस्मृत किया जा चुका था, ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पुनः जीवन प्राप्त कर लिया। वस्तुगत प्रक्रिया के रूप में ऐतिहासिक प्रक्रिया के मार्क्सवादी विचार के प्रति भार के रूप में कार्य करने के लिए अविवेकवाद के उपदेश तैयार किये गये। शोपेन हावर का अनुयायी ऐडुअर्ड वोन हर्टमान ने और आगे बढ़ कर अचेतन का अपना दर्शन सामने रखा।[2] वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धांत को प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व में आकर

---

1. आर्थर शोपेन हावर, 'डाइवेल्ट एल्स विल अण्डवोर्स्टेलुंग' बी. डी. I बर्लिन, एण्ड विएन, 1924, ऽऽ 5-9
2. एडुअर्ड वोन हर्टमान 'फिलासोफी डेस अन बिवुस्टन' बी. डी. II 'मैटाफिजिक डेस अनबिवुस्टन', बर्लिन, 1876, ऽऽ416-22, 446

इसने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के समानांतर विश्व को पु.त्ववादी और स्वेच्छावादी अवधारणा प्रस्तुत की जिसकी अटल नियति मानवीय प्रभाव के समक्ष नहीं झुकती है।

पूंजीवादी दार्शनिक भी उदारवादियों से लेकर घोर प्रतिक्रियावादियों तक, समाज की सामाजिक-राजनीतिक संरचना की समस्याओं को अज्ञेयवाद और अविवेकवाद की दृष्टि से देखते हैं, उदाहरणार्थ, ये ऐसे विचार थे जो अपने काल में अपेक्षाकृत अधिक प्रचारित हुए इनमें प्रमुख थे 'अंग्रेजी व्यवहारवाद के प्रसिद्ध प्रवक्ता हर्बर्ट स्पेंसर जो अपने विकासमूलक सतुलन के सूत्र के आधार पर किसी प्रकार के क्रांतिकारी रूपांतरण का आवश्यक रूप से विरोध करते थे और कम्यु-निज्म को प्रतिगामी मानते थे।[1]

जर्मन दार्शनिक नीत्शे की सामाजिक-राजनीतिक शिक्षाएँ, नवजात इजारेदार पूँजीपति वर्ग के लिए, इसकी प्रतिक्रियावादी नीति और सैन्यवाद के लिए प्रत्यक्ष, नग्न और पागलपन भरा समर्थन थी। यह शोपेन हावर के निष्क्रिय निराशावाद से ऊपर उठने के लिए और विश्व के नये स्वामियों, स्वामीवश की ऐक्यबद्धता के लिए, श्रमिक आंदोलन और समाजवाद के विरुद्ध निर्णायक और निर्मम संघर्ष के लिए आह्वान था।[2] यह अकारण नहीं था कि कुछ दशकों के बाद हत्यारे फासिस्ट नीत्शे को आदर्श मानते हुए आये और उनका दर्शन उनके विश्व आधिपत्य के दावे को नैतिक न्यायसंगतता प्रदान करता था।

इसी समय, उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में, मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी सिद्धांत के अवसरवादी विरूपण द्वारा पूँजीवाद को खुला समर्थन देकर पहले ही सुरक्षित कर दिया गया था। लेनिन ने लिखा : "इतिहास की द्वन्द्वात्मकता इस प्रकार की है कि मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक विजय ने इसके शत्रुओं को अपने को मार्क्सवादियों के रूप में छिपाने के लिए विवश किया था, भीतर-ही-भीतर सड़ चुका उदारता-वाद समाजवादी अवसरवाद के रूप में स्वयं को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रहा था।[3] तभी से, मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी शिक्षाओं के विरुद्ध संघर्ष में अव-सरवाद पूँजीवाद का मुख्य आरक्षित दल है। इजारेदार पूँजीवाद ने अवसरवाद के साथ गुपचुप मैत्री कर ली, इस पर विश्वास किया और इसकी सहायता की। अवसरवाद भी, अपनी बारी में चूका नहीं। उसने स्वयं श्रमिक आन्दोलन की पाँतों में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विरुद्ध एक प्रकार का 'दूसरा मोर्चा' खोल दिया।

जर्मन सामाजिक जनवादी एडुअर्ड बर्नस्टीन का कुख्यात नारा 'आन्दोलन ही

---

1. देखें हर्बर्ट स्पेन्सर, 'फर्स्ट प्रिंसिपिल्स', न्यूयार्क, एन. डी. पृ० 314
2. फ्रेडरिक नीत्शे बियोंड गुड एंड ईविल, न्यूयार्क, एन डी.
3. वी. आई. लेनिन 'द हिस्टॉरिकल डेस्टिनी ऑफ़ द डॉक्ट्रिन ऑफ कार्ल मार्क्स', संक-लित रचनाएँ, खंड 18, पृ० 584

सब कुछ है, अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं' सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के समाजवादी उद्देश्य का सीधा विरोध था। यह संशोधनवाद और अवसरवाद का एक प्रकार का सैद्धांतिक ध्वज बन गया, जो उन्नीसवीं शती के अन्त तक एक अन्तर्राष्ट्रीय घटना बन गया।

सैद्धांतिक स्तर पर, अवसरवाद अनिवार्य रूप से मार्क्सवादी शिक्षा की समग्र मौलिक प्रस्थापनाओं के विरुद्ध खड़ा हुआ। उसने मार्क्स द्वारा की गयी पूँजीवाद की आलोचना सर्वहारा एकाधिपत्य के और मजदूर वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका के विचारों तथा *साम्राज्यवाद और समाजवादी क्रान्ति के सम्बन्ध में लेनिन की* शिक्षाओं को अपने आक्रमण का लक्ष्य बनाया। यह सिद्ध करने का यत्न किया गया कि पूंजीवाद ने अभी तक अपनी सम्भावनाएँ समाप्त नहीं कीं और फलस्वरूप समाजवादी क्रान्ति की पूर्वावश्यकताएं अभी परिपक्व नहीं हुईं। दक्षिणपंथी सामाजिक जनवादी नेताओं ने अपनी मिथ्या-वैज्ञानिक अवधारणाओं को विभिन्न नामपट्टों के अन्तर्गत विज्ञापित किया : 'प्रगतिशील पूंजीवाद' (बर्नस्टीन), 'वित्तीय पूंजी का नया आर्थिक युग' (कुनो), 'अतिसाम्राज्यवाद' (कौट्स्की), 'संगठित पूंजीवाद' (हिल्फर्डिंग)। निस्संदेह, ये सभी 'रूपांतरित पूंजीवाद' के उपयोग में सम्मिलित थे और पूंजीवादी जनतंत्र की रक्षा के लिए आवरण के रूप में 'वर्ग शान्ति' का उपदेश देते थे और सर्वहारा वर्ग को पूंजीपति वर्ग के साथ 'सामाजिक सामंजस्य' के लिए प्रेरित करते थे।

उनके काल में ये विचार यूरोप में मजदूर वर्ग में व्यापक रूप से प्रचारित हुए। बाद में बड़ी कटुता एवं रोष के साथ जिसे कोई भी क्रांतिकारी और मार्क्सवादी भली-भांति समझता है, फ्रेंज मेहरिंग ने लिखा : "पहले का जर्मनी का सामाजिक जनवाद अपने पुराने परीक्षित दाव-पेंचों के बावजूद छिन्न-भिन्न हो चुका है और साम्राज्यवाद की विजयिनी कार के पहियों के नीचे दबा पड़ा है।"[1] यह पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शती की अन्तिम तिहाई में वर्ग-सम्बन्धों के अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण विकास के प्रमुख कारणों में मजदूर आंदोलन में संशोधनवाद और अवसरवाद भी एक कारण रहा।

इस तथ्य के लिए 'द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय' के नेता सबसे अधिक जिम्मेदार हैं, कि जब पूंजीवादी विश्व अपने गहनतम और सर्वाधिक नाटकीय संकट में प्रविष्ट हो गया था और राष्ट्र एक साम्राज्यवादी युद्ध की आग में झोंक दिये गये थे, तब मजदूर वर्ग को वैचारिक रूप से और संगठनात्मक रूप से निहत्था कर दिया गया

---

1. ऑफेनेस श्रेइबेन फ्रॅंज मेहरिंग्स एन डाइबोल्शेविकी, 3 जून, 1918, इन : फ्रॅंज मेहरिंग, गैसम्मैल्ट श्राइटन बी डी. 15, पोलिटिश पब्लिजिस्टिक् 1905 बिस् 1918, बर्लिन 1966, एस 775

था जिसके कारण वह समय पर क्रांतिकारी कार्रवाई में असमर्थ रहा। एक ओर तो 'श्रमिक अभिजात वर्ग' पर भरोसा रखते हुए गैर-सर्वहारा स्तर से मजदूर वर्ग में लोग आ रहे थे, दूसरी ओर सामाजिक जनवादी पार्टियों के शीर्ष नेता मजदूर आंदोलन को मार्क्सवाद से विमुख करने में सफल हो गये थे और इसे पूँजीपतियों के साथ वर्ग सहयोग के पथ पर ठेल रहे थे।

इस प्रकार, वर्तमान शताब्दी के क्रांतिकारी विस्फोटों के आरम्भ के समय, सम्भवतः पहले से ही प्रत्यक्ष अपनी आरम्भिकता में, लेकिन सर्वथा भिन्न रूप से, विश्व प्रतिक्रियावाद ने मजदूर वर्ग की विचारधारा के विरुद्ध सामान्य नीति स्वीकार की थी : 'कम्युनिस्ट विद्रोह' को शक्ति के साथ कुचलने की दिशा में, और वैचारिक और राजनीतिक स्तर पर, पूँजीवाद के समर्थकों और संशोधनवादियों के गँठजोड़ के रूप में, जो मार्क्सवाद को उसके क्रांतिकारी सारतत्व से रिक्त करने के प्रयास थे।

इन दो दिशाओं के कारण संशोधनवाद मुक्ति आंदोलनों के लिए अधिक खतरनाक था (और आज भी है)। परजीवी रोग की तरह, इसने आंदोलन की पाँतों को दूषित कर दिया और मजदूर जनता को सच्चे समाजवादी लक्ष्य से पृथक् करने के लिए और 'सरलतर' तथा 'अधिक पीड़ाहीन' मार्गों की खोज के लिए समाजवादी शब्दावली का उपयोग किया। उस समय के बहुत से मार्क्सवादी जैसे ज्योर्जी प्लेखानोव, दिमित्र ब्लेगोयेव्, फ्रैंज मेहरिंग, पॉल लाफार्जे, आन्टूरो लेब्रिओला, रोजा लक्सम्बर्ग और कार्ल लीब्नेख्त, ने स्पष्ट रूप से संशोधनवाद के खतरे को देखा और उन्होंने बर्न्सटीन तथा बर्न्सटीनवाद के विरुद्ध सक्रिय संघर्ष किया।

लेनिन ने अवसरवाद की सामाजिक जड़ों और पूँजीवाद की इजारेदारी की मंजिल के विशिष्ट रूपों के साथ इनके सम्बन्धों को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है। उन्होंने मार्क्स और एंगेल्स की शिक्षाओं के आधार पर मजदूर वर्ग के लिए समाजवाद के एकमात्र सही मार्ग की रूपरेखा निर्धारित की। मार्क्सवाद की रक्षा तथा विकास करते हुए उन्होंने अवसरवादियों की विश्वासघाती भूमिका को सुस्पष्ट किया है।

अवसरवाद को निरावरण करना और क्रांतिकारी मार्क्सवाद की रक्षा करना यह सब बड़ा प्रभावशाली रहा क्योंकि ये केवल काल्पनिक युक्तिवाद पर आधारित नहीं थे, अपितु तीन रूसी क्रांतिकारियों के ठोस अनुभवों पर आधारित थे जो बीसवीं शताब्दी के क्रांतिकारी परिवर्तनों के अग्रदूत थे। लेनिन ने लिखा है : "रूस ने आधी सदी तक पीड़ाओं में से गुजरकर, अतुलनीय यातना झेलकर और अनुपम त्याग, क्रान्तिकारी शौर्य, अविश्वसनीय ऊर्जा, आस्थापूर्ण खोज, अध्ययन, व्यावहारिक परीक्षण, निराशा, सत्यापन और यूरोपीय अनुभवों के साथ तुलना के द्वारा

मार्क्सवाद को एकमात्र सही क्रान्तिकारी सिद्धान्त के रूप में प्राप्त किया ?"[1]

बीसवीं शताब्दी का आरम्भ मुक्तिसंघर्ष के इतिहास में ऐसे युग के रूप में समाया हुआ है जिसने पूँजीवाद के आम संकट को तेजी से बढ़ते हुए देखा और श्रमिक आंदोलन के उस शक्तिशाली क्रान्तिकारी उभार को भी देखा जो महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय में परिपक्व हुआ। उस क्रांति ने रूस में समाज की व्यवस्था को लाखों लोगों के जीवन और मनोवृत्ति को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया। और विश्व के लाखों लोगों को स्वाधीनता, राष्ट्रीय मुक्ति और समाजवाद के लिए सक्रिय संघर्ष के लिए खड़ा कर दिया, इसने मानव समाज के इतिहास में *नये युग का द्वार खोला, समाजवाद के युग का। समाजवादी क्रांति के युग में* विश्वव्यापी वर्ग-संघर्ष ने अपना सर्वोच्च रूप-समाजवादी क्रांति का रूप-ग्रहण कर लिया।

सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच वर्ग-संघर्ष ने अब वैचारिक संघर्षों के साथ-साथ अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों के क्षेत्र में भी प्रवेश किया है और अब उसका अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र हो गया है। अक्तूबर क्रांति ने इस प्रकार के विभिन्न आंदोलनों को—जैसे शांति के लिए आम लोकतांत्रिक संघर्ष, भूमि के लिए किसानों का संघर्ष, उत्पीडित जनगण का राष्ट्रीय समानता के लिए संघर्ष, निस्सन्देह सर्वहारा *का पूँजीवाद के उन्मूलन के लिए संघर्ष भी—साथ-साथ एक ही,* क्रांतिकारी धारा में एकत्र कर दिया है। इन आंदोलनों को एकजुट करके अक्तूबर क्रांति ने विश्वव्यापी स्तर पर उनके विकास के लिए शक्तिशाली आवेग प्रदान किया है।

सोवियत संघ का विरोध बनाम ऐतिहासिक प्रगति

रूस में समाजवादी क्रांति की विजय ने कम्युनिज्म विरोध पर सांघातिक प्रहार किया। अब पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थकों को दो मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था। एक ओर तो उनका सामना वस्तुतः विद्यमान सर्वहारा राज्य से था, दूसरी ओर, वास्तव में सभी पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग का आन्दोलन अद्वितीय रूप से अधिक परिपक्व, संगठित और सैद्धांतिक रूप से इस्पाती बन गया था।

मार्क्सवाद को 'खंडित करने का' पुराना तरीका निरर्थक हो गया था। पहले, जहाँ कि कम्युनिस्ट-विरोधी कुछ सत्याभासी युक्तियों के साथ सामने आ सकते थे यह कहते हुए कि पूँजीवाद ही एकमात्र सम्भव सामाजिक व्यवस्था थी, किन्तु अब इस तथ्य ने कि समाजवादी राज्य अस्तित्व में आ गया है, बड़ी हद तक उनके नीचे से ज़मीन खिसका दी।

---

1. वी. आई. लेनिन, वामपंथी कम्युनिज्म—एक बचकाना मर्ज़, संकलित रचनाएं, खंड 31, पृ. 25-26

उस समय से कम्युनिज्म विरोध का मुख्य सार तत्व सोवियत संघ के विरोध का सिद्धान्त बन गया। रूसी क्रान्ति के सम्बन्ध में कुछ भी जाने बिना, समाजवादी राज्य के विषय में पूँजीवादी राजनीतिज्ञों की पहली प्रतिक्रिया केवल उनकी वर्ग-स्थिति को ही प्रदर्शित करती थी। उन्होंने उद्दण्डतापूर्ण दुराग्रह के साथ इसे ताकत से कुचलने की कोशिश की और इस प्रकार, अनुदारवादी अंग्रेज विन्स्टन चर्चिल ने सोवियत गणतंत्र के विरुद्ध 14 राज्यों के युद्ध की घोषणा की। जर्मन सेनापति ऐरिक वॉनलुडेनडोर्फ ने जो हिण्डेनबर्ग का दायाँ हाथ था और बाद में म्यूनिख में नाज़ियों के विद्रोह में सक्रिय भागीदार रहा, एक लाख लोगों को हथियारबन्द और प्रशिक्षित करने का आह्वान दिया। उसने कहा, फ़ौज उनकी कमान हाथ में ले, और दो महीने में मास्को या सोवियत रूस का नामोनिशान भी नहीं मिलेगा।

जैसे ही उन्होंने सोवियत राज्य के भीतरी मामलों में सीधा हस्तक्षेप संगठित किया, पश्चिमी शक्तियों के अधिकृत प्रतिनिधियों ने पहले-पहल रूस में पूँजीवादी व्यवस्था को पुनः स्थापित करने की अपनी इच्छा को छिपाना आवश्यक नहीं समझा। नवम्बर 1917 के अन्त में, पैरिस में, एक सम्मेलन में, संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ने रूस के साथ समझौता वार्ता शुरू करने की पूर्व शर्त के रूप में धृष्टतापूर्वक सोवियत सत्ता के उखाड़ फेंकने की माँग रखी थी।

बाद में, पराजित देशों के साथ शान्ति संधि की रूपरेखा तैयार करने के लिए 1919 में वर्साई सम्मेलन किया गया, 'चार बड़े' विल्सन, क्लीमेंश्यू, लायड जॉर्ज और ऑर्लैण्डो उन कुछ देशों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उन्होंने 'रूस के प्रश्न को' सर्वप्रथम उठाया, जो वस्तुतः सारी बहसों में प्रधान प्रश्न के रूप में छाया रहा। तथापि, सोवियत गणतंत्र को किसी भी प्रकार पराजित राष्ट्रों में नहीं गिना गया। और स्वभावतः ही इस प्रश्न पर अनौपचारिक स्तर पर भी बहस करने पर सहमति नहीं हो सकी। वर्साई के 'शान्ति-स्थापनकर्ताओं' का सोवियत रूस के विषय में रवैया 25 फ़रवरी 1919 को लिये गये निर्णय में स्पष्ट दिखायी दिया। शान्ति सम्मेलन में भाग लेने वालों की परिषद् ने मार्शल फ़ौश के इस प्रस्ताव का समर्थन किया था कि पूर्वीय यूरोप के देशों को इसमें सम्मिलित करके सोवियत विरोधी हस्तक्षेप को विस्तृत किया जाए।[1] यद्यपि 'रूसी प्रश्न' औपचारिक रूप से सम्मेलन की विषय सूची में नहीं था, लेकिन यह उसमें भाग ले रहे सभी दिमाग़ों पर छाया रहा, जो 18 जुलाई 1919 को वर्साई प्रासाद की डेस ग्लेसिस् दीर्घा में, ठीक उसी हाल में जहाँ 48 वर्ष पूर्व 18 जनवरी 1871 को प्रशिया के साथ युद्ध में फ्रांस की पराजय के पश्चात् जर्मन साम्राज्य के निर्माण की घोषणा की गयी थी

---

1 विश्व इतिहास, मास्को, 1961, खंड 8, पृ० 105-106

वहीं वर्साई गमनागमन और शान्ति समझौता किया गया। दोनों ही पुरानी साम्राज्यवादी नीति की अभिव्यक्ति थे जिसने कि युद्ध को उभारा था तथा जो *सोवियत रूस की क्रान्तिकारी चुनौती का सामना करने के लिए साम्राज्यवादी* शक्तियों का एक प्रयास था।

निस्सन्देह वर्साई समझौता, एक साम्राज्यवादी, अन्यायपूर्ण और परभक्षी संधि थी। इसने केवल शोषकों की सामान्य व्यवहार पद्धति का ही अनुसरण किया जिसमें विजेता पराजितों को लूटता है और जनता के हितों की चिन्ता किये बिना अपनी इच्छा पराजितों पर लाद देता है। वही पुराना रास्ता यहाँ भी अपनाया गया था।

सैडान में फ्रांसीसी सेना के पराजय के पश्चात् 1871 में हस्ताक्षरित शान्ति संधि के अन्तर्गत यह पूरी तरह समझ में आने योग्य बात है कि बिस्मार्क ने फ्रांस से अल्सास और लौरेन को अलग करने के लोभ का प्रतिरोध नहीं किया। और अब जर्मनी की हार के बाद फ्रांस ने न केवल अल्सास और लौरेन को वापस ले लिया बल्कि सार के बेसिन में कोयले की खानों को भी अपने हाथों में ले लिया।

आक्रामक जर्मनी पर एक शान्ति थोप दी गयी। जर्मनी, जैसाकि हम जानते हैं, *अपने क्षेत्र का आठवां भाग, अपनी आबादी का बारहवां भाग और अपने सभी* उपनिवेश खो चुका है। समझौता करने वाले देशों ने जर्मनी के साथ ऐसा व्यवहार *किया जैसा कि परभक्षी पशु अपने शिकारगाह में अपने प्रतिद्वंद्वी का पीछा करते* हुए करता है।

*वर्साई का एक और अन्तर्निहित उद्देश्य भी था। जब अक्तूबर क्रान्ति पूँजी-*वादी विश्व-व्यवस्था में पहली दरार डाल रही थी और क्रान्तिकारी ज्योति जला *रही थी उसी समय विश्व का साम्राज्यवादी पुनर्विभाजन हो रहा था। ऑस्ट्रो-*हंगेरियायी और जर्मन राजतंत्र उस ज्वाला में भस्म हो गये, जबकि शेष यूरोप, *एशिया और अमरीका में मजदूरों का जन-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। उन* स्थितियों में, राजनीतिज्ञों ने विश्व के साम्राज्यवादी पुनर्विभाजन की अपेक्षा वर्साई *में और अधिक देखा। वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक ऐसी व्यवस्था चाहते* थे जो सोवियत रूस की विरोधी होती।

यद्यपि सैनिक कार्रवाई के रंगमंच पर रूसी सेनाओं ने महत्त्वपूर्ण *भूमिका का* निर्वाह किया और अक्तूबर क्रान्ति ने साम्राज्यवादियों को युद्ध बन्द करने को बाध्य कर दिया, सोवियत गणतंत्र को सम्मेलन *में प्रवेश नहीं दिया गया, उसके बिना* ही वर्साई संधि सम्पन्न हो गयी। यद्यपि संधि में सोवियत राज्य के विरुद्ध कोई ठोस कार्रवाई का उल्लेख न था, *इससे कोई भ्रम में नहीं पड़ सकता। अपने सार-*तत्व में यह घोषित रूप से सोवियत विरोधी चरित्र रखती थी। स्पष्ट रूप से इन्हीं उद्देश्यों ने विल्सन और लायड जार्ज को *जर्मनी के विभाजन के पायोनियर के*

प्रस्ताव को नकारने को प्रेरित किया था। पश्चिमी राष्ट्रों को पूरी तरह सुदृढ़ जर्मनी की आवश्यकता थी—केवल फ्रांस का प्रतिरोध करने वाले की नहीं बल्कि सबसे पहले वे उसे सोवियत नीति-विरोधी उपकरण के रूप में चाहते थे। जर्मनी की सीमाओं के प्रश्न का निपटारा भी पश्चिमी देशों की सोवियत विरोधी योजनाओं को ध्यान में रखकर किया गया। "यह माना गया कि उनका विनाश अवाछनीय है'''क्योंकि वे बोल्शेविकवाद के विरुद्ध रक्षा के रूप में काम कर सकते हैं।" पेरिस सम्मेलन में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया था।[1] जर्मनी को असमान और अपमानजनक स्थिति में डालने हुए वर्साई संधि ने जर्मन जनगण में असन्तोष भड़काया और उसमे प्रतिशोध की भावना के बीज बो दिये। बाद में जिसकी फसल हिटलर ने काटी।

इस प्रकार एक नया ठोस तत्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मे जोड़ दिया गया। यह था पश्चिमी शक्तियों के प्रतिगामी समुदाय का सोवियत विरोध का सिद्धान्त, जो अपना मुख्य कर्तव्य समझता था विश्व बोल्शेविकवाद का उन्मूलन और इसके प्रधान केन्द्र रूसी सोवियत गणतंत्र का विध्वंस।[2]

सशस्त्र हस्तक्षेप, घेराबन्दी, आर्थिक नाकेबन्दी, तोड़फोड़, सोवियत गणतंत्र के विरुद्ध उत्तेजना फैलाना—ये सब कार्रवाइयाँ अखडनीय प्रमाण हैं कि साम्राज्यवाद ने नयी समाज व्यवस्था के विरुद्ध सबसे बढ़कर, विश्व ऐतिहासिक प्रगति के हिरावल दस्ते के खिलाफ, निर्मम वर्ग संघर्ष आरम्भ कर दिया था। साम्राज्यवाद ने इन संघर्षों के लिए अपने सभी संसाधनों को एकत्र किया। उस समय समाजवादी समाज के विरुद्ध हथियारबन्द लड़ाई को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी।

अनेक वर्षों के बाद, 1960 के मध्य में, प्रोफेसर जॉन एम० थाम्पसन ने हस्तक्षेप के दिनों के सोवियत विरोध के सिद्धान्त और शीत युद्ध के बीच 'आश्चर्यजनक समानता' का उल्लेख किया था। उन्होने लिखा था : "रक्षात्मक युद्ध के समर्थक 1919 में फोच की स्थिति को समझ में आने योग्य और सहानुभूति योग्य पायेंगे, विरोध नीति के प्रवक्ताओं को क्लेमेंश्यू और दूसरो के विचार सुपरिचित और स्वीकारणीय लगेंगे जो 1919 में बोल्शेविकों के इर्द-गिर्द सैनिकों की घेराबन्दी में 'शक्ति के क्षेत्र' निर्माण करने के पक्ष में थे। वे जो कुछ वर्ष पूर्व कम्युनिस्ट आक्रमण को पीछे धकेलने की माँग करते थे, वे 1919 में चर्चिल और दूसरों की ओर देखते थे और जो यह मानते थे कि बोल्शेविज्म को पीछे हटाया जा सकता

1. संयुक्त राज्य अमरीका के विदेश सम्बन्धों से सम्बद्ध दस्तावेज, पेरिस, शान्ति सम्मेलन, 1919, खंड IV, वाशिंगटन, 1943, पृ० 300
2. वी आई. लेनिन : 'छठी असाधारण अखिल रूसी मजदूर, किसान, कज्जाक और लाल सेना के डिपुटियों की कांग्रेस', खंड 28, पृ० 160-61

है और अन्ततः वह उनके द्वारा पराजित होगा जो राष्ट्रवादी राज्य और बोल्शेविज्म के विरोध का झण्डा उठाये हुए हैं।[1] वस्तुतः, इस विश्व में हर चीज परिवर्तित होने वाली है किन्तु प्रतिक्रियावाद की सामाजिक प्रगति को रोकने की इच्छा कभी नहीं परिवर्तित होती।

कम्युनिज्म विरोध की नयी व्याख्या : क्रान्ति 'विलम्बित सुधार' है

और इस प्रकार, यह शस्त्र बल से समाजवाद को नष्ट करने की, 'कम्युनिज्म के भूत को' भगाने की और वर्तमान से, शायद, भावी पीढ़ियों तक को भी, प्रथम उपलब्धियों को ध्वस्त करने की कार्यविधि थी। वर्षों से साम्राज्यवाद की विदेश नीति, और आज तक भी, इस सामान्य रणनीति के अनुरूप रही है।

पूँजीपतियों की वैचारिक सेवाएँ मुख्य रूप से इन प्रयासों पर केन्द्रित रही और अब भी हैं :

(क) सामाजिक व्यवस्था के रूप में समाजवाद की साख गिराने के लिए (सर्वोपरि यह प्रमाणित करके कि समाजवादी समाज युक्तिसंगत रूप से सामान्य विकास नहीं अपितु कृत्रिम, अप्राकृतिक और चलती चीज है।)

(ख) पूँजीवाद को पुनः स्थापित करने के लिए, सर्वोपरि यह दिखाने का प्रयत्न करके कि पूँजीवादी सम्बन्धों के आधुनिकीकरण से पूँजीवादी समाज की वर्ग-विभाजित शत्रुतापूर्ण प्रकृति बदल जाती है।

(ग) सोवियत संघ की विदेश नीति को मिथ्या सिद्ध करने के लिए, सोवियत राज्य को आक्रामक के रूप में चित्रित करके इसे अन्तर्राष्ट्रीय रूप से अलगाव में डालने के लिए और इस प्रकार समाजवादी सोवियत संघ के विरुद्ध युद्ध के लिए जनता को तैयार करना।

सोवियत सत्ता के पहले वर्षों में पूँजीपति वर्ग के विचारकों ने कुछ समय तक निश्चिन्तता से काम लिया। वे समाजवादी विकास की विधि सम्मत प्रकृति को ही निरन्तर नकारते रहे, इसे अवैध और इतिहास की पूर्णतया आकस्मिक त्रुटि बताते रहे जिसने सोवियत संघ को सभ्य राष्ट्रों के दायरे से परे डाल दिया। यह प्रचार का यह विश्वास दिखाने का प्रयास करने में कि अक्तूबर क्रान्ति जनता पर बोल्शेविकों ने अपनी मर्जी से थोप दी थी, और इससे जो समाजवादी व्यवस्था उदित हुई वह 'आकस्मिक' थी, स्वयं क्रान्ति भी आकस्मिक थी और इतिहास के आधार से उसके लिए कोई सम्भावना नहीं है। अमरीकी राजनयिक और इतिहासज्ञ

---

1. [illegible], प्रिन्सटन, न्यूजर्सी 1966, पृ० 346

जार्ज एफ० केनन ने कहा : "उदाहरण के लिए, बोल्शेविकों ने शीतप्रासाद पर कब्जा कर लिया, यह इसलिए सम्भव हुआ कि उसके रक्षकों में बड़ी फूट और अस्थिरता थी और किसी ने असावधानी से पिछला दरवाजा खुला छोड़ दिया था।"[1] दिन-ब-दिन पूँजीवादी समाचार पत्र सोवियतों के अनिवार्य विनाश की भविष्यवाणी करते रहे।

तथापि, जब सबके सामने यह स्पष्ट हो गया कि ये भविष्यवाणियाँ निराधार हैं, उन्होंने यह कहना आरम्भ कर दिया : सोवियत गणतन्त्र जो रूस की विशिष्ट स्थितियों से उत्पन्न हुआ 'शुद्ध रूप से रूसी' परिघटना है, जो दूसरे देशों में दुहरायी नहीं जा सकती। तथ्यतः उन्होंने इसमें जोड़ दिया, कि रूस में भी यह आवश्यकता के कारण नहीं आयी, क्योंकि जो सुधार पहले से लागू किये जा चुके थे उन्होंने 'बोल्शेविक प्रयोग' को पूर्णतया निरर्थक कर दिया। उदाहरणार्थ, जैसाकि उस समय के ड्यूमा (रूसी संसद) के प्रख्यात सदस्य वी० एस० मैकलाकोव् ने जो बाद में प्रवासी हो गये थे, लिखा था—"प्रत्येक क्रांति विलम्बित सुधारों के अतिरिक्त कुछ नहीं होती जो, क्योंकि विलम्बित होती है, इसलिए अपनी गति से इतनी तूफानी होती है कि अपने लक्ष्य से भी आगे बढ़ जाती है।"[2]

अक्तूबर क्रान्ति भी अपने लक्ष्य से आगे बढ़ गयीं, यह कम्युनिज्म विरोधी विचारकों की स्थापना है। इस प्रकार, उनका कथन था, कि यह मजदूर वर्ग के हिरावल दस्ते के रचनात्मक, क्रियाशील और वैज्ञानिक रूप से सुचिन्तित क्रिया-कलाप का परिणाम होने की अपेक्षा समस्त सामाजिक और उत्पादन सम्बन्धों का उपप्लव विध्वंस और विभेदन बन गयी।

उन्होंने बोल्शेविक पार्टी की भूमिका को, इसके संघर्ष में सैद्धान्तिक और संगठनात्मक एकता के क्षेत्रों में और अक्तूबर क्रान्ति में इसके नेतृत्व के ऐतिहासिक महत्व को कम करके उसे मिथ्या प्रमाणित किया। बोल्शेविकों को षड्यन्त्रकारियों के एक छोटे गुट के रूप में चित्रित किया जिन्होंने अधिकांश जनगण को अपनी मनोवांछित योजनाओं का अन्धविश्वासी उपकरण बना लिया। यह वक्तव्य यहाँ तक कहता है कि पार्टी ने रूसी समाज की 'मानसिक उदासीनता' का और रूसी जनता की 'निष्क्रियता' का लाभ उठाया जिसने अभी तक पश्चिमी संसदीय प्रणाली की पाठशाला में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। ब्रिटिश सोवियत विज्ञापन की पत्रिका 'स्लोवानिक रिव्यू' के पृष्ठों में निम्नलिखित प्रकार के वक्तव्य पढ़े जा सकते हैं : न तो अपनी शिक्षाओं में और न अपने दावपेंच में बोल्शेविज्म मार्क्सवादी बोल्शेविज्म था, निश्चित रूप से इसमें मार्क्सवाद के कुछ तत्व थे, लेकिन इसके बजाय यह

1. जॉर्ज एफ० केनान, 'रुसा नोरा इ बार' प्रिन्सटन, न्यूयार्क 1956, पृ० 6
2 दि स्लेवोनिक रिव्यू, खण्ड 11, अंक 5, दिसम्बर 1923 पृ० 225

ब्लाकीवाद, श्रमिक संघवाद और अराजकतावाद का मिश्रण है : यह मार्क्स से भी अधिक बाकूनिन के निकट है। यह रूसी नास्तिवाद (निहिलिज़्म) का ही नैरन्तर्य है···। यह उत्पाद शुद्ध रूप से रूसी घटना है, जो रूसी चर्च द्वारा इतने लम्बे समय तक स्वीकृत विश्व सम्बन्धी स्थिर दृष्टिकोण पर पश्चिम के अत्यधिक उग्रवादी विचारों के प्रभाव के कारण हुए अव्यवस्थित विकास का परिणाम है। बोल्शेविक फायरबाख के भौतिकवाद और नास्तिकवाद के कारण उत्तेजित और उद्भ्रान्त रूसी साधु है।" (!?)[1]

और अन्ततः, उन वर्षों में सोवियत विरोधवाद के विचारकों के बीच यह फैशन बन गया था कि वे क्रान्ति विरोध के काम में नहीं आयी क्षमता के सम्बन्ध में खूब गर्मा गर्म बातें किया करते थे। इस सम्बन्ध में, उनका ध्यान अक्तूबर क्रान्ति के वास्तविक नेता बोल्शेविकों की ओर इतना अधिक न था जितना कि उनसे भागे हुए और इसके प्रत्यक्ष शत्रुओं पर। बाद में, हार्वर्ड में सरकार के प्रोफ़ेसर तथा उसके रूसी अनुसंधान केन्द्र के शोध सहायक अदम उलान से अलंकृत भाषा में पूछा गया कि कोई मेन्शेविकों को नापसन्द कैसे कर सकता है अथवा उनके इतिहास के कूड़ेदान की ओर अभियान में इस या उस अवसर पर यह या वह करो की चेतावनी देने का लोभ कैसे संवरण कर सकता है···। हम कैडेट्स को प्रेम करने और उनके साथ चलने को आतुर हैं···। उस बहुरूपी समूह—सामाजिक जनवादियों ने भी अपने भाव प्रवण इतिहासकारों को खोज निकाला है। उनके साथ सेविनकोव के वीरतापूर्ण कृत्यों तथा चेर्नोव के अनिर्णय के की पुनरावृत्ति का आनंद ले सकते हैं।[2]

तथापि, यह कोई बात नहीं कि *पूँजीवादी विचारकों* ने भले ही बोल्शेविकों की खूब निन्दा की और मेन्शेविकों तथा सामाजिक क्रान्तिकारियों की प्रशंसा की, ज़िन्दगी अपने रास्ते बढ़ती गयी। प्रत्येक क्षेत्र में सोवियत सफलताएँ अधिकाधिक विशिष्ट एवं अतुलनीय होती गयीं। इन तथ्यों के समक्ष, यह वक्तव्य कि समाजवाद, ऐतिहासिक विकास की 'स्वाभाविक' गतिविधि में कम्युनिस्टों के द्वारा बलपूर्वक थोपी गयी घटना है, प्रभावहीन हीन होता चला गया। किन्तु फिर भी, कम्युनिज़्म विरोधी आज तक उसका उपयोग कर रहे हैं। उन्हें अतिकुत्सित और आदिम प्रस्थापनाओं को त्यागना पड़ा किन्तु स्वयं यह विचार धीरे-धीरे मुख्य रूप से दो दिशाओं में रूपान्तरित हो गया।

प्रथम, सोवियत गणतन्त्र की सफलताओं की स्वीकृति के साथ प्रायः कहा जाने

---

1. द स्लेवोनिक रिव्यू खंड 1, सं० 1 जनवरी 1922 पृ० 12
2. द स्टेट ऑफ सोवियत स्टडीज़, सपा० वाल्टर जेड, लाक्वेयर, और लियोपोल्ड लाबेज़, केम्ब्रिज, मास, 1965, पृ० 16

लगा कि जहाँ तक इन सफलताओं का सवाल है, अक्तूबर क्रान्ति का इनसे कोई लेना-देना नहीं है, यह उन मानवीय और भौतिक संसाधनों में अन्तर्निहित थी जो इस क्रान्ति के बाद की किसी भी सरकार को दे सकता था।"[1]

दूसरे, इन उपलब्धियों के सम्बन्ध में मुख्य स्पष्टीकरण यह दिया गया कि पहले तो यह दावा आविष्कृत किया गया कि सोवियत समाज 'एकतन्त्रात्मक' था और बाद में, समान रूप से बेतुका व्यंग्योक्ति भरा कि यह 'सर्वसत्तावादी' था, इसका अर्थ था कि समाज कृषि का औद्योगीकरण और सामूहिकीकरण कर रहा है और सामान्य रूप से कहा जाय तो पूरी तरह दमन के साधनों के द्वारा अधिसंख्य जनता अपेक्षाओं और आकांक्षाओं के विरुद्ध यह प्रगति की जा रही है।

इन प्रस्थापनाओं से यह नतीजा निकलता था जैसे कि स्थिति का ऐसा ही तर्क था कि इस 'मिट्टी के पैरों वाले भीमकाय देव' के विरुद्ध प्रतिरोधात्मक युद्ध किया जाय। यह कहा जाता था कि आवश्यकता इस बात की है कि पश्चिमी जनतन्त्र के विरुद्ध बोल्शेविकों की 'विस्तारवादी योजनाओं' को रोका जाय और 'रूस की गुलाम जनता को मुक्त किया जाय'। यह सोचा गया कि इससे मानव समाज के ऐतिहासिक विकास को वापिस इसके 'प्राकृतिक' और उपयुक्त पथ पर लाया जा सकेगा।

पूंजीवाद की आर्थिक चिकित्सा

1924-1929 के काल में पूंजीवाद की आर्थिक स्थिरता के कारण इसके विचारकों की रणनीति में कुछ नये तत्वों का समावेश किया गया। एक ओर, स्वयं इस तथ्य ने ही पूंजीवादी विश्व की भावी संभावनाओं के सम्बन्ध में कुछ भ्रम—जो उस समय अति काल्पनिक थे—उत्पन्न कर दिये। दूसरी ओर, समाजवाद की ओर कठोरता से नकारात्मक रवैये की सुभेद्यता को समझते हुए पूंजीवादी राजनीति विज्ञानी स्थिति को अधिकाधिक चित्रित करने का प्रयास इस प्रकार करते रहे कि अन्ततः पूंजीवादी विकल्प का ही चुनाव किया जायगा। उन्होंने जनता के दिमागों में यह विचार बैठाने का प्रयास किया कि वास्तविक सामाजिक क्रान्ति पूंजीवादी समाज में हो रही है, और यही, समाजवाद नहीं, ऐसे बीज बो रही है जिसके फल मजदूर वर्ग को मिलेंगे।

फिर एक बार, केन्द्रीय समस्या संपत्ति के वितरण की थी, जो डेविड रिकार्डो और आदम स्मिथ के समय से ही पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के मार्ग में बड़ी बाधा बनी हुई थी।

---

1. राबर्ट, वी० डैनियल्स, "रेड अक्तूबर, बोल्शेविक रेवोल्यूशन ऑफ 1917" न्यूयार्क, 1967, पृ० 226-27

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री जीन सेव स्मिथ ने इस समस्या को एक अशिष्ट (किन्तु पूँजीवादी दृष्टिकोण से अपेक्षाकृत शिष्ट) अर्थ प्रदान किया। उसने उत्पादन के तीन तत्वों को 'प्राकृतिक शक्तियाँ' नाम देकर अलग-अलग कर दिया—श्रम, पूँजी और भूमि तथा संपदा के वितरण को भी उसी प्रकार बाँट दिया—वेतन, मुनाफा और किराया। मार्क्सवाद द्वारा संपदा के वितरण के वर्ग चरित्र प्रकट करने के बाद, पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों ने नये सिद्धान्त की खोज ईमानदारी से आरम्भ कर दी, पुनः सावधानी के साथ मुख्य मुद्दे की ओर इस गहन . वर्ग समस्या के सामाजिक पहलू की ओर आकर्षित किया।

हर्वर्ट विश्वविद्यालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्राध्यापक (और अमरीकी अर्थशास्त्री जॉन क्लार्क के सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त के प्रवक्ता)[1], थामस कार्वर ने अपनी भारी-भरकम नाम वाली पुस्तक "द प्रेजेण्ट इकोनॉमिक रेवोल्यूशन इन दि यूनाइटेड स्टेट (1926)" में इस क्रान्ति को उत्पादन के और अधिक केन्द्रीकरण में तथा पूँजी के अंशपत्रों के विस्तार के रूप में देखा। 'सामूहिक संगठन' (कार्पोरेट ऑर्गेनाइजेशन) कारवर के अनुसार बुनियादी रूप से पूँजीवाद के सारतत्व को परिवर्तित कर देते हैं, इस प्रकार मालिकों का मालिक होना तथा मजदूरों का मजदूर होना बंद हो जाता है। उसने लिखा कि सामूहिक कार्पोरेट संगठन का आधुनिक रूप हजारों लोगों का उद्योग के स्वामित्व में भाग लेना सम्भव बनाता है, बन्ध पत्रधारियों अथवा स्टाकधारियों के रूप में।[2]

निस्सन्देह कारवर की "खोज" नयी नहीं थी, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त से ही स्वामित्व के अंश पत्रों के सम्बन्ध में लोग सुपरिचित हैं, और प्लेखानोव तथा लेनिन ने पहले ही बर्न्सटीन और अन्य यूरोपीय संशोधनवादियों के प्रयासों की कड़ी आलोचना की जो मजदूर जनता को 'पूंजी के जनतंत्रीकरण' को उदाहरण के रूप में बताकर मजदूर जनता को थोड़ा बदले हुए वेश में मूंडने के इस अतिरिक्त साधन का उपयोग करते थे।

जैसाकि विलियम ज़ेड० फ़ोस्टर सर्वथा उचित रूप से लिखा था कि पूँजीवादी अमरीका की वास्तविकताओं ने 'सामूहिक पूँजीवाद' के मिथक का भण्डाफोड़ कर दिया। उदाहरण के लिए, 1920 के दशक में अमरीकी राज्य की 3 प्रतिशत आबादी स्टाक धारक थी, इसमें मजदूर भी जो इस समूह का एक महत्वहीन भाग थे, सम्मिलित थे। वस्तुतः वे देश के सामाजिक और उत्पादन-जीवन पर कोई

1 क्लोन्टोक्रेटिक सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी के पूर्व भाग में प्रस्थापित किया गया। बाद में बहुत से पूँजीवादी अर्थशास्त्री इसके अनुयायी बने।

2. थामस निक्सन कारवर, द प्रेजेण्ट इकोनॉमिक रेवोल्यूशन इन दि यूनाइटेड स्टेट्स, बोस्टन, 1926, पृ० 115

प्रभाव नहीं डाल सकते थे और, यह कहना आवश्यक नहीं, वे पूँजीवादी सम्बन्धों की प्रकृति को किसी भी प्रकार परिवर्तित नहीं कर सकते थे। तथापि, पास में कुछ अधिक अच्छा न होते हुए भी साम्राज्यवादी विचारकों ने इस वक्तव्य को विज्ञापित करने में कोई प्रयास नहीं उठा रखा और इसे समाजवाद के विकल्प के रूप में चलाते रहे। यह (सामूहिक संगठन), क्रान्ति है, कारवर ने घोषणा की ' कि मजदूरों और पूँजीपतियों के बीच विद्यमान किसी भी प्रकार के भेद को, मजदूरों को पूँजीपति बनाकर और अधिकांश पूँजीपतियों को मजदूर बनने के लिए मजबूर करके समाप्त कर देगा।" क्योंकि उनमें से बहुत से केवल पूँजी के बदले मिलने वाले लाभ पर जीवित नहीं रह सकते थे। यह विश्व के इतिहास में कुछ नयी बात है।[1]

तथापि, अमरीकी प्राध्यापक के इस उत्साह में एक बड़ी कमी रह गयी है - किसी भी प्रकार यह वास्तविक जीवन से जुड़ा नहीं है। कारवर ने भले ही कठिन श्रम करके यह दिखाया हो कि संयुक्त राज्य अमरीका में 'आर्थिक क्रान्ति' अमरीकी समाज के समग्र ढाँचे को बदल रही है, पर वास्तव में हर चीज पहले की तरह ही चल रही है, मजदूर अब भी मजदूर ही हैं केवल पहले से भी बुरी हालत में, और पूँजीपति पूँजीपति ही रहे, अपने शोषण से और अधिक धनी बन गये।

कारवर का यह सैद्धान्तिक रूप से निराधार सिद्धान्त समय के साथ कुछ कदम चला — किन्तु केवल इस अर्थ में कि इसने अपने ढंग से अमरीकी जनता की इजारेदारी विरोधी मानसिकता को अभिव्यक्त किया। यह कोई संयोग की बात न थी कि 1920 के दशक में ही पूँजीवाद के समर्थकों ने सम्पदा और आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण के प्रश्नों को उठाया और उनके अपने उत्तर ढूँढ़कर उबरने की कोशिश की। क्योंकि तब उन्हें यह स्पष्ट रूप से आवश्यक प्रतीत हुआ कि उनके लिए निजी उद्योगों के संस्थानों की प्रतिष्ठा को बनाये रखना तत्काल आवश्यक हो गया था, सोवियत राज्य के अनुभव ने जिनकी जड़ें काट दी थीं। साथ ही वे इजारेदारियों के हाथों में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के अधिकाधिक केन्द्रीकरण के राष्ट्रव्यापी विरोध को कमजोर करना चाहते थे। पूँजी के 'सामूहिक' रूप की अवधारणा ने इस प्रकार का प्रयास किया।

साथ ही 1920 और 1930 के दशकों में पूँजीवादी सिद्धान्तों के द्वारा पूँजीवाद के प्रत्यक्ष समर्थन को पूरा किया गया, वे छिछली आलोचना करते थे और बड़ी स्वच्छन्दतापूर्वक सुधारवाद की बात करते थे। यह पूँजीवाद को उसकी कुछ कमियों की आलोचना करते हुए फिर से जमाने का प्रयास था। 1920 के दशक में, यह धारा दिखायी दी, विशेष रूप से, तथाकथित संस्थानिकतावाद (इन्स्टीट्यूशनलिज्म) में। इस धारा के प्रवर्तक थे अमरीकी अर्थशास्त्री और समाज-

1. टी० एन० कारवर पूर्वोद्धृत पृ० 9-10.

शास्त्री थोर्स्टेन वेब्लेन जो 20वीं शताब्दी के 'प्रूधों' थे। वेब्लेन को उनकी कृति 'न्यू वर्ड' से बड़ी लोकप्रियता मिली, पूँजीवादियों के परम्परागत जड़सूत्रों 'सामाजिक संतुलन' और 'हितों की समानता' के स्थान पर उन्होंने सामाजिक समूहों के व्यवहार और चिन्तन का अध्ययन करने और आधुनिक पूँजीवाद की रचना का विश्लेषण करने के तथा इसके प्राविधिक-आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक रूपों या संस्थाओं के विकास के प्रश्न को उठाया (इसीलिए उसका नाम सांस्थानिकतावाद रखा गया)।[1]

इस विकासक्रम में, सांस्थानिकतावाद के प्रवक्ताओं ने कतिपय अन्तर्विरोधों को स्वीकार किया और उनको अनिवार्य माना—उदाहरणार्थ, उत्पादन और व्यापार के बीच। तथापि, उन्हें इसका कारण पूँजीपतियों और सर्वहारा के विरोध में नहीं दिखायी दिया, अपितु 'हितों के विवाद में' जिसमें एक ओर लोग दोनों ही प्रकार के, उद्यमी और मजदूर जो प्रविधि से और उत्पादन के संगठन से सम्बद्ध थे, तथा दूसरी ओर वे वित्तीय व्यापारी जो पूँजी के संचालन के क्षेत्र में कार्यरत थे। सांस्थानिकतावादियों ने इस 'विवाद' का समाधान स्वामियों से अभियन्ताओं के हाथ में सत्ता के हस्तान्तरण में, और तथाकथित 'अभियन्ताओं की और प्राविधिकों की क्रान्ति' में देखा जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का प्रबन्ध चला सकते थे। यह किस अर्थ में प्रूधों के 'निर्मित मूल्य' (कान्स्टिट्यूटिड वैल्यू) से भिन्न है जिसके वास्तविक सार का कार्ल मार्क्स ने अपनी कृति 'दर्शन की दरिद्रता' में पर्दाफाश किया था।

पूँजीवाद के अन्य समर्थकों की तरह ही जिन्होंने कि उसके कुछ पहलुओं की आलोचना के बहाने पूँजीवादी व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया, वेब्लेन ने भी पूँजीवाद के मुख्य अन्तर्विरोधों को गौण अन्तर्विरोधों का स्थान देने का प्रयास किया। इसी कारण उन्होंने यथार्थ की सही तस्वीर प्रस्तुत करने के स्थान पर एक विकृत योजना निर्मित की।

लेकिन जैसे ही वेब्लेन ने अपना सांस्थानिकतावाद का सिद्धान्त तैयार किया और बाज़ार ने पूँजी के 'सामूहिक' रूपों की प्रशंसा की, कुछ समय बाद ही 1929-1933 का विश्व आर्थिक संकट आरम्भ हो गया। अभूतपूर्व तीव्रता के साथ इसने उत्पादन की मात्रा की दृष्टि से अनेक पूँजीवादी देशों को उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की [illegible] शताब्दी के आरम्भ की स्थिति में पहुँचा दिया, [illegible] मजदूर [illegible] की विपदा और बर्बादी में [illegible]—और तीन करोड़ लोगों को पूरी तरह बेरोजगार कर दिया। अब वेब्लेन की [illegible] और बाज़ार की सामूहिक पूँजी का क्या हाल हो गया था? इन सिद्धान्तों के बदले [illegible]

1 [illegible] 1930

और निर्धन लोगो के लिए स्पष्ट रूप से अनुपयुक्त सिद्ध हुए। 1929-1933 के संकट द्वारा प्रवर्तित उथल-पुथल ने पहले से कही बड़ी संख्या में विभिन्न सामाजिक स्तरो के मेहनतकश लोगो को पूँजीवाद का सही रूप जो आर्थिक अस्थिरता, बेरोजगारी और असुरक्षा का प्रतीक था दिखा दिया।

साम्राज्यवाद के विचारक इन विभीषिकाओं को अनदेखा करना चाहते थे लेकिन कर नही सके। जहाँ 19वीं शताब्दी के अन्त में और 20वीं शताब्दी के आरंभ में वे यह स्वीकार करके चले कि पूँजीवादी व्यवस्था अपरिवर्तनीय और 'स्व-नियन्त्रित' है, वहाँ अब उनके प्रचार की आधारशिला थी यह सिद्धान्त कि राज्य के नियमन द्वारा पूँजीवाद का आधुनिकीकरण किया जा रहा है।

पूँजीवादी समाज को पूर्ण बनाने के लिए अपरिष्कृत समर्थनो के स्थान पर सुधरे हुए सिद्धान्त सामने आये।

संभवत: इस सम्बन्ध में अत्यधिक प्रचलित विचार थे अंग्रेज अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स के जिनकी पुस्तक 'द जनरल थियरी ऑफ एम्प्लायमेण्ट इण्ट्रेस्ट एंड मनी'[1] 1936 में प्रकाशित हुई थी। इसने सनसनी उत्पन्न कर दी और लेखक को पूँजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सुधारक और पैगम्बर की प्रतिष्ठा प्रदान की। आर्थिक संकट के कुछ ही समय पश्चात् और उस समय जबकि सोवियत संघ योजनाबद्ध समाजवादी व्यवस्था लाभ प्रदर्शित कर रहा था यह कृति सामने आयी। कीन्स के सिद्धान्त मे दूसरी चीजों के साथ, इन परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा गया था। वास्तव में इसने विकृत पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के कुछ पुराने जड़ सूत्रों को ही, सीमान्त उत्पादकता के उपर्युक्त सिद्धान्त सहित, अपना आधार बनाया था। इससे भी आगे, कीन्स का सिद्धान्त इस तथ्य को मानकर चलता है कि पूँजीवाद में ऐसे अन्तर्विरोध रहते हैं जिनका समाधान नही हो सकता और बाजार की शक्तियों का 'खुला खेल' उसे संकट से नही बचा सकता। दूसरे शब्दो में, कीन्स की मान्यता है कि स्वयं भू संतुलन की यांत्रिकता और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का स्व-नियंत्रित व्यवस्था के रूप में स्थिरीकरण—जिससे कि प्राचीन पूँजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था का आरंभ हुआ—अब अधिक समय तक काम नही दे सकता।

तथापि, कीन्स, यदि वह इस तथ्य से उचित निष्कर्ष [illegible]
निकालने योग्य होते तो पूँजीवादी [illegible] केवल
इसलिए [illegible]
[illegible]ित करने का [illegible] इस

[illegible]

शास्त्री थोर्स्टेन वेब्लेन जो 20वीं शताब्दी के 'प्रूधो' थे। वेब्लेन को उनकी कृति 'न्यू वर्ड' से बड़ी लोकप्रियता मिली, पूँजीवादियों के परम्परागत जो जड़सूत्रों 'सामाजिक सतुलन' और 'हितों की समानता' के स्थान पर उन्होंने सामाजिक समूहों के व्यवहार और चिन्तन का अध्ययन करने और आधुनिक पूँजीवाद की रचना का *विश्लेषण करने के तथा इसके प्राविधिक-आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक* रूपों या संस्थाओं के विकास के प्रश्न को उठाया (इसीलिए *उसका नाम सास्थानिकतावाद रखा गया*)।[1]

इस विकासक्रम मे, सास्थानिकतावाद के प्रवक्ताओं ने कतिपय अन्तर्विरोधों को स्वीकार किया और उनको अनिवार्य माना—उदाहरणार्थ, उत्पादन और व्यापार के बीच। तथापि, उन्हें इसका कारण पूँजीपतियों और सर्वहारा के विरोध में नहीं दिखायी दिया, अपितु 'हितों के विवाद में' जिसमे एक ओर लोग दोनों ही प्रकार के, उद्यमी और मजदूर जो प्रविधि से और उत्पादन के संगठन से सम्बद्ध थे, तथा दूसरी ओर थे वित्तीय व्यापारी जो पूँजी के सचालन के क्षेत्र में कार्यरत थे। सांस्थानिकतावादियों ने इस 'विवाद' का समाधान स्वामियों से अभियन्ताओं के हाथ में सत्ता के हस्तान्तरण में, और तथाकथित 'अभियन्ताओं की और प्राविधिकों की क्रान्ति मे देखा जो 'राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था' का प्रबन्ध चला सकते थे। यह किस अर्थ में प्रूधों के 'निर्मित मूल्य' (कांस्टिट्यूटिड वैल्यू) से भिन्न है जिसके वास्तविक *सार का कार्ल मार्क्स ने अपनी कृति 'दर्शन की दरिद्रता' में पर्दाफाश किया था।*

पूँजीवाद के अन्य समर्थकों की तरह ही जिन्होंने कि उसके कुछ पहलुओं की *आलोचना के बहाने पूँजीवादी व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया*, वेब्लेन ने भी पूँजीवाद के मुख्य अन्तर्विरोधों को गौण अन्तर्विरोधों का स्थान देने का प्रयास किया। इसी कारण उन्होंने *यथार्थ की सही तस्वीर प्रस्तुत करने* के स्थान पर एक विकृत योजना निर्मित की।

लेकिन जैसे ही वेब्लेन ने अपना सांस्थानिकतावाद का सिद्धान्त तैयार *किया* और कारवर ने पूँजी के 'सामूहिक' रूपों की प्रशंसा की, कुछ समय बाद ही 1929-1933 का विश्व आर्थिक संकट आरम्भ हो गया। अभूतपूर्व तीव्रता के साथ इसने उत्पादन की मात्रा की दृष्टि से अनेक पूँजीवादी देशों को उन्नीसवी शताब्दी के अन्त की तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभ की स्थिति में पहुँचा दिया, विशाल संख्या में मजदूर जनगण को विनाश और बर्बादी में ला पटका—और तीन करोड़ लोगों को पूरी तरह बेरोजगार कर दिया। अब वेब्लेन की संस्था और कारवर की सामूहिक पूँजी का क्या अर्थ रह गया था? इन सिद्धान्तों में बताये नुस्खे बेरोजगारों, बर्बाद

1 उदाहरण के लिए देखें थोर्स्टेन वेब्लेन, एजीनियर्स एंड दि प्राइस सिस्टम, न्यूयार्क, 1936

...न लोगों के लिए स्पष्ट रूप से अनुपयुक्त सिद्ध हुए। 1929-1933 के द्वारा प्रवर्तित उथल-पुथल ने पहले से कहीं बड़ी संख्या में विभिन्न सामाजिक के मेहनतकश लोगों को पूँजीवाद का सही रूप जो आर्थिक अस्थिरता, बेरोज-और असुरक्षा का प्रतीक था दिखा दिया।

...साम्राज्यवाद के विचारक इन विभीषिकाओं को अनदेखा करना चाहते थे कर नहीं सके। जहाँ 19वीं शताब्दी के अन्त में और 20वीं शताब्दी के में वे यह स्वीकार करके चले कि पूँजीवादी व्यवस्था अपरिवर्तनीय और ...श्चित' है, वहाँ अब उनके प्रचार की आधारशिला थी यह सिद्धान्त कि ...नियमन द्वारा पूँजीवाद का आधुनिकीकरण किया जा रहा है।

...वादी समाज को पूर्ण बनाने के लिए अपरिष्कृत समर्थनों के स्थान पर ...सिद्धान्त सामने आये।

...वत: इस सम्बन्ध में अत्यधिक प्रचलित विचार थे अंग्रेज अर्थशास्त्री जॉन ...न्स के जिनकी पुस्तक द जनरल थियरी ऑफ एम्प्लायमेण्ट इण्ट्रेस्ट एंड ...936 में प्रकाशित हुई थी। इसने सनसनी उत्पन्न कर दी और लेखक को राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सुधारक और पैगम्बर की प्रतिष्ठा प्रदान ...क संकट के कुछ ही समय पश्चात् और उस समय जबकि सोवियत संघ ...समाजवादी व्यवस्था लाभ प्रदर्शित कर रहा था यह कृति सामने आयी। ...सिद्धान्त में दूसरी चीजों के साथ, इन परिस्थितियों को भी ध्यान में रखा ...वास्तव में इसने विकृत पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के कुछ पुराने ...तो ही, सीमान्त उत्पादकता के उपर्युक्त सिद्धान्त सहित, अपना आधार ...। इससे भी आगे, कीन्स का सिद्धान्त इस तथ्य को मानकर चलता है कि ...ऐसे अन्तर्विरोध रहते हैं जिनका समाधान नहीं हो सकता और बाजार ...का 'खुला खेल' उसे संकट से नहीं बचा सकता। दूसरे शब्दों में, कीन्स ...है कि स्वयं भू संतुलन की यांत्रिकता और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का ...व्यवस्था के रूप में स्थिरीकरण—जिससे कि प्राचीन पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का आरंभ हुआ—अब अधिक समय तक काम नहीं दे

..., कीन्स, यदि वह इस तथ्य से उचित निष्कर्ष निकालना चाहते अथवा ...य होते तो पूँजीवादी अर्थशास्त्री नहीं होते। उनके लिए मानना केवल ...त्यर्थ या कि अस्वीकार करना नितान्त असंभव था। उन्होंने यह प्रमा-...प्रयास किया कि पूँजीवादी समाज की संस्थाओं को सुधार करके इस

...नार्ड कीन्स, दि जनरल थ्यूरी ऑफ एम्प्लायमेंट, इण्ट्रेस्ट एण्ड मनी, न्यूयार्क,

दु:खद स्थिति से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। विशेष रूप से, यह धन के सचलन तथा ऋणों के राज्य इजारेदारी और सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त सार्वजनिक संस्थानों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अन्य सभी पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों की कीन्स ने भी समस्त पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों की तरह कुछ मौलिक मनोवैज्ञानिक नियमों की बात करते हुए पूँजीवाद के आर्थिक नियमों के वर्गीय सारतत्व की उपेक्षा करने का प्रयास किया।

पूँजीवादी राज्य की आर्थिक नीति के सम्बन्ध में कीन्स की व्यावहारिक सिफारिशें थी--बजट, व्यापारियों को ऋण एवं वित्तीय सहायता का विस्तार, अर्थव्यवस्था में निजी पूँजी निवेशन को प्रोत्साहन, 'नियन्त्रित' मुद्रा प्रसार, वेतनों को व्यवस्थित करने के लिए, और कुछ अन्य प्रक्रियाओं का उपयोग तथा कुछ अन्य उपाय जिनको कि व्यापक रूप से लागू किया गया है, उदाहरणार्थ, फ्रैंकलिन रूज-वेल्ट का 'न्यू डील', यह उपाय मेहनतकश जनता की कीमत पर राज्य इजारेदारी पूँजीवाद को सुदृढ़ करने के लक्ष्य से किये गये थे। इसलिए, इस तथ्य में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है कि कीन्सियनवाद (और बाद में नव कीन्सियनवाद, जिसके कि प्रवक्ता आर० हैरोड, जॉन राबिन्सन, आल्विन हैंसन और अन्य लोग थे) पूँजीवादी देशों में बहुत प्रशंसित हुआ और आज भी वह पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक मुख्य धारा है।

कीन्सियनवाद के उदाहरण से ज्ञात होता है कि 1920 और 1930 के दशकों के पूँजीवादी सामाजिक विचार ने कुछ नयी महत्वपूर्ण विशेषताएँ प्राप्त कर ली थीं। इसने विश्व में हो रहे वास्तविक परिवर्तनों पर ध्यान देना आरम्भ किया और जहाँ भी संभव हुआ वास्तविकता के आवरण में सामने आना आरम्भ कर दिया। पहले, बिना किसी विशेष प्रमाण अथवा साक्ष्य के, प्रत्यक्ष बुराई मानकर समाजवाद को सर्वथा नकार दिया गया था, जबकि पूँजीवाद को पवित्र, एवं बिना किसी सुधार के, सभी सुचिन्तित एवं अचिन्तनीय गुणों के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया था। किन्तु, अब पूँजीवादी सिद्धान्तकारों को समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के अनुभव में कतिपय सकारात्मक पहलुओं को—जैसे उत्पादन की दरों का तेजी से विकास एवं योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की तथा सामाजिक नीति की सफलताएँ स्वीकार करने के लिए अनिच्छापूर्वक ही सही, विवश होना पड़ा। उन्हें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि पूँजीवाद की भावोद्दीप्त प्रशंसा का स्वर कुछ धीमा किया जाय।

यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि तथ्यों के साथ यह समझौता सिर्फ इसलिए सहन किया गया कि तथ्यों ने पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थकों के सामने और कोई विकल्प नहीं छोड़ा था। लेकिन अन्य तरीके खोजने का प्रयास जारी रहा, कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार में अधिक लचीला रवैया, ये तथ्य के विविध साक्ष्य थे कि जनता की राय में समाजवाद के पक्ष इतनी ठोस और स्पष्ट थी कि उसकी उपेक्षा

॥ असम्भव था।

इस ढाँचे में, जिसमें द्वितीय विश्वयुद्ध के आरंभ काल में समाजवाद और वाद के बीच शक्तियों के परस्पर सम्बन्ध प्रदर्शित होते हैं, वर्तमान कम्युनिज्म-की बुनियादी दिशाएं देखी जा सकती थी : समाजवाद को सार्वभौम 'मानवीय ' की कथित वास्तविक स्थितियों से गिराने के प्रयास, पूँजीवाद की इसके न्तरणों' के आधार पर रक्षा, 'वर्ग-भागीदारी' के उत्तेजक आह्वान के साथ घर्ष को मन्द करने के प्रयास, समाजवाद और पूँजीवाद के बीच बुनियादी जक रेखा को आँखों से ओझल करने के प्रयास। तथापि यह विशिष्ट दिशाएं समय बाद पूरी तरह विकसित हुईं, जबकि समाजवाद के पक्ष में नये ऐति-परिवर्तन हुए और 'आणविक प्रतिरोध' ने सैनिक साधनों से समाजवाद को सभी आशाओं को समाप्त कर दिया। अन्ततः पश्चिम के अत्यधिक वास्त-से सोचने वाले राजनयिकों की दृष्टि भी परिवर्तित हो गयी। तथापि धीन समय में, इस समय भी, साम्राज्यवाद की आमरण नीति में सैनिक से समाजवाद को छिन्न-भिन्न करने पर जोर था और सभी वैचारिक साधनों प्रथम और पूरी तरह इस कार्य में लगा दिया गया था।

ज्म-विरोध का वास्तविक रूप

ाजवाद के प्रति सम्पूर्ण घृणा और इसका भय फ़ासिज्म में केन्द्रित हो गये। ाज्यवादी प्रतिक्रिया का खूनी लक्ष्य था, जो मानव-समाज के विकास को रे उसे पीछे फेंकने के लिए ऐतिहासिक मंच से विदा होने वाले का निराशा-ा था। विश्व के दृश्यपट पर फ़ासिज्म के आने के साथ, कम्युनिज्म-विरोध रूप धारण किया, वह अत्यधिक प्रतिक्रियावादी, अत्यधिक अंधराष्ट्रवादी, वित्त पूँजी के 'अत्यधिक साम्राज्यवादी तत्वों की एक खुली आतंकभरी ी थी।[1] हिटलर की विदेश नीति का कार्यक्रम का अर्थ था 'जीवित जिसे जर्मनी अपने फासिस्ट सहयोगियों के साथ मिलकर जीतना ा, पूर्व में अर्थात् जिसे वह सोवियत यूनियन से लेना चाहता था। पश्चिमी --संयुक्त राज्य अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने हर तरीके से इस ो प्रोत्साहित किया, और वास्तव में समर्थन दिया। व्यवस्था को बड़ी साथ परिभाषित किया गया था : नाज़ी जर्मनी ने समाजवाद के विरुद्ध क्रमणकारी टुकड़ी' की भूमिका ग्रहण की। पश्चिमी शक्तियां पृष्ठभूमि में ा कर रही थीं। हिटलर के सत्ता में आने के बाद, साम्राज्यवाद की ीय नीति अनिवार्य रूप से इन लक्ष्यों के अधीन हो गयी। इस प्रकार

---

1 कम्युनिज्म, मास्को, 19०2 पृ० 499

समाजवादी सोवियत संघ के विरुद्ध फासिज्म का युद्ध पहले से ही तय कर दिया गया। साथ-ही-साथ पश्चिमी शक्तियों ने इसे कई दिशाओं में तेज कर दिया।

युद्ध की तैयारी आर्थिक योजनानुसार की गयी, इसका अर्थ था जर्मनी में रूहर के लोहा और इस्पात तथा युद्ध-उद्योग पुनः स्थापित और विकसित किये जाएं। यह कार्य, मरम्मत के लिए डाज योजना की स्वीकृति के अनन्तर, अमरीका और ब्रिटेन की इजारेदारियों से प्राप्त शक्तिशाली सहायता से किया गया, इस प्रकार जर्मन उद्योगों में विदेशी पूंजी के, सर्वोपरि अमरीकी पूंजी के, तीव्र प्रवाह के लिए मार्ग खुल गया। अमरीकी डालरों की स्वर्णिम वर्षा ने हिटलरी जर्मनी के भारी उद्योगों को, *विशेष रूप से युद्ध उद्योगों को पुनर्जीवित कर दिया। ये अरबों*-खरबों अमरीकी डालर समुद्रपारीय इजारेदारियों ने युद्ध स्तरी जर्मनी की सैनिक अर्थव्यवस्था व जर्मनी की युद्धक्षमता के नवीनीकरण के लिए और आक्रमण की तैयारी के लिए आवश्यक शस्त्रास्त्र हिटलर के शासन के हाथों में दे दिये।[1]

युद्ध की तैयारी राजनीतिक रूप से भी की गयी। यह आवश्यक था कि वर्साई सन्धि में जर्मनी की सशस्त्र सेनाओं के विकास पर लगायी गयी सीमाओं की व्यवस्था को समाप्त किया जाय, यूरोप में सामूहिक सुरक्षा के समर्थकों की पांतों में फूट डाली जाय, और आक्रमण को रोकने के उपायों को महत्वहीन बना दिया जाय। और यह कार्य भी ब्रिटेन और फ्रांस के शासक हल्कों ने कर दिया, जो आक्रमणकारी को 'तुष्ट करने की' नीति का अनुसरण कर रहे थे। स्पष्ट रूप से, आंग्ल और फ्रांसीसी शासक हल्कों की यह नीति सामूहिक सुरक्षा को अस्वीकार करने, जर्मन आक्रामकता को पीछे हटाने से इन्कार करने, और हिटलरी जर्मनी की आक्रामक मांगों में रुचि लेने में अभिव्यक्त हुई जो द्वितीय महायुद्ध की ओर दुनिया को ले गयी।[2] तुष्ट करने की नीति की परिणति, जैसाकि हम जानते हैं, म्यूनिख सन्धि, जिसने न केवल चेकोस्लोवाकिया के सूडेटन्लेण्ड को ही हिटलर के चरणों में डाल दिया, में हुई अपितु समकालीन लोगों ने सही निर्धारित किया कि इससे हिटलर को मास्को पर आक्रमण के लिए हरी झंडी दिखा दी गयी। वास्तव में, म्यूनिख-वादियों ने इस बात को छिपाया भी नहीं। फ्रांसीसी समाचारपत्र—**'ले जुआर, ईको दि पेरिस'** ने लिखा : "म्यूनिख बैठक का सर्वोपरि प्राथमिक लाभ यह हुआ कि रूस को इससे अलग कर दिया गया। रूस को यूरोप से बाहर रखने के लिए हर उपाय किया जाना चाहिए, उसे उसके एशिया में पीछे खदेड़ देना चाहिए। जैसाकि *बूढ़ा क्लेमेंस्यू सपने लिया करता था* कंटीले तारों के पीछे उसे घेरने के लिए, वह

---

1. देखें : फ़ाल्सीफ़ायर्स ऑफ हिस्ट्री, एन हिस्टोरिकल रैफरेंस बुक, मास्को, 1952 पृ० 12 (रूसी में)
2. वही, पृ० 13

सदा तैयार है। इसका उपयोग किया जाय।"[1] इस प्रकार युद्ध की राजनीतिक तैयारियों में न केवल तेजी लायी गयी अपितु उसने सोवियत-विरोधी आन्दोलन के प्रत्यक्ष सगठन का रूप ले लिया।

अन्तत., युद्ध की तैयारी विचारधारात्मक रूप से भी की गयी, यह आवश्यक था कि शान्ति की शक्तियों को छिन्न-भिन्न करने के लिए और सोवियत सघ को अलगाव में डालने के लिए उपयुक्त मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार किया जाय। पश्चिम के तथाकथित जनतत्रों ने नाज़ीवाद की कम सेवा नहीं की। हिटलर सोवियत सघ को पश्चिम के विरुद्ध 'विध्वसक कार्रवाई' करने, एव 'क्रान्ति का निर्यात करने के लिए' 'विश्व कम्युनिस्ट षड्यत्र सगठित' करने आदि के लिए दोषी ठहराने वाला पहला व्यक्ति नहीं था। हिटलर को प्रचार के ये सुविधाजनक औजार विरासत में मिले थे। इसके अतिरिक्त, बेशक, फासिज्म ने सोवियत विरोध और समाजवाद विरोध को अपनी सरकारी नीति बनाया तथा समाजवादी सोवियत सघ के विरुद्ध युद्ध को अपना लक्ष्य घोषित किया। फिर हिटलर अन्य पश्चिमी शक्तियों की सहायता के बिना जनोन्माद की सीमा तक 'कम्युनिस्ट खतरे' के मिथक को प्रचारित नहीं कर सकता था। वास्तव में, यह जनगण के विरुद्ध इजारेदारियों के अन्तर्राष्ट्रीय षड्यत्र के लिए जन-उत्तेजना का एक झीना आवरण था। बाद में, नूरेम्बर्ग केस में संयुक्तराज्य अमरीका के एक प्रतिनिधि डा० रॉबर्ट केम्पनर ने कहा था कि 'यह कम्युनिस्ट खतरा मात्र बहाना था और उन कारणों में एक था जो द्वितीय युद्ध की ओर ले जा रहे थे।'[2]

फासिज्म इसका प्रत्यक्ष परिणाम था और साथ ही यह पूँजीवादी समाज के गम्भीर सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक सकट की अभिव्यक्ति था, उसका जन्म तनावपूर्ण वातावरण में हुआ और वह निरन्तर तनाव को बढ़ाता रहा। इसी ने हिंसा, सैन्यवाद और विस्तारवाद की सनक को प्रस्थापित करने में सहायता मिली। उन्मादपूर्ण प्रतिक्रिया और आतक सम्मिलित रूप से नाज़ीवाद के सार है। लेकिन चेकोस्लावाक पत्रकार जूलियस फ्यूचिक जो स्वयं नाजियों का शिकार था, यह कहते हुए हजार बार सही था : "फ़ासिज्म केवल, कारागार, यातना शिविर और फांसियाँ ही नहीं है, और न सिर्फ खूनी आतंक, और जनता का शारीरिक उत्पीड़न भर नहीं हैं। यह विचारों का, दृष्टिकोणों का, धारणाओं का भी उत्पीड़न है जो फासिस्ट शासन के लिए खतरा पैदा करते हैं।" और आगे "केवल हिंसा बहुसख्या पर अल्प सख्या के शासन को बनाये रखने में कभी सफल नहीं हो सकती, इसके लिए, अधि

1. ओन बोमायर, डी हिटलर ए ट्रूमैन, पैरिस 1950 पृ० 21
2. ट्रायल्स ऑफ द मेजर वार क्रिमिनल्स बिफ़ोर नूरेम्बर्ग, 1947, पृ० 357

सभ्य लोगों को भ्रष्ट करना आवश्यक है, उन्हें वैचारिक रूप से पतित बनाना और इस प्रकार कमजोर करना आवश्यक है जिससे कि वह सत्त्व-हीन अन्य मत की विचारधारा से प्रभावित होकर उसकी सेवा करने लगे।"[1]

नाजीवाद की विचारधारा ने व्यक्ति में हर मानवीय चीज को ध्वस्त कर दिया, इसमें निम्नतम वृत्तियों को उभारा और उसे एक बिना विचार किये हत्या करने वाले परपीड़क के रूप में बदल दिया। नस्लवाद, अन्धराष्ट्रवाद, सैन्यवाद और फ्यूहरर की धाक जर्मनी में नागरिक के आदर्श घोषित कर दिये गये। सामाजिक संस्थाएँ— परिवार, स्कूल, जनसंस्कृति—पूर्णतया राज्य के नियंत्रण में आ गयी जिससे कि उनको नाजीवाद की बर्बर योजनाओं के अधीन कर दिया गया। मानव समाज के पूरे इतिहास को 'मालिक नस्ल' स्थितियों के अनुरूप पुनः परीक्षित किया जाय जिससे '1000 वर्ष की राइश' को समस्त सामाजिक विकास के पूर्ण होने के चरमबिन्दु के रूप में चित्रित किया जा सके। सशस्त्र सेनाओं की ओर तोपों को समस्त विश्व में 'नया शासन' स्थापन करने का आह्वान दिया गया।

जर्मनी में नाजियों के सत्ता पर आने के बाद, यूरोप अदम्य गति से युद्ध की चल पड़ा। सोवियत संघ और अन्य जनतान्त्रिक शक्तियों के पास अभी तक इतने पर्याप्त साधन नहीं थे कि वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया द्वारा चलाए जा रहे आक्रमण के इंजिन को रोक सके। लेकिन दूसरा विश्व युद्ध शुरू हुआ और चल पड़ा तब यह नहीं कहा जा सकता कि यह कैसे समाप्त होगा। यह वैसा नहीं था जैसाकि बर्लिन, वाशिंगटन, लन्दन और पेरिस में बैठे बैंक मालिकों, सैनिक-औद्योगिक धुरंधरों, जनरलों और राजनयिकों ने योजना बनायी थी, हिटलर और उसके अनुयायियों ने उनके सर्वथा भिन्न दृश्य तैयार किया था जिस पर अमल किया गया। उन्होंने सोवियत विरोधवाद और कम्युनिस्ट विरोध के आन्दोलन के नारे युद्ध आरम्भ करने और चलाने का विचार किया जो कि पश्चिमी देशों के सभी प्रतिक्रियावादियों को संयुक्त कर सके अथवा कम-से-कम विश्व जनता के एक भाग को जैसाकि एक इतिहासकार ई० एन० दूजेलेपी ने लिखा : "घटनाओं के तर्क के अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध लालरूस के विरुद्ध हिटलर के नेतृत्व में पश्चिमी शक्तियों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता या भागीदारी सहित पश्चिमी सभ्यता का सच्चा धर्मयुद्ध था। इसके रणनीति निर्धारकों के अनुसार यह धर्मयुद्ध समाजवादी सोवियत संघ की विनाशक पराजय के साथ समाप्त होगा और सम्पूर्ण विश्व में पूँजीवादी इजारेदारियों की पुनः स्थापना करेगा। यह था वह परिदृश्य जिसकी रूपरेखा हिटलर और फासिज्म पर भरोसा रखनेवाली ताकतों ने मानवता की सामाजिक प्रगति को तथा समाजवाद की ओर उसकी गति को रोकने के लिए,

1. इलोस्त्रनाया लिट्रेचरा, 1974, नं० 11, पृ० 210 (रूसी भाषा में)

बनायी थी।

फ़ासिज्म के विरुद्ध विश्व-जनगण

लेकिन घटनाओं ने दूसरा रूप ले लिया। फासिज्म के विरुद्ध सोवियत सघ
सघर्ष ने सारी दुनिया की प्रगतिशील शक्तियों को सयुक्त कर दिया। इ
हिटलर विरोधी मोर्चा बना, हिटलरी जर्मनी और उसके साथियों को क
राज्य का मुंह देखना पड़ा। अन्तिम विश्लेषण मे, इसकी परिणति पूँजीवा
ाम सकट के गम्भीर रूप से गहरा होने और समाजवाद के और सुदृढ़ हो
ाप मे हुई। सामाजिक प्रगति की ऐतिहासिक विजय के विविध साक्ष्य प्र
रते हुए फासिज्म पर महान् विजय ने मजदूर वर्ग के सघर्ष को सामाजिक मु
ा सघर्ष तक उठा दिया, जनगण के राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष के स्तर तक,
ााम्राज्यवाद के विरुद्ध जनता का लोकतान्त्रिक सघर्ष गुणात्मक रूप से नये
ो छूने लगा।

घटनाओ मे यह परिवर्तन किस प्रकार सम्भव हुआ? निस्सन्देह,
निर्णायक भूमिका सोवियत सघ की शक्ति ने अदा की। सोवियत जनगण के अ
नीय कदमों ने, जिन्होंने फासिज्म के विरुद्ध संघर्ष का मुख्य भार वहन किया,
सोवियत कूटनीति की कुशलता ने जो साम्राज्यवादी शक्तियों के सोवियत वि
मोर्चे मे फूट डालने मे सफल हुई।

लेकिन दूसरी ओर, फासिज्म की पराजय विश्व मे सामाजिक-राजनी
शक्तियों के नये विभाजन के कारण जो, युद्ध-पूर्व के वर्षों मे ही दीखने लग
और युद्ध की समाप्ति तक पूरी तरहपरि भाषित हो गया, प्रतिबन्धित हो ग
यहाँ संदर्भ है समस्त जनवादी शक्तियों के-किसानों, दस्तकारो और बुद्धिजी
के-मजदूर वर्ग के चारो ओर साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष के झण्डे के नीचे
जुट होने का। जर्मनी मे फासिज्म के बलपूर्वक सत्ता मे आने से और नये
युद्ध के खतरे ने इस प्रक्रिया को केवल तीव्र कर दिया।

कम्युनिस्टो ने जनवादी शक्तियों को एकताबद्ध करने के आन्दोलन का
किया। इस लक्ष्य मे विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सघ की (जुलाई-अ
1935 मे) सातवी काग्रेस ने अपना योगदान किया जिसने कम्युनिस्ट पार्टि
लिए फासिज्म की बढ़त के विरुद्ध और नये विश्व युद्ध की तैयारियो के
सघर्ष के लिए कार्यनीति एव रणनीति की स्पष्ट रूपरेखा निर्धारित की
विश्व इतिहास के अत्यधिक जटिल और सकटपूर्ण समय मजदूर वर्ग का, मे
कश अवाम का, और समस्त जनवादियो का हथियार बन गया और इसने
प्रकार से शक्तियों के इस संयुक्त मोर्चे को बल प्रदान किया और अन्त मे फा
पर विजय तक पहुँचाया।

कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल की सातवीं कांग्रेस ने संकेत किया कि जर्मनी में इजारेदार पूँजीवाद की खुली आतकभरी तानाशाही के आगे बढ़ने और विश्व युद्ध के ख़तरे के समक्ष मुक्ति संघर्ष में भाग लेने वाले समाजवादियों और जनवादियों के नये अन्योन्याश्रय के रूप में मजदूर वर्ग का कार्य-भार मूर्त रूप ले चुका था। जबकि 1917 और 1923 के बीच क्रान्तिकारी उभार के युग में मजदूर वर्ग के सामने पूँजीवादी जनतन्त्र और समाजवाद के बीच चुनाव का प्रश्न था, 1930 के राजनीतिक संकट के काल में प्रश्न सामने आया, या तो फासिज्म अथवा पूँजीवादी जनतन्त्र। इस विकल्प के प्रकाश में कांग्रेस मजदूरों और लोकप्रिय शक्तियों के संयुक्त मोर्चे की कार्यनीति प्रस्तुत करती है। कार्यकाल एकता के लिए "सिवाय एक के कोई शर्त नहीं है, और आरम्भिक शर्त होगी जो सभी मजदूरों को स्वीकार करनी होगी''कार्यगत एकता फ़ासिज्म के विरुद्ध निर्देशित होगी, पूँजी के हमले के विरुद्ध, युद्ध के ख़तरे के विरुद्ध।"[1]

लोकप्रिय संयुक्त मोर्चे की रणनीति का अर्थ है गृहनीति के रूप में मजदूर वर्ग के आस-पास लाखों मेहनतकश जनता का और मध्य वर्ग के लोगों का इजारेदार प्रतिक्रिया के आक्रमण को रोकने तथा पीछे हटाने के लिए और मेहनतकश जनता की जनवादी उपलब्धियों की अधिकाधिक रक्षा के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय रूप में इसका अर्थ है साम्राज्यवादी युद्ध को रोकने के लिए समस्त जनवादी शान्ति प्रेमी शक्तियों का सर्वोपरि सोवियत संघ जोकि स्वाधीनता और जनतन्त्र का सुदृढ़ गढ़ है, के इर्द-गिर्द एकजुट होना।

इसमें सर्वहारा वर्ग के अपनी वर्ग स्थितियों से और अन्तिम लक्ष्य से पीछे न हटने की रणनीति अन्तर्निहित थी। नयी वास्तविकताओं के प्रत्युत्तर में कार्य करते हुए अपने समक्ष तात्कालिक समस्याओं के समाधान का लक्ष्य रखा और साथ-ही-साथ मजदूर वर्ग के और इसके कम्युनिस्ट हिरावल दस्ते के इर्द-गिर्द विशाल साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चा बनाने का लक्ष्य रखा।

इसी के साथ-साथ किसी भी प्रकार यह रणनीति केवल तात्कालिक हितों के अर्थात् फासिज्म के आगे बढ़ने के तथा युद्ध के ख़तरे के विरुद्ध थोपी नहीं गयी थी। यह लेनिन की जनवाद के लिए संघर्ष एवं समाजवाद के लिए संघर्ष के मध्य अन्तःसम्बन्धों की धारणा में और जनतान्त्रिक एवं समाजवादी लक्ष्यों की अभिमुखता एवं अन्तर्ग्रंथितता की धारणा में रच रही थी। इस प्रकार इसने लोकप्रिय संयुक्त मोर्चा बनाने की सम्भावनाओं का मार्ग खोल दिया अथवा संघर्ष को समाजवादी स्थिति के लिए फासिस्ट विरोधी जनतान्त्रिक राज्यों के संक्रमणकालीन संयुक्त संघर्ष का मार्ग खोल दिया।

---

1 जी० दिमित्रोव्, कलेक्टेड वर्क्स खण्ड 3, [illegible], 1972, पृ० 28

कमिण्टर्न की सातवीं कांग्रेस द्वारा तैयार की गयी विश्व कम्युनिस्ट और मजदूर आन्दोलन की कार्यनीति सम्बन्धी मार्गदर्शक नीतियों ने बाद में होने वाली घटनाओं को अनेक प्रकार के पूर्व निर्धारित कर दिया। युद्ध पूर्व के वर्षों में, यूरोप में कई देशों में और कुछ अन्यत्र भी संयुक्त मोर्चे की विजय ने न केवल फासिज्म को पीछे हटाया अपितु वहाँ कतिपय प्रगतिशील सुधार लागू करना भी सम्भव बनाया। दूसरे विश्व युद्ध के दिनों में सातवीं कांग्रेस के विचारों ने प्रतिरोध आन्दोलन को व्यापक क्षेत्र प्रदान करने में सहायता दी जोकि अपने सार रूप में पहले से ही दुतरफा संघर्ष था। फासिस्ट हमलावरों से राष्ट्र की मुक्ति का और समाजवाद की ओर उन्मुख जनवादी शासनों की स्थापना का संघर्ष था। इन उच्च आदर्शों के नाम पर संघर्ष कर रहे थे ग्रीस और युगोस्लाविया के साथी, फ्रांसीसी माक्विस और पोलिश देशभक्त, स्लोवाक राष्ट्रीय विद्रोह तथा प्राग के विद्रोह के सूरमा, डेन्मार्क और नार्वे में मुक्ति संघर्ष के योद्धा, और स्वयं जर्मनी में फासिस्ट विरोधी योद्धा।

फ़ासिस्ट विरोधी प्रतिरोध ने नाज़ीवाद के विरुद्ध प्रत्येक देश में देशभक्ति पूर्ण और साथ-ही-साथ अन्तर्राष्ट्रीय रूप में जनगण का संघर्ष छेड़ दिया। इसने फासिस्ट लुटेरों के विरुद्ध नेतृत्व किया और साथ-ही-साथ जनवादी रूपान्तरण और सामाजिक प्रगति के लिए भी संघर्ष किया। उपनिवेशों और पराधीन देशों में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से मुक्ति के लिए संघर्ष का आन्दोलन चल रहा था। सोवियत संघ के महान देशभक्तिपूर्ण युद्ध के आरम्भ के साथ ही प्रतिरोध आन्दोलनों की साम्राज्यवाद विरोधी दिशा और उसका सामयिक सारतत्व व्यापक बन गया। अनेक देशों में, जैसाकि हमें ज्ञात है, यह अन्ततः लोकप्रिय जनतान्त्रिक क्रान्तियों के रूप में विकसित हुआ।

युद्धोत्तर वर्षों में, लोकप्रिय संयुक्त मोर्चे के विचार, उन देशों में जहाँ कि पूँजीवादी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी जनता के जनतन्त्र की स्थापना का साधन बने। वे नीतियाँ आज भी क्रान्ति, जनतन्त्र और समाजवाद के लिए उनके संघर्ष में मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टियों के लिए मार्गदर्शक बनी हुई हैं।

अध्याय : 2

विचारों के संघर्ष की नयी अवस्था

फ़ासिज्म की पराजय : शिक्षाएँ और चेतावनियाँ

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद समाजवाद के पक्ष में हुए विश्वव्यापी परिवर्तनों के साथ कम्युनिज्म और कम्युनिज्म विरोध के बीच संघर्ष की नयी अवस्था आरम्भ हुई।

फ़ासिज्म पर विजय ने दिखा दिया कि संसार की कोई भी शक्ति अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति द्वारा आरम्भ किये गये क्रान्तिकारी रूपान्तरण की शक्तिशाली धारा को पीछे नहीं हटा सकती। साम्राज्यवाद के गढ़ फ़ासिस्ट जर्मनी की पराजय ने अनेक प्रकार से विश्व के युद्धोत्तर विकास को पूर्व निर्धारित कर दिया। यह विजय नये क्रान्तिकारी उभार के लिए प्रस्थान बिन्दु बन गयी, जिसने पश्चिम एवं पूर्व के बहुसंख्यक देशों में पूंजीवाद के विनाश का नेतृत्व किया। इस विजय से विश्व की राजनीति, अर्थव्यवस्था, विचारधारा और लोगों की मानसिकता में गंभीर परिवर्तन लक्षित किये गये।[1]

युद्ध के बाद के दशकों में कई ऐतिहासिक घटनाएँ लक्षित की गयीं। विश्व समाजवादी व्यवस्था का जन्म, मजदूरों और कम्युनिस्टों के आन्दोलनों में वृद्धि, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का विस्तार और शांति के लिए और विश्व तापनाभिकीय युद्ध के विरुद्ध विश्वव्यापी आंदोलन।

फ़ासिज्म के साथ घातक मुठभेड़ ने लोगों के दिमागों पर गहरी छाप छोड़ी। युद्ध ने करोड़ों लोगों के जीवन को सीधे तौर से प्रभावित किया और वह संपूर्ण मानव समाज के लिए भयानक विपदा बना। इसने राजनीतिक पार्टियों के वास्तविक रूप को उजागर कर दिया और उनके नारों और कार्यक्रम का पर्दाफाश कर दिया, इसने विश्व राजनीति के छिपे स्रोतों को प्रकट कर दिया और संघर्ष में भाग लेने

---

1. एल० आई० ब्रेझनेव, 'फालोइंग लेनिन्स कोर्स' खंड 1, मास्को, 1970 पृष्ठ 144 (रूसी भाषा में)

शक्तियों के वास्तविक उद्देश्यों को सामने ला दिया। युद्ध ने सारी दुनिया को
त कर दिया, और वैचारिक और राजनीतिक जीवन को ऊर्जा से भर दिया
तवादी आन्दोलन को नया वेग प्रदान किया।

हिटलरी जर्मनी पर विजय ने समाजवाद की अभेद्य शक्ति को स्पष्ट रूप से
दिया, इसके फलस्वरूप बहुत से कम्युनिस्ट विरोधी सिद्धान्त जो तब तक
र माने जाते थे, नितान्त निरुपयोगी हो गये।

रों तक पूँजीवादी प्रचारतंत्र दुहराता रहा कि समाजवाद एक 'ऐतिहासिक
के अतिरिक्त कुछ नहीं है और नये समाज का निर्माण 'बोल्शेविकों के
के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जिसका कि असफल होना अनिवार्य है। तथापि,
दिखा दिया कि सोवियत संघ अजेय शक्ति थी और जो अकेला ही विश्व की
बर्बरता से रक्षा के लिए समग्र जनवादी आंदोलन का नेतृत्व कर सकता
। प्रकार उसने यह भी दिखा दिया कि इस शक्ति का स्रोत समाजवाद था।
संघ ने फासिज्म का सामना केवल अपनी शक्तिशाली सेना और औद्यो-
ना से ही नहीं किया अपितु अपने क्रान्तिकारी एवं वास्तविक मानवीय
ष्टकोण और उच्च सामाजिक आदर्शों से एकताबद्ध जनगण की शक्ति के
' वह सह कर सका।

ने फासिज्म को इजारेदार पूँजी के सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी पक्ष के वैचा-
राजनीतिक सिद्धान्त के रूप सामने लाकर नैतिक रूप से नंगा कर
नवता के विरुद्ध नाज़ियों द्वारा किये गये भीषण अपराधों ने विश्व को
। वह गहराई दिखा दी जिसमें साम्राज्यवाद उसे धकेल रहा था। सामान्य
रोप के बहुत से देशों पर 'नये शासन' के लम्बे और कटु अनुभव से बहुत
। उन्होंने देखा कि पूँजीवादी समाज उदार जनवादी संस्थाओं को किस
रूप से और तुरन्त अलग फेंक दिया गया इस प्रकार इजारेदार पूँजी के
तत्वों के प्रभुत्व के सार को स्पष्ट रूप से दिखा दिया।

म के अधकारपूर्ण वर्षों ने वित्तीय अल्पतंत्र के हितों के लिए समस्त
तना शिविर बनाने एवं समस्त राष्ट्रों को मिटा डालने के लिए तत्पर
विरोध के सारतत्व को पूरी तरह दिखा दिया। फासिज्म के वैचारिक
तिक सिद्धान्तों और अपराधपूर्ण कृत्यों ने साम्राज्यवाद की विश्व-आधि-
त्व में कटौतियाँ करने की, हर प्रकार से प्रतिक्रिया को पुष्ट करने
ति को प्रदर्शित किया। हिटलर इन कार्यों में पहले के लोगों की अपेक्षा
गया, अपितु उसने ऐसा करते हुए अनुपम वैचारिक और राजनीतिक
ति का अनुसरण नहीं किया, बल्कि उसी का इजारेदारी प्रतिक्रिया-
। विश्व में उपयोग किया।

विचारधारा की आधार-शिला है कम्युनिज्म विरोध। समकालीन

कम्युनिस्ट विरोधियों ने कोई भी परिधान पहन रखे हों, हिटलर के बाद उन्होंने कोई भी मुखौटा लगा रखा हो, अंतिम विश्लेषण में, अनुभव ने यह दिखा दिया है कि वे दुनिया को कहाँ ले जाने में समर्थ हैं। तथापि, उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए, कि उनके पीछे नूरेम्बर्ग के 'वीरों' की दानवी छायाएँ निरन्तर मंडरा रही हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध में सोवियत संघ और उसके सहयोगियों की विजय का अर्थ साम्राज्यवाद के हिरावल दस्ते की केवल सैनिक और राजनीतिक पराजय ही नहीं थी अपितु सामान्य रूप से पूँजीपति वर्ग के अत्यधिक प्रतिक्रियावादी और अतिवादी पक्ष की विचारधारा की विश्वव्यापी हार थी।

बूर्ज्वा 'मूल्यों' की रक्षार्थ खड़े होने में जनवादी संस्थाओं की हिचकिचाहट, उनकी नपुंसकता तथा प्रतिक्रिया की हत्यारी टुकड़ी द्वारा उनके विध्वंस के कारण बूर्ज्वा उदारवाद के परम्परागत अनुयायियों की दृष्टि में इन संस्थाओं ने प्रतिक्रिया से गंभीरता के साथ समझौते किये। इससे पूँजीपति वर्ग की दोमुँही नीति का वैचारिक और राजनीतिक आधार सर्वथा नष्ट हो गया जिसका कि वह मजदूर वर्ग के साथ सदा पालन करता था : प्रत्यक्ष दमन और आतंक की कठोर नीति, जिसका गठजोड़ उदारवाद के आवरण में युक्तिपूर्वक काम निकालने की नीति के साथ था।

स्वभावतः इन समस्त कारकों ने विचारधारात्मक एवं राजनीतिक मोर्चे पर शक्तियों के समीकरण व समजन को बदल दिया तथा कम्युनिस्ट विरोधियों के लिए पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा करने के कार्य को और अधिक जटिल बना दिया।

पोट्सडम से शीत युद्ध तक

द्वितीय विश्व युद्ध के दौर में और इसके तत्काल बाद हुए फ़ासिज्म के पतन और यूरोप तथा एशिया में समाजवादी क्रान्तियों के विकास ने पूँजीवाद के आम संकट की पहली मंजिल को समीप ला दिया। यदि हम उस काल की मुख्य वैचारिक और राजनीतिक धाराओं के आम विवरण देने का प्रयास करें तो चित्र कुछ इस तरह का होगा। विदा होने वाले वर्ग सदा जो भूलें किया करते हैं उसी प्रकार की परिस्थितियों में उन्हीं भूलों को दुहराते हुए साम्राज्यवाद के रणनीति निर्माता समाजवाद की जीवन्तता का अथवा अक्तूबर क्रान्ति के फलस्वरूप विश्वव्यापी पैमाने पर हो रहे गंभीर सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों का सही अनुमान लगाने में असमर्थ रहे। पश्चिम के अत्यधिक परिष्कृत राजनीतिक, वर्साई के निर्माताओं से लेकर, विल्सन, लॉयड जार्ज, और क्ली मेंशू से म्यूनिख के शान्ति निर्माता चेम्बरलेन, दलादियर और उनके समुद्रपारीय सहयोगी तक, सभी सोवियत राज्य की वास्तविक शान्ति और क्षमता का मूल्यांकन करने तथा उससे सम्बन्धित किसी भी बात को सही रूप में समझने में असहाय रूप से दिवालिया प्रमाणित हुए।

इसका कारण यह था कि वे सब, नये समाज को नापने के लिए पुराने पैमाने

काम में ले रहे थे। बूर्ज्वा राजनीतिज्ञ सोवियत गणतन्त्र के भौतिक ससाधनो की सटीक गणना मे, इसका सैनिक और आर्थिक क्षमता निर्धारित करने मे, और बहुत से मात्रात्मक सूचको की सही तुलना करने में कमोबेश सक्षम थे लेकिन वे सदा ही मुख्य चीज़ को—समाजवादी व्यवस्था की मौलिक रूप से नयी प्रकृति, इसके जीवन को, और इसकी विचारधारा मे निहित गुणात्मक रूप से भिन्न नियमों को—दृष्टि परिधि के बाहर छोड़ जाते थे। इस प्रकार, उनके निष्कर्षों की आधारहीनता और त्रुटिपूर्ण गणनाओ के कारण अनेक बार पूंजीवादी नेताओ को कटु पराजय का मुंह देखना पड़ा।

साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार समाजवाद पर आसान विजय की मृग-मरीचिका से निरन्तर स्तब्ध होते रहे, इसने उनको चीज़ो को उनके सही रूप मे देखने से रोक दिया। उन वर्षों मे कम्युनिज्म विरोध की वैचारिक और राजनीतिक अवधारणाएँ प्रारंभिक, कुण्ठित, युयुत्सु थीं जो स्पष्टतया इस विचार से ही उत्पन्न हुई थी। नये समाज के पूंजीवादी राष्ट्रों से घिरे होने का लाभ उठाते हुए, पश्चिमी देशों के नेताओ ने समाजवादी राज्य को, अलगाव मे डालने के लिए हर सभव प्रयास किया। वैचारिक स्तर पर, साम्राज्यवाद ने तथाकथित 'लौह आवरण' लगाने के लिए बहुत कठिन श्रम किया ताकि शेष विश्व की मेहनतकश जनता से समाजवाद से दूर रखा जाय और समाजवादी सोवियत सघ के विषय में सच्ची जानकारी से उन्हे वंचित रखा जाय। साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारों ने कम्युनिस्टो के साथ वाद-विवाद में उलझने के बजाय समाजवाद को ही विश्व से काट देने को प्राथमिकता दी, जिससे कि जहाँ तक सभव हो बोल्शेविक 'प्रयोग' को स्थानीय बना दिया जाय और यही कारण था कि पश्चिमी देशो को डराने के लिए समाजवाद के सम्बन्ध मे सभी तरह की काल्पनिक कहानियाँ प्रचारित की गयी।

अनिवार्यतया बहिष्कार की यही नीति सोवियत विदेश नीति के सम्बन्ध में भी व्यवहार मे लायी गयी। सोवियत सघ के अन्तर्राष्ट्रीय क्रिया-कलाप के विषय में आमतौर से मौन साधा गया, इसके शान्तिप्रस्ताव बिना विचार किये अस्वीकार कर दिये गये, और इसके अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो की जनवादी व्यवस्था स्थापित करने के कार्यक्रम को गंभीरता से नही लिया गया।

निर्वासन की यही नीति सामाजिक जनोत्तेजन का मुलम्मा चढाकर स्वय पूंजीवादी देशों मे कम्युनिस्ट पार्टियो के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए काम मे लायी गयी। कम्युनिस्टों को 'मास्को के दलाल' के रूप मे अलग कर जनवादी शक्तियों के साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे को नेतृत्वविहीन और निरस्त्र कर दिया जाय—यह थी मुख्य राजनीतिक नीति जो उन वर्षों मे प्रतिक्रिया ने ग्रहण कर रखी थी। और जब, समाजवादी सोवियत सघ की उपलब्धियों के समक्ष, पूरी दुनिया मे मुक्ति आदोलनों की सफलता और पूंजीवाद के आम सकट के गहरे होने

के साथ-साथ यह राजनीतिक रणनीति अविश्वसनीय बन गयी, तब प्रतिक्रियावाद ने फ़ासिज़्म को राजनीतिक जीवन में खुलकर खेलने को छोड़ दिया।

इसी बिन्दु से जो कि साम्राज्यवाद की नीति का लक्ष्य था अब वह खुले रूप से समाजवादी समाज के सेना द्वारा विध्वंस पर आ गयी और सिद्धान्तकारों को यह कार्यभार सौंप दिया गया कि वे इस नीति को 'न्यायसंगत' ठहरायें। सिद्धान्तकारों ने यह कार्य दो प्रकार से किया : मास्को से उभरने वाले सैनिक खतरे का बार-बार उल्लेख करके उन्माद भड़काकर तथा सोवियत संघ पर अशिष्टतापूर्वक यह आरोप लगाकर कि उसने लोगों को गुलाम बना रखा है तथा वे मुक्ति की प्रतीक्षा कर रहे हैं—उसे लांछित करके।

इस प्रकार, उस काल में—जबकि पूँजीवाद के आम संकट की पहली मंजिल ही चल रही थी—समाजवादी समाज के विरुद्ध संघर्ष में प्राथमिक रूप से शक्तिशाली सैनिक साधनों का उपयोग किया गया था; विचारधारा को, कुछ समय के लिए मात्र सहायक हथियार ही माना गया।

इसी प्रकार की कट्टर रणनीति—जैसी कि रोम की सीनेट में कैटो दि ऐल्डर ने अपना रखी थी, जो अपने हर भाषण की समाप्ति इन शब्दों के साथ किया करता था कि 'कार्थेज को निश्चय ही ध्वस्त कर दिया जाना चाहिए'—लड़ाकू कम्युनिस्ट विरोधियों ने युद्धोत्तर वर्षों में अपना रखी थी। पश्चिम के साम्राज्यवादी चक्रों ने प्राविधिक और वैचारिक रूप से नये विश्वयुद्ध की तैयारियाँ शुरू कर दीं। सर्वोपरि इसके कारण विज्ञान और अर्थव्यवस्था का अभूतपूर्व रूप से सैन्यीकरण विकसित किया गया, जनता को 'लाल खतरे का' हौवा दिखाकर अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बढ़ाया जाने लगा—संक्षेप में, ये तमाम चीज़ें शीतयुद्ध के रूप में जानी जाने लगीं।

विश्व के विनाश के लिए नये युद्ध का उपक्रम किसी भी अर्थ में कम्युनिज़्म विरोध की रणनीति में आकस्मिक घटना न थी। अन्ततः, पश्चिम के साम्राज्यवादी क्षेत्र द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम से प्रसन्न नहीं थे, क्योंकि अनिवार्य रूप से यह जनवादी, साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों की विजय मानी जाती थी और साथ ही इसे साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद की रणनीति का दिवालियापन माना गया। पश्चिमी शक्तियाँ, जो परिस्थितियों के कारण हिटलरी जर्मनी के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष के लिए समाजवादी सोवियत संघ के साथ एकता करने के लिए विवश हुई थीं, अब उस संयुक्त मोर्चे को ध्वस्त करने की दिशा में बढ़ने लगीं।

युद्ध के उपरान्त, हिटलर विरोधी संयुक्त मोर्चे के भीतर स्वयं [illegible] शक्तियों के साथ अन्तर्विरोध दिखायी देने लगे। उस संयुक्त मोर्चे में सोवियत संघ की [illegible] को पीछे हटाने के सामूहिक विचारों के व्यावहारिक रूप का दिखाई दिया जिसके लिए अमेरिकन कूटनीति ने युद्ध के आरम्भ में इतना कठोर श्रम

। शान्ति की रक्षा के लिए उस नीति को जारी रखना अत्यधिक महत्वपूर्ण
किया गया। पश्चिमी शक्तियों को भी इसी नीति को संयुक्त सम्मेलनों में
प्रकार के समझौतों में जैसे याल्टा और पोट्सडम समझौते और संयुक्त
घोषणापत्र में, सरकारी मान्यता देते हुए देखा गया। जैसा कि हम जानते
ष्ट्रीय संबंधों की युद्धोत्तर व्यवस्था के ये और इस काल के अन्य दस्तावेज
न्य मानचित्र इसी समय रेखांकित किये गये थे।

, जल्दी ही यह स्पष्ट होने लगा कि हिटलर विरोधी मोर्चे हाल के सह-
के युद्धोत्तर संगठन के सम्बन्ध में भिन्न अवधारणाएँ रखते हैं। सोवि-
लिए याल्टा, पोट्सडम और सन्फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन
, उसकी सामूहिक सुरक्षा की नीति की निरन्तरता थी और स्वभावत
को अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया
युद्धोत्तर संगठनों को निर्धारित करती थी। किन्तु, पश्चिमी शक्तियों
र्राष्ट्रीय समझौते उनकी समग्र पूर्ववर्ती नीति के विपरीत समाजवाद
जाते थे। इसलिए विश्व को फ़ासिज़्म की पराजय के पश्चात् किस मार्ग
करना है, यह प्रश्न अधर में झूल रहा था। या तो महान् फासिस्ट
के सकारात्मक परिणामों को प्रगतिशील शक्तियाँ सुदृढ़ करने में
वा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद घटनाओं के विकास की दिशा बदल

•

वादी अमरीका इस समय प्रत्यक्ष रूप में सोवियत-विरोधी राजनीति
न में आ गया। विश्व प्रतिक्रियावाद के हिरावल दस्ते द्वारा रिक्त
करते हुए और अनेक प्रकार से उसके अन्तर्निहित नारों को लेते हुए,
म्राज्यवाद ने द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रगति की शक्तियों की विजय को
श और मानव समाज पर अपने आदेश लागू करने का प्रयास आरम्भ
से ही दुनिया नाज़ियों की गुलामी के ख़तरे से अपने को मुक्त अनु-
ी थी कि तभी इसके सामने वालस्ट्रीट के बैंकपतियों के पैरों तले
तरा उपस्थित हो गया।

मय था जब, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद अब भी समाजवादी सोवि-
मुक्ति आंदोलनों के सम्बन्ध में 'शक्ति की स्थिति से' नीति का
भ्रम पाले हुए था। अमरीका की इजारेदार पूँजी ने स्वयं विश्व-
ा ग्रहण करली और कम्युनिज़्म विरोध का ध्वज धारण कर लिया।
देशों को अपनी ढाल के अन्तर्गत संयुक्त करने का प्रयास किया,
अलग करने का, तथा इस पर यह दबाव डालने का कि यह रिया-
ण करे, समाजवादी समुदाय के उत्थान को रोके और राष्ट्रीय
को ख़त्म कर दे। दूसरे शब्दों में, मानव समाज ने जो प्रगति की

थी उसे शून्य में परिवर्तित कर दे।

शक्ति के बल पर : योजनाएँ और दिवालियापन

शीत युद्ध का आरम्भ कब हुआ, इस सम्बन्ध मे अमरीकी इतिहासज्ञों मे विभिन्न दृष्टिकोण पाये जाते हैं। कुछ, इतिहासकार इसका आरम्भ 1947 से मानते हैं, जबकि ट्रूमेन के सिद्धान्त और मार्शल योजना की घोषणा की गयी थी, दूसरे कहते हैं कि इसका आरम्भ 1946 के मार्च मे फुल्टन में चर्चिल के भाषण से हुआ था। अब भी कुछ दूसरे अनुभव करते हैं कि इसका आरम्भ अप्रैल 1945 में ठीक फ्रेंकलिन रूजवेल्ट की मृत्यु के बाद हुआ था। लेकिन सभी कम्युनिज्म विरोध के अनुयायी इतिहासकार इस शीत युद्ध की जिम्मेदारी अमरीकी साम्राज्यवाद और यूरोप से उसके सहयोगियों पर न डालकर इसके लिए सोवियत संघ को उत्तरदायी प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। वे दावा करते हैं कि सोवियत संघ ने युद्धोत्तर समझौतों से सम्बन्धित प्रतिबद्धताओं का उल्लंघन किया और 'मुक्त विश्व' के देशों के विरुद्ध कम्युनिस्ट आक्रमण की योजना बनायी। किन्तु अपने आरोपों को सिद्ध करने के लिए वह कोई तथ्य प्रस्तुत नही करते। कम्युनिज्म के 'आक्रामक सार' के बारे मे उनका सामान्य तर्क यह है कि वह अपने स्वभाव से ही 'स्वतन्त्र विश्व' के लिए सम्भावित खतरा है।

तथापि, तथ्य सभी के लिए सुपरिचित है। फ्रेंकलिन रूजवेल्ट की मृत्यु के चन्द महीने बाद, सयुक्त राज्य अमरीका के नये राष्ट्रपति हैरी ट्रूमेन ने जापानी नगरों हीरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम डालने की स्वीकृति दी। आज भी हीरोशिमा स्मारक संग्रहालय की घड़ी उस समय को दिखा रही है जो विस्फोट के समय रुका था—6 अगस्त 1945 प्रातः8.15। क्या वह शोकपूर्ण घड़ी इतिहास से खुरचकर मिटायी जा सकती है![1] बहरहाल, अनुवर्ती घटनाक्रम ने के आलोक में,

1. प्रख्यात अमरीकी वैज्ञानिक हर्बर्ट यार्क की पुस्तक 'रेस टू ऑब्लिवियन' में उक्त घटना का निम्नलिखित विवरण दिया गया है—लेखक स्वयं आयुधों की नयी प्रणाली जिसमें थर्मोन्यूक्लियर बम भी सम्मिलित है विकसित करने में भाग ले चुका है और निस्सन्देह अपनी पुस्तक को यह उप शीर्षक देने का पूर्ण अधिकारी है 'हथियारों की दौड़ में भागीदार का दृष्टिकोण' विवरण आगे दिया जा रहा है—पहला परमाणु बम जापान नगर हीरोशिमा पर 6 अगस्त 1945 को डाला गया था। कम-से-कम 66,000 लोग विस्फोट होते ही तुरन्त मारे गये और बाद में आये ज्वालाओं भरे तूफान के कारण हजारों हजार और मारे गये। हीरोशिमा के 80 प्रतिशत मकान और भवन धराशायी हो गये और जो शेष बचे वे बहुत टूट-फूट गये। बम का वजन नौ हजार पाउण्ड था, वह 10 फुट लम्बा 28 इंच व्यास का था। इसमें जो विस्फोटक रखा था वह यूरेनियम धातु था जो यू 235 के कण्ठिमण्ण से लगभग होने वाले आइसोटोप से परिपूर्ण किया गया था।

जापानी नगरों का बर्बर विध्वंस, जिसे किसी भी सैनिक अथवा अन्य आवश्यकता से प्रेरित नहीं कहा जा सकता, शीत युद्ध की प्रत्यक्ष क्रिया-कलाप का पहला कारनामा दिखायी देता है। यह अमरीकी साम्राज्यवाद का विश्व को भयभीत करने का एक प्रयास था, आणविक हथियार द्वारा डराने-धमकाने का और विश्व में अपनी श्रेष्ठता घोषित करने का।

6 मास से कुछ अधिक समय बीतने के बाद, राष्ट्रपति की एक विशेष गाड़ी से हैरी ट्रूमेन और ब्रिटेन के पूर्व प्रधान मंत्री विस्टन चर्चिल अमरीका के छोटे से नगर फुल्टन में पहुँचे। वहीं चर्चिल ने भावी 'उत्तरी अटलांटिक संधि' (नार्थ एटलांटिक एलाइन्स) की स्पष्ट रूप में सोवियत विरोधी योजना की रूपरेखा तैयार की। 5 मार्च 1946 को दिये गये उस भाषण में, एक अमरीकी नगर में राष्ट्रपति की उपस्थिति में चर्चिल ने कहा —"बाल्टिक के स्टेटिन से लेकर एड्रियाटिक के ट्रीस्ट तक महाद्वीप को चीरता हुआ एक लौह आवरण अवतीर्ण हो चुका है।"[1] उस भाषण का सार संक्षेप एक अमरीकी लेखक ने निम्न प्रकार दिया है "विश्व अब पूँजीवादी और समाजवादी खेमों में विभक्त हो गया है। कम्युनिस्ट खेमे के विस्तार को रोकने के लिए अंग्रेजी बोलने वाली जनता को, पिछले समय तक जो 'प्रभु वंश' था, शीघ्र ही एक संघ बनाना चाहिए। उन्हें तुरन्त एक सैनिक संगठन के रूप में सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और अपने सैनिक संस्थानों को परस्पर जोड़ना चाहिए। उन्हें क्रिश्चियन सभ्यता को कम्युनिस्ट विरोधी धर्म-युद्ध में नेतृत्व देना चाहिए।'[2]

इसमें एक और चीज जो जोड़ी जानी चाहिए वह है कि पूर्ववर्ती ब्रिटिश प्रधान मंत्री की सोवियत संघ के विरुद्ध धर्म-युद्ध का उन्मत्त आह्वान केवल उस नीति को सूत्रित करता है जो वस्तुतः उस समय पहले से ही व्यवहार में लायी जा

आणविक विस्फोट की भौतिक क्रियाएँ एक सैकिण्ड के दस लाखवें से भी कम समय में हो गयी और ऊर्जा की जो मात्रा विस्फोट से मुक्त हुई वह उस मात्रा में थी जितनी कि चौदह हजार टन टी० एन० टी० के विस्फोट के बराबर थी। बम बी० 29 एयरक्राफ्ट से मेरियानास के टिनायन द्वीप से भेजा गया था जो लक्ष्य से लगभग 1500 मील दूर था। यह जमीन से हजार फुट ऊपर विस्फोटित किया गया जिससे कि अधिकाधिक क्षेत्र अपने उच्च दाब वाले विस्फोट की तरंगों के और सघन ताप तथा रेडियेशन से घेर सके" (हर्बर्ट यार्क, 'रेस ट ओब्लीवियन' ए पार्टिसिपेन्ट्स व्यू ऑफ दि आर्म्स रेस न्यूयार्क 1971, पृ० 27)

1. विस्टन एस० चर्चिल, हिज कम्प्लीट स्पीचिज 1897 से 1963, राबर्ट रोड्स द्वारा सम्पादित, खण्ड VII 1943-1949, चैल्सी हाउस पब्लिशर्स इन एसोसिएशन आर० आर० बोकर कम्पनी सहित, न्यूयार्क और लन्दन 1974, पृ० 7290
2 जेम्स पी० वारबर्ग, द यूनाइटेड स्टेट्स इन ए चेंजिंग वर्ल्ड, एन हिस्टारिकल एनेलसिस ऑफ अमेरिकन फोरेन पॉलिसी, जी०पी० पुटनेम सन्स न्यूयार्क, 1954, पृ० 416

रही थी। अब कोई संदेह नहीं था कि ट्रूमैन की घोषणा का [illegible] राज्य के सचिव [illegible] [illegible] [illegible] (बाद के [illegible] में [illegible]) [illegible] ने किया। इस प्रकार शीत युद्ध को [illegible] को अमरीकी विदेश नीति के अनुरूप [illegible] से दोनों मुख्य पार्टियों द्वारा स्वीकृत किया जा चुका था।

निश्चित रूप से इस समय अमरीकी विदेश नीति के इन निर्माताओं की [illegible] से इस बात का [illegible] है कि उनको [illegible] [illegible] विशेष रूप से इन [illegible] के [illegible] [illegible] युद्ध [illegible] में [illegible] थे। इनमें से कुछ व्यक्तियों के [illegible] सम्बन्ध [illegible] की [illegible] बनाने वाली [illegible] थे। उदाहरण के लिए जॉन फास्टर डलेस, जिसने बाद में शीत-युद्ध का जोरदार समर्थन प्रकाशित किया, एक समय, सुलिवान और क्रामवेल की कानूनी फर्म का जो [illegible] बैंक [illegible] के अतिरिक्त नाजी पार्टी को [illegible] सहायता देती थी, सहयोगी स्वामी था। दूसरे शब्दों में, वह उन अमरीकी व्यक्तियों में था जिन्होंने स्वयं कम्युनिस्ट विरोधी धर्म-युद्ध के [illegible] के रूप में हाल ही में कार्य किया था।

चर्चिल की फुल्टन की कार्रवाई एक प्रकार से शीत-युद्ध की सरकारी योजना के लिए सैद्धान्तिक तैयारी थी जो एक वर्ष बाद वाशिंगटन में अमरीकी सरकार की ओर से की गयी। यह 12 मार्च 1947 को कांग्रेस के लिए ट्रूमैन का सन्देश था जिसमें उसने ग्रीस और टर्की को 'सहायता' के कार्यक्रम की रूपरेखा दी थी और घोषणा की थी कि अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा इसमें निहित थी। अमरीकी विदेश नीति का मुख्य कार्य, यह स्पष्ट रूप से घोषित किया गया, कम्युनिस्ट 'खतरे' को जहाँ कहीं भी वह उठे समाप्त करना है।[1] इस सन्देश में अमरीकी साम्राज्यवाद की दीर्घकालीन विदेश नीति के कार्यक्रम को सूचित किया गया था जिसमें कम्युनिस्ट विरोध के झीने आवरण में उसकी विश्व आधिपत्य की आकांक्षा छिपी थी।

बर्कले में, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र एवं इतिहास के प्राध्यापक फ्रेंज श्वर्मन इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि सर्वोपरि स्पष्ट रूप से ये विस्तारवादी आकांक्षाएँ अशक्त ग्रेट ब्रिटेन के कन्धों से साम्राज्य का जामा खिसकने के बाद देखी गयीं। अपनी इस प्रस्थापना को विकसित करते हुए वह आगे लिखते हैं: "भले ही रूस विस्तारवादी था या नहीं था यह जानना महत्वपूर्ण नहीं, यह जानना महत्वपूर्ण है कि नये सारतत्व की धारा वाली विदेश-नीति की आवश्यकता क्यों हुई। जॉर्ज केनन जैसे प्रख्यात विशेषज्ञों द्वारा प्रस्तुत

---

1. ए डिकेड ऑफ अमेरिकन फ़ॉरेन पॉलिसी, बेसिक डॉक्यूमेण्ट्स 1941-49, यूनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेंट प्रिंटिंग ऑफिस, वाशिंगटन, 1950, पृ० 1253 और 1254

तथ्यों ने जो पहले से ही वाशिंगटन की विद्यमान आवश्यकता की पूर्ति कर रहे थे''' उभरती हुई राष्ट्रीय सुरक्षा की अफ़सरशाही, जो ह्वाइट-हाउस के इर्द-गिर्द जमा है को एक ऐसी विश्व दृष्टि की आवश्यकता है जो उनके द्वारा आरम्भ की जा रही नीतियों के अनुकूल हो।"[1]

मार्शल योजना द्वारा शीघ्र ही ट्रूमैन सिद्धान्त को व्यवहार में लाया गया, जो पश्चिमी यूरोप के देशों की अर्थव्यवस्था में अमरीकी पूंजी को निवेशन के उद्देश्य से तैयार की गयी थी। इसका उद्देश्य, उस काल के अमरीका के स्टेट सेक्रेटरी जॉर्ज मार्शल के कथनानुसार, था: विश्व में कार्यशील अर्थव्यवस्था को इस प्रकार पुनर्जीवित करना कि वह ऐसी राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों को उत्पन्न करे जिसमें स्वतन्त्र संस्थाएँ कार्य कर सकें।[2] सैन्य क्षेत्र में इसे 'कम्युनिज्म को रोकने' या 'पीछे हटाने' की नीति के द्वारा पूर्ण बनाया गया।

ट्रूमैन सिद्धान्त, मार्शल योजना, और कम्युनिज्म को 'रोकने' या 'पीछे हटाने' की नीति साम्राज्यवाद की शीत-युद्ध की नीति के मुख्य उपकरण थे। ट्रूमैन सिद्धान्त घोषणा करता है कि अमरीकी साम्राज्यवाद को किसी भी देश के, जहाँ पूंजीवाद की कथित अर्थव्यवस्था के लिए खतरा उत्पन्न होता है, भीतरी मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। मार्शल योजना भी अमरीका के नियन्त्रण में पश्चिमी यूरोप की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से और वहाँ सामाजिक संघर्ष को कमज़ोर करने के उद्देश्य से चलायी गयी। कम्युनिज्म को रोकने का सिद्धान्त सीधे-सीधे सोवियत विरोधी था।

शीत-युद्ध की नीति का दूसरा पहलू यह था कि इसे अमरीका की समस्त आर्थिक समस्याओं के समाधान के रूप में देखा गया। सरकारी योजना निर्माता अनुभव करने लगे कि उनको अनन्त काल के लिए एक आश्चर्यजनक जीवन सूत्र उपलब्ध हो गया। उनको आश्चर्य होने लगा कि अन्ततः निरन्तर गतिशील यन्त्र की तरह यह पहले से ही विद्यमान था। शीत-युद्ध उत्प्रेरक था, और एक स्वयं चालित आर्थिक सहायता। हैंडिल पकड़कर घुमाइये और जनता युद्ध के लिए नये खर्च की माँग करने लगती है। दूसरे को घुमाओ शान्ति समाप्त हो जाती है। ट्रूमैन का आत्मविश्वास, उसकी आत्म-सन्तुष्टि इस ट्रूमैन सिद्धान्त सूत्र पर निर्भर थी।

इस प्रकार शीत-युद्ध को एक चमत्कारी औषधि के रूप में देखा गया जो साथ-ही साथ अमरीकी अर्थव्यवस्था की रक्षा करती थी, देश में आन्तरिक व्यवस्था को सुदृढ़ करती थी और विदेश नीति की समस्याओं को सुलझाती थी। और यह सब

---

1. फ्रांज शूरमन, द लॉजिक ऑफ वर्ल्ड पावर, एन इन्क्वायरी इन्टू दि ओरिजिन्स, करेन्ट्स एण्ड कान्ट्राडिक्शन्स ऑफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स", न्यूयार्क 1974, पृ० 92
2. द न्यूयार्क टाइम्स, जून 6, 1947.

आश्चर्यजनक रूप से बड़ा सीधा लगता था, लगभग स्वयंचालित। यदि वाल्तेयर जीवित होता तो वह अपनी प्रसिद्ध सूक्ति को फिर से लिखता : "यदि शीत-युद्ध विद्यमान न रहता तो उसे खोजकर लाना पड़ता" इसलिए इजारेदारियों के पादरी इस आदर्श की पूजा करते हैं और इसके लिए असीम बलिदानों के लिए तत्पर रहते हैं।

अमरीका के नेता जैसे-जैसे अत्यधिक स्वीकरणीय प्रस्थापनाओं की खोज कर रहे थे जिनसे कि उनकी विश्व-आधिपत्य की नीति को बल मिले, अमरीकी विचारक इसे सैद्धान्तिक आधार देने के प्रयासों में सलग्न थे। उदाहरण के लिए, प्रो० जेम्स बर्नहेम ने अपनी पुस्तक 'द स्ट्रगल फॉर द वर्ल्ड' में इस दृष्टिकोण की व्याख्या की है कि आणविक युग में अन्तर्राष्ट्रीय विधि के ऐसे सिद्धान्त, जैसे सम्प्रभुता, हस्तक्षेप न करना, राष्ट्रों के समान अधिकार, आदि स्वतः ही त्याग दिये जाते हैं। और व्यावहारिक रूप से, "जहाँ तक कि विश्व के राजनीतिक सम्बन्धों को प्रभावित करने का मामला सम्बन्धित है तो कार्य-विधि शीघ्र, सुदृढ़, पर्याप्त *हस्तक्षेपयुक्त होनी चाहिए न कि अहस्तक्षेप की।*"[1]

इन प्रश्नों पर कि यह हस्तक्षेप क्या-क्या रूप ले सकता है और विश्व में किस प्रकार बाद की घटनाएँ घट सकती हैं, यदि पैंटागोन आणविक आयुधों की इजारेदारी को कब्जे में रखता है, दूसरे अमरीकी प्राध्यापक, रसायन शास्त्र में नोबेल पुरस्कार विजेता डा० हैरॉल्ड सी० यूरी बड़ी स्पष्टतापूर्वक इसका उत्तर देते हैं— "या तो अमरीका विश्व के समस्त देशों को आणविक आयुधों के उत्पादन से रोकने के लिए उपयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण सुरक्षित कर लेता है और जिससे युद्ध पर पूर्ण नियन्त्रण हो सके अथवा हम तुरन्त तीसरे विश्व युद्ध के आरम्भ करने की तैयारी करें जिसमें कि आणविक बमों का उपयोग किया जाय।"[2]

बेशक, इस प्रकार के दृष्टिकोण के समर्थन के लिए सदा एक 'ठोस' तर्क अवश्य तैयार मिलेगा और इसे कम्युनिज्म की ओर से हमले के उसी पुराने खतरे के सन्दर्भ के रूप में शीघ्र उत्पन्न कर लिया गया। यह उस नये वक्तव्य से जो अतिरिक्त 'प्रमाणों' के साथ अब प्रस्तुत किया गया है बहुत भिन्न है।

सोवियत सघ के अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव में वृद्धि, विकास के समाजवादी मार्ग को चुनने में अनेक देशों के जनगण की रुचि, कम्युनिस्ट पार्टियों की बढ़ती हुई भूमिका, कुल मिलाकर विश्व जनवादी आन्दोलन का दृढ़ होना, युद्धोत्तर वर्षों में *होने वाले समस्त प्रगतिशील परिवर्तनों* को साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकारों ने मास्को के 'षड्यन्त्रों' के रूप में चित्रित किया जिन्हें कि अमरीका और उसके

---

1. जेम्स बर्नहेम, द स्ट्रगल फार द वर्ल्ड, न्यूयार्क, 1947, पृ० 177.
2 दि यूनाइटेड स्टेट्स न्यूज, अगस्त 30, 1946, पृ० 52

साथियों को, जहाँ कहीं भी वे 'स्वतन्त्र विश्व के लिए' खतरा पैदा कर रहे हों, रोकना था।

कम्युनिज्म को 'सर्वाधिपत्यवादी' और 'आक्रामक' फासिज्म के साथ एक ही थैले में डाल दिया गया। इस पर हथियारों की दौड़ को बढ़ावा देने का आरोप लगाया गया। सड़कों पर घूमने वाले व्यक्तियों को 'सोवियत विस्तारवाद' की कहानियों से निरन्तर आतंकित किया गया। जार्ज केनन ने लिखा कि समाजवादी सोवियत संघ कथित रूप से दृढ़तापूर्वक विश्वास करता है कि अमरीका के साथ जीवन बिताना सम्भव नहीं है उसके लिए यह वांछनीय और आवश्यक है कि हमारे समाज की आन्तरिक समस्वरता छिन्न-भिन्न हो जाय, हमारी परम्परागत जीवन पद्धति नष्ट हो जाय, और हमारे राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार टूट जाय'''।[1]

कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार का ढोल पीटने के लिए साम्राज्यवाद ने द्वितीय विश्व-युद्ध में सोवियत जनता के महान कदमों की निन्दा करने के पागलपन भरे प्रयास किये। पाश्चात्य इतिहास लेखन नाजियों के उस वक्तव्य पर जा पहुँचा कि समाजवादी सोवियत संघ के विरुद्ध जर्मनी का युद्ध रक्षात्मक युद्ध था।[2] 'सोवियत खतरे' के मिथक को पुनर्जीवित करते हुए साम्राज्यवादी प्रचार ने घटनाओं के वास्तविक क्रम को ही गड़ड-मड्ड कर दिया। वास्तव में युद्ध उभारने वालों को साफ बरी करके सोवियत संघ पर बार-बार 'आक्रामक आकांक्षाओं' के आरोप लगाये गये।

शीत-युद्ध की नीति मानव समाज को बहुत महँगी पड़ी। अमरीका में यह मेकार्थीवाद के रूप में परिवर्तित हो गयी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इसने अपना काला झण्डा क्रान्तिकारियों और जनवादी आन्दोलनों के विरुद्ध लड़ने वालों को थमा दिया। इसका प्रत्यक्ष परिणाम आक्रामक कार्रवाइयों की शृंखला के रूप में सामने आया। स्थानीय युद्ध, लगभग हर महाद्वीप में, कोरिया से बर्लिन तक क्यूबा से वियतनाम तक, कांगो से मध्यपूर्व तक सैनिक षड्यन्त्र और भड़काने वाली कार्रवाइयाँ, और आक्रामक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की पूर्ण व्यवस्था का निर्माण किया गया। और निस्सन्देह, इस सबका परिणाम था अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का वातावरण, अविश्वास का, और युद्धोन्माद का वातावरण। शीत-युद्ध उन विशाल भौतिक और सांस्कृतिक संसाधनों को चट कर गया जो हथियारों की होड़ और विध्वंसक कार्रवाइयों पर व्यय किये गये थे। नैतिक रूप से यह एक जहर बन गया, जिसने जनगण की आत्मा को खा डाला, किन्तु[3] अन्तिम गणना में, यह नीति भी

---

1. जॉर्ज कनन मैमायर्स' 1925-1950, बोस्टन, 1967, पृ॰ 557
2. जॉर्ज केनन, 'मैमायर्स' 1925-1950, बोस्टन, 1967, पृ॰ 55
3. इस देशभक्त का व्यापक उपयोग नाजी प्रचार द्वारा सोवियत संघ पर हमला करने के लिए तैयारी के रूप में किया जा रहा था और पूरे युद्ध के दौरान किया जाता रहा है।

असफल हो गयी।

स्वभावतः इसका असल मुख्य उद्देश्य में असफल होना निश्चित था, वह उद्देश्य था समाजवाद के विरुद्ध रणनीतिक प्रत्याक्रमण करना। युद्ध के बाद, समाजवाद की पूंजीवाद के मुकाबले ऐसी श्रेष्ठता सिद्ध हुई कि कोई इससे इन्कार नहीं कर सकता था। सोवियत संघ को रणक्षेत्र में दूसरे देशों की अपेक्षा कहीं अधिक हानि पहुँची थी, पर उसने स्वतन्त्र रूप से और तेजी के साथ अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण कर लिया और आर्थिक विकास में, विज्ञान और प्रविधि के विकास में भारी छलांग लगायी, सैनिक प्रविधि भी इसमें सम्मिलित थी। इस अकेले तथ्य ने ही शीत-युद्ध के सूत्रधारों की सारी रणनीति को और 'कम्युनिज्म को पीछे फेंकने' की उनकी योजनाओं को अस्त-व्यस्त कर दिया। सोवियत संघ की बढ़ती हुई आर्थिक और सैनिक शक्ति ही वह अतिमहत्वपूर्ण तत्त्व था जो, यूरोप और एशिया के बहुत से देशों के जनगण द्वारा विकास के समाजवादी मार्ग का चुनाव किये जाने का और साथ ही समाजवादी समुदाय के आविर्भाव और सशक्त होने का भी कारण बना। इसके साथ-ही-साथ औपनिवेशिक व्यवस्था के विनाश ने और इस तथ्य ने कि बहुत से देशों ने स्वतन्त्रता एवं प्रगति का मार्ग अपना लिया है, इससे साम्राज्यवाद की कमर टूट गयी।

जहाँ तक समाजवादी सोवियत संघ और विश्व मुक्ति आन्दोलन के विषय में 'शक्ति की स्थिति से' की नीति के अनुसरण की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में पाले गये भ्रमों की बात है वह धीरे-धीरे टूटते चले गये। उनके कम्युनिज्म को 'रोकने' 'मुक्त करने' या 'पीछे हटाने' के सिद्धान्तों पर पर्दा उठा दिया गया। अन्ततः साम्राज्यवाद के अभिजात शासक वर्ग को उन्हें ताक में रख देना पड़ा।

पाँचवें दशक के अन्त में और छठे दशक के आरम्भ में ये परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखायी दिये। राजनीतिक स्तर पर यह परिवर्तन हंगरी में प्रतिक्रान्ति की असफलता मिस्र में स्वेज की दुस्साहसिकता के अन्त और क्यूबा में क्रान्ति की विजय और पूँजीवादी देशों में मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टियों की बढ़ती हुई भूमिका में दिखायी दिये। 1960 में कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के प्रतिनिधियों की बैठक की घोषणा में उल्लेख किया गया : "इन वर्षों के मुख्य परिणाम हैं : विश्व समाजवादी व्यवस्था की तेजी से वृद्धि और उसकी शक्ति तथा अन्त-

---

फित्से, गोएबल्स के मन्त्रिमण्डल में एक उच्च अधिकारी था, उसने नूरेम्बर्ग ट्रायल में यह स्वीकार किया था कि, सोवियत संघ पर हमले के बाद, जर्मन प्रचार का यह मुख्य काम था कि इस आक्रमण की आवश्यकता को न्यायसंगत सिद्ध किया जाय। अतः हमें इस बात पर बार-बार जोर देना पड़ता था कि हमें सोवियत आक्रमण की रोक-थाम करनी है।" (अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य ट्रिब्यूनल के सामने बड़े युद्ध अपराधियों की जाँच खण्ड XVII, नूरेम्बर्ग, 1948, पृ॰ 226)

राष्ट्रीय प्रभाव में वृद्धि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के प्रभाव के कारण औपनिवेशिक व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने की शक्तिशाली प्रक्रिया, पूंजीवादी विश्व में वर्ग-संघर्ष का विस्तार, और विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का पतन और ह्रास। साम्राज्यवादी शक्तियों से समाजवादी शक्तियों की श्रेष्ठता, जगखोर ताकतों से शान्ति की शक्तियों की श्रेष्ठता विश्व-व्यापी पैमाने पर लक्षित की गयी।[1] बाद के वर्षों में समाजवाद के पक्ष में शक्तियों के सन्तुलन में यह सामान्य धारा तेजी से विकसित हुई और साम्राज्यवाद की ओर से कोई प्रत्याक्रम नहीं हुआ। मुक्ति संघर्षों में कोई भूलें या पराजय नहीं हुई, चीनी नेताओं के सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद के उद्देश्य के साथ दुखद विच्छेद और विश्वासघात भी इसको नहीं बदल सके।

विदेशनीति के 'चतुर्थ क्षेत्र' की सक्रियता

जैसे-जैसे 'शक्ति के बल पर' कार्य करने की नीति का संकट गहराने लगा पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियाँ समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष के गुरुत्व का केन्द्र वैचारिक क्षेत्र में स्थानान्तरित करने के लिए विवश हो गये। धीरे-धीरे वैचारिक संघर्ष कूटनीतिक, आर्थिक और सामरिक क्षेत्रों के अतिरिक्त विदेश नीति के 'चतुर्थ स्तर' तक पहुंचा दिया गया। जबकि वैचारिक क्षेत्र पहले ही महत्वपूर्ण था, अब से इसे वस्तुतः विस्तृत कार्य-क्षेत्र उपलब्ध होगा।

जब अक्तूबर 1957 को अमरीका के शीत-युद्ध की रणनीति के निर्माताओं के सिर पर सोवियत अन्तरिक्ष उपग्रह घूमने लगा तब 'शक्ति के बल पर' कार्य करने की नीति की असफलता जगजाहिर हो गयी। अमरीका की वायुसेना के राज्य सचिव थोमस फिनलेटर ने इस घटना को अमरीका के लिए संभावित परिणामों की दृष्टि से निम्न प्रकार लक्षित किया—"तब प्रायः रातों-रात ही घटनाओं की एक ऐसी स्थिति से जिसमें कि अमरीका के लिए सामान्य युद्ध कोई खतरा नहीं प्रतीत होता एक अतिभीषण विनाश की, जिसमें लाखों अमरीकियों के मरने से और लाखों अमरीकियों के घायल होने से नागरिक विनाश की स्थिति में पहुंच गये।"

"1917 की रूसी क्रान्ति के अतिरिक्त मैं ऐसी किसी घटना को नहीं जानता, जिसने ऐसा परिवर्तन किया हो जो हमारे देश की सुरक्षा एवं सत्ता के लिए इतना बुरा हो।"[2]

यह कहना अनावश्यक होगा कि इसके कारण अमरीकी विदेशनीति में कुछ सुधार करने पड़े। यही कारण था कि 1950 के अन्त में, अमरीकी राजनयिकों की भाषा में, अमरीकी-सोवियत सम्बन्धों के विकास की संभावनाओं पर चर्चा

---

1. दि स्ट्रगल फार पीस, डेमोक्रेसी एंड सोशलिज्म, पृ० 37-38
2. थोमस के० फिनलैटर, फॉरेन पॉलिसी : द नैक्स्ट फेज', न्यूयार्क, 1958, पृ० 23

करते समय 'मुकाबलो के युग से बातचीत के युग तक' की शब्दावली प्रयुक्त होने लगी। इन प्रयासों की बुनियादी दिशा को लक्षित करते हुए रिचर्ड एम० निक्सन ने जो उस समय तक अमरीका के राष्ट्रपति नहीं बने थे, अपनी पुस्तक 'सिक्स क्राइसिस' (प्रथम संस्करण, 1960) में लिखा था : "सैनिक शक्ति अनिवार्य है—बशर्ते कि इसे आर्थिक, राजनीतिक और प्रचारात्मक कार्यक्रमों से इसे *पूर्ण किया जाय*।"[1] कुछ वर्षों बाद, रिचर्ड निक्सन पहले अमरीकी राष्ट्रपति बने जिन्होंने मास्को की सरकारी यात्रा की।

वे कायल हो गये कि समाजवादी सोवियत संघ, समाजवादी समुदाय और मुक्ति आन्दोलनों के सम्बन्ध में पुरानी कठोर नीति न केवल निरर्थक अपितु खतरनाक भी थी. साम्राज्यवाद के रणनीति निर्माताओं ने अब यथार्थवादी विकल्प के विषय में विचार करना आरम्भ कर दिया 'प्रभावशाली प्रतिकार' के धमकी भरे सिद्धान्त से 'लचकीला प्रत्युत्तर' के सिद्धान्त पर आ पहुँचे।" समाजवादी देशों के विरुद्ध आर्थिक और राजनीतिक भेदभाव की नीति से 'पुल बनाने की' रणनीति की ओर मुक्ति आन्दोलनों और मजदूर वर्ग के जनवादी संघर्षों के प्रत्यक्ष दमन के स्थान पर संशोधित सामाजिक और राजनीतिक कूटनीति तक पहुँच गये।

इस नीति के आधार पर, साम्राज्यवाद ने प्रचार की प्रवृत्तियों की नयी योजना बनाना आरम्भ किया इसके लिए उस काल की अनेक मुख्य समस्याओं के साथ समाजवाद और पूँजीवाद के बीच शक्ति संतुलन से परिवर्तन को ध्यान में रखना पड़ा। दूसरे शब्दों में, उनको अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर कुल मिलाकर मजदूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच सतुलन के विकास को और इसी प्रकार प्रत्येक पूँजीवादी देश के विकास को और साथ ही पूँजीवाद के राज्य इजारेदार रूपों के विकास द्वारा उपलब्ध कुछ नयी घटनाओं को भी और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के विकास को भी ध्यान में रखना था।

यह वह काल था, पाँचवें और छठे दशक का सन्धिकाल, जबकि पूँजीवादी देशों के नेताओं, *राजनयिकों और सिद्धान्त निर्माताओं ने, सम्भवतः पहली बार* समाजवाद के साथ ऐतिहासिक प्रतियोगिता का पूर्ण महत्व आत्मसात् किया। इसमें साम्राज्यवादी वैचारिक सेवाओं का ठोस रूप में पुनः संगठन आवश्यक हो गया, अथवा अधिक स्पष्टता से कहें तो शब्द के व्यापक अर्थ में इसकी वैचारिक सुरक्षा की पूरी व्यवस्था का पुनर्गठन आवश्यक हो गया। इसमें नया तत्व था कि कम्युनिज्म के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष में पूँजीपति वर्ग द्वारा प्रयुक्त साधनों की आपूर्ति के लिए आर्थिक, राजनीतिक एवं सैनिक क्षेत्रों के निया कलाप, मौलिक *महत्व के स्वतंत्र मोर्चे बन गये।*

[1] रिचर्ड एम० निक्सन, 'सिक्स क्राइसिस', न्यूयार्क, 1962, पृ० 239

अब पूरे विश्व में, समाजवाद और जनवादी आन्दोलन के विरुद्ध 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' साम्राज्यवादी शक्तियों की नीति का अभिन्न अंग बन गया।

इन समस्याओं के एक अध्येता विल्सन डिज़ार्ड ने जो पहले अमरीकी सूचना एजेन्सी से सम्बद्ध था, 1960 के आरम्भ में यह टिप्पणी की थी "जब तक आत्मघाती आणविक युद्ध न हो तब तक कम्युनिस्टों और हमारे बीच शक्ति-संतुलन अधिकांश में विश्व जनमत के क्षेत्र में निर्धारित होगा।"[1]

ठीक इसी प्रकार की स्पष्ट सम्मति अमरीकी राजनयिक ज्यार्ज वी० एलेन ने ड्यूक विश्व यूनिवर्सिटी में भाषण देते हुए प्रकट की थी। उन्होंने कहा: यह प्रचार व्यापक रूप में बना रहेगा और प्राविधिक प्रगति ने इसको कूटनीति के लिए इतना आवश्यक बना दिया है जितना कि सेना के लिए बारूद थी।[2]

यह मस्तिष्क में रखकर, साम्राज्यवादी शिविर, सर्वोपरि अमरीका ने अपने विदेश नीति के प्रचार को अभूतपूर्व क्षेत्र प्रदान किया है, वैचारिक संघर्ष के लिए एक शक्तिशाली मशीनरी तैयार की है, प्रचार सम्बन्धी क्रिया-कलाप के लिए अधिक प्रभावशाली संगठनात्मक रूपों की जोरों के साथ खोज की है, और इसके तरीक़ों को अधिक परिष्कृत करने पर अधिकाधिक ध्यान दिया है। फलस्वरूप, छठे और सातवें दशकों में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वैचारिक संघर्ष में नयी मंजिल आ गयी इसे इस प्रकार लक्षित करने का हमारे पास आधार है। इसे साम्राज्यवाद की विदेश नीति के प्रचार के संगठन में महत्वपूर्ण परिवर्तनों से लक्षित किया गया —दोनों क्षेत्रों में ये प्रयोग किये जा रहे हैं, कार्यनीतिक तरीकों के प्रयोग में और कुछ वैचारिक अवधारणाओं के सारतत्व में।

वैचारिक प्रचार सेवाओं का पुनर्गठन

जब एक बार यह पूँजीवादी देशों की सर्वोच्च राज्य इजारेदारियों की चिन्ता का विषय बन गया, इस क्षेत्र ने नये महत्वपूर्ण संगठनात्मक रूप ले लिये। पूँजीवादी राज्य के विशिष्ट क्रिया कलाप के रूप में, वैचारिक संघर्ष का निर्देशन पूँजीवाद की वर्तमान मंजिल के विशिष्ट रूपों को पृथक्-पृथक् प्रतिबिम्बित करता है। विशेष रूप से, यह राज्य इजारेदारी ढाँचों की वृद्धि का, अन्तर्राष्ट्रीय समेकीकरण और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति की उपलब्धियों के एकीकरण का उपयोग करता है। यह सारी प्रक्रिया पूरी मात्रा में 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' तक विस्तृत कर दी जाती है। और भी, इजारेदारी के समक्ष पूँजीवादी राज्य की और अधिक अधीनता,

1. विल्सन, पी० डिज़ार्ड, द स्ट्रेटेजी आफ ट्रुथ, द स्टोरी ऑफ यू एस इन्फर्मेशन सर्विस वाशिंगटन, 1961, पृ० 186
2. जान डब्ल्यू हैंडरसन, द यूनाइटेड स्टेट्स इन्फार्मेशन एजेंसी, न्यूयार्क, वाशिंगटन-लन्दन 1966, पृ० 14 से उद्धृत।

समाजवाद के विरुद्ध बहुराष्ट्रीय इजारेदारियों के संयुक्त मोर्चे की ओर प्रवृत्ति और विज्ञान एवं प्रविधि की उपलब्धियों का साम्राज्यवाद के हित में उपयोग करने के प्रयास इस क्षेत्र में संभवतः पहले से कहीं अधिक स्पष्टता के साथ देखे जा सकते हैं।

मनोवैज्ञानिक युद्ध के साम्राज्यवादी शक्तियों के राज्यीय क्रिया-कलाप के रूप में नियमीकरण का परिणाम सर्वोपरि साम्राज्यवाद की वैचारिक सेवाओं के कठोर केन्द्रीकरण के रूप में हुआ। इससे शासक अभिजात वर्ग को इस क्रिया-कलाप को अपूर्व व्यापकता प्रदान करने का अवसर मिल गया, इसमें प्रचार की संस्थाओं के साथ सरकारी संस्थानों जैसे सेना, गुप्तचर सेवा और विदेशों में उनकी शाखाओं को भी सम्मिलित कर लिया गया। हाल के वर्षों में एक विदेशी प्रचार की पूरी व्यवस्था, संगठन और केन्द्र साम्राज्यवादी देशों में निर्मित किये गये हैं। इसके अन्तर्गत कई परस्पर अन्तःक्रिया युक्त 'चक्र' है।

'वैचारिक पर्वत' के शिखर पर बैठा सिद्धान्तकारों का छोटा-सा गुट अपने आपको समकालीन मानव समाज का आध्यात्मिक मार्ग-दर्शक मानता है। उसका काम है 'नये' विचार देना, आधुनिक अवधारणाओं की रचना करना, घिसी-पिटी युक्तियों को नया रूप देना और वैचारिक क्षेत्र में स्वर निर्धारित करना।

"मध्यवर्ती चक्र में ये विचार इस प्रकार पिरो दिये जाते हैं (सामान्यतया बड़े परिष्कृत ढंग से) कि ये विभिन्न प्रकार के दर्शकों, हितों और माँगों के अनुरूप हो सकें। यहाँ सामान्य प्रस्थापनाएँ लोकप्रिय रूपों में सुसज्जित की जाती हैं और उनको विशेष रूप से चुने हुए तथ्यों से चित्रांकित किया जाता है, उपयुक्त स्थानों पर आवश्यक ध्यान के साथ।

और अन्ततः, जनप्रचार है। चक्रों की इस बहुशाखीय व्यवस्था में, सभी कड़ियाँ सरकारी पद-सोपान-परम्परा व विभागों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हैं।

कम्युनिज्म के विरुद्ध प्रचार के इस क्रिया कलाप में समस्त पूँजीवादी देश भाग लेते हैं। किंतु संयुक्त राज्य नेतृत्वकारी भूमिका अदा करता है, वहाँ इन उद्देश्यों के लिए भारी धन-राशि व्यय की जाती है जहाँ अत्यधिक शक्तिशाली विदेश नीति की प्रचार मशीनरी निर्मित की जाती हैं, जहाँ इस क्षेत्र में अधिकतम संख्या में संगठन कार्यरत हैं, मुख्य प्रचार संघों से लेकर सभी प्रकार के संगठन केन्द्र और ग्रुप वैज्ञानिक संघर्ष के नवविरचित रूपों, पद्धतियों और साधनों से कार्य कर रहे हैं। वहाँ भारी मात्रा में कम्युनिस्ट विरोधी सामग्री तैयार की जाती है और कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार के 'सामूहिक गान की' तान-लय तय की जाती है।

अमरीका की प्रचार मशीनरी अधिकतम केन्द्रीकरण और कठोर पद सोपान तंत्र की अधीनता के सिद्धान्त पर कार्य करती है। मुख्य चालक यंत्र ह्वाइट हाउस

के स्टेट विभाग के, और केन्द्रीय गुप्तचर अभिकरण (सी० आई० ए०) के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में कार्य करते हैं। विचारधारा और प्रचार में राज्य इजारेदारी केन्द्रीकरण की दिशा में प्रवृत्ति विशेष रूप से अमरीका और अन्य साम्राज्यवादी देशों में राजनीतिक जीवन में देखी जाती है और उससे कुछ बड़े ठोस परिणाम निकलते हैं। यह, सर्वप्रथम, वस्तुतः किसी भी सरकारी अभिकरण के क्रियाकलाप को कम्युनिज्म विरोध के कार्य के अधीन कर देती है, दूसरे, व्ययसाध्य विदेशी प्रचार मशीनरी का व्यय राज्य की कीमत पर चलाती है अर्थात करदाताओं के धन पर और तीसरे, इस क्षेत्र में अन्त सरकारी स्तर पर अपने प्रयासों के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को सुनिश्चित करती है।

इस समय, वैचारिक संघर्ष के मुख्य क्रियाकलाप अतीत की भाँति विशिष्ट प्रचार संस्थानों द्वारा नहीं मापे जाते, जैसे प्रत्यक्ष रूप से सरकारी एजेन्सियों द्वारा राज्य मशीनरी, वैज्ञानिक संस्थान और प्रचार मशीनरी के सभी सम्पर्कों के बीच घनिष्ट अन्तःक्रिया सहित, और ये अब असम्बद्ध क्रियाएँ नहीं रहीं अपितु निर्विवाद रूप से, सावधानी से निर्मित, पृथक्-पृथक् व्यवस्थित, सोद्देश्य वैचारिक आन्दोलन बन गये हैं जो विश्वव्यापी पैमाने पर स्वतन्त्रतापूर्वक चलाये जा रहे हैं।

व्यापक रूप से वित्तीय नियमन के चालकों सहित राज्य सत्ता के साधनों का उपयोग करते हुए, पूँजीवादी देशों की सरकारें अपनी विविध प्रचार-प्रवृत्तियों की अन्तःक्रिया को सावधानी के साथ संयुक्त करते हैं और उसका सारतत्व निर्धारित करते हैं।

हाल के वर्षों में एक आवश्यक रूप से नया बहुविभागीय उद्योग दुनिया में स्थापित किया गया है—जनमाध्यम (मासमीडिया) इस पर लाखों-लाख डालर व्यय किये गये और किये जा रहे हैं। पूँजीवाद ने जहाँ अति भारी वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति उपलब्ध की है, यह क्षेत्र जन-संहार के अस्त्रों के क्षेत्र को छोड़कर किसी से पीछे नहीं है।

सूचना इस समय एक सामाजिक रूप से आवश्यक वस्तु बन गयी है और बड़े व्यापार की एक मद बन गयी है। इजारेदार तथा प्रेस, रेडियो और टेलिविजन के राजा उनसे भारी मुनाफा कमा रहे हैं। दूसरी ओर, बहुत से प्रचार के कार्य विशेष रूप से बाहर विदेश में बहुत व्ययसाध्य हैं उनको किसी प्रकार का लाभ नहीं मिलता। इजारेदारियाँ इन क्षेत्रों में राज्य का हाथ रहने को वरीयता देती हैं, जनता पर वैचारिक प्रभाव की अधिक व्ययसाध्य शाखाओं को व्यापक बनाने और पूर्ण बनाने का कार्य वे सरकार पर छोड़ देती हैं तथा निस्सन्देह इसके लिए सारा व्यय करदाताओं की जेब से आता है। इस प्रकार, वहाँ पूँजीवादी इजारेदारियों और पूँजीवादी राज्य के बीच या अधिक स्पष्टता से कहें तो इजारेदारियों के हित में

सरकारी सेवाओं की ओर अधिक अधीनता हो जाती है।

विदेशनीति सम्बंधी प्रचार का सकेन्द्रण साम्राज्यवादियों को अन्तर्राज्यी सम्बन्धों के सन्दर्भ में इन प्रश्नों पर अपने बीच नयी समझ पर पहुँचने में सम बनाता है। ठीक उसी तरह जैसे पश्चिमी शक्तियों की सरकारें समाजवाद के विरु सैन्य योजना के क्षेत्र में संयुक्त हुई और घनिष्ठ आर्थिक समुदाय बनाने के लि साथ आयीं, इसी प्रकार व कम्युनिस्ट विरोधी प्रचार के क्षेत्र में भी अपने प्रयास को संयुक्त करके एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारात्मक निकाय स्थापित क सकती है।

उदाहरण के लिए, नाटो के ढाँचे के अन्तर्गत बड़ा सक्रिय सहकारी प्रचार केन्द्र है, सरकारी तौर पर इसका नाम है अन्तर्राष्ट्रीय सूचना और सांस्कृतिक विषयं का कार्यालय लेकिन यह मनोवैज्ञानिक क्रियाकलाप की सशोधन समिति के रूप मे सुपरिचित है। औपचारिक रूप से, नाटो के प्रधान कार्यालय एवरे में सूचना सेव उत्तरी अतलान्तिक सधि संगठन (नाटो) के 'सुरक्षा' उद्देश्यों एवं 'सांस्कृतिक क्रियाकलाप के स्पष्टीकरण का कार्य अंजाम देती है। वास्तव मे यह युद्ध के मनो-वेगों को भड़काती है और कम्युनिज्म विरोध के ध्वज के अन्तर्गत हथियारबन्दी की दौड को न्यायोचित ठहराने का प्रयास करती है। नाटो की प्रचार सेवाएँ अपने उपविभागो के द्वारा सदस्य देशो में वैचारिक मस्तिष्क शुद्धि की योजनाएँ बनाती है और समस्त खंडो के भागीदारो के प्रचार-तंत्र का उपयोग करती हैं और इस प्रकार अपने क्रियाकलाप को ब्लॉक की सीमाओं के बाहर पहुँचा दी हैं।

इसी प्रकार की प्रचार-इकाइयाँ पाश्चात्य देशो के सैनिक-राजनीतिक और अन्य आर्थिक संगठनों के अन्तर्गत भी अन्तःसरकारी स्तर पर कार्य करती है। अन्तर्राज्यीय सहयोग की नीति के साथ अपने नियमित संयोजित क्रियाकलाप को बढाते हुए वे साम्राज्यवाद की सामान्य विदेश नीति की प्रचार-व्यवस्था के एक महत्वपूर्ण अग हैं। प्रत्येक देश मे इसकी मशीनरी कम-अधिक मात्रा मे निम्न सम्पर्क रखती है : विशेषीकृत सरकारी सेवाएँ, निजी स्वामित्व वाले जन-सम्पर्क माध्यम, और विभिन्न प्रकार के मिश्रित केन्द्र। प्रत्येक सपर्क के अपने विशिष्ट कार्य होते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि कतिपय कारणो से शासक वर्ग के लिए यह सुविधा-जनक हो एक सरकारी एजेन्सी निजी आवरण के अन्तर्गत या निजी सरकारी आवरण मे कार्य कर सकती है। यह नही, यहाँ प्रत्येक विभाजन सापेक्ष होता है, यह प्रायः साम्राज्यवाद के आन्तरिक और विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय प्रचार की व्यवस्था की एक या दूसरी सेवाओ के लिए केवल पर्दे का काम करती हैं।

उदाहरणार्थ, अमरीका मे, मुख्य सरकारी विदेश नीति प्रचार एजेन्सी 'यूनाइटेड स्टेट्स इन्फर्मेशन एजेन्सी' (यू० एस० आई० ए०) थी, अपने तरह का विश्व का बृहत्तम सस्थान। इसका मुख्य सिद्धान्त था विदेश नीति प्रचार की समस्त

मुख्य प्रवृत्तियों का केन्द्रीकरण। जिससे कि, इसकी सम्पूर्ण विशाल प्रचार मशीनरी जनमाध्यमों और जनता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने वाले अन्य साधनों सहित, कुशलतापूर्वक काम में लायी जा सके।

सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के राज्यों मे, जो अमरीकी आकाशवाणी के अति महत्व पूर्ण लक्ष्य है मे वैचारिक प्रवेश पाने के उद्देश्य से अमरीका ने यू० एस० आई० ए० के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय संचार सेवा और अमरीकी स्टेट विभाग का सांस्कृतिक ब्यूरो स्थापित किया। निश्चित रूप से, जीवन की अमरीकी पद्धति व्यापक का प्रचार का विषय रहती है। पेण्टागन की बहुमुखी प्रचार मशीनरी, जिसकी रेडियो स्टेशनो की प्रकाशन-गृहों आदि की विदेशो मे अपनी व्यवस्था है, इसी प्रकार के कार्य करती है। सी० आई० ए० और दूसरे बहुत से सगठनो के भी सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशो के विरुद्ध कार्यों के लिए विशिष्ट विभाग है।

ब्रिटेन मे यह कार्य (बी० बी० सी०) ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन करता है जो विदेशो मे रेडियो और टी० वी० पर प्रचार के साथ प्रकाशन का कार्य भी करता है। ब्रिटिश कौंसिल भी इन कार्यों मे सलग्न है, जिसके प्रतिनिधि दुनिया-भर के बहुत से देशो मे है, जो वहाँ पुस्तकालयो के सचालन, प्रचार और प्रदर्शनियाँ, फिल्म प्रदर्शन और अग्रेजी अध्यापन आदि का कार्य करते हैं।

सघीय जर्मन गणतत्र मे सब कार्य फेडरल प्रेस और सूचना विभाग द्वारा पूरे किये जाते हैं जिसके अन्तर्गत सरकारी रेडियो स्टेशन, ड्यूट्शलेंड-फ्रेंक और सोवियत विरोधी ड्यूट्शेवल्ले प्रसारण करते हैं। विकासशील देशो मे कार्य के लिए वहाँ गोइथे ड्यूटेशन कुल्त्यूर इस्टीट्यूट है और वैचारिक विध्वस के लिए सुप्रसिद्ध ओस्टफोरशुग है।

फ्रांस मे प्रचार कार्य 'लिबरल' एजेन्सी फ्रासीसी प्रेस (AFP) द्वारा किया जाता है, फ्रासीसी रेडियो और टेलिविजन सेवाओ के माध्यम इसके साथ हैं. (ऑफिस डी रेडियो डिफ्यूजन एट टेलिविजन फ्रेंकाइज)।

इस प्रकार पूँजीवादी राज्यों की वैचारिक सेवाएँ समाजवाद विरोधी, सोवियत विरोधी प्रचार व्यापक उत्पादन की नीति पर चलाती है।

निजी जन-माध्यम : छद्म वस्तुनिष्ठता और वास्तविक उद्देश्य

कम्युनिज्म के विरुद्ध वैचारिक सघर्ष की चाहे जितनी बड़ी सरकारी मशीनरी हो, यह वैचारिक मोर्चे पर संघर्षरत शक्तियो का केवल एक शस्त्र है। दूसरा, जो इससे कम शक्तिशाली नहीं, निजी स्वामित्व वाला जनमाध्यम जो सीधे सीधे इजारेदारियो के अधिकार मे है। ये हैं अतिविशाल विश्वव्यापी टेलीग्राफ

एजेन्सियाँ, समाचार-पत्रों के ट्रस्ट, चल चित्र कम्पनियाँ, रेडियो का विस्तृत ज
आदि। आधुनिक पूँजीवादी राज्यों में वैधानिक विभाजनों का विस्तार कि
प्रकार भी इसके लिए बाधक नहीं है अपितु उससे जन माध्यमों को इजारेदारियों
हाथों में केन्द्रित करने की सुविधाएँ प्रदान करता है।

इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान में रखें कि साम्राज्यवादी लोग अपनी 'मुक्
स्वतन्त्रता से जनता को सम्मोहित करने के लिए 'निजी प्रेस' की स्थिति का
उपयोग करते हैं मे और इस बहाने वास्तव में झूठी सूचनाएँ देने में संलग्न रहते हैं

पूँजीवादी देशों में स्थिति समाजवादी देशों से बुनियादी रूप से भिन्न है, जह
समस्त सूचना माध्यम राज्य के हैं, पार्टी या जन संगठनों के हैं जिनके सम्बन्ध
किसी भी प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि समाचारपत्र अथवा रेडियो स्टेश
ऐसी सूचना प्रसारित करते हैं जिसके लिए जनता के सामने कोई उत्तरदायी नहं
होता। न केवल पूँजीवादी राज्यों की सरकारों के पास बल्कि पूँजीवादी पार्टियों
पास भी प्रायः अपना आधिकारिक समाचारपत्र नहीं होता। इसके स्थान पर,
निजी फर्मों के निजी व्यक्तियों के पत्रों का उपयोग करते हैं, तथाकथित 'स्वतं
पर व्यवहार में यह अत्यधिक भ्रष्ट और लोलुप प्रेस होता है जिसके लिए को
नैतिक जिम्मेदारी भी नहीं लेता।

'स्वतंत्र' सूचना केन्द्रों की स्थिति का दुरुपयोग व्यवहार में जनता की राय क
मनमाने ढंग से विकृत करता है, जैसे-जैसे इसका क्षेत्र बढ़ता है यह अधिकाधिक
खतरनाक होता जाता है। इसलिए पूँजीवादी समाज में, शासक वर्ग द्वारा सूचना
प्रसारण के स्रोतों और साधनों के केन्द्रीकरण के प्रयासों को प्रेस, आकाशवाणी औ
टेलिविज़न के पर्दों तक उन सबकी पहुँच को रोकने का प्रयास समझना चाहिए जो
'विपरीत' मत रखते हैं। स्वतंत्र जनमाध्यम की इजारेदारियाँ सूचना के अन्य सभी
स्रोतों को समाप्त करने का और सूचना पर पूर्ण इजारेदारी प्राप्त करने का प्रयास
करती है जिससे कि अपनी इच्छानुसार वे उसे दे सकें।

उदाहरण के लिए, अमरीका में, व्यवस्था मोटे तौर पर निम्न प्रकार होती है:
तैयार सामग्री से देश में और विदेश में समस्त अमरीकी सूचनाओं को जो उपयुक्त
भावनाओं में पहले से संसाधित होती है प्रवाहित करने वाली मुख्य धमनियाँ हैं:
दो अति विशाल टेलिग्राफ एजेन्सियाँ, एसोशिएटिड प्रेस, और यूनाइटेड प्रेस इटर्न-
शनल, स्वदेशी और अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों के उनके दैनिक सार संक्षेप समस्त
अमरीकी प्रचार संगठनों के लिए मार्ग दर्शक का कार्य करते हैं।

संभवतः इस प्रकार के कार्य के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है द न्यूयार्क
टाइम्स जो अपने सिण्डिकेट एवं अन्य प्रणालियों से अति महत्वपूर्ण विवरणों की
दैनिक संक्षिप्तियाँ और अग्रिम पृष्ठ के लिए दिये गये लेखों की सूची प्रेषित करता है।
रेडियो और टेलीविज़न में, यह भूमिका **कोलम्बिया ब्राडकास्टिंग सिस्टम** अमेरिकन

इकास्टिंग कम्पनी और नेशनल ब्राडकास्टिंग कम्पनी द्वारा अदा की जाती । समाचारपत्रों और रेडियो और टेलीविजन कम्पनियों का प्रभाव अमरीक स्तविक शासकों से उनकी घनिष्ठता द्वारा प्रदर्शित होता है। और तथ्य य : वे पूरी स्पष्टता के साथ राज्य इजारेदारी सत्ता पर बैठे अभिजात वर्ग के । प्रकट करते हैं।

पूंजीवादी विश्व के अन्य भागों में, यह भूमिका इसी प्रकार के पूंजीवादी प्र स्तम्भों द्वारा जैसे लन्दन के टाइम्स पेरिस के ले मॉण्डे और पश्चिम जर्मन प्रगर के विशाल प्रेस सिण्डिकेट द्वारा अदा की जाती है।

ये सभी शक्तिशाली प्रचार ट्रस्ट उसी पद्धति का अनुसरण करते हैं। प्रचट 'मुक्त', 'स्वतंत्र' 'गैर पार्टीजन' प्रेस के प्रतिनिधित्व का दिखावा करते हैं वे त्ताधारी वर्ग द्वारा दिये सामाजिक आदेशों को पूरा करते है और उसके ी रक्षा करते हैं। वस्तुतः कुछ तो घोर प्रतिक्रियावाद के पक्षपाती होते हैं, अ रकार की आधिकारिक स्थिति से भी अधिक दक्षिणपन्थी।

सोवियत संघ और समाजवादी देशों के विरुद्ध क्रियाकलाप के लिए वि प से निर्देशित संगठन भी आमतौर से 'गैर सरकारी' सूचना केन्द्रों के आवर न्तर्गत कार्य करते हैं। रेडियो स्टेशन 'लिबर्टी' और 'फ्री यूरोप' इसके उदा । जे० विलियम फुलब्राइट ने जो एक समय सीनेट की विदेश सम्बन्धी की स अध्यक्ष रहे थे शांत रूप से उसके क्रियाकलाप के विषय में लिखा था. "कई क 'फ्री यूरोप' और 'लिबर्टी' रेडियो के बारे में अमरीकी जनता को बताया रहा कि ये निजी चन्दों पर आधारित निजी संगठन हैं और पूर्वी यूरोप की ज के सम्बन्ध में 'सचाई' प्रसारित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। वास्तव में, ये प्रसारण केन्द्र सी० आई० ए० से लाखों डालर प्राप्त करते हैं…।"[1]

निरन्तर पर्दाफाश होने के बाद इस बात से इन्कार करना कि रेडियो लि और रेडियो फ्री यूरोप सी० आई० ए० के प्रत्यक्ष निर्देशन में काम करते हैं अस हो गया। और इसका अर्थ था कि सोवियत संघ और यूरोप के समाजवादी दे विरुद्ध प्रचार उन्हीं संगठनों द्वारा निर्देशित था जिन्होंने क्यूबा के प्रधानमंत्री कास्त्रो और अरब गणतंत्र मिस्र के राष्ट्रपति जमाल अब्दुल नासर की हत्या के प्र में भाग लिया था और कांगो की सरकार के प्रथम अध्यक्ष पैट्रिस लुमुम्बा की मे और चिली की वैध लोकप्रिय संयुक्त सरकार को, जिसके नेता सल्वाडोर अले उखाड़ने के कार्यों में भूमिका निबाही थी जब इनको अधिक समय तक छिपाय जा सका, तो ये तथ्य संयोगवश अमरीकी कांग्रेस की कमेटी द्वारा सार्वजनि

[illegible] युद्ध के [illegible] केन्द्रों [illegible]
[illegible] है।

साथ ही [illegible] के समर्थन के रूप में [illegible]
[illegible] युद्ध [illegible] और [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] कम्युनिज्म विरोध के स्पष्ट रूप से [illegible]
[illegible] और [illegible]
समाजवाद के विरुद्ध [illegible] करने में [illegible] राज्य और
इजारेदारियों के साथ [illegible] का भी समायोजन हो गया।

कम्युनिज्म विरोध के 'ब्रेन ट्रस्ट' के रूप में 'सोवियत विदां' के अनेक अनु-
संधान केन्द्रों के निर्देशन में राज्य-इजारेदारियों का [illegible] कुछ अधिक [illegible]
आवृत है। केवल अमरीका में ही इस व्यवस्था के अन्तर्गत कई दर्जन बड़े विशि-
केन्द्र हैं (युद्ध, क्रान्ति और शान्ति का हूवर संस्थान, कैलिफोर्निया, न्यूयार्क
कोलम्बिया युनिवर्सिटी में रूसी भाषा का संस्थान, हार्वर्ड युनिवर्सिटी में रूसी अनु-
संधान केन्द्र, वाशिंगटन में 1976 में स्थापित जार्ज केनन इन्स्टीट्यूट और अन्य
और बहुत से विश्वविद्यालयों के विभाग और पाठ्य क्रम, कम्युनिस्ट विरोधी
प्रकाशन गृह आदि। जैसाकि अमरीकी प्रोफेसर हैंस मौर्गेथो ने स्पष्ट रूप से देखा
था, अमरीका में सैनिक औद्योगिक समुच्चय के अतिरिक्त, राजनीतिक समच्चय
पर अकादमिक समुच्चय भी है जो देश के बहुत से अनुसंधान केन्द्रों पर अपने
प्रभाव का विकास करते रहते हैं।

कम्युनिस्ट विरोधी हठधर्मी की 'सामाजिक व्यवस्था'

इस प्रकार, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् और विशेष रूप से 1950, 1960
और 1970 के दशकों में साम्राज्यवादी देशों के शासक हल्कों ने समाजवाद और
विश्व मुक्ति आन्दोलन द्वारा अर्जित नयी सफलताओं के समक्ष, अपनी शक्तिशाली
प्रचार मशीनरी को पूर्ण बनाया। जनता की मस्तिष्क शुद्धि की इस जटिल व्यवस्था
में अनेक प्रकार से पूँजीवादी व्यवस्था को न्यायोचित ठहराने वाली बहुत-सी इका-
इयाँ समाविष्ट हैं।

यह व्यवस्था बड़ी विचित्र है। यह समाजवाद, कम्युनिस्ट आन्दोलन और जन-
वादी ताकतों के विरुद्ध राजनीतिक कार्यों के लिए साधन जुटाती है। समाजवादी
समाज की विचारधारा और नैतिकता का विरोध करने के उद्देश्य से 'जन संस्कृति

का विज्ञापन करते हुए पूँजीवादी विश्व के जन प्रचार के विस्तृत क्षेत्रों में कार्य करती है। यह पूँजीवादी सिद्धान्तकारों की आकांक्षा को—जो जितनी पुरानी है उतनी ही निरर्थक भी—सामाजिक प्रक्रिया के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के सामाजिक दार्शनिक विकल्प की खोज या फैशन को प्रतिबिम्बित करती है।

इससे पूर्व कभी भी पूँजीपति वर्ग ने वैचारिक सुरक्षा की ओर इतना अधिक ध्यान नहीं दिया था या इस मोर्चे का निर्देशन नहीं किया था। विदेश नीति के 'चतुर्थ क्षेत्र' पर इतने प्रयास नहीं किये थे जितना हमारे समय में किये जा रहे हैं। यह सर्वहारा और पूँजीपति वर्ग के बीच, दो सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओं के बीच, पूँजीवाद के आम संकट की तीसरी मंजिल की स्थितियाँ जब परिपक्व हो रही हैं, ऐतिहासिक संघर्ष में वर्तमान दौर के कुछ अति महत्वपूर्ण रूपों को प्रतिबिम्बित करता है। यह मंजिल किसी विश्व युद्ध के सम्बन्ध में आरम्भ नहीं हुई जैसा कि पूर्ववर्ती दो मंजिलों में हुआ था बल्कि शान्ति की स्थितियों में (अर्थात् एक ठोस ऐतिहासिक परिस्थिति में जिसमें कि साम्राज्यवाद अपने अन्तर्विरोधों को सुलझाने के लिए नये विश्व युद्ध का खतरा नहीं उठाना चाहता) और यह तीनों में सर्वाधिक गहन और व्यापक रूप में विकसित हो रही है।

साम्राज्यवाद विश्व के विकास में समाजवाद को निर्णायक शक्ति बनने से रोक नहीं सकता। यह औपनिवेशिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न होने से नहीं रोक सकता और आर्थिक एवं पूँजीवादी देशों में आर्थिक एवं राजनीतिक अस्थिरता को और बढ़ने से नहीं रोक सकता।

साम्राज्यवाद सोवियत संघ और दूसरे समाजवादी देशों के शान्ति-अभियान को विफल करने में असमर्थ है। समग्र विश्व राजनीतिक स्थिति के दृष्टिकोण से यह अभियान अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को कम करेगा और विश्व के क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष के विकास की शब्दावली में मेहनतकश जनता के जनवादी और मुक्तिकामी लक्ष्यों को और आगे बढ़ाने में सफल होगा। आणविक प्रतिरोध के उदय से, जिसने कि नये विश्व-युद्ध को निरी मूर्खता सिद्ध कर दिया, इन ऐतिहासिक परिवर्तनों को और अधिक कम करके आँका।

इन परिवर्तनों ने साम्राज्यवाद को कम्युनिज्म के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष की अपनी रणनीति को सुधारने के लिए विवश किया। मार्क्सवाद के उदय ने पूँजीवादी विचारधारा की वैज्ञानिक आधारहीनता प्रकट कर दी, अक्तूबर क्रान्ति की विजय और समाजवादी सोवियत संघ में समाजवादी व्यवस्था के निर्माण ने पूँजीवाद की ऐतिहासिक पहलकदमी को पस्त कर दिया। द्वितीय विश्व युद्ध में सोवियत जनता और विश्व की जनता की शक्तियों की विजय ने, फासिज्म के उन्मूलन और इसकी नैतिक एवं राजनीतिक पराजय ने, और तत्पश्चात् समाजवाद के पक्ष में विश्व शक्तियों के सन्तुलन में परिवर्तन ने साम्राज्यवाद को फिर एक बार

अपनी वैचारिक सुरक्षा की समग्र व्यवस्था को वस्तुतः पुनः सज्जित करने के लिए बाध्य कर दिया।

कुल मिलाकर, इस पुनर्गठन में भी साम्राज्यवाद की रणनीति में समाजवादी सोवियत संघ और समाजवादी समुदाय के सम्बन्ध में अनुगामी परिवर्तन प्रतिबिम्बित हुए और यह मुठभेड़ के युग से बातचीत के युग में संक्रमित हो गयी।

यह संक्रमण वेदनाहीन या अन्तर्विरोधों से रहित नहीं था। ठीक इसी तरह जैसे कि साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद वर्षों तक अक्तूबर क्रान्ति के पश्चात् विश्व में मूर्त हो रही नयी स्थिति के साथ अपना सामंजस्य बैठाने को तैयार नहीं हुआ था और उसने हठपूर्वक सोवियत राज्य का बहिष्कार किया था, इसी प्रकार अब द्वितीय विश्व युद्ध में इसकी पराजय से उचित निष्कर्ष निकालने से क़तरा रहा था। वर्ष-पर-वर्ष बीतते गये और समाजवाद की शक्ति में वृद्धि के अकाट्य प्रमाण पूँजीवादी विश्व के शासक वर्ग के समक्ष प्रकाशित होते गये और अन्ततः उसने हो रहे अपरिवर्त्य परिवर्तन को स्वीकारा, लेकिन ऐसा होने से पूर्व एक निरन्तर और लम्बी खोज ऐसी वैचारिक धारणाओं की चलती रही जो शीतयुद्ध की बर्फ़ में— 'अवरोधात्मक युद्ध' (1945-1948) 'निरोध' या कम्युनिज्म 'पीछे धकेलने' का, (1975 से आरम्भ) 'सीमित युद्ध' (1957-1960) सैनिक रणनीति के सिद्धांतों की शृंखला के रूप में उत्पन्न हुई थी।

वर्तमान में कार्यरत साम्राज्यवाद की वैचारिक प्रचार की व्यवस्था शीत युद्ध के समय उत्पन्न हुई है। निरन्तर इसकी स्मृतियाँ आती रहती हैं क्योंकि यह दो दुनियाओं के बीच तीक्ष्ण टकराव के विषाक्त वातावरण में तैयार की गयी थी, इसकी सांगठनिक संरचना, कार्यविधि और वैचारिक अवधारणाएँ 'शीत' विचारों की भावना से परिपूर्ण हैं।

इसी के साथ-साथ, कम्युनिज़्म विरोध के दावपेंचों को चाहे जितना सुधारा गया हो तथापि इसकी वैचारिक प्रस्थापनाओं का सारतत्व अपरिवर्तित ही रहा। आजकल जनता का दिमाग़ साफ़ करने के तरीक़े और साधन अत्यन्त भिन्न प्रकार के हैं : सावधानी के साथ तैयार किये गये वैचारिक अभियान एक दिन की सनसनीखेज घटनाओं से मिला दिये जाते हैं, तथ्यपूर्ण सूचना विभ्रान्त धारणाओं से और प्रत्यक्ष झूठ सूचनाओं में बदल दी जाती है। वैचारिक प्रचार विविध प्रकार के रूपों में किया जाता है मिथ्या वैज्ञानिक कृतियों से लेकर हल्की-फुल्की चित्र कथाओं तक, विश्वविद्यालय के भाषणों से सस्ती विज्ञापनबाज़ी तक, पार्श्व मंच से जासूसी उपन्यासों तक।

लेकिन प्रवृत्तियों के रूपों और पद्धतियों की इन सब भिन्नताओं के साथ कम्युनिज़्म विरोध की विचारधारा और राजनीति तथा इसका सोवियत-विरोध का आरम्भ एक सामाजिक व्यवस्था को भरने के लिए और समाजवाद की उत्पत्ति

को रोकने के लिए और समय की क्रांतिकारी शक्तियों के सप्रवाह को एक विश्व-धारा में परिवर्तित होने से रोकने के लिए—उनके राजनीतिक क्रियाकलाप को कम करने के लिए और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष को निष्प्राण करने के लिए तैयार की गयी थी।

पूंजीवादी देशों में सर्वत्र, राष्ट्रीय मुक्ति-आंदोलन के क्षेत्रों में, समाजवादी देशों में, साम्राज्यवाद की प्रचार सेवाएँ प्रत्येक सुलभ साधन से निराशावाद की भावनाओं के बीज बोने, सामाजिक प्रगति की संभावनाओं में विश्वास को समाप्त करने और अविश्वास पैदा करने, मेहनतकश वर्ग के लोगों की मनोवृत्ति को सामाजिक, राष्ट्रवादी, नस्लवादी, उपभोक्ता और अन्य पूर्वाग्रहों की संकीर्ण दुनिया में सीमित करने का प्रयास करता है।

पश्चिमी देशों में, सामान्य जनता में, घटनाओं के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार की समझ, एक वैचारिक प्रतिवधित प्रतिच्छाया, घिसी-पिटी मानसिकता विकसित करने की ओर ध्यान देना विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है जिससे कि लोगों को कम्युनिज्म से बचाया जा सके। निरन्तरतापूर्वक, दिन-प्रतिदिन प्रेस, रेडियो, टी० वी०, सिनेमा और तथाकथित जन-संस्कृति के समस्त साधनों से सामान्य व्यक्ति पर यह प्रभाव डाला जाता है कि: कम्युनिज्म हर प्रकार की बुराई का सर्पिंडित रूप है। इसकी 'ईश्वरविहीन' 'सर्वाधिपत्यवादी' विचारधारा मानव प्रकृति के विरुद्ध है। कम्युनिस्ट कथित रूप से लोगों को उनकी सम्पत्ति से वंचित करना चाहते हैं, स्वतन्त्रताओं और अधिकारों को अपनी 'आक्रामक' योजनाओं के साधन के रूप में बदलना चाहते हैं। वे फूट के बीज बोते हैं और असन्तोष की आग भड़काते हैं। यदि कम्युनिज्म ने कुछ परिणाम आर्थिक और राजनीतिक विकास में दिखाये भी हैं, वह जनता के जीवन-स्तर की कीमत पर पैदा किये गये हैं। नये कार्य-भार जो मानव समाज के समग्र उत्पादन के विकास के, विज्ञान और प्रविधि के विकास के आधुनिक स्तर पर हैं उनका समाजवाद से कोई सामंजस्य नहीं है इसलिए जल्दी या देर से कम्युनिस्ट अपने मतान्धतापूर्ण सिद्धान्तों को त्यागने के लिए विवश हो जायेंगे।

'मुक्त' निजी उद्यमों की दुनिया ही सम्मानित रूप से 'समान अवसरों' का समाज है। इसकी आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक संस्थान अधिकतम व्यावसायिक क्रियाकलाप की, जनतंत्र की, वैयक्तिक पहलकदमी और अन्तिम विश्लेषण में—व्यक्ति की स्वतन्त्रता की गारण्टी है। प्रत्येक व्यक्ति को सम्भावित रूप से सफलता का अवसर प्राप्त होता है (जैसे कि ग़रीब एलिस की कहानी में कला-मर्मज्ञ नायिका अपने परिश्रम से मितव्ययता के कारण राजकुमारी बन गयी)। वे कहते हैं कि हर चीज स्वयं आप पर निर्भर है। और यदि आप अब तक लखपति नहीं बने तो यह केवल आपका अपना दोष है। आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति ने

'स्वतंत्र विश्व' के लिए सुभावनी सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये हैं जिन्हें वह बिना किसी वर्ग-संघर्ष के, सब स्वयं को जन-उपभोग और सार्वभौम समृद्धि के आश्चर्यप्रद युग में पा सकते हैं।

—मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण, वर्ग-संघर्ष, इजारेदारियों का आधिपत्य—ये सब निस्सन्देह कम्युनिस्टों की कूट रचनाएँ हैं। यदि अतीत में इन अवधारणाओं के लिए कोई आधार था, वह अधिक समय तक नहीं रहा। अन्ततः, पूँजीपति भी आज एक श्रमिक (कामगार) है (!), और कोई मजदूर जो स्टॉक खरीदता है, उद्यमी है। 'गोरे लोग' हर जगह अनिवार्यतया 'काले लोगों' का स्थान ले लेंगे। वर्ग समाप्त हो रहे हैं, सामान्यतया वर्ग-संघर्ष निरर्थक और हानिकारिक है क्योंकि यह औद्योगिक समाज की समृद्धि की ओर स्वयं भू-गति के मार्ग में केवल बाधा डालता है;

—आधुनिक विश्व की सब बुराइयाँ और इसके भविष्य के खतरे या तो कम्युनिस्टों के दुष्ट षड्यंत्रों से अथवा मानव प्रकृति की अपूर्णताओं जैसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के कारण और इसके अंधकारपूर्ण संस्कारों की तर्कहीनता के कारण होते हैं। इसी प्रकार ये जनसंख्या विस्फोट के, अत्यधिक शहरीकरण के, पर्यावरणिक प्रदूषण के और दुर्भाग्यों के परिणाम हैं जो अकस्मात् मानव-समाज पर आ पड़ते हैं। निस्सन्देह, इनके लिए पूँजीवाद उत्तरदायी नहीं है और फिर इन विपदाओं पर विजय पाने के लिए हमें वर्ग-संघर्ष को भूल जाना चाहिए और इन सार्वभौम समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

ये और इसी प्रकार के विचार प्रचारित करने के अपने प्रयासों में साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार एक ओर तो जनता पर भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के विभिन्न तरीके अपनाते हैं। वे सामान्यतया लोगों की तर्क-बुद्धि को सम्बोधित नहीं करते बल्कि वे उसकी भावनाओं को और पूँजीवादी समाज को परम्परागत जीवन-पद्धति से उत्पन्न आदतों को या जब यह समाजवादी देशों की ओर आते हैं, लोगों की मनों में अतीत के अवशेषों को आधार बनाते हैं। दूसरी ओर, आधुनिक पूँजीवाद के सिद्धांतकार कम्युनिज्म का विरोध करने के लिए सैद्धांतिक युक्तियाँ देने का प्रयास करते हैं जिससे पूँजीपति वर्ग की स्थितियों से जीवन में उठाये गये प्रश्नों का उत्तर दे सकें। लेकिन जीवन स्वयं इन सब प्रयासों की निरर्थकता दिखा देता है।

सुधारों की रक्षा में। उदारवाद बनाम समाजवाद नहीं, बल्कि सुधारवाद बनाम समाजवादी क्रांति यह है फार्मूला आधुनिक, 'अग्रगामी' शिक्षित पूँजीपति वर्ग का।[1]

1960 और 1970 के दशकों में इस निष्कर्ष की पुष्टि हो गयी, सर्वोपरि *'विसिद्धान्तीकरण' के सिद्धान्त के रूप में, अथवा विचारधारा की समाप्ति के रूप में*। इस सिद्धान्त के, जिसकी जड़ें पीछे पूँजीपतियों के यथार्थवाद में पहुँचती हैं, अब अनेक रूप हैं।

यथासंभव अधिक-से-अधिक जनता को प्रभावित करने के लिए साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार आबादी की विभिन्न श्रेणियों से अपील करने के लिए विभिन्न धारणाओं का उपयोग करते हैं। कुछ निम्न पूँजीपति वर्ग को लक्ष्य करके जो कुल मिलाकर इजारेदारी विरोधी स्थितियाँ ग्रहण किये होते हैं, प्रतिक्रियावादी भ्रमों का उपयोग करते हैं *स्वतंत्र प्रतियोगिता दिनों के लौटने की संभावना के विषय में*। दूसरों का लक्ष्य होता है शिक्षित अकादमीशियन, और विद्यार्थी समुदाय जो वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति द्वारा सक्रिय सार्वजनिक जीवन में खींच लिये गये हैं और वस्तुगत रूप से इजारेदारी पूँजी का विरोध करते हैं लेकिन अभी तक साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में अपना स्थान नहीं बना पाये हैं, और कुछ गुटों को मिला करके भी जो मजदूर वर्ग के अन्दर हैं जो अभी तक *अवसरवादी भ्रमों से विपाक्त हैं*। कुछ विभिन्न लोग हैं विशेष रूप से नव स्वाधीन देशों की ओर निर्देशित, जो साम्राज्यवादी प्रभुत्व को नकारते हैं लेकिन सदा यह नहीं पहचान पाते कि कौन उनके मित्र हैं कौन शत्रु, उनके स्थायी ग्रुपों की ओर ध्यान दिया जाता है—समाजवादी देशों के भीतर जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हितों के विरोध की ओर झुकाव रखते हैं।

इस *परस्पर विरोधी शक्तियों को दिशा परिवर्तन के लिए उनको, मार्क्सवाद* लेनिनवाद से अलग करने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद से उनका ध्यान दूसरी तरफ ले जाने के लिए साम्राज्यवाद हर तरह के कम्युनिस्ट विरोधी—दक्षिणपन्थी अवसरवादी से उग्र वामपंथी आंदोलन का उपयोग करता है तथा मजदूर वर्ग की विचारधारा मार्क्सवाद-लेनिनवाद का विरोध करने वाली किसी भी धारणा का उपयोग करता है। *सबसे बढ़कर, प्रतिक्रियावादी सभी धाराओं के मुक्ति आंदोलनों* में संयुक्त होने से डरते हैं। इस प्रकार वे इस आंदोलन के विभिन्न संभागों के पिछड़ेपन, कमजोरी और विसंगतियों को क़ायम रखने का हर समय प्रयास करते हैं।

1. वी॰ आई॰ लेनिन, *रूसी सामाजिक जनवादी आंदोलन में सुधारवाद, संकलित रचनाएँ* भाग 17 पृ॰ 229

प्रतिगामी साम्राज्यवाद समाजवादी देशों के विरुद्ध अपने संघर्ष में उन कतिपय अल्पसंख्य दलों पर निर्भर रहता है जिनकी सामाजिक चेतना उनके सामाजिक जीवन से अत्यधिक पिछडी होती है। तथा वह पूँजीवाद के उत्तराधिकार के रूप में छोड़े गये राष्ट्रवादी अवशेषो का उपयोग करता है। वह उन विभिन्न देशो की आर्थिक विकास की भिन्नताओं का लाभ उठाने की कोशिश करता है जिन्होंने समाजवादी मार्ग को स्वीकार किया है, राष्ट्रवाद को उभारने का व इस प्रकार सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद सिद्धान्तों और समाजवादी समुदाय की एकता के सम्बन्ध मे पूर्वाग्रह उत्पन्न करने का प्रयास करता है।

पूँजीवादी सिद्धान्तकार विकसित पूँजीवादी देशो मे 1960 के दशक मे हुए आर्थिक विकास का और पूँजीवाद की सामाजिक संरचना मे वैज्ञानिक तकनीकी क्रांति से सम्बद्ध नयी घटना का, राज्य एकाधिकारिता की प्रवृत्तियो के विस्तार का और पूँजीवादी उत्पादन तथा पूँजीवादी बाजार की एकता का व्यापक रूप से उपयोग करते हैं। इसके पीछे उनका उद्देश्य यह प्रचारित करना होता है कि पूँजीवादी समाज बदल चुका है, उसने अपने सामाजिक वैर-भावो पर काबू पा लिया है, तथा वर्ग-संघर्ष और मजदूर-आन्दोलन अपनी मौत मर चुके हैं। साम्राज्यवाद के देवदूत जनता के जनतांत्रिक आंदोलनो की मिश्रित वर्ग संरचना को जानते हैं, जो स्वत: ही निम्न पूँजीवादी लोगों को आकर्षित करता है (सिद्धान्तहीन समझौतो की ओर उनकी प्रवृत्ति या वामपंथी उग्रवादी दुस्साहसिकता की ओर उनकी प्रवृत्तियो सहित) जिससे कि मजदूर वर्ग की हरावल दलो की भूमिका को कमजोर किया जा सके।

राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलन को ध्वस्त करने के लिए किये जा रहे प्रयासो मे राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग की अस्थिरता का, स्थानीय आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के मार्ग मे आनेवाली विभिन्न बाधाओं का जातीय एवं जनजातीय पूर्वाग्रहो का, नये स्वाधीन राज्यो की पूँजीवादी विश्व-अर्थव्यवस्था पर निर्भरता का और पुराने महानगरो वाले देशो के साथ उनके आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों का लाभ उठाया जाता है। इसके पीछे उद्देश्य यही रहता है कि राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की प्रक्रिया जहाँ कहीं ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का रूप ले रही हो, उसे रोका जाय।

साम्राज्यवादी देशों में, 1950 के दशक के मध्य एवं 1960 के दशक के पूर्वार्ध से आर्थिक विकास एवं वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के क्षेत्रों मे राज्यीय प्रोत्साहन, इतनी बड़ी मात्रा मे देखा गया जितना कि पूँजीवादी समाज मे पहले कभी नही देखा गया था। इन उपायो मे आधुनिक पूँजीवाद की अपने को नयी स्थिति के अनुकूल बनाने की, समाजवाद की चुनौती का सामना करने की और साथ-ही-साथ पूँजीवादी देशों मे आर्थिक और सामाजिक उथल-पुथल को रोकने की

इसका प्रतिबिम्बन थी। निस्संदेह, गिने-चुने वैचारिक समर्थन ने इस लाइन की पुष्टि कर दी।

सम्भवतः इस तथ्य को उद्धृत करके कि साम्राज्यवाद ने वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति की सहायता से कुछ समय के लिए सामाजिक उत्पादन की कुशलता को उठाने की व्यवस्था कर ली, जिसे तो ओझल नहीं किया जा सकता। तथापि, पूंजीवादी सिद्धान्तवेत्ताओं ने निष्कर्ष निकाला कि पूंजीवाद एक नये समाज के रूप में रूपान्तरित हो गया है जो अपने अन्तर्विरोधों को बिना संघर्षों के और शुद्ध व्यावहारिक रूप से सुलझाना सीख चुका है। इसी आधार पर उन्होंने मार्क्सवादी 'मताग्रहों' को धो डालने के लिए शीघ्रता की।

इसी उद्देश्य से विसिद्धान्तीकरण (सिद्धान्तविहीनता) की अवधारणा सामने लायी गयी। 1960 में पूंजीवादी प्रचार द्वारा फ़ैशन के रूप में चल रहे अन्य सिद्धान्तों के साथ घनिष्ठ रूप से संयुक्त करके इसका उपयोग किया जाता था। वे थे 'औद्योगिक समाज' और दो प्रणालियों की 'समरूपता' के सिद्धान्त। ये सब एक ही भूमि से उत्पन्न होते हैं और एक वृक्ष की शाखाओं की तरह परस्पर जुड़े रहते हैं। एक ही काम करने के लिए उन्हें तैयार किया जाता है—राज्य इजारेदारी पूंजीवाद की जीवन्तता प्रमाणित करने और उसकी रक्षा करने के लिए वे कभी एक-दूसरे को पुष्टि करते हैं और एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं।

दूसरी सैद्धान्तिक संरचनाओं के लिए 'दार्शनिक आधार' होने का दावा करने वाले 'विसिद्धान्तीकरण' या 'विचारधारा की समाप्ति' का सिद्धान्त केवल सैद्धान्तिक अवधारणा ही नहीं अपितु पूंजीवादी चिन्तन की प्रणाली है। इसे वास्तविकता के मार्क्सवादी-लेनिनवादी वर्ग विश्लेषण के मुकाबले घटनाओं एवं विकास के मूल्यांकन के लिए वर्गविहीन (विसिद्धान्तीकृत) दृष्टिकोण के रूप में तैयार किया गया है।

यह सामान्य प्रवृत्ति पूंजीवादी और सामाजिक सुधारवादी प्रचार के रूपों और पद्धतियों के व्यापक कार्यक्रम में प्रसारित की गयी जिसमें सामाजिक जीवन के विसिद्धान्तीकरण की धारणा भी रूप से सम्मिलित थी।

साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार यह प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं कि जैसे-जैसे आधुनिक विश्व वैज्ञानिक प्राविधिक क्रांति के ढांचे में औद्योगिक रूप से विकसित होता है, विचारधारा विभिन्न वर्गों और सामाजिक समूहों के अन्तिम सामाजिक आदर्शों को निर्धारित करने वाले विचारों की प्रणाली के उनके विश्व दृष्टिकोण और राजनीतिक क्रिया-कलाप के रूप में अपनी भूमिका खोती जाती है और अन्ततः विलुप्त होती जाती है।

बूर्ज्वा व्यवहारवादी अपरिपक्व समुदायों के वैचारिक आवेगों के संघर्ष को छोड़ देते हैं जिसके बारे में वे कहते हैं कि अपने आर्थिक पिछड़ेपन और राजनीतिक

अधूरेपन के कारण वे 'कानूनी तरीके से समय-समय पर उभरने वाले विवादों को सुलझाने में असफल रहते हैं। लेकिन यह तर्क यहीं नहीं रुकता, और आगे जाता है। औद्योगिक देशों में वैचारिक संघर्ष की आवश्यकता एक स्थाई सामाजिक और राजनीतिक ढांचे के कारण स्वयं लुप्त हो जाती है। वे तात्कालिक समस्याओं का सामान्य 'जनतांत्रिक' तरीके से समाधान कर सकते हैं। यहाँ व्यावहारिक अनुभव सैद्धान्तिक मतवाद का स्थान ले लेता है। ऐच्छिक क्रिया-कलाप का स्थान विज्ञान पर आधारित जिज्ञासा ने लेली है। सिद्धान्तकार की अपेक्षा प्रबंधक मुख्य व्यक्ति बन जाता है और सिद्धान्त स्वयं व्यवहार को मार्ग दे देता है।

सामाजिक जीवन की घटनाओं के प्रति यह रवैया इजारेदार पूंजी के सिद्धान्त-कारों के लिए अत्यधिक आकर्षक होता है। उनकी दृष्टि में सिद्धान्तहीनता के सिद्धान्त में कुछ इस प्रकार के लाभ विद्यमान रहते हैं जिसके अन्तर्गत सर्वग्राही कम्युनिस्ट विरोधी धारणाएँ आ जाती हैं। राजनैतिक कार्यनीति में किसी भी परिवर्तन के लिए और कम्युनिस्ट विरोधी कार्यनीति में सुधारों के लिए यह रास्ता साफ कर देती है। पूर्वाग्रह जो उतने ही पुराने है जितना कि स्वयं पूँजीवादी समाज, कहना चाहिए कि राष्ट्रवाद से लेकर आज तक की विविधताओं जैसे कि 'सेतु निर्माण' आदि का उपयोग किया जाता है। मेहनतकश जनता के संघर्षों की वर्गीय व्याख्या के मुकाबले किसी को भी उचित ठहराने और मक्खन लगाने के उद्देश्य से सिद्धान्तहीनता का निर्माण किया गया है।

'स्वतंत्र विश्व' के घोषित सिद्धांत के रूप में विसैद्धांतिकरण साम्राज्यवाद के सिद्धांतकारों की समस्त कम्युनिस्ट विरोधी अस्त्रागार का उपयोग करने की आकांक्षा का मूर्तरूप है, साथ ही पूंजीवाद के आध्यात्मिक संकट के निर्विवाद गह-राते जाने का भी। क्योंकि वह इसी संकट से उत्पन्न होता है, विसैद्धान्तिकीकरण स्वभावतः अपने अनिवार्य लक्षणों को प्रदर्शित करता है, सर्वोपरि पूँजीवादी विचार और आधुनिक युग की वास्तविकताओं के बीच विद्यमान खाई को दिखाता है।

विचारधारा का अस्तित्व है, भले ही उसे कोई स्वीकार करे या न करे। विचारधारा का विरोध पूंजीवाद के समर्थकों की केवल आत्मगत आकांक्षा है जिससे कि जनता पर कम्युनिस्ट विचारों के प्रभाव के साथ भीतरघात कर सकें। विसैद्धान्तिकरण की लहर का लक्ष्य था मार्क्सवाद लेनिनवाद का उन्मूलन और साथ-ही-साथ पूंजीवादी प्रणाली की रक्षा।

आज पूँजीवादी जगत में प्रत्येक संकेत ऐसा मिलता है कि जनता को सिद्धान्त-शून्य बनाने की शासक वर्ग की इच्छा का परिणाम यह हो रहा है कि उसे फिर से विचारधारा दी जा रही है अर्थात् अपने अधिकारों के सम्बन्ध में उसकी विचार-धारा को फिर से पुनर्स्थापित किया जा रहा है। इसका प्रमाण यह है कि नित नयी वैचारिक धारणाओं का गहराई से विस्तार किया जा रहा है और जनता के दिमागों

में उनको बैठाया जा रहा है, तथा प्रचार की सुविधाओं को अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में अधिकाधिक चल रहे वैचारिक संघर्ष की दृष्टि से आधुनिक किया जा रहा है।

लेकिन पश्चिमी देशों में सिद्धान्तशून्यता की धारणाओं को उठाकर ताक में नहीं रख दिया गया है और वे समाजवादी देशों के विरुद्ध अपने प्रचार में व्यापक रूप से संलग्न है।

वर्तमान स्थितियों में सिद्धान्तशून्यता वस्तुतः पश्चिमी देशों की वैज्ञानिक समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष की अपनी कार्य नीति को सुधारने का ही एक प्रयास है। विचारधारा को अस्वीकार करना और फिर नयी विचारधारा को स्थापित करना परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ नहीं हैं; वे कम्युनिस्ट विचारों के खिलाफ संघर्ष में केवल भिन्न-भिन्न पद्धतियों के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं।

पाश्चात्य सिद्धान्तकारों के प्रयत्नों का एक विशिष्ट उदाहरण है 'मानव अधिकारों की रक्षा' के लिए प्रचार अभियान जो फिर से विचारधारा को स्थापित करने के नारे के अन्तर्गत समाजवाद के विरुद्ध प्रत्याक्रमण है।

समाजवाद पर अपने हमलों में उसके विरोधी अब जनतंत्र स्वतंत्रता और मानव अधिकारों जैसी शब्दावली के प्रयोग को तरजीह देने लगे हैं। वास्तव में उनका विश्वास है कि इन शब्दावलियों से उन्हें अपने प्रचार कार्यों में कुछ लाभ मिलता है क्योंकि इनमें तथ्यों और आँकड़ों की आवश्यकता नहीं पड़ती लेकिन यह निश्चित रूप से भ्रान्त धारणा है। वास्तव में स्वतंत्रता, जनतंत्र और मानव अधिकार सामाजिक जीवन की अन्य घटनाओं की तरह ही ठोस घटनाएँ हैं।

तथापि पश्चिम में मानव अधिकारों के सम्बन्ध में जितना अधिक शोर मचाया जा रहा है उससे यह और भी स्पष्ट हो गया है कि पूंजीवादी जगत इस समस्या पर ठोस और गम्भीर विचार-विमर्श करने के लिए तैयार नहीं है। समय बीतने के साथ-साथ ऐसे अभियान का वास्तविक उद्देश्य स्पष्ट दिखाई देने लगता है। मानव अधिकारों के सम्बन्ध में चल रही बहस को ओछी राजनीतिक गोटेबाजी के रूप में मोड़ देने के लिए उठाया गया है अथवा स्पष्ट रूप में कहा जाय तो पुनः सोवियत-विरोध को स्थिति तक पहुँचाना इसका उद्देश्य रहा है। यह बात स्पष्ट हो गयी है कि पश्चिमी राजनीतिज्ञ जब उन देशों के सम्बन्ध में बात करते हैं जहाँ कि वे स्वतंत्रता और जनतंत्र की 'रक्षा करना' आवश्यक समझते हैं तब उनके दिमाग में केवल समाजवादी सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देश होते हैं। समाजवादी दुनिया में लाखों लोग रहते हैं लेकिन ये राजनीतिज्ञ केवल मुट्ठी भर असन्तुष्टों में ही रुचि रखते हैं और जहाँ तक स्वतंत्रताओं का सम्बन्ध है वे केवल समाजवाद-विरोधी कार्यों के लिए स्वतंत्रता की रक्षा का ही ध्यान रखते हैं।

पश्चिम में कुछ लोगों का यह विश्वास है कि इस प्रकार का रवैया राजनीतिक

रूप से लाभप्रद है। पहली नज़र मे उन्हे ऐसा प्रतीत होता है कि इसमे कुछ सवालों से छुटकारा मिलेगा, पूंजीवादी जगत मे प्राथमिक मानवीय अधि पागलपन-भरे दबाव के तथ्यो के सम्बन्ध मे चुप रहना होगा और स आदमी को क्या देता है और पूंजीवाद आदमी से क्या लेता है के बीच उपेक्षा की जा सकेगी, लेकिन यह स्थिति मानने योग्य नहीं है क्योंकि सब इसे अपना करके वे महत्वपूर्ण समस्याओ को सुलझाने के लिए कदम बजाय निरर्थक शब्दावली का सहारा लेते हैं।

दूसरी ओर समाजवादी सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देशो अधिकार दैनिक जीवन के अविभाज्य अग हैं। सोवियत जनता का दृढ़ वि कि स्वाधीनता जनतन्त्र और मानव अधिकारो पर अत्यधिक भाव भ निरर्थक बातचीत के अलावा कुछ नहीं है जब तक कि उनके व्यवहार को सुनिश्चित न बना दिया जाय। जैसा कि हम पूर्णतया जानते हैं कि मानव प्राथमिक रूप से एक सामाजिक अवधारणा है जिसके अन्तर्गत सुनिश्चितता व्यापक क्षेत्र आ जाता है जिसमे उत्पादन एव राजनीतिक क्रिया-कलाप के स्थान को परिभाषित करना होता है और भौतिक तथा सास्कृतिक आनन्द उठाने के वास्तविक अवसरो को और सार्वजनिक समस्याओ मे के अधिकार को परिभाषित करना होता है। इस सम्बन्ध मे सबसे अधि पूर्ण बात समाज के पास भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य कितने मा कितने विशिष्ट हैं। कौन इन मूल्यों का निर्माण करता है और कैसे? तथा सदस्यो के बीच इनका वितरण किस प्रकार होता है? और नि.सन्देह य किस प्रकार व्यक्ति के विकास मे योग देता है और उसकी स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा को सुनिश्चित करता है?

देखना यह है कि आज विश्व मे विद्यमान दो प्रणालियो मे से कौन समस्याओ के समाधान की कठिन कसौटी पर कितनी मात्रा मे खरी उतर

पूंजीवाद ने अपने सदियो के शासन मे मानव समाज की उत्पादक श यद्यपि समुचित मात्रा मे विकसित किया है तथापि इसका इतिहास लि से प्रमाणित करता है कि पूंजीवादी समाज चाहे जितना भी सम्पन्न क्यो यह अनिवार्य रूप से शोषण की, सामाजिक असमानता की और अप सघर्षों की अवस्था रहेगी। पूंजीवादी देशो मे लाखो बेरोजगार औ वचित जनगण, और गृहविहीन, चिकित्सा की सुविधाओ से वचित अनुभव कर रहे हैं और करोड़ो मेहनतकश लोग जो कि अपनी रगीन कारण अपनी राष्ट्रीयता या राजनैतिक आस्थाओ के कारण सयुक्त राज्य और पश्चिमी यूरोप, चिली और निकारागुआ मे, लेबनान और दक्षिणी यही अनुभव कर रहे हैं।

मानव अधिकारों के सम्बन्ध में बात करने का अधिकार केवल उसी समाज को है जिसने मात्र घोषणा नहीं की बल्कि जनता की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के सर्वोत्तम लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यावहारिक कदम उठाये हैं। समाजवाद ही इस प्रकार का समाज है। अल्पविकसित उत्पादक शक्तियों को विरासत में प्राप्त कर अविश्वसनीय रूप से कठिन ऐतिहासिक परिस्थितियों से आगे बढ़ने वाला सोवियत संघ भी वर्षों तक, और आज तक भी, सोवियत जनता की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सका यद्यपि वह ऐसा करने का प्रयत्न करता रहा है, किन्तु यह निर्विवाद है कि वह इस दिशा में लम्बे डग भर रहा है।

सोवियत संघ ने सदा के लिए बेरोजगारी को समाप्त कर दिया है और इस प्रकार भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में, जो मानवीय क्रियाशीलता का मुख्य क्षेत्र है, प्रत्येक नागरिक का भाग लेना सुनिश्चित कर दिया है। समान कार्य के लिए समान वेतन सुनिश्चित कर दिया गया है। सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय असमानताओं को और अन्य अधिकारों की कमी को समाप्त करते हुए सोवियत संघ ने अपने सभी नागरिकों के लिए सभी स्तरों पर सार्वजनिक और राजकीय मामलों में भाग लेना सम्भव बना दिया है। सोवियत जनता के स्वास्थ्य के लिए, उसकी शिक्षा और राजनीतिक क्रियाशीलता के प्रोत्साहन के लिए तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए चिन्ता देश में सभी राजकीय और सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की क्रियाशीलता की आधारशिला है। इतिहास में पहली बार जनता के भौतिक और सांस्कृतिक स्तर का निरंतर उन्नयन और परिणामस्वरूप वास्तविक मानव अधिकारों का विस्तार पूरे समाज के भौतिक और सांस्कृतिक सामर्थ्य के विकास पर प्रत्यक्ष रूप से आधारित हो गया है।

'विचारधारा का अंत' : सामाजिक आधार एवं छद्म-वैज्ञानिक चरित्र

वर्तमान युग में दोनों जगह विश्व पैमाने पर और प्रत्येक पूंजीवादी देश के भीतर वर्ग विचारधारा के विवादों की अभूतपूर्व तीव्रता के प्रकाश में यह देखा जा सकता है कि यह सुझाव देना कि सिद्धान्त का युग पतनोन्मुख है, स्पष्ट रूप से बेतुकी बात है, लेकिन विसिद्धान्तीकरण के सिद्धान्तकारों को इसकी जरा भी चिन्ता है। तथ्यों की परवाह न करके वे अपने छद्म वैज्ञानिक तर्कों को बिना सामने लाये ही सहमति योग्य दिखाने के लिए दम्भपूर्ण चालबाजियों से भरा थैला लेकर सामने आते हैं।

प्रचारात्मक सिद्धान्तों की तरह विसिद्धान्तिकरण का सिद्धान्त भी अब है तो ऊपरी तौर पर यह आधुनिक विश्व में वास्तविक रूप से घटित

हो रहे परिवर्तनो को प्रतिबिंबित करता है। यहाँ विशेष रूप से संकेत बड़े पैमाने औद्योगिक उत्पादन की प्रबन्ध व्यवस्था की बनावट मे परिवर्तनों की ओर है जि बूर्ज्वा अध्येता समूचे सामाजिक जीवन में स्थानान्तरित करना पसन्द करेंगे जिस कि सामाजिक समस्याओ का क्षेत्र भी सम्मिलित है। आमतौर पर वे इस सिद्धा को आगे बढ़ाते हैं कि किसी औद्योगिक समाज के प्रबन्ध की जटिल रचना— सामाजिक प्रकृति के विचार के बिना—वैचारिक आदर्शों से निकलने वाले राज नीतिक निर्णयों की अपेक्षा नहीं रखती लेकिन सावधानी से सयोजित सामग्री प आधारित तकनीकी गणनाओ की अपेक्षा रखती है।

नये औद्योगिक राज्य मे अमरीकी पूंजीपति वर्ग के उदार समुदाय मे सामान्य रूप से स्वीकृत प्राधिकारी प्रख्यात अर्थशास्त्री जॉन कैनेथ गॉलब्रेथ की पुस्तक मे हम पढ़ते हैं, "तकनीकी और सगठन के अनिवार्यताएँ न कि विचारधारा की प्रतिभा, आर्थिक समाज के रूप को निर्धारित करती है।"

—(जोर लेखक का)[1]

यह निश्चित है कि जैसे-जैसे वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति तीव्र होती जाती है वैसे-वैसे पूंजीवादी और समाजवादी दोनों ही देशों मे विज्ञान द्वारा प्रदत्त अवसरो का व्यवहार मे व्यापक रूप से निरन्तर प्रयोग बढ़ता जाता है तथापि तथ्यों के इस सही वक्तव्य से आरम्भ करते हुए विसिद्धान्तीकरण के सिद्धान्त के समर्थक अपने राजनीतिक उद्देश्यों से इसकी सगति बैठाने के लिए स्पष्ट रूप से वाग्जाल लेकर आगे आते हैं।

उत्पादन मे वस्तुत. सामाजिक सम्बन्धों सहित सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्धकों के कार्य के कुछ विशिष्ट पहलुओ का विस्तार करते हुए, व 'औद्योगिक समाज' के किसी लाक्षणिक चरित्र की समस्या का समाधान करते हुए उसे सार्वभौम मापदण्ड बना लेते है।

अमरीकी विद्वान डेनियल बेल की दृष्टि से उत्पादन के संगठन के लिए प्रबन्ध का सामाजिक कार्य निर्णायक होता जाता है। औद्योगिक समाज प्रकृति और मानव कार्यों के प्रति तकनीकी रुझान से पहचाना जा सकता है।

सामान्य रूप से ज्ञात तथ्यों के विपरीत, वैचारिक तथा परिणामस्वरूप वर्गीय आदर्श प्रश्न के इस सूत्रण मे उपेक्षित रहे हैं। पूंजीवादी राज्य कल्याणकारी एव निष्पक्ष 'परिवार का अभिभावक' दिखाई देता है जो सब तरह की राजनीतिक सहानुभूति से मुक्त होता है और प्रत्येक मामले मे पूरे समाज के हित मे अत्यधिक तर्कसंगत निर्णय उपलब्ध करता है।

पूंजीवादी राज्य की प्रकृति एवं क्रिया-कलाप के प्रति तकनीकी रुझान का

---

1. जॉन कनेथ गालब्रेथ, द न्यू इन्डस्ट्रियल स्टेट, बोस्टन, 1967, पृ॰ 7

उद्देश्य सम्पत्ति के स्वामित्व के रूपों के ठोस विश्लेषण का स्थान लेना है और उत्पादन के संगठन व प्रबन्ध के लिए आधार प्रस्तुत करना है; सामाजिक विधि के क्षेत्र में उपायों को क्रियान्वित करना तथा राज्य के नियन्त्रण की पद्धतियों का प्रयोग करना है। उनकी क्रियाशीलता की व्याख्या राजनीतिक संघर्ष से उत्पन्न होने वाले आर्थिक एवं सामाजिक अन्तर्विरोधों के माध्यम से न करके प्राविधिक प्रगति के सामान्य सन्दर्भों के माध्यम से की जाती है। और यह माना जाता है कि यह स्वयं सामाजिक सम्बन्धों के नये रूपों को उत्पन्न करती है। प्रत्येक धारणा का निर्माण व्यावहारिक तार्किकता के अति प्राचीन विचार के आधार पर किया जाता है तथा यह मान लिया जाता है कि यह व्यावहारिक अनुभव से अपना मार्ग बनाएगी।

इससे भी वे काल्पनिक लाभ का निष्कर्ष निकालते हैं कि पूँजीवादी समाज में अनुभवों के तथ्यों की सीमा के परे होने वाली बड़ी सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में सूत्रण नहीं हो सकते (समाधान की बात तो दूर)। तथापि समूची सामाजिक प्रक्रिया के विश्लेषण की माँग निरन्तर बनी रहती है।

यह पहचानना कठिन नहीं है कि पूँजीवादी समाजवैज्ञानिकों की मंशा क्या है। वे उत्पीड़क और उत्पीड़ित के बीच पूँजीवाद और समाजवाद के बीच विवाद को विसर्जित करना पसन्द करेंगे, व्यावहारिक सवालों को अलग करने में और इस प्रकार मेहनतकश जनता को मार्क्सवाद-लेनिनवाद से और वर्ग-संघर्ष की बुनियादी समस्याओं से दूर हटाना पसन्द करेंगे। शोषकों का सदा से यही सपना रहा है कि जहाँ तक बन सके जनता को समाजवादी क्रान्ति के विचार से दूर रखा जाय। बुर्जुआ विद्वान मेहनतकश जनता से पूछते हैं जिस समाज में आप रह रहे हैं यदि तात्कालिक समस्याओं का विशुद्ध व्यावहारिक रूप से आशाजनक हल प्रस्तुत कर दें तो किसे क्रान्ति की आवश्यकता होगी?

उनका तर्क है कि अतीत में सामाजिक विवाद वर्ग-संघर्ष के रूप में विकसित हो सकते थे, उदाहरण के लिए जैसे 20वीं शताब्दी के आरम्भ में रूस की विशिष्ट परिस्थितियों में। उस समय सिद्धान्त का होना आवश्यक था लेकिन अब पूँजीवादी समाज के साथ के लिए इसको उठा रखा जा सकता है। वे इसका कारण बताते हैं कि आधुनिक पूँजीवादी राज्य ने अपने प्रतिष्ठानों की अधिक पूर्णता के जरिये वहाँ उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान का मार्ग प्राप्त कर लिया है।

वे कहते हैं कि स्वयं में इन समस्याओं की प्रकृति ही मूल रूप से परिवर्तित हो गई है। तात्पर्य यह है कि अब पूँजी अर्जित सम्पत्ति की पूँजी थी—अमीर और गरीब के बीच अन्तर्निहित विरोध [illegible] श्रम के समय में [illegible] के कारण [illegible] उत्पन्न हो गई है जो इसको [illegible] करती है [illegible] विश्लेषण को [illegible] करती है। संयुक्त राज्य अमरीका में अब अमीर व

असन्तोष पूंजीपतियो या सिर्फ धनिकों के खिलाफ़ नही है। मात्र बुद्धिजीवियो को सन्देह एवं खतरे की दृष्टि से देखा जाता है।[1]

इस प्रकार, वर्ग-संघर्ष के सम्बन्ध मे मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षा को चल-ताऊ काट दिया जाता है।

साम्राज्यवाद के समर्थक मेहनतकश जनता के मन में यह बैठाने की कोशिश करते है कि अब वर्ग-संघर्ष और सैद्धान्तिक संघर्ष के दिन लद चुके हैं और अब 'तकनीशियनो के युग' मे (सर्वोपरि संयुक्त राज्य अमरीका मे) वर्ग और विचार-धाराएं अनावश्यक वस्तु होने के कारण लुप्त होती जा रही हैं।

पूंजीवादी प्रचार मजदूर वर्ग और उसकी विचारधारा की क्रान्तिकारी भूमिका को समाप्त करने के प्रयासो में स्वयं मार्क्स की शिक्षाओं के ही विसिद्धान्ती-करण की कोशिश करता है। न्यूयार्क विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र के आचार्य सिडनी हुक लिखते हैं, "भविष्य के बुद्धिमान इतिहासकार को 20वीं शती के उत्तरार्ध में एक आश्चर्यजनक घटना की चुनौती का सामना करना होगा—कार्ल मार्क्स के पुनरागमन का। अपने इस पुनः अवतरण में वह 'कैपिटल' के लेखक धूल-धूसरित कोट पहने किसी अर्थशास्त्री के रूप मे, कम्युनिस्ट घोषणापत्र के जोशीले प्रचार-पुस्तिका के लेखक के रूप मे नही होगा। इस समय वह आयेगा दार्शनिक या नैतिक उपदेशक के वेष मे : वर्ग, पार्टी या गुट के संकीर्ण क्षेत्रों से ऊपर उठा हुआ, मानवीय स्वतन्त्रता के सम्बन्ध मे प्रसन्न उद्‌गारो से पूर्ण गाड़ी मे उसके सहयात्री विश्व के औद्योगिक मजदूर नही होंगे अपितु साहित्यिक बुद्धिजीवी होंगे···सर्वहारा नहीं अपितु विद्वान प्रोफेसर, सामाजिक, दृष्टि से उपेक्षित लोग नही, अपितु मनो-वैज्ञानिक रूप से विरक्त और लेखको तथा कलाकारो का विविध समुच्चय।[2]

प्रथम तो यह तीखी उत्तेजक व्यंग्योक्ति हर्बर्ट मार्क्यूस की सुप्रसिद्ध धारणा की ही व्याख्या है, साथ ही मार्क्स की शिक्षाओ का व्यंग्य चित्र भी है। दूसरे अपनी अक्षमता के कारण अथवा अधिक सम्भव है कि जान-बूझकर, हुक हर चीज को उलटा घुमाना है और ऐसा दिखाने का प्रयास करता है मानो हमारे समय मे मार्क्स की शिक्षा पुरानी पड गयी हो, अपना क्रान्तिकारी महत्व खो चुकी हो और किसी भी पुराने तरीके मे उसकी व्याख्या की जा सकती है। इसके अलावा इस प्रकार के दोषदर्शियो की वह प्रिय चाल होती है जिससे वह मार्क्सवाद के सम्बन्ध अपने अज्ञान को छिपाते हैं।

वैज्ञानिक कम्युनिज्म मे मिलावट करने के प्रयासो के लिए यह बड़ी सुविधा-जनक स्थिति है; हमारे समय में स्वीकृत मार्क्स के विचारों के अभिप्राय को स्पष्ट-

---

[1] जॉन कैनेथ गालब्रेथ, द न्यू इन्डस्ट्रियल स्टेट, पृ० 244-45

[2] न्यूयार्क टाइम्स बुक रिव्यू, मई 22, 1966 पृ० 2

रूप से अस्वीकृत किये बिना ही यह उसके मुख्य सारतत्व की वर्ग संघर्ष और सामाजिक क्रान्ति सम्बन्धी शिक्षा को अस्वीकृत करता है।

सामाजिक क्रान्ति की धारणा पूरी तरह ठुकरायी नहीं गयी अपितु उसे सामान्य व्यवहारवाद के रूप में भ्रष्ट कर दिया जाता है। सामाजिक जीवन के हर पहलू को शब्दशः प्रभावित करने वाले मुख्य रूपान्तरणों के सम्पूर्ण समुच्चय को ही परिवर्तित कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, आर्थिक पिछड़ेपन को समाप्त करने के अर्थात् विशुद्ध रूप से आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के द्वारा। प्रत्येक क्रान्ति—पूँजीवादी हो या समाजवादी—की व्याख्या समाज के औद्योगीकरण के पथ पर चलते हुए सुधारों की व्यापक प्रक्रिया के 'विशेष मामलों' के रूप में व्याख्या की जाती है।

कम्युनिस्टों के विरोधी इन 'सैद्धान्तिक' स्थापनाओं से अनेक निष्कर्ष निकालते हैं *जिनका उद्देश्य मार्क्सवाद लेनिनवाद की शिक्षाओं का तथा समाजवाद के निर्माण* का विरोध करना होता है। वे दावा करते हैं कि समाजवाद इसके सिद्धान्त और व्यवहार आर्थिक रूप से पिछड़े देशों के लिए सामाजिक विकास के कतिपय सम्भव विविध रूपों में से केवल एक हैं। कम्युनिस्ट पार्टियों को केवल पूँजीवादी व्यवस्था के आरम्भिक काल में मज़दूर वर्ग के हितों के लिए आवाज़ उठाने वाली के रूप में *चित्रित किया जाता है। जैसे ही आधुनिकीकरण को सामाजिक विकास की प्रक्रिया* का मुख्य प्रेरक घोषित किया जाता है वैसे ही सामाजिक रूपान्तरण के लक्ष्यों का स्थान प्राथमिक रूप से, उचित समय में, वैज्ञानिक और प्राविधिक परिवर्तनों को देखने व उनसे प्रतिक्रिया करने में समर्थ आर्थिक व्यवस्था को 'अनुकूल' करने का कार्य ले लेता है।

इससे *यह स्पष्ट* हो जाता है कि पूँजीवाद के समर्थक सर्वोपरि 'विचारधारा की समाप्ति' की आड़ में वैज्ञानिक कम्युनिज़्म की विचारधारा को अभिशापित करने के लिए ही विसिद्धांतीकरण को आवश्यक बताते हैं।

वास्तव में दर्शन न होना भी एक दर्शन है, वैसे ही जैसे कि अवसरवाद केवल सिद्धान्तों की कमी नहीं, बल्कि अवसरवादी सिद्धान्तों की प्रमुखता होता है। इसी प्रकार *विसिद्धान्तीकरण भी एक सैद्धान्तिक हथियार है।* इसे हम मार्क्सवाद-लेनिनवाद को नष्ट करने के लिए आधिकारिक पूँजीवादी विज्ञान का एक और प्रयत्न समझते हैं।

वैचारिक संघर्ष के विभ्रम के सम्बन्ध में चलायी जा रही बात-चीत के पीछे पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थकों की वर्गीय स्थिति स्पष्ट दिखायी देती है क्योंकि *वैचारिक संघर्ष में किसी प्रकार की कमी होने का लाभ केवल पूँजीपतियों को* ही मिलता है जैसा कि लेनिन ने लिखा था : एक मात्र विकल्प है या तो पूँजीवादी या समाजवादी सिद्धान्त। इसके बीच में कोई मध्यम मार्ग नहीं है (मानवता के

लिए कोई 'लोमरी' विचारधारा नहीं बनायी गयी) और इससे भी आगे, वर्ग विरोधों द्वारा मग्न समाज में विचारधारा कभी वर्गहीन अथवा वर्गों से ऊपर नहीं हो सकती।'[1]

आधुनिक काल पर लागू किये जाने पर यह स्थापना अन्य किसी भी चीज से अधिक सिद्धान्तशून्यता की अवधारणा के वास्तविक सारतत्व को स्पष्ट कर देती है। भले ही इसके प्रचारक इसको छद्म वैज्ञानिक रूप दिया करें, चाहे उदार जनवादी इसे सजाकर प्रस्तुत करें अथवा इसके लिए भाववादी अकादमिक मुहावरों का उपयोग करें, यह सत्य है कि यह कट्टर कम्युनिस्ट विरोधियों का एक सक्रिय हथियार है। यही नहीं यह समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष में एक विशिष्ट राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति करता है।

तथापि, इस तथ्य के बावजूद कि सिद्धान्तहीनता का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से निराधार एवं उद्देश्यमूलक है, यह इससे सम्बद्ध अन्य सिद्धान्तों की भाँति पश्चिम में व्यापक रूप से प्रचारित है। अपेक्षाकृत रूप से इसके अधिक लोकप्रचलित होने का कारण समग्र रूप में पूँजीवादी सामाजिक विचार के गम्भीर संकट की परिस्थितियाँ हैं जो कतिपय सामाजिक समुदायों और राजनीतिक धाराओं के समकालीन पूँजीवादी समाज में—सामाजिक व्यवहार और हितों को मान्यता प्रदान करती है।

यह बात सबसे अधिक उदार पूँजीपति वर्ग पर लागू होती है जो वास्तव में पिछले कुछ दशकों में फासिज्म की सर्वाधिपत्यवादी विचारधारा के लज्जाजनक पराभव को देख चुका है और परम्परागत उदार विचारधारा के निरन्तर गहराते आंतरिक संकट को भी देख चुका है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में इजारेदारी आकस्मिक आक्रमणों से मुक्त प्रतियोगिता के युग के पुराने बन्धनों को तोड़ देती है, प्रचलित धारणाओं को नष्ट कर देती है। संक्षेप में, पूँजीवादी उदारवाद और उसकी विचारधारा के पारम्परिक आधारों को ध्वस्त कर देती है। और यही कारण है कि बहुत से पूँजीवादी सिद्धान्तकार पूँजीवादी विचारधारा के दिवालियापन को आँकने लगे हैं, इसके संकट के रूप में नहीं बल्कि सामान्य रूप में 'विचारधारा की समाप्ति' के रूप में आँकते हैं।

सिद्धान्तहीनता का सिद्धान्त सुधारवादियों के हाथों की कठपुतली बन जाता है जो कि पूँजीपतियों के साथ सिद्धान्तहीन समझौतों के लिए समाजवादी समझ को ही त्याग देते हैं। मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी शिक्षा को ताक पर रखते हुए दक्षिणपंथी सामाजिक जनवादियों के नेता और अन्य सुधारवादी व्यक्ति स्वभावत: सिद्धान्तहीनता के सिद्धान्त को बड़ी पूँजी के साथ अपने समझौतों के

1. वी० आई० लेनिन, व्हाट इज टु बी डन ?, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 5, पृ० 384

औचित्य के रूप में देखते हैं। अनिवार्य रूप से यही मुद्दे 'वामपंथी' अतिवादियों तथा संशोधनवादियों को सिद्धान्तहीनता के सिद्धान्त के साथ जोड़ देते हैं।

लेनिन ने कभी लिखा था कि "पूँजीपतियों की कुटिल कार्यविधियाँ मज़दूर आंदोलन के भीतर संशोधनवाद को फैलाती हैं और अक्सर मज़दूर आंदोलन के मतभेदों को स्पष्ट विभाजन की रेखा तक ले जाती हैं।"[1] यही है जो हुआ है। हर रंग के अवसरवादियों को पूँजीवादी कार्यनीतियों की व्याख्या पूँजीवादी व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लक्षणों के रूप में करने की उनकी जल्दबाज़ी से पहचाना गया है और वास्तविक समाजवाद के स्थान पर वैयक्तिक आंशिक सुधारों को लागू करते पाया गया है।

निस्सन्देह, अद्यतन संशोधनवादी अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा आम तौर से कुतर्क का अधिक आश्रय लेते हैं। इस सदी के आरम्भ में बर्नस्टीनवाद के मुक़ाबले जो स्वयं स्पष्ट रूप से क्रांतिकारी मज़दूर आंदोलन का विरोध करता था, आधुनिक संशोधनवाद 'समाजवाद का वेष धारण करके' काम करता है, और जैसाकि कहा जाता है कि वह *इजारेदारी विरोधी आंदोलन को भीतर से तोड़ने के प्रयासों में* पचभोगी (गुप्तचर) की भूमिका अदा करता है। यह कार्यनीति अधिक ख़तरनाक है क्योंकि यह आधुनिक अवसरवाद के उपयोग से कुछ नयी घटनाक्रियाओं के साथ जुड़ गयी है। 1967 में यह उत्पन्न हुई और आज की वैचारिक संघर्ष की समस्त नयी स्थिति का लाक्षणिक चरित्र बन गयी। इनसे निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—

प्रथम, समस्त अवसरवादी धारणाओं का गहरे सोवियत विरोधी रंग में रँगा जाना।

दूसरे, अवसरवाद की अधिकांश विविधताओं में विद्यमान पूँजीवादी राष्ट्रवादी आधार का सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद से अलगाव, तथा वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्त और व्यवहार से स्पष्ट सम्बन्ध-विच्छेद के मुख्य कारक के रूप में।

तीसरे, इस आधार पर दक्षिण एवं वाम अवसरवाद का वास्तविक सम्मिश्रण, जो अनेक मामलों में एक-दूसरे के साथ सम्बद्ध है और एक-दूसरे को प्रभावित करता है।

ये और अन्य लक्षण पूरी तरह स्पष्ट हैं। सार रूप में, समाजवाद के सामाजिक व्यवहार को सिद्धान्तहीन बनाने के प्रयासों में लगे अवसरवादी एवं संशोधनवादी समाजवाद के सभी तरह के—'सुधरे हुए' और 'आदर्श' रूपों जैसे 'जनवादी', 'उदार' या 'मानवीय समाजवाद' या 'मानवीय आकृति वाला समाजवाद' आदि की खोज में बड़े प्रत्युत्पन्नमति सिद्ध संपन्न हुए हैं। और इन सबको सोवियत संघ तथा अन्य

---

1. वी० आई० लेनिन, डिफ़रेंसेज़ इन द यूरोपियन लेबर मूवमेंट, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 16, पृ० 351

समाजवादी देशो मे वास्तव मे विद्यमान समाजवाद के मुकाबले रखा जाता है, प्रतिरूपों की भाँति प्रस्तुत किया जाता है। इन्हें देखते हुए एक विचित्र विरोधाभास आँखो मे खटकता है : मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सार्वभौम चरित्र से और समाजवादी रूपांतरण के अनुभव मे इन्कार करते हुए इस प्रकार की तर्कहीन धारणाओ के प्रतिपादक स्वय कृत्रिम रूप से निर्मित अपने आदर्श को सभी समाजवादी देशो के लिए अनिवार्य रूप मे प्रस्तुत करते हैं। वे उनको समस्त मानवता के लिए 'सार्वभौम' फार्मूले से कम किसी रूप मे रखने को तैयार नहीं हैं।

इस प्रकार, बीसवीं शती के आरम्भ के सशोधनवाद के विपरीत जो कि वैज्ञानिक समाजवाद और सर्वहारा वर्ग-सघर्ष के सिद्धान्त के—और इस प्रकार उनके अन्तिम ध्येय समाजवाद के—विरुद्ध उत्पन्न हुआ था अद्यतन सशोधनवादी, वास्तव मे विद्यमान समाजवाद के विरुद्ध, समाजवादी सरचना के व्यवहार के विरुद्ध सघर्ष कर रहे हैं।

उनकी विध्वसक कार्यवाहियो का मुख्य लक्ष्य समाजवाद-विरोध है। जैसाकि जर्मन के प्रख्यात मार्क्सवादी दार्शनिक प्रो० अल्फ्रेड कौसिग ने लिखा है . "लेनिनवाद के विरुद्ध आज के सशोधनवाद का सघर्ष वैचारिक सघर्ष से कुछ अधिक है। यह गत 60 वर्षों की क्रान्तिकारी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक उपलब्धियो से अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक आन्दोलन को वंचित करने के उद्देश्य से किया जा रहा प्रहार है। यह अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन को महान् अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववर्ती स्थिति तक नीचे गिराने का प्रयास है।"[1]

लेनिन सदा जोर देकर कहा करते थे कि अवसरवाद आरम्भ तो करता है 'मार्क्स' के सम्बन्ध मे वैयक्तिक 'सशोधनो से' और अन्तत: अनिवार्य रूप से क्रान्तिकारी मार्क्सवाद से अपने को पूरी तरह तोड़ लेता है। इतिहास इस निष्कर्ष की पूरी तरह पुष्टि करता है। पूंजीवादी प्रचार के पिछलग्गू दक्षिण-पन्थी सुधारवादी सिद्धान्तविद् और सशोधनवादी मार्क्सवाद को जीर्ण घोषित करते हैं, सिद्धान्तहीनता के सिद्धांत की घोषणा करते हैं, 'जनता के पूंजीवाद' का उपदेश देते हैं, आदि-आदि। वे सामाजिक और राजनीतिक विवादो को सुलझाने के स्वत. उद्भूत विकास के लिए पूर्णतया काल्पनिक शैली मे सामने आते हैं। और हमारे युग के सैद्धान्तिक सघर्ष के समस्त आधारभूत प्रश्नो के सम्बन्ध मे कम्युनिज्म विरोधी नीति को ग्रहण करते हैं और वास्तव मे इसी उद्देश्य के लिए कार्य करते हैं।

'वामपन्थी' अतिवादी कुछ भिन्न शब्दावली का व्यवहार करते हैं। शब्दो मे तो वे इजारेदारियो के सबसे भयानक शत्रु होते हैं और क्रान्तिकारी सघर्ष के कट्टर समर्थक। तथापि, कार्यरूप मे विभिन्न प्रकार के निम्न पूंजीवादी अति क्रान्ति-

---

1. अल्फ्रेड कौसिग, अफ्टर फ़िफ़र-इन मारंनर मार्क्सिस्ट, बर्लिन, 1970, S. 145

कारियों, अराजकतावादियों, नवमार्क्सवादियों, 'नव वामपंथियों' ने—हर्बर्ट मारकूंज के शब्दों की वकालत करते हैं—और मोगीस्ता, जो पूंजीवादी अर्थविदों के सिद्धान्त के स्पष्ट प्रभाव में हैं, के नये रूपों से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं होते। ये सब अत्यधिक अनुदार (संकीर्ण) सामाजिक जनवादी धारणाओं से अधिक दूर नहीं है। दोनों की ही सैद्धान्तिक संरचना, सार रूप में, उन्हीं तत्त्वों के विभिन्न प्रकार के संयोजन से होती है, दक्षिणपन्थी सुधारवादी की तरह 'वामपन्थी' संशोधनवादी भी समाजवादी क्रान्ति की मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं को विकृत करते हैं। वर्ग-संघर्ष के नियमों का प्रत्याख्यान करते हैं और मजदूर वर्ग के नेतृत्वकारी भूमिका को अस्वीकार करते हैं—इसी प्रकार समाजवाद की सम्पूर्ण विश्व-व्यवस्था का प्रत्याख्यान करते हैं, वर्तमान मुक्ति आन्दोलन का भी। दूसरे शब्दों में सिद्धान्तहीनता का सिद्धान्त अपने सभी मुख्य रूपों में उनकी भावनाओं से सादृश्य रखता है।

इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि 1960 के दशक के दौरान समाजवाद के विरुद्ध वैचारिक संघर्ष में (जो 1968 में चेकोस्लोवाकिया की घटनाओं से और तीव्र हुआ) दक्षिणपन्थी सामाजिक जनवादी और 'वामपंथी' अतिवादी साम्राज्यवादी प्रतिक्रिया के साथ वर्गीय मोर्चे की उसी दिशा में चले गये।

दो व्यवस्थाओं की समरूपता का भ्रम

दो व्यवस्थाओं की समरूपता का सिद्धान्त भी विसैद्धान्तिकीकरण के सिद्धान्त का ही विस्तार है। यह उसी स्थापना से, कि वैचारिक वर्ग-संघर्ष क्षीण होता जा रहा है, निस्तृत हो करके हाल के दशकों में पूंजीपति वर्ग द्वारा संचित सामाजिक आंदोलन के समस्त अनुभव का सार प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त कम्युनिज्म को पूर्णतया अस्वीकार करने और पूंजीवादी व्यवस्था का खुला समर्थन करने की नयी परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने के लक्ष्य का अनुसरण करता है जबकि उससे किसी लाभ की गुंजाइश नहीं है।

स्पष्ट रूप से कम्युनिज्म विरोध के समर्थक और उदारमना पूंजीवादी सिद्धांतकार पुनः 'एकताबद्ध' समाज के विचार को प्रोत्साहित करने का प्रयास कर रहे हैं जिसमें समाजवाद और पूंजीवाद व्यवस्थित रूप से सम्भावित हो। फिर एक बार, साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार सुधारवादी और संशोधनवादी संयुक्त हो रहे हैं और इस मंच पर सहयोग कर रहे हैं।

समरूपता के प्रवक्ता मेहनतकश जनता को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा कर रहे हैं कि पूंजीवादी एवं समाजवादी समाजों के बीच विद्यमान सामाजिक-राजनीतिक भिन्नताएँ औद्योगिक विकास के फलस्वरूप विशेष रूप से तकनीकी क्रांति के युग में मिटायी जा रही हैं। वे कहते हैं कि समाजवाद में कम्युनिस्टपन

. . . . ए और पूंजीवाद में लगातार पूंजीवादीपन कम होता जा रहा है। इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे दोनों एक-दूसरे के समीप आ जायेंगे, एक ऐसी प्रक्रिया जिसकी परिणति समान आर्थिक एवं सामाजिक रूपों वाले 'संकर समाज' के निर्माण के रूप में होगी।

समरूपता के सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि औद्योगिक समाज के दोनों प्रारूपों के बीच भिन्नताएँ क्षीण होती जायेंगी। जब दोनों प्रकार के समाज जीवन के उसी स्तर पर पहुँच जायेंगे, इस सिद्धान्त का मानना है, उनके एक ही संगठन होंगे।

इस विचार का प्रमाणीकरण वैज्ञानिकता से उतनी ही दूर है जितना कि इसके प्रवर्तक वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करने की इच्छा से दूर हैं। जैसीकि उनकी आदत है, वे समस्याओं की जटिलता की पूरी तरह जाँच करने से कतराते हैं, और खास तौर से ऐसे 'विवरणों' के सम्बन्ध में जैसे कि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण रहित समाजवादी समाज एवं मजदूरी के शोषण पर आधारित समाज के बीच बुनियादी भिन्नताएँ। फलस्वरूप वे अपने से सर्वथा विपरीत वर्ग-संरचना, उत्पादन-प्रबन्ध, उत्पादन के लक्ष्य आदि पर ध्यान नहीं देते। इस प्रकार के सिद्धान्तकार औद्योगिक रूप से विकसित देशों की वर्तमान वास्तविकता के तथ्यों को विकृत रूप में प्रस्तुत करते हुए शुद्ध रूप से सतही रूपों, लक्षणों पर विचार करने को प्रमुखता देते हैं।

समरूपता के पक्ष में सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त युक्तियों में प्रथम और प्रमुख वे हैं जो भौंडी प्राविधिकता की स्थितियों से, अर्थात उन स्थितियों से जबकि सामाजिक जीवन का समस्त क्रियाकलाप यांत्रिक रूप से प्रत्यक्ष रूप में प्राविधिकता के स्तर से निर्धारित किया जायगा, उठायी जाती हैं। इसमें सारा ध्यान दोनों व्यवस्थाओं की आर्थिक क्षेत्र की कुछ समान घटनाक्रियाओं पर दिया जाता है— राष्ट्रीय आर्थिकता में उद्योग के हिस्से में वृद्धि और कुल मिलाकर उद्योग में भारी उद्योग की वृद्धि, नये उद्योगों का विकास, स्वचालन का व्यवहार तथा प्रचार-प्रसार के साधन आदि। संक्षेप में, प्रविधि के विकास पर बल दिया जाता है, लेकिन इसके दूसरे और मुख्य पहलू के सम्बन्ध में जानबूझकर चुप्पी साध ली जाती है: इस प्रविधि का स्वामी कौन है, किसके लिए इसका उपयोग किया जाता है, कौन इससे मुनाफा लेता है। दूसरे शब्दों में, युग के मुख्य वर्ग-विवाद को आँखों से ओझल कर दिया जाता है उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व निजी स्वामित्व को निरस्त कर देता है।

समरूपता का सिद्धान्त औद्योगिक रूप से विकसित आधुनिक समाजों में सर-सम्बन्धी परिवर्तनों का प्रश्न उठाता है: मजूरी कमाने वालों के अनुपात में श्रमिकों की शिक्षा व कुशलता में वृद्धि, मशीनों द्वारा नियंत्रण की ओर संक्रमण आदि। तथापि, इन समस्त वास्तविक प्रक्रियाओं को कथित सामाजिक व्यवस्था

के अर्थ-आधार के साथ उनके सम्बन्ध का उल्लेख किये बिना उठाया जाता है. समरूपता के सिद्धान्त के प्रतिपादकों द्वारा पूर्णतया गलत व्याख्या की जाती है, पूंजीवाद के अन्तर्गत और समाजवाद के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के एक प्रकार के स्तरीकरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ-ही-साथ, उक्त सिद्धान्त के समर्थक सामान्यतया इन विशेष रूप से सादृश्यपूर्ण घटनाओं के सारतत्व में विद्यमान बुनियादी भिन्नताओं के विषय में कुछ भी नहीं कहते। इन भिन्नताओं की उत्पत्ति इस तथ्य से होती है कि पूंजीवाद की सामाजिक प्रकृति समाजवाद की प्रकृति से पूर्णतया विपरीत है।

अन्ततः, समरूपता के सिद्धान्त के प्रवक्ताओं की युक्तियों में जिनको महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है वे विशुद्ध रूप से भावनापूर्ण और नैतिक प्रकृति की हैं। खास तौर से, इस स्थापना पर बहुत अधिक चर्चा की जाती है कि समाजवादी देशों में जीवन-स्तर के उन्नत होने का परिणाम यह होगा कि वहाँ की जनता में उपभोक्ता-मानसिकता की ओर सम्मान बढ़ेगा जो समाजवाद को पूंजीवादी 'जन-उपभोग' समाज की दिशा में बढ़ने के लिए विवश करेगा। बेशक, यह एक सचाई है जिसे सावधानी के साथ छिपाया गया है कि पूंजीवादी समाज में संपूर्ण जीवन व्यहार में सांसारिक उपभोक्ता मानसिकता बना दी गयी है जिसकी समाजवाद के आदर्शों से जरा भी समानता नहीं है। समाजवाद में, बढ़ती हुई समृद्धि यद्यपि स्वयं महत्वपूर्ण है, पर प्राथमिक रूप से इसका अर्थ है सामाजिक प्रगति की उपलब्धि और व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास।

तथापि, समरूपता सिद्धान्त के प्रतिपादक इन बुनियादी भिन्नताओं के सम्बन्ध में ध्यान न देने का बहाना करते हैं। उनकी दृष्टि के क्षेत्र में, केवल दोनों व्यवस्थाओं में विद्यमान समान रूप ही रहते हैं। इस पहलू पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित करते हुए फ्रांसीसी विद्वान एवं पत्रकार रेमण्ड आरों पूछते हैं "....उत्पादन की उन्हीं शक्तियों से शुरू करते हुए (और उत्पादन शक्तियाँ—विज्ञान और प्रविधि सभी विकसित समाजों में कमोबेश समानता रखती हैं।) किस सीमा तक उत्पादन सम्बन्ध और सामाजिक संगठन भिन्न हो सकते हैं?"[1]

क्या यह वास्तव में समस्या को सही ढंग से प्रस्तुत करने का तरीका नहीं है?

यह सत्य है कि आधुनिक उत्पादक शक्तियाँ, विशेष रूप से, अपने आगे के विकास में, सर्वदा भिन्न सामाजिक-आर्थिक रूपों में नहीं रह सकती। शीघ्र अथवा विलम्ब से अनिवार्यतया वे एक विश्व आर्थिक व्यवस्था में विलीन हो जायेंगे। लेकिन यह विलय ठीक उसी प्रकार नहीं होगा जैसाकि श्री आरों चाहते हैं, पूंजीवाद और समाजवाद का इस रूप में विलीनीकरण नहीं होगा कि समाजवाद अपनी बुनि-

---

1. रेमड आरों, ले दिस इल्यूजों दु प्रोग्रेस, पेरिस, 1969, पृ० 251

... ... तथा और यह कि पूँजीवादी व्यवस्था में प्रत्यावर्तन के फलस्वरूप भी नहीं होगा।

स्वभावत:, इस प्रकार का निष्कर्ष पूँजीवादी विद्वानों को अनुकूल नहीं प्रतीत होता। उनका काम तो विरोध को ही सामने लाना है। इसलिए इस बुनियादी सवाल का कि उनकी पसन्द का समरूप 'मिश्रित' समाज किस रूप का होगा, उनका उत्तर उन्हें बेनकाब कर देता है।

समरूपता के सिद्धान्त के भाष्यकार प्राय. वस्तुओं को इस ढंग से चित्रित करते हैं कि एकीकृत संकर समाज पूँजीवाद एवं समाजवाद द्वारा उपलब्ध श्रेष्ठतम को विरासत में प्राप्त करेगा अर्थात् यह उनकी कमियों से मुक्त रहेगा तथा दोनों व्यवस्थाओं के गुणों से युक्त होगा। इस प्रकार, अमरीकी अर्थशास्त्री पीटर ड्रकर— जिन्होंने इस सिद्धान्त के विज्ञापन में भारी श्रम किया है, कहते हैं—"मुक्त औद्योगिक समाज'''निश्चित रूप से उससे बहुत भिन्न होगा जैसाकि हम पारम्परिक रूप से पूँजीवाद' के सम्बन्ध में सोचते हैं। यह उससे भी बहुत भिन्न होगा जैसाकि हम परम्परागत रूप से 'समाजवाद' के सम्बन्ध में सोचते हैं। एक ऐसा औद्योगिक समाज जो पूँजीवाद और समाजवाद से परे होगा। यह एक नया समाज होगा जो दोनों से बढ़-चढ़कर होगा।"[1]

विषय को इस ढंग से मोड़ देने से प्रतीत होता है कि पूँजीवादी पण्डित सामाजिक जीवन के नये और अधिक पूर्ण रूपों की खोज में लगे हैं। इस कारण उनको दोनों व्यवस्थाओं के वस्तुपरक एवं निष्पक्ष निर्णायक के रूप में आघात करने की छूट मिल जाती है।

अच्छा, क्यों न ऐसा किया जाय कि पूँजीवाद और समाजवाद की उपलब्धियों की प्रत्येक साकारात्मक वस्तु अलग कर ली जाय और इन तत्वों से दोनों में श्रेष्ठ समाज-व्यवस्था का निर्माण किया जाय? लेकिन पूँजीवादी पण्डित इतने अनजान नहीं हैं कि वे यह भी न जानते हों कि समाजवाद और पूँजीवाद दोनों ही अपने-अपने वस्तुगत नियमों के आधार पर विकसित हो रहे हैं। और यह भी कि उनकी सामाजिक संस्थाएँ परस्पर उतनी ही पृथक् हैं जितने कि उनके वर्गों की आधी बुनियादें।

इस प्रकार के 'संकर' समाज के निर्माण के विषय में आरम्भ की गयी समस्त ... का स्पष्ट उद्देश्य जनता को इस निष्कर्ष से परे ले जाना था कि पूँजीवाद से समाजवाद में संक्रमण अनिवार्य है। लेकिन समरूपता के प्रवक्ता इसे कितना ही बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत क्यों न करें कि पूँजीवाद तथा समाजवाद के कौन-से दोष नष्ट

---

[1] पीटर एफ० ड्रकर, द न्यू सोसायटी, दि एनाटोमी आफ इंडस्ट्रियल आर्डर, न्यू यार्क, 1962, पृ० 351

हो जायेंगे और कौन-से गुण रह जायेंगे और [illegible] होंगे, सभी सदा इस ओर मुड़ जाती थी कि 'संकर समाज' पूंजीवादी व्यवस्था के मुख्य रूपों का—उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और पूंजी का—प्रभुत्व बना रहेगा। चाहे जितनी जांच की जाय, चीजों को बड़े आकार में दिखाने वाले कांच से भी देखा जाए आपको उसमें समाजवाद का एक दाना भी नहीं मिलेगा।

सारांश में, समरूपता के प्रवक्ता समाजवाद के विद्यमान रहने के अधिकार को उसी सीमा तक मान्यता देते हैं जिस सीमा तक वह औद्योगिक समाज में पूंजीवादी आदर्श के अनुसार धीरे-धीरे विकास करता रहे। उदाहरण के लिए, अमरीकी *विद्वान वाल्टर एस० बकिंघम जूनियर निम्न निष्कर्ष पर पहुंचते हुए स्पष्ट रूप से* कहते हैं— "...पूंजीवाद की चार बुनियादों में से तीन शुद्ध पूंजीवाद से आगे ले जायी जाती हैं और नये रूप में उदीयमान आर्थिक व्यवस्था में सम्मिलित कर ली *जाती हैं। प्रथम, पूंजी, कारखाना तथा उपकरण में निजी सम्पत्ति* वैसे-वैसे बढ़ती जाती है जैसे-जैसे उपभोक्ता वस्तुओं तथा सेवाओं में उद्योग का विस्तार होता है यद्यपि इसको जनशक्ति तथा यातायात सेवाओं के जरिये आंशिक रूप से और आगे बढ़ाया जाता है। दूसरे, *आर्थिक प्रेरणाएँ और लाभ की प्रोत्साहन सुस्थापित हो* जाते हैं और भावी कर-नीतियाँ उनको सुदृढ़ करने वाली प्रतीत होती हैं। तीसरे, बाजार की व्यवस्था सर्वत्र वस्तुओं और सेवाओं के विनियोजन को नियंत्रित करने के लिए *मुख्य यान्त्रिकता के रूप में अपनी प्रभावशीलता प्रमाणित कर देता है।*"[1]

ज्बिग्निएव ब्रजेजिन्स्की तथा सेमुएल हण्टिंगटन और भी अधिक स्पष्ट रूप से कहते हैं : "पश्चिम में,...व्यापक रूप से प्रचारित समरूपता के सिद्धान्त की मान्यता है कि *भविष्य में किसी अनिश्चित ऐतिहासिक अवसर पर अमरीका एवं रूस के* 'समरूप' होने के बाद जनतंत्र के बुनियादी रूप से महत्त्वपूर्ण पहलू बने रहेंगे..."। इस प्रकार निकट से परीक्षा करने पर पता चलेगा कि तथाकथित समरूपता के *अधिकांश सिद्धान्त वास्तव में समरूपता के रूप में न माने जाकर विरोधी व्यवस्था* के विलय के रूप में माने जाने चाहिए।"[2]

और अन्ततः मिशिगन राज्य विश्वविद्यालय में रूसी अनुसन्धान केन्द्र के निदेशक ए० सी० मेयर प्रश्न के सारतत्व इस रूप में स्पष्ट करते हैं : "समरूपता के सिद्धान्त को तानाशाही (समाजवादी देशों में राजनीतिक व्यवस्था के लिए परिभाषित शब्द, वी० के०) तथा सिद्धान्त (अर्थात् मार्क्सवाद-लेनिनवाद—वी० के०) की काट के रूप में देखा जाता है : और आगे "पश्चिमी समरूपता के सिद्धान्त में

1. *वाल्टर एस० बकिंघम जूनियर, थ्योरिटिकल इकोनोमिक सिस्टम्स : ए कंपेरेटिव एनेलिसिस*, न्यूयार्क, 1958 पृ० 485
2. *ज्बिग्निएव ब्रजेजिन्स्की और सेमुएल पी० हंटिंग्टन, पोलिटिकल पावर : यू० एस० ए० यू० एस० एस० आर०* न्यूयार्क 1964, पृ० 419

बड़ी मात्रा में यह मान्यता अन्तर्निहित है कि पश्चिमी समाज और विशेष रूप से अमरीकी समाज आदर्श है जिसकी ओर बढ़ने का प्रयास सभी समकालीन समाज कर रहे हैं।"[1]

तथापि, पूँजीवादी समाज विज्ञान के सभी पण्डित इस सीमा तक स्पष्ट नहीं हैं। इसके विपरीत, उनमें से अधिकांश तो समरूपता के सिद्धान्त के वास्तविक अर्थ को छिपाने की कोशिश करते हैं और इसे—दो व्यवस्थाओं के समरूप विकास के विचार को—समाजवाद को दी जा रही रियायत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति की उपलब्धियों के सम्बन्ध में अनुमान लगाते हैं और इस तथ्य के सम्बन्ध में भी कि उत्पादक शक्तियों का विकास वास्तव में कुछ समान रूप की समस्याएँ उत्पन्न करता है। इसी के साथ-साथ दोनों व्यवस्थाओं के बीच बुनियादी वर्ग-भिन्नताओं के सम्बन्ध में वे मौन रहते हैं, इस विचार का उपयोग करते हैं कि समाजवाद और पूँजीवाद दोनों विभिन्न रास्तों से नजदीक आते जा रहे हैं।

निस्सन्देह मुख्यतया इस दगमन्दाजी का उद्देश्य समाजवाद का विरोध है। क्योंकि जब सोवियत संघ और अन्य समाजवादी देशों की उपलब्धियों से अधिक समय तक इन्कार नहीं कर सकते, तो समाजवाद के पूँजीवादी आलोचक दूसरा रास्ता अपनाते हैं। वे इस बात से इन्कार करते हैं कि ये उपलब्धियाँ समाजवादी सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर हैं और वे सामान्यतः औद्योगिक विकास के साथ विशिष्ट सुधारों के रूप में इस अनुभव को प्रदर्शित करते हैं। और औद्योगिक विकास समाजवाद और पूँजीवाद दोनों में लगभग अथवा अधिकांश में समान है। समाजवाद एवं पूँजीवाद के बीच भिन्नताओं के सम्बन्ध में उनका कहना है कि इनको व्यवस्थाओं में नहीं अपितु केवल विकास की मंजिल के रूप में देखा जाना चाहिए। जैसे ही समाजवाद उत्पादन के स्तर में पूँजीवाद को 'पकड़ लेता' है धीरे-धीरे ये भिन्नताएँ अदृश्य हो जाती हैं।

साथ-ही-साथ, पूँजीवादी प्रचार चालबाजी तथा सचाई को विकृत रूप से प्रस्तुत करने के उपायों द्वारा हमें इस निष्कर्ष पर लाना चाहता है कि यद्यपि समाजवाद औद्योगिक समाज के दो रूपों में से एक है तथापि यह वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के मामले में पूँजीवाद की अपेक्षा कम संवेदनशील है। इससे भी आगे, उनके अपने तरीके के अनुसार जब वे विभिन्न समाज-व्यवस्थाओं वाले देशों के विभिन्न प्राविधिक और वैज्ञानिक संकेतकों की तुलना करते हैं तो हमारे विरोधी इस तथ्य के सम्बन्ध में मौन धारण किये रहते हैं कि पूँजीवादी देश उच्च वैज्ञानिक

1. ए० जी० मेयर 'थ्योरीज ऑफ कन्वर्जेन्स' चेंज इन कम्युनिस्ट सिस्टम स० चामर्स जॉनसन स्टेनफोर्ड, केलिफोर्निया 1970 पृ० 320, 324

एवं प्राविधिक स्तर उपस्थित कर रहे हैं तो आर्थिक क्षेत्र मे, सदियों के विकास मेहनतकश जनता का पाशविक शोषण और दूसरे देशो की लूट के फलस्वरूप, तथापि समाजवाद पूरी तरह अपने निजी आंतरिक संसाधनों के बल पर विकास कर रहा है और उसे केवल साठ वर्ष हुए हैं (यदि हम विश्व के प्रथम राज्य को ध्यान मे रखें तो)। साथ ही, इस दौर मे भी बहुत से और अत्यधिक कठोर वर्ष उसे झेलने पड़े हैं—गृह युद्ध, विदेशी हस्तक्षेप को पीछे हटाना, द्वितीय विश्वयुद्ध जिसके फलस्वरूप अत्यधिक आर्थिक विध्वंस हुआ तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण करने के वर्ष।

पश्चिमी अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री बड़ी सावधानी के साथ इस तथ्य से कतराकर निकल जाते हैं कि सोवियत संघ सहित कई देशों मे अर्धविकसित पूँजीवाद की स्थितियो मे समाजवादी क्रान्ति विजयी हुई। जिसके कारण, अनेक क्षेत्रो मे—औद्योगीकरण शुरू किया गया, मजदूर वर्ग का और बुद्धिजीवियों का निर्माण हुआ, सार्वभौम शिक्षा के लिए प्रावधान तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य—'पूँजीवाद के के काम' समाजवाद ने किये। दूसरे शब्दो मे, इसे वे काम भी पूरे करने हैं (बेशक, अपने तरीको मे और अतुलनीय रूप से अधिक त्वरा के साथ)जो विभिन्न स्थितियों के अन्तर्गत पूँजीवादी समाजो में पूरे किये जा चुके हैं।

दूसरी ओर, पूँजीवादी विचारक पूँजीवाद के बचाव के लिए समरूपता के सिद्धान्त का व्यापक रूप मे उपयोग करते हैं। इस सिद्धान्त का मूल्य इजारेदार पूँजीपति वर्ग के लिए इस तथ्य मे निहित है कि यह उसको पूँजीवाद के 'पुराने' पापों से जिनमे कि उसने मजदूर वर्ग के देखते-देखते स्वयं समझौते किये थे, अपने को मुक्त करने का मौका देता है। इस लक्ष्य से, बूर्ज्वा प्रचार एक सीधी-सादी चालाकी करता है: वास्तविकतावादी मध्यस्थ की भूमिका अदा करते हुए यह समान मात्रा में समाजवाद और पूँजीवाद दोनों की गलतियों के खिलाफ अपने को प्रदर्शित करता है। निर्णय की शब्दावली कठोर होती है और ऊपरी तौर पर दोनों व्यवस्थाओं को अस्वीकार करती है। तथापि, समस्त चालबाजी समाजवाद के खिलाफ काम आती है। पूँजीवाद की तात्कालिक व्यावहारिकता के मामले मे इसका उपयोग नहीं किया जाता बल्कि आज राजकीय इजारेदारी की मंजिल की स्थिति मे ही नहीं अपितु इससे पूर्ववर्ती मंजिल की भी आलोचना की जाती है।

बूर्ज्वा पण्डित पुराने (शास्त्रीय) पूँजीवाद के विरुद्ध दोषारोपण करते हैं और तुरन्त कहने लगते हैं कि यह जीर्ण हो गया है। लेकिन वे ऐसा साहसिक निष्कर्ष केवल इसलिए निकालते हैं ताकि वे इसकी आधुनिक मंजिल को पुराने 'परम्परागत पूँजीवाद' का विपर्यय कहकर प्रस्तुत कर सकें, जिसकी प्रथमावस्था में पुराने से कोई समानता नहीं हो। जहाँ तक अद्यतन पूँजीवाद का सम्बन्ध है इसके सिद्धान्तकार दम्भ के साथ घोषणा करते हैं कि यह निरन्तर मेहनतकश जनता के

हितों की ओर बढ़ रहा है और समाजवाद के श्रेष्ठ पहलुओं को अपने में सम्मिलित करने में सक्षम है, स्वयं समाजवाद से भी अधिक सफलता के साथ।

ये सभी विचार श्रोताओं को ध्यान में रख कर विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किये जाते हैं। पूंजीवादी देशों की मेहनतकश जनता के लिए ये 'औद्योगिक समाज' के सम्बन्ध में प्रवचनों के रूप में सामने आते है प्रविधि पर पूर्ण निर्भरता का सुझाव देते हुए। इसके पीछे सोच यह है कि मजदूर और पूंजी के बीच वर्तमान मुख्य अन्तविरोध को सुलझाया जाय, जिसमें किआगे चलकर विश्वयुद्ध के खतरे को समाप्त किया जा सके। और भी, दो व्यवस्थाओं की इस समरूपता को दोनों व्यवस्थाओं के बीच सैनिक सघर्ष के एकमात्र विकल्प के रूप में देखा जाता है। इसके अतिरिक्त विकासशील देशों के लिए ये विचार 'अफ्रीकी' या 'एशियायी' समाजवाद के रूप में प्रकट होते हैं, जिसके आधारभूत तत्व तीसरी दुनिया के निम्न पूंजीवादी समुदायों की भावनाओं को प्रभावित करते हैं जो एक ही समय में दो परस्पर पूर्णतया भिन्न व एकांतिक कार्यभारों--निजी सम्पत्ति के एकीकरण के तथा बड़ी पूंजी के जुए से मुक्ति प्राप्त करने के कार्यों--को साथ-साथ पूरा करने की सम्भावना का भ्रम पाले हुए है।

समाजवादी देशों की आबादी में प्रसारित वक्तव्यों में वे विभिन्न रूपों--'जनतांत्रिक', 'उदार', 'मानवीय' समाजवाद के सुधार के रूपों--में दिखायी देते हैं। सारी योजना समाजवादी समाज को विकसित करने की आड़ में भीतर से तोड़ने के लिए है।

आमतौर पर, विशेष रूप से, समाजवादी देशों तथा कम्युनिस्ट पार्टियों के विषय में प्रचार का लक्ष्य होता है कि सामाजिक जीवन के विसैद्धान्तिकरण से इसको घनिष्ठ रूप से जोड़कर किसी भी उपाय से उनमें राष्ट्रवाद की भावना सुलगायी जाय।

समाजवादी विश्व के विषय में इसकी सभी कार्यनीतियों की फिर से परीक्षा करने के लिए विवश होकर साम्राज्यवाद ने अपनी कम्युनिस्ट विरोधी कार्यवाहियों के अत्यधिक परस्पर विरोधी पहलुओं में कुछ सुधार किये हैं अनेक पश्चिमी राजनयिकों ने एक नया और अधिक लचीला राजनीतिक मार्ग तैयार करने की आवश्यकता की बात उठायी है।

संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी द्वारा 1960 में प्रकाशित पुस्तक 'शांति की कार्यनीति' (द स्ट्रेटजी आफ पीस) में और अधिक स्पष्टता के साथ यह विचार प्रकट किया गया है। "पोलैण्ड में--और लौह-आवरण में दिखायी देने वाली किसी अन्य दरार में--घनिष्ठ सम्बन्ध बढ़ाने के लिए और स्वतन्त्रता के बीज बोने के लिए, हम सावधानी के साथ शान्तिपूर्वक अपना काम धीरे-धीरे शुरू

कर सकते हैं।[1] केनेडी के उत्तराधिकारी लिण्डन जॉनसन इस योजना के सम्बन्ध मे अधिक सजग थे। उन्होंने 'शान्तिपूर्ण लगाव' या 'पुलों के निर्माण' की धारणा को संयुक्त राज्य अमरीका की सरकारी विदेश नीति का स्तर प्रदान किया और उसको सभी समाजवादी देशों के मामले में समस्त पश्चिमी शक्तियों की संयुक्त नीति के रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास किया। लैक्सिंगटन, वर्जीनिया के वर्जीनिया मिलिटरी इस्टीट्यूट(सैनिक संस्थान) में मई 1964 में भाषण देते हुए जॉनसन ने कहा : "हम पूर्वी यूरोप से हमको पृथक करने वाली खाई को पार करने के लिए पुल बनाने का काम जारी रखेंगे। वे पुल होंगे विचारों के बढ़ता हुआ व्यापार के, दर्शकों (यात्रियों) के और मानवीय आधार पर सहायता के।"[2] इस स्थापना की जो व्याख्या की गई वह विशुद्ध निहित स्वार्थों पर आधारित थी। संयुक्त राज्य अमरीका की इजारेदार पूंजी से और कुछ अपेक्षा भी नहीं की जा सकती थी। जल्दी ही व्यवहार से इसकी पूर्णतया पुष्टि होगयी।

यद्यपि परवर्ती काल में इस कार्यक्रम को अनेक बार सशोधित और परिवर्तित किया गया लेकिन इसके मुख्य अश आज तक भी साम्राज्यवादी शक्तियों की कथित पूर्वीय नीति के मार्गदर्शक के रूप में अवस्थित है। जहाँ तक इस नीति के सैद्धान्तिक पहलू का प्रश्न है, इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। सैद्धान्तिक सेवाओं को छद्म उदारता के विचारों के प्रसार के लिए तथा समाजवादी विश्वदृष्टिकोण को ध्वस्त करने के उद्देश्य से जनमत की जांच करने के लिए आगे ले आया गया है।

सर्वाधिक घातक प्रहार विशेष रूप से उन महत्वपूर्ण मुद्दों पर किये गये जो समाजवादी विश्व समुदाय और विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन की एकता के सशक्त स्थल थे : मार्क्सवाद-लेनिनवाद सभी देशों के कम्युनिस्टों की सैद्धान्तिक एकता के सुदृढ़ आधार के रूप में, मजदूर वर्ग की और उसकी पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका, जो सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के विचार को आगे बढ़ाती है, और समाजवादी समुदाय के अनुभवों का सार्वभौम महत्त्व। ये सभी घटक अविश्रान्त सैद्धान्तिक बमबारी के लक्ष्य बने।

लेकिन जब पूंजीवाद दो व्यवस्थाओं के ऐतिहासिक संघर्ष में समाजवाद को परास्त करने में सफल नहीं हो पाता तो वह अपनी सैद्धांतिक सुरक्षा के प्रयास बढ़ा देता है। इसे सामाजिक प्रक्रिया के विश्लेषण को सैद्धान्तिक और वर्गीय अर्थ से पृथक करने के लिए निरन्तर किये जा रहे प्रयासों के साथ जोड़ देता है।

यह सच है कि समय-समय पर, विशेष रूप से इस समय, पश्चिम में निरन्तर आह्वान किये जाते रहे हैं—मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सामाजिक विकास के

1 जॉन एफ कैनेडी, द स्ट्रेटेजी आफ पीस, सं० एलन नेविन्स, न्यूयार्क 1960, पृ० 18
2 द न्यूयार्क टाइम्स, 24 मई 1964

व्यावहारिक (सकारात्मक) सिद्धान्त के प्रतिनुमन के लिए 'सिद्धान्त की ओर वापस मुड़ों', इसे पूँजीवादी मनोवृत्ति की ओर 'वापस लाओ'।

बेशक, इन आह्वानों को समझा जा सकता है। सैद्धान्तिक संघर्ष की ओर विशुद्ध रूप से व्यावहारिक रुख के जरिये कभी भी कोई क्रियात्मक स्थिति सुनिश्चित नहीं की जा सकती। हाल के वर्षों मे पूँजीवादी जगत को दुनिया मे जिन प्रहारों का सामना करना पड़ रहा है (सामाजिक-राजनीतिक अन्तर्विरोध की तीव्रता, वियतनाम मे अमरीका की हार, 1974-75 का संकट आदि), इनसे यह अधिकाधिक प्रमाणित होता जा रहा है कि केवल 'प्राविधिक समाधानों' से वास्तव मे कुछ नहीं सुलझाया जा सकता। हमारे समय की क्रान्तिकारी शक्तियो के शक्तिशाली उभार की स्थितियों मे, सामाजिक जीवन के विसैद्धान्तिकीकरण की धारणा क्रियात्मक रूप मे अधिकाधिक असफल होती जा रही है और कभी-कभी तो वह स्वय साम्राज्यवादी सिद्धान्तों को ही अपनी गोली का निशाना बना देती है। यह न तो जनता को क्रियाशील बना सकती है और न उनका सकल विश्वास ही प्राप्त कर सकती है।

इस प्रकार, पुन.सिद्धान्तिकरण के नारों का प्रयोजन उच्च आदर्शों और लक्ष्यों की निरन्तर खोज ही होना है। 'न्यू स्टेटमेण्ट' नामक ब्रिटिश पत्रिका ने 1975 के अन्त मे लिखा था : "1976 का विश्व एक सकट भरे भयानक दौर मे प्रवेश कर रहा है। सम्पन्नता की राजनीति इसे अधिक समय तक नहीं बचा सकती। इसके स्थान पर हमारी पोल अभाव की राजनीति के रूप मे अधिकाधिक खुलती जा रही है और इसके गम्भीर दबाव अनिवार्य रूप से राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय दोनो स्तरो पर दिखायी देंगे। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि हम औद्योगिक युग के अन्त की ओर बढ़ते जा रहे हैं। हमें साहस, कल्पनाशीलता एव दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है जिससे कि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि हमारा संक्रमण अधिक उपयुक्त समाज में सहज भाव से होगा, आकस्मिक विप्लव द्वारा नहीं।

"हमे इतिहास के प्रति नयी दृष्टि की आवश्यकता है। हमें इस आश्वासन की आवश्यकता है कि हमारे सिर पर खड़ा भविष्य चुनौतियो से भरा होने पर भी संतोषप्रद होगा।"[1]

तथापि इस प्रकार के नारो मे कुछ भी नया नहीं है। और वे सदा अतीत की तरह भली किन्तु निष्फल आकांक्षाएँ ही बनी रहेंगी, इसमें कोई सदेह नहीं है। बूर्ज्वा सिद्धान्तकार पूंजीवाद के समर्थन के नये विविध रूपो के अतिरिक्त नया

---

1 न्यू स्टेट्समैन, खड 90, स० 2336, दिसबर 26, 1975, पृ० 809,

विचार देने मे असमर्थ है।

सतही तौर पर यह देखा जा सकता है कि एक सिद्धान्त के स्थान पर दूसरा रखा जा रहा है। लेकिन वास्तव मे, विचारधारा (सिद्धान्त) की भूमिका को ही अस्वीकार करना (विसैंद्धान्तिकीकरण) और इसके महत्व को स्वीकार करना (पुनः सैंद्धान्तिकीकरण) कम्युनिज्म विरोध के ही दो पक्ष है। दोनों ही के प्रयासों का लक्ष्य है कम्युनिस्ट विचारधारा के विरुद्ध कठोर संघर्ष के लिए, मजदूर वर्ग की विचारधारा का विरोध करने वाले वैचारिक मतों के प्रसार और प्रचार के लिए, वर्ग-संघर्ष और सामाजिक क्रांति से संबधित मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं के विरोध के लिए जनता पर वैचारिक प्रभाव डालने के समस्त साधनो को संयुक्त करना। यदि हम 1960-1970 के बीच पूंजीवादी पंडितों द्वारा आविष्कृत लोक-प्रचलित वैचारिक सिद्धान्तो की परीक्षा करे तो हम आसानी से इस तथ्य को देख सकते हैं।

राष्ट्रवाद पर दाव

कम्युनिज्म के 'विशेषज्ञों' मे एक अमरीकी विद्वान् एच० गोर्डन स्किलिंग की अति विशिष्ट अनुशंसा के अनुसार 'कम्युनिज्म के सम्बन्ध मे हमारा रवैया कुशलता-पूर्ण और संयत होना चाहिए। शोर भरे प्रचार और हस्तक्षेप के खतरे मे बचते हुए तथा कम्युनिस्ट समुदाय के भीतर **राष्ट्रीय कम्युनिज्म के शांतिपूर्ण विकास को प्रोत्साहित** करने के लिए।

—(जोर हमारा—वी० के०)[1]

जर्मन मार्क्सवादी गुयर रोज का विचार था: "यूरोप के समाजवादी देशो के विरुद्ध 'सैंद्धान्तिक आक्रमण' का कार्यनीतिक लक्ष्य विचारधारा के क्षेत्र मे परिवर्तनों को तीव्र करना है जो, समरूपता के सिद्धान्त के अनुसार, जनसंख्या मे प्राविधिक क्रांति के कारण स्वत. उत्पन्न हो रहे हैं और उसको विसैंद्धान्तिकीकरण की वांछित दिशा मे ले जा रहे हैं···ये इस विचार को मन मे जमा देने का प्रयास कर रहे हैं कि समाजवाद का पूंजीवाद की दिशा मे तथाकथित परिवर्तन प्राविधिक क्रांति की वस्तुगत प्रक्रिया है और इसे प्रोत्साहित करना चाहिए और रोकने के बजाय समर्थन करना चाहिए······(समाजवादी देशो की—वी० के०) आंतरिक सहृदयता के लिए किये गये प्रयत्नो का परिणाम यह होगा कि इनकी विदेश नीति राष्ट्रवादी लक्षणो एवं प्रवृत्तियो की अपील के रूप मे पूर्ण बन

1. एच० गोर्डन स्किलिंग, कम्युनिज्म नेशनल एंड इंटर्नेशनल, टोरंटो, 1964, पृ० 161

है।[1]

यह पिछला मुद्दा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि कम्युनिस्ट आन्दोलन के
दी सिद्धान्त--सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का ही मूलोच्छेद करता है।
नेद ब्रेझनेव ने कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अन्तर्राष्ट्रीय बैठक में कहा
साम्राज्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा-एकता की शक्ति से सुपरिचित है।
लिएवे समाजवादी शक्तियों, क्रान्तिकारी आन्दोलन में संघर्ष करते हुए राष्ट्र-
र भरोसा करते है। वे आशा करते हैं कि इसके जरिये कम्युनिस्ट आंदोलन
ट्कड़ों कर देंगे, क्रांतिकारी दस्तों को एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर देंगे।"[2]
र्वा राष्ट्रवाद अपने नाना रूपों में-- जैसे महाशक्तियों का अंध राष्ट्रवाद,
राष्ट्रवाद, नस्लवाद, सार्वदेशिकतावाद आदि--सदा ही प्रतिगामिता का
रहा है। जैसा कि लेनिन ने लिखा था: "पूंजीवादी राष्ट्रवाद और सर्व-
न्तर्राष्ट्रवाद ये दोनों पूरे पूंजीवादी विश्व में दो बड़े वर्गों के शिविरों के
कट्टर विरोधी नारे हैं जो राष्ट्रीय प्रश्न पर दो नीतियों को (या दो विश्व
गों को) व्यक्त करते हैं।[3] हाल के वर्षों में साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद
प से राष्ट्रवाद को भड़काने के अपने प्रयासों में विशेष रूप से क्रिया-
जिससे कि इसे कम्युनिज्म विरोध एवं सोवियत विरोध की सम्पूर्ण
का अंग बना दिया जाय। विसैद्धान्तिकीकरण और पूंजीवादी राष्ट्रवाद
ा को साथ-साथ सजाने के प्रयास इसके साक्ष्य है।

ी पण्डित राष्ट्रवाद को एक ऐसी समस्या समझते हैं जिसके सम्बन्ध में
माजिक-आर्थिक या ऐतिहासिक भौतिकवादी रवैया अंगीकार नहीं किया
।। वे समस्त सामाजिक-आर्थिक कसौटियों को या तो रद्दी की टोकरी में
हैं या उनको विकृत कर देते हैं। वे देशभक्ति के मुकाबले अन्तर्राष्ट्रवाद
ध करते हैं और राष्ट्रीय स्वायत्तता के मुकाबले जनवादी केन्द्रीयता का,
ाद के मुकाबले सार्वदेशिकतावाद पर अधिक ध्यान देते हैं, देशभक्ति को
के रूप में प्रस्तुत कर देते हैं आदि। यह सिद्ध करने के लिए कि राष्ट्रीय
श्वत और असमाधेय हैं, वे विशुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत
ो मानव स्वभाव के अन्तर्निहित अहंकार से अनवर्य प्रवृत्तियों से या अज्ञेय
रम्पराओं से उद्भूत होते हैं, वह तर्क करते हैं कि न तो उनका सामाजिक

रेव मार्क्सिस्ट्स इन द स्ट्रगल अगेंस्ट बूर्ज्वा आइडियालाजी, मास्को 1971, पृ०
सी में)

न मीटिंग आफ कम्युनिस्ट एंड वर्कर्स पार्टीज, मास्को, 1969, प्राग, 1969 पृ० 74

० लेनिन, "क्रिटिकल रिमार्क्स ऑन दि नेशनल क्वेश्चन" कलेक्टिड वर्क्स खंड 20

विश्लेषण संभव है और न निर्वचन।

पूँजीवादी प्रकार राष्ट्रीयताओं के सवाल को विभेदात्मक रूप से कोष्ठक में क्यों रखता है इसको भली-भाँति स्पष्ट किया जा सकता है। क्योंकि इसमें उनको मार्क्सवाद-लेनिनवाद के उन बुनियादी रूप से नये पहलुओं पर आक्रमण करने के लिए सुविधाजनक स्थिति प्राप्त होती है जिन्हें कि उसने आधुनिक युग की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या के विश्लेषण और समाधान प्रस्तुत करने के लिए सम्मिलित किया है।

जैसा कि जीवन स्वयं प्रदर्शित करता है राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय, सामान्य और विशेष के युग्म, किसी भी प्रकार अपना महत्व नहीं खोते लेकिन इसके विपरीत अनेक नये रंग ग्रहण करते हैं, जैसे-जैसे मानव समाज पूँजीवाद से समाजवाद की ओर अग्रसर होता है। ये प्रश्न मजदूर वर्ग और मुक्ति आंदोलन तथा जनवादी आंदोलनों की प्रत्येक धारा में विभिन्न समुदायों में व्यावहारिक संघर्ष की तात्कालिक प्रमुखता प्राप्त कर लेते हैं। वास्तव में इससे भिन्न कुछ हो भी नहीं सकता जब हम इस तथ्य पर ध्यान देते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था में पहले से ही भारी मात्रा में दाहक सामग्री विद्यमान है तथा देशों और जनगण के बीच सामाजिक राजनीतिक स्तर पर मतभेद विद्यमान हैं और हर मामला अपना विशिष्ट राष्ट्रीय रूप प्रस्तुत करता है।

इसके फलस्वरूप राष्ट्रीयताओं के प्रश्न के समाधान की प्रक्रिया एक ओर तो जनगण के क्रान्तिकारी अनुभव से समृद्ध होती है और दूसरी ओर प्रधान रूप से निम्न पूँजीवादी प्रकृति की, प्रायः गंभीर-आत्मगत गलतियों और विकृतियों को पैदा करती है।

अतीत में, ऐतिहासिक युगों के समस्त दौर में, राष्ट्रीयताओं का प्रश्न सामान्य जनतांत्रिक सुधारों के ढाँचे के आगे नहीं बढ़ पाया। सर्वथा स्वाभाविक रूप से इन सीमाओं के अन्तर्गत बहुत-सी धारणाएँ पूँजीवादी जनतांत्रिक स्थिति की आवश्यकताओं से घिरी थीं जो मजदूर जनता में उभर आयी या उनमें उत्पन्न कर दी गयी।

वर्तमान युग में, राष्ट्रीयताओं के प्रश्न का समाधान अपने द्वन्द्वात्मक विकास में पुरानी सीमाओं से बहुत आगे पहुँच गया है। समग्र समस्या के अंग के रूप में मानव समाज के उस आंदोलन की सामान्य प्रक्रिया में विशिष्ट स्थान है जो अपने संक्रमणकालीन एवं मध्यवर्ती रूपों की समस्त भिन्नताओं में पूँजीवाद से समाजवाद के लिए चलाया जा रहा है।

राष्ट्रीयताओं की समस्या का नया सारतत्व इसके संबंध में नये रुख की आवश्यकता प्रदर्शित करता है, जहाँ एक ओर मेहनतकश जनता का अग्रणी भाग है जो [illegible] -लेनिनवाद के निर्देशों के द्वारा प्रवर्तित परि-

वर्तनों का अनुसरण करता है, दूसरा भाग, जो अब तक पूंजीवादी निम्न पूंजीवादी परम्पराओं और विचारों से प्रतिबद्ध है वह साम्राज्यवादियों और उनकी संशोधनवादी कठपुतलियों के जाल में फँसा है। राष्ट्रीयताओं का प्रश्न समाजवाद और पूंजीवाद के बीच तीव्र वैचारिक संघर्ष का क्षेत्र है, पूंजीवादी और संशोधनवादी विचारधारा के विरुद्ध मार्क्सवाद-लेनिनवाद के संघर्ष का क्षेत्र मे है।

राष्ट्रीयताओं की समस्या की जटिलता पर अटकलबाजी करते हुए पूंजीवादी और संशोधनवादी सिद्धान्तकार जल्दी से कह देते हैं कि इसका समाधान कम्युनिस्ट आंदोलन से नहीं किया जा सकता। सभी तरह के राजनीति वैज्ञानिक दावा करते हैं कि आत्मगत भूलें या कतिपय राजनीतिक व्यक्तियों सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रवाद से अलग हो जाना स्वाभाविक हैं और सामाजिक विकास के अनिवार्य लक्षण हैं। इससे वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस क्षेत्र में कम्युनिस्टों के सैद्धान्तिक नियम अमान्य हैं। जहाँ तक कि राष्ट्रीयताओं के प्रश्न के समाधान का समाजवाद के व्यावहारिक अनुभव की बात है उसकी आमतौर से उपेक्षा कर दी जाती है।

इस सम्बन्ध में, साम्राज्यवाद के तथा आधुनिक संशोधनवाद के सिद्धान्तकार जहाँ तक संभव हो सकता है इस समस्या के विसिद्धान्तीकरण के लिए मुख्य रूप से प्रयत्नशील रहते हैं। वे मजदूर वर्ग को इस मुख्य मार्क्सवादी-लेनिनवादी निष्कर्ष से पृथक् करने का प्रयास करते हैं कि राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न, राष्ट्रीय आत्मनिर्णय का, राष्ट्रीय स्वाधीनता को मजबूत करने और विकसित करने का प्रश्न है यह कोई अलग-थलग समस्या नहीं है, अपितु विश्वव्यापी साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष का अभिन्न अंग है। जैसा कि लेनिन ने प्रस्तुत किया - आत्मनिर्णय के अधिकार के साथ जनतन्त्र की पृथक् माँगें कोई निरपेक्ष माँगें नहीं हैं अपितु सामान्य जनतांत्रिक विश्व आंदोलन के (अब सामान्य समाजवादी आंदोलन के) छोटे भाग हैं।[1] राष्ट्रीयताओं की समस्या का सुसंगत एवं व्यापक समाधान अर्थात् राष्ट्रीय भेदभाव की पूर्णतया समाप्ति और राष्ट्रीयताओं की पूर्ण समानता केवल मजदूर वर्ग के नेतृत्व के अन्तर्गत ही संभव है। यह परिणाम समस्त देशों के मजदूर वर्ग की अन्तर्राष्ट्रीय एकता के फलस्वरूप ही प्राप्त किये जा सकते हैं। जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष में ही उपलब्ध की जा सकती है।

यह इन स्थापनाओं के विरुद्ध है कि साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार लड़ रहे हैं। और यह इस कारण में ही है कि पूंजीवादी राष्ट्रवाद अधिकाधिक सोवियतवाद विरोधियों के साथ हाथ-में-हाथ मिलाकर चलता है और सोवियत विरोधी उकसावों ने राष्ट्रवादी बाना धारण कर रखा है। वास्तव में

---

1. वी॰ आई॰ लेनिन—"द डिस्कशन ऑन द सैल्फ डिटर्मिनेशन सम्ड अप" कलेक्टेड वर्क्स खंड 22, पृ॰ 341

समाजवाद के भीतरघात की कोशिश के लिए इस हथियार का उपयोग किया जाता है।

किन्तु साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों को चाहे जितना उकसाये, चाहे जितना ऊँचे से इसके सिद्धान्तकार मुक्ति आंदोलनों की अलग-अलग इकाइयों की 'स्वतन्त्रता' के सम्बन्ध में या 'राष्ट्रीय कम्युनिज़्म' के विषय में शोर मचायें यह सब किसी को भ्रम में नहीं डाल सकता। प्रतिगामियों ने सदा बुर्जुआ राष्ट्रवाद का उपयोग किया है— और इन दिनों पहले से कहीं अधिक—तुच्छ वर्ग हित के साधन के रूप में और समाजवादी समुदाय को, विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन को और सोवियत संघ के प्रभाव को कमज़ोर करने के लिए इसका प्रयोग किया है।

अध्याय · 4

प्राविधिक नियतिवाद के कल्पना लोक

> मैं अवश्य बरबाद हो गया होता यदि स्वयं मेरे हाथों में शक्ति नहीं होती। मैंने अपनी ही चोटी पकड़ के स्वयं को और अपने घोड़े को जिसे मैं अपनी जाँघों के बीच जोर से पकड़े हुए था, दलदल से बाहर निकाला।
>
> —जी० बर्गर बर्रान : मन्छासेन की 'मनोरंजक साहसिक यात्राएँ'

सामाजिक विषयों के सम्बन्ध में प्राविधिक रवैया

कम्युनिज्म-विरोध के लिए नाना प्रकार के सर्वाधिक प्रचलित सिद्धान्तों का निर्माण 1960 एवं 1970 के वर्षों में 'औद्योगिकतावाद' अथवा 'प्राविधिक नियतिवाद' के सुपरिचित सिद्धान्तों के इर्द-गिर्द किया गया। मुख्य रूप से इसका अभिप्राय है कि पूँजीवादी व्यवस्था में सामाजिक और अन्य सभी विषयों पर प्राविधिक और औद्योगिक विषयों का प्राधान्य रहेगा। अन्तर्निहित स्थापना यह है कि आधुनिक पूँजीवाद का और फलस्वरूप सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं का विकास—पूँजीवाद के मौलिक नवीकरण का परिणाम होगा। इसका अभिप्राय समझा गया है कि यह मानव-समाज को समाजवाद को लाँघकर एकमात्र सार्वभौम औद्योगिक समाज तक और तत्पश्चात् 'औद्योगिकोत्तर' समाज की ओर ले जाएगा जो सिद्धान्त रूप से वर्ग विरोध एवं सामाजिक अन्तर्विरोधों से पूर्णतया मुक्त होगा।

इसकी पुष्टि में हर दामनावान पश्चिमी पण्डित अनेक मिथ्या वैज्ञानिक युक्तियाँ देता है जिनमें वह मार्क्सवाद के खण्डन का और उसको पीछे छोड़ देने का दावा किया करता है। इसमें वे मुख्यतया वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति के विविध पहलुओं को आधार बनाते हैं। पूरी तरह विसैद्धान्तिकीकरण के सामान्य विचार की भावना में भरे हुए वे कहते हैं कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति सामाजिक क्रान्ति के कार्यों को पूरा कर रही है और इसलिए वह समाजवाद को

रद्द कर देती है। वे प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन करने वालों तक, मजदूरों तक विज्ञान एवं प्रविधि के पहुँचाए जाने का विरोध करते हैं और वर्ग-संघर्ष को अनावश्यक तथा अव्यवहार्य घोषित करते हैं और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षाओं को असामयिक (अथवा समय सापेक्ष) बनाते हैं।

ये प्रयत्न अकस्मात् नहीं अपितु सुविचारित रूप से किये जाते रहे और हाल के वर्षों में इन्हें तेज किया गया, जैसे-जैसे पूँजी के प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष बढ़ता गया और साथ ही आधुनिक पूँजीवाद को अपने ढाँचे के भीतर ही नये तीव्र संघर्ष की प्रक्रियाओं की गंभीर परीक्षाओं का निरन्तर सामना करना पड़ा। क्योंकि पूँजीवाद अपनी ऐतिहासिक पहलकदमी खो चुका था, इसके सिद्धान्तकारों के लिए एक विशेष स्थिति, जिसमें कि सैद्धांतिक संघर्ष में विजय की स्थिति में अधिक समय तक वे बने नहीं रह सकते थे, उत्पन्न हो गयी थी। विवश होकर उन्हें उस क्षेत्र में संघर्ष करना पड़ा जिसमें पूँजीवादी समाज का भविष्य किसी भी प्रकार उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता, आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के परीक्षा क्षेत्र में तथा उसकी अनुरूप व्याख्याओं में। यह पूँजीवाद के लिए सर्वाधिक घातक स्थिति है क्योंकि वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादक शक्तियों के विकास में शक्तिशाली विस्फोट और साथ-ही-साथ गंभीर सामाजिक प्रक्रिया पूँजीवादी समाज के आधारों को ही अनिवार्य रूप से ध्वस्त कर देगी।

मार्क्स की एक स्थापना में कहा गया है: "नयी उत्पादन शक्तियों को ग्रहण करने के साथ ही मनुष्य अपने उत्पादन की पद्धति बदल देता है और उत्पादन की पद्धति परिवर्तित होते ही वे समस्त उत्पादन सम्बन्ध जो उस विशिष्ट उत्पादन पद्धति के अनुरूप थे परिवर्तित हो जाते हैं।"[1] यदि हम इस स्थापना को वर्तमान युग पर लागू करते हैं तो इसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है कि हमारे युग की वैज्ञानिक प्राविधिक क्रान्ति पूँजीवादी सम्बन्धों को समाजवादी में परिवर्तित करने वाला मुख्य कारक है।

अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट और वर्कर्स पार्टियों की (1960 की) बैठक के दस्तावेज में लिखा गया है: कि "वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति मानव समाज को प्रकृति के पुनर्निर्माण की, असीम मात्रा में भौतिक सम्पदा उत्पन्न करने की और मनुष्य की रचनात्मक क्षमताओं को बहुगुणित करने की अभूतपूर्व संभावनाएँ प्रदान करती है।" और आगे कहा गया है कि "पूँजीवाद वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति का उपयोग अपने मुनाफे को बढ़ाने तथा मेहनतकश जनता का शोषण बढ़ाने के लिए कर रहा है—न सिर्फ दीर्घकाल से चले आ रहे पूँजीवाद के अन्त-

1. कार्ल मार्क्स एण्ड फ्रेडरिक एंगेल्स, सिलेक्टिड कारस्पोडेंस मास्को 1975, पृ० 31

विरोध तेज हो गये है, बल्कि कुछ नये अन्तर्विरोध भी उठ खड़े हुए हैं।[1] यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उत्पादन की सामाजिक प्रकृति और इसके विपणन की राज्य-एकाधिकार की प्रकृति के बीच अन्तर्विरोध सत्ता में बने रहते हैं (काम करते रहते हैं)। इसके साथ-साथ केवल श्रम और पूंजी के बीच संघर्ष का बढ़ना ही नहीं जारी रहता अपितु वित्तीय अल्पतंत्र और राष्ट्रों की विशाल बहुसंख्या के बीच विरोध गहरा होता जाता है। इन निष्कर्षों की पुष्टि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 24वीं (1971) तथा 25वीं (1976) कांग्रेसों ने की। आधुनिक वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति साथ-ही-साथ (एक ही समय में) पूंजीवादी और समाजवादी देशों में हो रही है किन्तु मेहनतकश जनता के लिए प्रत्येक व्यवस्था में भिन्न प्रकार के परिणाम दे रही है और परस्पर विरोधी सामाजिक परिणाम प्रदर्शित कर रही है। समाजवादी समुदाय के देशों में यह प्रत्यक्ष रूप से मेहनतकश जनता के हितों की सेवा कर रही है तथा कम्युनिज्म के भौतिक और प्राविधिक आधार के निर्माण सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण बन गयी है। पूंजीवादी राज्यों में, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति का उपयोग सर्वोपरि इजारेदारियों के प्रत्यक्ष लाभ के लिए किया जाता है, जो निस्संदेह विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धियों का उपयोग मेहनतकश जनता की भलाई के लिए नहीं अपितु अपने निजी मुनाफों को बढ़ाने के लिए करती हैं। परिणामस्वरूप, इजारेदार पूंजी की सम्पदा बढ़ती जाती है जबकि मेहनतकश जनता की सामाजिक आवश्यकताएँ अतृप्त ही बनी रहती हैं। इससे पूंजीवादी समाज में वर्ग-संघर्ष और तीव्र होता है और अंतिम परिणति में मेहनतकश जनता को समाजवादी क्रान्ति तक ले जाता है। इस प्रकार आधुनिक उत्पादक शक्तियों के विकास में क्रान्तिकारी छलांग विश्वव्यापी रूप में उत्पादन की कम्युनिस्ट पद्धति के भौतिक आधार के निर्माण के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

लेकिन स्वभावतः पूंजीवादी विश्व में विद्यमान शक्तियाँ इस प्रकार की घटनाओं के सम्बन्ध में निश्चिन्त नहीं रह सकतीं। उनकी सेवा में लगे सिद्धान्त-शास्त्री अनेक छद्म-वैज्ञानिक धारणाओं द्वारा इस संभावना का विरोध करने का प्रयत्न करते हैं। निस्संदेह, इस सबके पीछे साम्राज्यवाद तथा समाजवादी क्रान्ति के साथ इसकी ऐतिहासिक प्रक्रिया की व्यवस्था के सम्बन्ध में मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षाओं के खण्डन का विचार रहता है।

पूंजीवादी सिद्धान्त शास्त्रियों के चित्रण के अनुसार वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति का रूप या तो मसीही होता है अथवा राक्षसी। उनका कहना है कि मनुष्य स्वयं अपनी मुक्ति सुनिश्चित कर सकता है।

—या तो स्वयं को विज्ञान और प्रविधि के विकास के लिए (विशेष रूप से

1. इण्टरनेशनल मीटिंग आफ कम्युनिस्ट एंड वर्कर्स पार्टीज, मास्को, 1969 पृ० 19

रोस्तोव, गालब्रैथ, बैल, ब्रजेजिन्स्की की एव टॉफलर द्वारा प्रस्तावित 'औद्योगिक' अथवा 'औद्योगिकोत्तर समाज' के सिद्धान्त में प्राविधिक प्रबन्धक के रूप में कार्यरत व्यक्तियो के रूप मे) अपने को अधीनस्थ बनाने की कीमत पर।

—अथवा विज्ञान और प्रविधि के विकास को कृत्रिम रूप से रोक कर (जैसे रोम के क्लब के सदस्यों की भाँति)

—या अन्तत. पूर्णतया भिन्न मूल्यो के मानदण्ड की खोज करके और 'जीवन की गुणवत्ता' सुधार कर।

इन सिद्धान्तों की सीमाएँ परस्पर इतनी निकट है और कभी-कभी परस्पर गुथ जाती हैं। साथ ही बुर्ज्वा विचार के सामान्य विकास के दृष्टिकोण से ये भिन्न विकास का मार्ग ग्रहण कर लेती हैं पूँजीवादी विश्व मे और विशेष रूप से इसके विकास की सभावना के सबध मे स्थिति के अत्यधिक आशावादी दृष्टिकोण से अतिनिराशावादी दृष्टिकोण के मूल्याकनो तक। यह विकास लाक्षणिक और शिक्षाप्रद है।

1960 मे पूँजीवाद के विकास के अपने मूल्याकन मे बुर्ज्वा पण्डितो मे आशावादी धारा प्रधान थी। विकसित पूँजीवादी देशो मे अनुकूल आर्थिक स्थिति बन रही थी जिसमे द्वितीय विश्व युद्ध के दसियों वर्ष बाद इस प्रकार का उचित वातावरण बनना दीख रहा था।

वर्तमान शताब्दी मे अन्य किसी भी समय से अधिक मात्रा मे स्थिर पूँजी का पुनर्नवीकरण, श्रम शक्ति के विस्तार के उद्देश्य से वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के उपयोग और मेहनतकश जनता के शोषण के नये रूपो के विकास इसी प्रकार 'तीसरी दुनिया' के देशों को लूटने के नवऔपनिवेशिक तरीको और व्यापक राज्य-इजारेदारी, आधिक्ता के विनियमन आदि इन सबने कई वर्षों तक विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उच्च रूप से औद्योगिकीकृत क्षेत्र के विकास को उल्लेखनीय रूप से मजबूत किया है। समाजवाद के साथ प्रतियोगिता ने पूँजीवादी देशों के सत्ताधारी अर्थतंत्र को पूँजीवादी समाज के सभी सभव सचयो को और अधिक समेकित करने को मजबूर किया। फलस्वरूप पूँजीवादी विश्व के कुछ भागों ने उत्पादन कौशल मे कुछ वृद्धि प्राप्त की, आर्थिक सुधार, और जीवन-स्तर मे एक निश्चित वृद्धि प्राप्त की।

साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारों ने दूरगामी मनोरम परिणाम निकालने में जल्दबाजी की। वे इससे अधिक या कम की घोषणा करने को ही तैयार नहीं हुए कि पूँजीवाद का नया युग आरम्भ हो गया है। उनका कहना था कि मार्क्सवादियों ने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। पूँजीवाद के आश्चर्यजनक पुनरुत्थान का आधार दुनिया भर में व्यापक औद्योगिकीकरण की [illegible] लहर का दिखाई देना ही था। 19वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति से इसकी तुलना करते हुए उन्होंने यहाँ

...... पूंजीवाद को जीवनदायिनी शक्तियों से भर दिया है। गुणात्मक निक और प्राविधिक प्रवेग के फलस्वरूप पूँजीवाद को (लेनिन के सिद्धान्त के तेन) और आगे बढ़ने का अवसर मिल गया। अपने दूसरे प्रवाह को प्राप्त कर पष्ट रूप से इसके दोषों को दूर करने के लिए इस उत्तोलक का उपयोग करते से 'सार्वभौम समृद्धि' वाले समाज में क्रमशः विकसित कर रहा था। इस न्त के तर्क के अनुसार ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता कि यह पूंजीवाद है।
मोटे तौर से मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत के विरोध के लिए निम्न योजना विन है। दूसरी औद्योगिक क्रांति दुनिया को औद्योगिकीकरण के अदम्य प्रवाह । ले गई है। इस क्रांति ने आधुनिक समाज के समस्त सामाजिक-राजनीतिक ताओं को और अंतर्विरोधों को वस्तुतः बराबर कर दिया है और स्वतः मानव समाज को 'जन-उपभोग' की समृद्धि की ओर ले गया है। विभिन्न पर इस आश्चर्यप्रद भविष्य का पथ शुरू हो रहा है इसी लिए, औद्योगिकी-के विभिन्न प्रारूप प्रस्तुत हो रहे हैं। बेशक, अंततोगत्वा ये सब 'सार्वभौम ' की स्थिति जैसे अकेले समाज की ओर बढ़ेंगे जो संयुक्तराज्य अमरीका में यित रूप से निर्मित हो चुका है। कुख्यात वैचारिक मतान्धता इस अग्रगामी न को रोक ही रही है क्योंकि औद्योगिक विवशताओं (बाध्यताओं) के वेग ो सिद्धांतकार ही भलीभांति समझ सकते हैं न राजनीतिज्ञ ही, अपितु सिद्धांत जनीति से पृथक् एवं ऊपर खड़े प्राविधिज्ञ कुलीन ही समझ सकते हैं।
सके अलावा, औद्योगिकीकरण को पूँजीवाद के समस्त सामाजिक अंतर्विरोधों धान को स्वतः पूर्व निर्धारित शक्ति के रूप में स्वयं प्रेरित शक्ति के रूप में विया जाता है। जैसा कि—1960 के आरंभ में औद्योगिकीकरण और रिणाम के संबंध में पुस्तक लिखने वाले लेखकों ने कहा था—और यह एक बात है—"दुनिया एक नए युग में, पूर्ण औद्योगिकीकरण के युग में प्रवेश ी है। अब हमारे समय में कम्युनिज्म का भूत जिसने यूरोप को आतंकित कर , नहीं ठहर सकता अपितु इसके बजायननाना रूपों में औद्योगिकीकरण उभर जो सारी दुनिया के सामने है। औद्योगिकीकरण का दानव पुराने **और** गत समाज के प्राय: सभी रूपों को परिवर्तित करते हुए पृथ्वी पर इठला ।" (जोर हमारा—वी० के०)[1]
हाँ तक 'नये युग' के सारतत्व की बात है विभिन्न लेखकों ने इसे विभिन्न खा है : उदाहरण के लिए, कुछ (फ्रांसीसी समाज शास्त्र रेमण्ड आरों) इसे

स्ट्रियलिज्म एंड इंडस्ट्रियल मैन, द प्राब्लम्स ऑफ लेबर एंड मैनेजमेंट इन इकोनॉमिक , क्लार्क केरे, जॉन० टी० डनलप, फेडरिक एच० हार्बिसन एंड चार्ल्स ए० मेयर्स मैन, लन्दन 1962, पृष्ठ 9, 28

'औद्योगिक समाज' कहते हैं, तथा अन्य (अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिक डब्ल्यू० रोस्तोव) इस सामूहिक जन उपभोग की स्थिति' कहते हैं, और कुछ (फ्रांसीसी संशोधनवादी आर० गैरोदी) इसे समाजवाद कहते हैं। लेकिन यह ब
में ये सब एकमत हैं कि वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के प्रभाव से पूँजीवाद प्रकृति परिवर्तित हो गई है और इसके वर्ग अंतर्विरोध समाप्त हो गए हैं। सम वाद भी बदल रहा है, प्राथमिक रूप से वह पूँजीवाद की दिशा में बदल रहा और इसी क्रम से दोनों सामाजिक व्यवस्थाएँ एक 'औद्योगिक समाज' के अन एकाकार हो जाएँगी।

सुधारने, परिपूर्ण बनाने अथवा 'यथार्थ रूप में' इसकी व्याख्या करने के बह मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सैद्धांतिक रूप से उन्मूलन के लिए उपकरण के रूप प्रयुक्त इन प्रस्थापनाओं (आधार वाक्यों) से, कुकुरमुत्ते की तरह बहुत से सिद्ध पैदा हो गए हैं—जो सार रूप से कम्युनिज्म विरोधी हैं तथा जो विश्व क्रान्ति प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति में वैज्ञानिक कम्युनिज्म की जीवनता को एकमत नकारते हैं।

आधुनिक पूँजीवाद के सिद्धांतकार सामाजिक राजनीतिक संरचनाओं नियमाधीन रूपांतरणों से संबंधित मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षाओं की बुनिया की ही काट कर देना चाहते हैं। यही उनके आक्रमण का मुख्य निशाना है। औ सामाजिक संबंधों के विकास में उत्पादक शक्तियों की यही भूमिका है कि वे उन से अधिकांश को विसैद्धांतिकीकरण अथवा 'आर्थिक भौतिकवाद' की स्थिति से—भ्रष्ट (विकृत) कर देते हैं। सार रूप में, वे सामाजिक प्रक्रिया की समस जटिलता को उत्पादन प्राविधिकता के कारकों और उपभोग के स्तर तक नीचे ले आते हैं। वे उत्पादक-शक्तियों (और जिनमें से वे मनमाने ढंग से मुख्य तत्व को—स्वयं उत्पादकों को अर्थात् मजदूरों को, मेहनतकश लोगों को अलग कर देते हैं) तथा उत्पादन संबंधों के बीच द्वंद्वात्मक संबंध को धृष्टतापूर्वक छिन्न-भिन्न कर देते हैं। वे उत्पादन की शक्तियों और संबंधों की एकता को कृत्रिम रूप से पृथक् कर देते हैं और सामाजिक विकास को अलग कर देते हैं, जिसे कि उन्होंने सीधे-सीधे प्राविधिक प्रगति के साथ जोड़कर उसके वर्ग-सार से रिक्त कर दिया है।

एक सीमा तक इस प्राविधिक धारा के सभी प्रतिनिधियों का, सबसे बढ़कर रोस्तोव, गैलब्रेथ, बेल, टॉफ़्लर जैसे अमरीकी राजनीतिक वैज्ञानिकों का, रवैया एक सा है। 1960 से 1970 के बीच जिन सिद्धांतों को लेकर वे सामने आए उनका विस्तृत आलोचनात्मक विश्लेषण अनेक सोवियत लेखकों की कृतियों में पाया जाता है जिनमें सोवियत विद्वानों की तीन भागों वाली संकलित ग्रंथावली भी सम्मिलित है जिसका शीर्षक है—द स्ट्रगल ऑफ़ आइडियाज इन द मॉडर्न

वर्ल्ड ("वर्तमान विश्व में विचारों का संघर्ष"[1]) उन्होंने इनकी समीक्षा "विचार-धारा और राजनीति" (आइडियोलॉजी एंड पॉलिटिक्स)[2] में भी की है पर भिन्न दृष्टिकोण से।

तथापि, इन पर एक और दृष्टि से (प्रायः उन्ही लेखकों की नई कृतियों और वक्तव्यों को ध्यान में रखते हुए), हाल के वर्षों में पूँजीवादी वर्ग के सामाजिक विचारों के विकास की सामान्य धारा पर विचार करना भी उपयुक्त होगा।

'औद्योगिक समाज'—निराधार आशाएं

डब्ल्यू॰ डब्ल्यू॰ रोस्तोव को औद्योगिक समाज के सिद्धांत का जनक माना जाता है। सही तो यह है कि उसने इस 'जीवन रक्षक' विचार का आविष्कार नहीं किया। इसकी कतिपय प्रस्थापनाएँ बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के और 19वीं सदी की उत्तरार्ध के पूँजीवादी और सुधारवादी लेखकों की कृतियों मेंदेखी जा सकती है। जैसे : हर्बर्ट स्पेंसर, ऑगस्ट काम्टे, अलैक्सी डि तॉक्रुविले, मैक्स वेबर, रूडोल्फ हिल्फर्डिंग, जॉन कौन्स, जेम्स बर्नहम और अन्य। लेकिन औद्योगिक समाज के सिद्धांत को अंतिम रूप रोस्टोव की कृति "आर्थिक उन्नति की अवस्थाएँ : गैर कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र (द स्टेजेज ऑफ इकोनोमिक ग्रोथ ए नान् कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो) से प्राप्त हुआ जो पहले-पहल 1960 में प्रकाशित हुई। महत्वपूर्ण बात क्या है? यह यह है कि उस काल में इस पूँजीवादी प्रचारकों ने कम्युनिज्म विरोध के वैचारिक उपकरणों में प्रमुखता दी। निस्संदेह यह भी अकारण नहीं था कि रोस्तोव ने अपनी कृति का उप शीर्षक दम्भपूर्ण तरीके से रखा— एक गैर कम्युनिस्ट घोषणा पत्र। उसने स्पष्ट रूप से इस बात पर बल दिया कि वर्तमान स्थितियों में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांत का स्थान सामाजिक विकास के एक 'अत्याधुनिक' सिद्धांत ने ले लिया है।

रोस्तोव ने सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं के संबंध में मार्क्सवादी-लेनिन-वादी शिक्षाओं के मुकाबले मानव समाज के विकास की अपनी योजना प्रस्तुत की। उसका कहना है : सभी समाजों की पहचान उनके आर्थिक आयामों से जो पाँचों श्रेणियों में से किसी में भी विद्यमान रहते हैं, की जा सकती है : परंपरागत समाज

---

1. द स्ट्रगल ऑफ आइडियाज इन द मॉडर्न वर्ल्ड (तीन जिल्दों में), मॉडर्न कैपिटलिज्म : कन्ट्राडिक्शन्स एंड डॉक्ट्रिन्स (अंडर द जनरल एडीटरशिप ऑफ एफ॰ कोन्स्तान्तिनोव) मास्को, 1976 (रूसी संस्करण)
2. डी॰ वोल्कोगोनोव 'आइडियालॉजी एण्ड पॉलिटिक्स' द स्ट्रगल ऑफ आइडियाज एण्ड इवोल्यूशन ऑफ एंटी कम्युनिस्ट आइडियोलॉजिकल डॉक्ट्रिन्स इन 1950-1970 मास्को, 1974 (रूसी में)

प्रस्थान के लिए पूर्व स्थितियाँ (वह इसको समाज का संक्रमण कालीन युग भी कहते है—वी० के०), प्रस्थान, परिपक्वता की ओर परिचलन और उच्च जन उपभोग का युग।"[1] ये स्थापनाएँ अपेक्षाकृत सुपरिचित बन गई हैं, जनता के मस्तिष्कों मे सचेष्टता के साथ बैठाई गई हैं तथा विभिन्न पाठ्य-पुस्तकों में और अन्यत्र लिखी गई हैं।

लेकिन यहाँ खास बात क्या है: रोस्तोव के मत के अनुसार, प्रत्येक वस्तु "उच्च सामूहिक उपभोग के युग" मे परिणत हो जाती है, जहाँ कि समस्त उच्च रूप से विकसित औद्योगिक समाज क्रमशः एक मे विलीन हो जाते हैं। रोस्तोव कहते है: यह एक दौर है जिसमे अमरीकियों का उदय आरंभ हुआ है, जिसकी अस्पष्ट प्रसन्नताओं की पश्चिमी यूरोप और जापान उत्साहपूर्वक पड़ताल आरंभ कर रहे हैं और जिसके साथ सोवियत समाज असहज प्रेम प्रदर्शन मे व्यस्त है।[2]

इस प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका, पश्चिमी यूरोप तथा जापान के भविष्य की रोस्तोव को जरा भी चिंता नही है। उन सबके भंडार मे पृथ्वी पर एक स्वर्ग रखा है, उच्च सामूहिक उपभोग के समाज के रूप मे। बेशक, इस प्रकार, वह सोवियत संघ के संबंध मे चिंता अनुभव करते हैं जहाँ कि उन्हे सोवियत समाज के लिए सामूहिक *सम्पन्नता के राज्य तक पहुँचने मे ही बाधा दिखाई देती है। वह बाधा है कम्युनिज्म।* एक ओर, रोस्तोव तर्क करते हैं: इस समय सोवियत संघ उच्च सामूहिक उपभोग के युग के लिए प्राविधिक रूप से उन्नत समाज है। यह संरचनात्मक रूप से अपनी श्रम शक्ति की शिक्षा और कौशल की शब्दावली मे उन्नत है"' लेकिन दूसरी ओर, उनका मानना है कि जो चीजें पूँजीवादी देशों मे *सामूहिक उपभोग की ओर* ले जा रही हैं उनका समाजवादी जगत् मे उचित उपयोग नहीं किया जा रहा। वह विश्वासपूर्वक कहते हैं कि इसका कारण है कि कम्युनिज्म समाज का ऐसा रूप है जो "वृद्धि की समस्या के केवल आपूर्ति के पक्ष के लिए ही उपयुक्त है लेकिन उपभोग पक्ष की प्रगति के लिए *नहीं*।"[3] इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के युग मे सोवियत संघ विकास मे अन्य राज्यों से न पिछड़ जाए इसलिए उसे अपनी विचारधारा और राजनीतिक संगठन से मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

दूसरे शब्दों मे विकास की प्रक्रिया द्वारा निर्धारित प्राविधिक प्रगति के 'विशिष्ट आदेश' पूरी विश्वसनीयता के साथ पूँजीवाद मे ही कार्य करते हैं, जो

---

1 डब्ल्यू० डब्ल्यू० रोस्तोव, द स्टेजेज आफ इकोनॉमिक ग्रोथ, ए नान-कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो, कैंब्रिज, 1960, पृष्ठ 4

2 वही, पृष्ठ 10

3 वही, पृष्ठ 133

स्वभावत. ही, इसके अनुकूल परिणामों को ग्रहण करने के लिए तैयार रहती है। जहाँ तक कुछ समाजवादी देशो की बात है यद्यपि उन्होने औद्योगिक विकास का ऊँचा स्तर प्राप्त कर लिया है, पर वह उनके लिए काफी नही है। प्राविधिक आधुनिकता की मुख्य धारा मे सम्मिलित होने के लिए उन्हे राज्य इजारेदारी पूँजीवाद के कुछ नियम अनिवार्यत स्वीकार करने होगे।

इस प्रकार रोस्तोव के निष्कर्षों में पूँजीवाद का उचित समर्थन, एक ऐसे समय मे जबकि प्राविधिक प्रगति दो व्यवस्थाओ के बीच प्रत्यक्ष प्रतियोगिता का क्षेत्र बनती जा रही है, वैज्ञानिक कम्युनिज्म के लिए सैद्धांतिक विकल्प प्रस्तुत करने के प्रयास में बदल जाता है। इस स्थापना से रोस्तोव का सिद्धात एक समय मे तीन समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करता दिखाई देता है। यह सिद्ध करके कि प्राविधिक प्रगति पूँजीवाद के विरुद्ध मेहनतकश जनता को वर्ग सघर्ष की आवश्यकता को समाप्त कर देता है, सोवियत अनुभव को अविश्वसनीय बना देता है वह निस्सदेह विश्व समाज-व्यवस्था के विकास के लिए अमरीकी जीवन पद्धति को सर्वोच्च शिखर घोषित करते हैं।

जॉन केनेथ द न्यू इंडस्ट्रियल सोसायटी (नया औद्योगिक समाज) (1967) में इस सदी के उत्तरार्द्ध में प्राविधिक नियतिवाद की स्थिति से 'औद्योगिकीकरण' के सिद्धान्त के लिए अधिक आधार प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं। एक प्रकार से यह जॉन कीन्स की इस शती के पूर्वार्ध में पूँजीवादी सम्बन्ध को राज्य इजारेदारी पद्धति का स्मरण दिलाता है जो उनकी पुस्तक 'द जनरल थियरी ऑफ एम्लायमेंट, इन्टरेस्ट एण्ड मनी' में निरूपित है।

गालब्रेथ 'औद्योगिक' समाज की संपूर्ण आर्थिक सरचना की व्याख्या के लिए प्राविधिक नियतिवाद से आरभ करते हैं। हम इस प्रस्थापना को ध्यान में रख सकते हैं "आर्थिक परिवर्तन की जटिल ग्रथि की परीक्षा के लिए प्राविधिक ज्ञान स्वय अपनी पहलकदमी की क्षमता के कारण उसके भीतर प्रवेश के लिए एक तर्क सगत बिन्दु है लेकिन प्रविधि परिवर्तन का कारण ही नहीं है, परिवर्तन का प्रत्युत्तर भी है।"[1] फलस्वरूप, गालब्रेथ की मुख्य स्थापना यह है कि वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति 'औद्योगिक राज्य' की अर्थव्यवस्था मे योजना के नियमो के विकास को स्वयं पहले से निर्धारित कर देती है। परिणामस्वरूप बड़ी इजारेदारी, ट्रेड यूनियन और राज्य की अन्त.क्रिया मे एक प्रकार का आदर्श सतुलन कायम कर देती है जिसको पूरे समाज का प्रतिनिधि माना जाता है। परिपक्व निगम जो स्पर्द्धा समाप्त करने मे सक्षम हैं, बाजार-अर्थव्यवस्था का स्थान ले लेते हैं योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के साथ, और उसके प्रमुख अग बन जाते हैं।

इस प्रकार, गालब्रेथ के अनुसार, अधिकतम लाभ (मुनाफा) पूँजीवादी उत्पादन

1. जॉन केनेथ गालब्रेथ, द न्यू इडस्ट्रियल स्टेट, पृ॰ 20

की मूल प्रेरणा नहीं रहती अपितु प्रविधि एवं परियोजना की माँगें उसकी प्रेरक बन जाती हैं। जहाँ तक अर्थव्यवस्था में प्रभावी पदों का प्रश्न है, वे उनके विधिसम्मत स्वामियों के हाथ से निकलकर सुशिक्षित प्रशासनिक तथा प्राविधिक व्यक्तियों को प्राप्त हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अधिकाधिक लाभ (मुनाफे) में रुचि रखने वाले पुराने उद्यमी को उत्पादन के नियन्त्रकों की सूची से पृथक् करके उसके स्थान पर प्रविधिज्ञों के आरोपित समुदाय (प्राविधिक संरचना) को रख दिया जाता है जिसकी रुचि मुनाफे की रक्षा में नहीं बल्कि अपनी सत्ता बनाए रखने में होती है सिद्धान्त रूप में वे सामान्य हितों की देखभाल करते हैं—सामूहिक उत्पादन की क्रमश: वृद्धि तथा मूल्यों में कमी के द्वारा बाजार का विस्तार जिसमें समस्त जनगण को लाभ पहुँचे।

यह काल्पनिक संरचना वास्तविकता से बहुत दूर है। रोस्तोव के छद्म वैज्ञानिक सिद्धांत की भाँति ही गालब्रेथ का आविष्कृत कल्पनालोक (जो आधुनिक पूँजीवाद के आयोजन के तत्वों का परिचय, प्रबन्धकों की बढ़ती हुई भूमिका, सम्पदा के आकारहीन नैगम रूप जैसे वस्तुत: विद्यमान कतिपय तत्वों पर आधारित हैं) मुख्य बात की—पूँजीवादी पुनरुत्पादन के वस्तुपरक नियमों की—उपेक्षा करता है। तथापि, ये नियम तेजी से तीव्र होते हुए प्रतियोगितात्मक संघर्ष का निजी पूँजी से सामना कराते हैं जिसके दौरान हर व्यापारी अधिकतम मुनाफ़ा कमाने का प्रयास करने के लिए विवश होता है। और बाजार की माँग की कोई भी भविष्यवाणी, कोई 'प्रबन्धकीय क्रान्ति' चाहे वह 'अतिपरिपक्व' निगमों के विद्यमान रहते हुए ही पैदा हुई हो—इस स्थिति को परिवर्तित नहीं कर सकती।

और न प्राविधिक नियतिवाद के पक्ष-पोषक ही इस तथ्य से बच सकते हैं, भले ही उन्होंने अपनी सैद्धान्तिक संरचनाओं में मार्क्स से उधार लिये इस विचार को अपना आधार बनाया हो कि उत्पादक शक्तियों का विकास ही ऐतिहासिक प्रगति का आधार है। वस्तुत: वे इस विचार को पूर्णतया विकृत कर देते हैं, इस अर्थ में वे उत्पादन सम्बधों से उत्पादन शक्तियों को पृथक् कर देते हैं और किसी एक या अन्य सामाजिक-राजनीतिक रूप से उनके संबंधों को विच्छिन्न करके उस पर बहस करते हैं। वे सम्पत्ति की प्रकृति, सामाजिक संबंध, वर्ग-शक्तियों के संतुलन और इसी प्रकार की महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक कसौटियों की उपेक्षा करते हैं तथा इन सबके स्थान पर जनसंख्या के कतिपय घटकों के जरिए प्रति व्यक्ति उपभोग के यांत्रिक संकेतों को प्रस्थापित कर देते हैं।

यहाँ हम इस बात से इन्कार नहीं कर रहे हैं कि वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति और उपभोग का स्तर समाज के विकास के अत्यत महत्वपूर्ण सकेतक हैं। किंतु वे कितने भी वास्तविक हो, हैं तो सामान्य स्थिति के अंश मात्र ही। उदाहरण के लिए, क्या कोई इन मूलभूत लक्षणों को, जिन पर कि वह आधारित है, छोड़कर वर्तमान

पूँजीवादी उत्पादन का सही वैज्ञानिक विश्लेषण कर सकता है, ' इसके सम्मुख लक्ष्य क्या है? यह किनके हितों की पूर्ति करता है? इस पर किसका स्वामित्व है? क्या केवल उपभोग के स्तर से मेहनतकश जनता के भौतिक कल्याण को मापना उचित है? क्या श्रम शक्ति के विस्तार, श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन के लिए व्यय मे निरन्तर वृद्धि, सामान्यतया आधुनिक मानव की आवश्यकताओ मे वृद्धि और इसी प्रकार के महत्वपूर्ण मुद्दों की उपेक्षा की जा सकती है?

तथापि रोस्तोव, गालब्रेथ और 'उद्योगवाद' के अन्य धुरन्धरो ने यही मार्ग ग्रहण किया। सामाजिक प्रक्रिया का सर्वांगीण विश्लेषण करने के स्थान पर वे प्राय मनमर्जी से चुनी हुई कतिपय घटनाओ का विश्लेषण करते हैं और इसी आधार पर संयुक्त राज्य अमरीका मे और समस्त पूँजीवादी विश्व मे पूँजीवादी वास्तविकता का भ्रामक चित्र खीचते हैं और उसके भविष्य के सबध मे भविष्यवाणियाँ करते हैं। इन स्थापनाओं में बूर्ज्वा पण्डित एक समस्या के समाधान की बार-बार कोशिश करते हैं जैसे कोई गोलाकार को वर्गाकार बनाने का, असगत को सगत करने का, प्रयास कर रहा हो। 'सार्वत्रिक समृद्धि' के समाज मे, जिसे कि वे सयुक्त राज्य अमरीका में पहले से ही अर्थात् अमरीका की तीसरी शताब्दी के आरभ से ही निर्मित मानते हैं, वे एक ही समय मे व्यापार मे अधिकाधिक मुनाफा तथा मेहनतकश जनता के लिए वृद्धिमान उपभोग का वायदा करते हैं। किंतु इसमे कोई सदेह नही कि यह कितनी ही अतिरंजित कलाकृति क्यो न हो, यह एक स्वप्नलोक ही है, इस बात से कोई इन्कार नही कर सकता कि पूँजीवाद के नियम और उसका दैनिक व्यवहार इस प्रकार की सभावना को ही समाप्त कर देता है। पूँजीपतियो के समाज का समस्त इतिहास, जिसमे अमरीकी समाज भी सम्मिलित है, इसका प्रमाण है।

सयोगवश, 1776 मे, जिस वर्ष कि सयुक्त अमरीका ने अपने स्वतत्र होने की घोषणा की थी, स्कॉटलैंड के प्रोफेसर एडम स्मिथ अपनी प्रसिद्ध कृति **"राष्ट्रों की संपत्ति की प्रकृति और कारणों की जाँच"** (इन्क्वायरी इनटु द नेचर एण्ड काजेज ऑफ द वैल्थ ऑफ नेशन्स) प्रकाशित की थी जिसमे उन्होने अपने समय की पूँजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धात की व्याख्या की थी।

पूँजीवादी आर्थिक विचार धारा के जनक इस बात के पूरी तरह कायल थे कि प्रतियोगिता के लाभप्रद प्रभाव के अतर्गत पूँजीवादी सबंधो के विकास मे निश्चित रूप से उद्यमियो द्वारा कम-से-कम कीमत पर अच्छी-से-अच्छी वस्तुओ की आपूर्ति के लिए किए जा रहे प्रयास सम्मिलित होंगे और इस प्रकार आम जनता के कल्याण मे निरंतर उभार सुनिश्चित होगा। यह स्वीकार करते हुए कि प्रतियोगिता को निर्बन्ध स्वातंत्र्य प्रदान किया जाए जैसाकि प्रकृति ने स्वयं वस्तुओ के क्रम मे किया है। उन्होंने बड़ी आशा के साथ अपनी कृति **'विपुलता की बाइबिल'** (बाइबिल

ऑफ एलुएन्म) मे सामूहिक उत्पादन के उत्थान, समस्त वैयक्तिक हितों में समन्वय और सभी के लिए चिंतामुक्त एवं सुरक्षित जीवन की पूर्वकल्पना की थी।

इस प्रकार, 'सामूहिक उपभोग' के समाज की घोषणा एक प्रकार से दो सौ वर्ष पूर्व ही कर दी गई थी, ठीक उस समय जब कि संयुक्त राज्य अमरीका ऐसे राज्य का निर्माण आरम्भ करने जा रहा था जिसे कि 'स्वतंत्र उद्योग' वाले राज्य के आदर्श के रूप मे मान्यता दी जानी थी।

वर्तमान काल मे, पूंजीवादी व्यवस्था के रक्षक क्रमशः पूंजीवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के स्रोतों की ओर लौट रहे हैं। लेकिन आदर ग्रंथों के विपरीत, वे स्वयं को इजारेदार पूंजी के प्रत्यक्ष समर्थन के घेरे में अधिकाधिक बन्द करते जा रहे हैं। कोई भी आत्मगत लक्ष्य 'औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर समाज' के मिथक में अन्तर्निहित क्यो न हों, सार रूप में इसकी सब विविधताएँ ऐसे प्रयास प्रमाणित हो रही है जो उन्नत विधि और प्रविधि सहित अथवा नई उत्पादन प्रबन्धक पद्धति सहित आधुनिक राज्य इजारेदारी को सामूहिक उपभोग की वृद्धि से लक्षित करती हैं। जैसी कि कहावत है, ये मायावी रंगो में पूंजीवाद के अस्तित्व को दीर्घजीवी बनाने के प्रयास हैं।

इन प्रयासों ने इस सत्य को ही प्रमाणित किया है कि हमारे समय मे पहले कभी की अपेक्षा पूंजीवाद को पुनः स्थापित करने का कोई भी प्रयास अधिक जटिल और कम प्रभावशाली होगा। प्रचार की मिथ्या गाथाओ के माध्यम से प्रदर्शित 'सामूहिक उपभोग' की सफल और उज्ज्वल संभावना समय की कसौटी पर खरी नही उतरी हैं। जीवन ने इस मनोरंजक कथा की उपेक्षा कर दी है। और इसके कारण पूंजीवादी विश्व को ऐसे जटिल अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ेगा जो वस्तुतः इसके क्रिया-कलाप के प्रत्येक पहलू को अपने मे लपेट लेंगे। 1970 के दशक के पूंजीवादी सिद्धान्तकार पूंजीवाद की पुरानी व्याधियों के लिए चिकित्सा के नए नुस्खे तैयार करने के लिए अन्य सिद्धान्तों की खोज करते रहे। ऐसे समय मे जबकि पूंजीवादी विश्व अन्तर्विरोधपूर्ण घटना क्रियाओं के प्रवाह में बहता जा रहा है उन्होंने अपने जिम्मे एक जटिल और सामान्यतया अव्यावहारिक कार्य भार—मजदूर वर्ग के सामाजिक आदर्शों को पूंजीवाद की वास्तविकताओं के साथ मिलाने का—ले लिया है। उनमें से कुछ अब भी प्रविधि के सहज विकास पर अपनी आशाएं लगाए बैठे है, इसके विपरीत, दूसरों की दृष्टि में यही समस्त संकटों का कारण है, लेकिन उनमें से लगभग सभी पूरी तरह प्राविधिक ढंग को त्यागना पसन्द नहीं करते और आधुनिक पूंजीवाद के विश्लेषण में सामाजिक एवं वर्गीय पक्षों को सुनियोजित तरीके से नजरन्दाज कर देते हैं।

बेहतर भविष्य की आशाओं और साथ ही वर्तमान के लिए संकट दोनों को ही वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के साथ जोड़ दिया गया है। इस संबंध में अमरीका

के प्रमुख इतिहासकार आर्थर श्लेसिंजर का वक्तव्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है : "यदि संयुक्त राज्य अमरीका में आज अन्य कहीं की भी अपेक्षा अत्यधिक उत्कट सकट दिखायी देता है तो यह हमारी अर्थव्यवस्था के चरित्र के कारण नहीं अपितु, उन शक्तियों के कारण है जिनको कि विज्ञान और प्रविधि द्वारा लाया गया है जैसाकि दूसरी जगह कहीं नहीं हुआ है। प्राविधिक विकास में अत्युन्नत राष्ट्र के रूप में अमरीका ने ही पहले-पहल क्षिप्रगामी परिवर्तन का अजस्र आघात और विप्लवकारी गहनता का अनुभव किया। हम जिन सकटों में जी रहे हैं वे आधुनिकता के सकट हैं। कोई भी राष्ट्र जब प्राविधिक विकास की अपेक्षाकृत उच्च स्थिति को प्राप्त करना आरम्भ करता है तब उसे अपेक्षाकृत इसी प्रकार के सकटों का सामना करना पड़ता है।"[1] इस प्रकार औद्योगिक समाज के सकट का निषेध नहीं किया गया, बल्कि इसे प्रगति के अनिवार्य पुरस्कार के रूप में व्याख्यायित किया गया है। जहाँ तक श्रेष्ठतर समय की आशाओं का संबंध है, उन्हें कुछ थोड़ा और आगे भविष्य के लिए बढ़ा दिया गया है और अब उनका सबंध अद्यतन औद्योगिक समाज से इतना अधिक नहीं रहा जितना कि इसके स्थान पर आने वाली सामाजिक व्यवस्था का।

क्या 'औद्योगिकोत्तर समाज' मुक्ति है ?

औद्योगिकोत्तर समाज की नई सुप्रचारित अवधारणा के जनक अमरीकी समाजशास्त्री डेनियल बैल थे। हरमन काहन, ज्बिग्निएव ब्रजेजिन्स्की, जॉन गॉलब्रेथ, रेमण्ड आरो, एडोल्फ बर्ले और जीन फ्रौरेस्टी सहित अन्य अन्वेषकों ने भी इस अवधारणा को विकसित करने में कठिन श्रम किया। लेकिन इसकी सर्वाधिक पूर्ण व्याख्या बैल की न्यूयॉर्क में 1970 में प्रकाशित कृति-द कमिंग ऑफ पोस्ट इण्डस्ट्रियल सोसायटी, ए वेंचर इन सोशल फोरकास्टिंग में की गई। ठीक सामूहिक उपभोग समाज की अवधारणा की तरह ही औद्योगिकोत्तर समाज का विचार भी अनेक पहलुओं में पूँजीवादी पडितों द्वारा पहले से प्रदर्शित विचारों की पुनरावृत्ति मात्र है। इस विषय में यह थोर्स्टीन वेब्लेन की कृतियों में आंशिक रूप से उठाया गया प्रश्न है लेकिन सर्वोपरि अमरीकी प्रोफेसर जेम्स बर्नहम के, 'द मैनेजरियल रेवोल्यूशन' (प्रबंध में क्रांति) का प्रश्न भी है। विश्व में क्या हो रहा है—के माध्यम से इसे 1941 में सबसे पहले प्रस्तुत किया गया था। पूँजीवादी व्यवस्था के समर्थक बर्नहम ने उन्हीं वर्षों में औद्योगिकोत्तर समाज के बुनियादी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था। उन्होंने समस्त उचित सीमाओं को लाँघकर उत्पादन में लगे उच्चाधिकारियों की भूमिका को बढ़ा-चढ़ाकर बखानते हुए और मजदूर वर्ग की

1. न्यूजवीक, 6 जुलाई 1970 पृष्ठ 29-30

क्रान्तिकारी भूमिका को नकारते हुए यह निष्कर्ष निकाला था कि पूंजीवाद के बाद समाजवाद नहीं आएगा अपितु समाज के अन्य सामाजिक संगठन आएँगे।

इन मान्यताओं के आधार पर बैल औद्योगिकोत्तर समाज का चित्रण प्रस्तुत करते हैं और इसके पांच विशिष्ट आयामों का उल्लेख करते हैं : प्रथम, माल-उत्पादन से सेवा-प्रधान अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, द्वितीय, व्यावसायिक एवं प्राविधिक वर्गों की श्रेष्ठता; तृतीय, समाज के लिए नवीकरण और नीति निर्माण के स्रोत के रूप में सैद्धान्तिक ज्ञान की केन्द्रिकता, चतुर्थ प्रविधि एवं प्राविधिक मूल्यांकन का नियन्त्रण तथा संयम, पंचम, नवीन 'बुद्धिवादी प्रविधि' की सर्जना।[1]

इस व्यवस्था में बैल विज्ञान को प्रमुख स्थान देते हैं। वह लिखते हैं—ठीक वैसे ही जैसे कि गत सौ वर्षों में व्यापारिक संस्थान बुनियादी संस्थान थे...विश्वविद्यालय और इसी प्रकार के ज्ञान के संस्थान आगामी सौ वर्षों तक केन्द्रीय संस्थान रहेंगे क्योंकि नवीकरण और ज्ञान के नये स्रोत के रूप में इनकी भूमिका है।"[2] वह आगे लिखते हैं "औद्योगिकोत्तर समाज की जड़ें उत्पादन पद्धतियों पर विज्ञान के अक्षय प्रभाव में निहित हैं—और विज्ञान अर्ध स्वायत्त शक्ति के रूप में पूंजीवाद के आगे तक चलता जाएगा। इस संकेत से कोई कह सकता है कि वैज्ञानिक संपदा, इसकी प्रकृति और इसके संगठन ऐसा प्रजीवाणु है जिसमें भावी समाज की प्रतिभा अन्तर्निहित है।"[3]

जैसे कि बैल इसे देखते हैं मानव समाज का समग्र इतिहास उत्पादन के एक रूप से दूसरे रूप की ओर अग्रसर है : कृषि से उद्योग और उद्योग से सेवा प्रधान अर्थव्यवस्था की ओर। प्रत्येक अवस्था के अपने शक्ति के वितरण और सामाजिक संगठनों के लाक्षणिक उत्कर्ष होते हैं। औद्योगिकोत्तर समाज में निर्णय वैज्ञानिकों एवं उच्चतम योग्यता प्राप्त विशेषज्ञों—ज्ञान के धारकों—पर निर्भर होता है। इसके शिखर पर रहेंगे विश्वविद्यालय और अकादमिक केन्द्र। चुने हुए श्रेष्ठ 'राजनीतिक प्रबन्धक' साधुता और न्याय निष्ठा से समाज का मार्ग-दर्शन करेंगे।

जहाँ तक पूंजीपति और मजदूरों के शत्रुतापूर्ण वर्गों की बात है वे भी औद्योगिकोत्तर समाज में उसी प्रकार एकीकृत हो जाएँगे जैसे कि उत्पादन का वर्तमान वैज्ञानिक पुनर्गठन स्वयं पूंजीवाद को विलीन कर देता है। पहली स्थिति वैज्ञानिक स्थिति के रूप में क्रमशः लाई जाएगी, ठीक उसी प्रकार जैसे कि अपने समय में सामंती अभिजात वर्ग पूंजीपति वर्ग में विलीन हो गया, जबकि बाद वाली स्थिति

1. डी० बैल, द कमिंग ऑफ पोस्ट इंडस्ट्रियल सोसायटी, ए वेंचर इन सोशल फ़ोरकास्टिंग न्यूयॉर्क, 1973, पृष्ठ 14
2. वही, पृष्ठ 344
3. वही, पृष्ठ 378

ऐतिहासिक पुरातत्व के रूप मे परिवर्तित हो जाएगी अर्थात इसका भाग्य वही होगा जैसाकि औद्योगिक समाज में कृषकों का हुआ। इसका परिणाम यह होता है कि बैल 'औद्योगिक' एवं 'औद्योगिकोत्तर' समाजों के अपने विश्लेषण मे से उत्पादन सबधों की तथा इसके बाद वर्ग-संघर्ष की श्रेणियों को ही गायब कर देते हैं।

व्यापार से राजनीतिक प्रबंध मे सत्ता का पुनःवितरण व्यावहारिक रूप मे किस प्रकार होगा? बैल इस सामान्य तथ्य को विस्मृत नही कर सकते कि वर्तमान पूंजीवादी समाज मे वैज्ञानिक और प्राविधिक विचार इजारेदारियों की विशुद्ध व्यावहारिक माँगों की सेवा करता है। वह इस अन्तर्विरोध से सुपरिचित हैं। और वह प्रायः वेब्लेन की आलोचना करते हैं जिन्होंने आधी सदी पूर्व केवल प्राविधिक संगठनों को आधार माना था। बैल ने लिखा था—"यह श्रम-संघवादी विचार कि बीसवीं सदी में क्रान्ति केवल औद्योगिक उलट-फेर ही हो सकती थी—वेब्लेन के विचार मे निहित भ्रान्ति का एक निदर्शन है। जैसा कि हमें ज्ञात है कि सामाजिक प्रक्रियाएँ चाहे जितनी प्राविधिक हों समाज में परिवर्तन का निर्णायक बिन्दु राजनीतिक रूप मे ही आता है। सत्ता अंतिम रूप से प्राविधिक के हाथ मे नहीं आती बल्कि राजनीतिज्ञ के" इस प्रकार दो अन्य तत्व भी हैं—राजनीतिक और सास्कृतिक संरचनाएँ—जो लेखक की कृति औद्योगिकोत्तर समाज का आगमन" के लेखक के अभिप्राय मे इसकी सामाजिक संरचना के साथ विद्यमान है। लेकिन औद्योगिकोत्तर समाज को इन तीन क्षेत्रों मे पुनः विभक्त करते हुए जिनमें से प्रत्येक बैल के मतानुसार स्वायत्त रूप मे कार्य करता है, विषय को बिल्कुल स्पष्ट नहीं करता। और उनका राजनीतिक प्रबंध के संबंध में यह कहना कि वह लंबे काल मे राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त कर लेगा अधिक संतोषजनक न होने से स्वीकरणीय नहीं है। कोई सोच सकता है कि वेब्लेन के आलोचक बैल स्वयं उनके 'श्रम संघवाद के' विचार से ही विमोहित हो जाते हैं, जिसको वह छोड़ देते हैं।

बैल एक सीमा तक चेतावनी देते हैं विशेष रूप से भविष्यवाणी करने के संबंध में, और इस प्रकार के निष्कर्षों की उपेक्षा करते हैं जो एकदम निरपवाद प्रतीत होते हैं। लेकिन उनके साथी प्रो० ज़्बिग्निएव ब्रजेज़िन्स्की ऐसा नहीं करते जो औद्योगिकोत्तर समाज की अपनी धारणा के समर्थन मे सर्वथा निरपेक्ष हैं। बैल की तरह ही वह सामाजिक प्रक्रिया तथा उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को प्रविधि एवं ज्ञान के दृष्टिकोण से देखते हैं और औद्योगिकोत्तर समाज की अवधारणा को प्राविधिक वैद्युतिक युग द्वारा रूपांतरित करके इस दृष्टिकोण को पुष्ट करने का प्रयास करते हैं। यद्यपि उनकी खोज सामान्यतया न्यूनाधिक मात्रा में

1. सर्वे, विंटर 1971 खंड 16, अंक 1 पृष्ठ 19

बेल, गालब्रेथ, रोस्तोव और 'प्राविधिक नियतिवाद' के अन्य समर्थकों द्वारा पुनः स्थापित प्रस्थापनाओं की ही छद्म भरी प्रतिलिपि है। ब्रजेजिन्स्की दावा करते हैं कि यह समस्या के प्रति नया दृष्टिकोण है। वह घोषणा करते हैं कि प्रविधि एवं इलेक्ट्रोनिक्स इन दोनों के बीच संयुति मानव समाज के विकास में निर्णायक शक्तियाँ हैं। उनका दावा है कि यह संयुति केवल अर्थ-व्यवस्था को ही परिवर्तित नहीं करती अपितु मानव जीवन के सामाजिक 'सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पक्षों को भी परिवर्तित कर देती है।

ऐसा रवैया लेखक को अपनी धारणा को नये रूप में प्रस्तुत करने योग्य बना देता है, और महत्वपूर्ण यह है, कि वह इस विचार को आगे बढ़ाते हैं कि 'प्राविधिक वैद्युतिक युग' पूरी तरह अथवा लगभग औद्योगिकोत्तर समाज का विपर्यय है तथा प्राविधिक वैद्युतिक युग की विजय (जिसमे कि उनके दावे के अनुसार संयुक्त राज्य अमरीका प्रवेश करना आरंभ कर रहा है) एक नये युग की शुरुआत है जो मानव समाज के इतिहास में मूल रूप से पिछले सभी युगों से सर्वथा भिन्न है। लेखक स्पष्ट रूप से विश्वास करते हैं कि प्रश्न को इस प्रकार प्रस्तुत करना उन्हें इस बात के लिए विवश करता है कि वह पूँजीवाद की विद्यमान वास्तविकता को इस प्रकार विश्लेषित करें कि यह स्वयं को भविष्य के प्राविधिक-वैद्युतिक युग के सम्बन्ध में गूढ़ अनुभावों में तल्लीन कर सकें। जहाँ तक वर्तमान संघर्ष का सम्बन्ध है लेखक उनका चित्रण बढ़ती हुई पीड़ा के रूप में करता है जो कि विश्वव्यापी मानवता के विकास की उच्चतर अवस्था के लिए विश्वव्यापी संक्रमण के लिए अनिवार्य है और ये पीड़ाएँ आने वाले युग में सामने आने वाली समस्याओं की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं।

दूसरे शब्दों के ब्रजेजिन्स्की यह सिद्ध करना चाहते होंगे कि वर्तमान क्रान्ति के लिए संक्रमणकालीन युग को दोषी ठहराया जाना चाहिए जिससे कि मनुष्य समाज गुजर रहा है, न कि पूँजीवाद को। जैसे ही यह युग अपने हर्षप्रद अन्त पर पहुँचेगा, हर चीज कल्याण के लिए परिवर्तित हो जाएगी।

प्राविधिक-वैद्युतिक समाज में वैज्ञानिक और प्राविधिक ज्ञान जो वर्तमान उत्पादन क्षमताओं से सम्पन्न है जीवन के लगभग सभी पहलुओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने के लिए त्वरित गति से प्रवाहित होता है। इस 'सत्य' की घोषणा करके ब्रजेजिन्स्की इसके समर्थन में कोई गंभीर तर्क प्रस्तुत करके स्वयं को और पाठकों को परेशानी में डाले बिना इसके आधार पर प्रस्थापनाओं की सम्पूर्ण व्यवस्था का निर्माण करते हैं।

प्राविधिक-वैद्युतिक समाज में औद्योगिक कार्य इसकी सेवा में प्रयुक्त होगा और साइबर्नेटिक्स तथा स्वचालन यन्त्र विधि नियन्त्रण में मनुष्य का स्थान ग्रहण करेंगे। व्यवसायों के शीघ्र विलुप्त होने में सम्बन्धित समस्याएँ केन्द्रीय स्थान ग्रहण

करेंगी।"…अपेक्षाकृत सुरक्षित लेकिन क्षमता की दृष्टि से लक्ष्यहीन निम्न मध्यम वर्ग के मैले-कुचैले कपड़ों वाले लाखों लोगों के मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल करनी होगी।"[1] तथा उनके विश्राम के समय को संगठित करने और लाभांश में भागीदारी की समस्या का समाधान करना होगा। व्यक्तिगत क्षमताओं का उन्नयन 'सामाजिक प्रगति के लिए प्रस्थान बिन्दु' के रूप में सामाजिक सुधारकों का मुख्य लक्ष्य होगा।

ज्ञान शक्ति का एक साधन (उपकरण) हो जाएगा। विश्वविद्यालय चिन्तन-सागर बन जायेंगे : आयोजन के सामाजिक नवीकरण के स्रोत। जन प्रचार माध्यम के विकास का परिणाम तेजी से परिवर्तन के रूप में होगा। विश्व दृष्टिकोण की अस्थिरता 'सामाजिक विवादों को संख्यात्मक एवं मात्रात्मक आयामों में घटाने' के लिए बढ़ती हुई क्षमता सामाजिक समस्याओं के प्रति अधिक स्पष्ट रवैये की ओर ले जाएगी। औद्योगिक समाज में राजनीतिक पार्टियाँ सहयोग और अपेक्षाकृत सामान्य विचारधारात्मक कार्यक्रम के आधार पर बनायी जाएँगी। तथा ये राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित होंगी। प्राविधिक-वैद्युतिक समाज में जन-प्रचार माध्यम की सहायता से जनता की भावनाओं को प्रभावित करना और उनकी मनोवृत्ति को नियंत्रित करना संभव होगा। राष्ट्रभाषा के स्थान पर दूरदर्शन के प्रतीकों (प्रतिमाओं) द्वारा घटनाओं की अधिक सार्वत्रिक और प्रभावशाली समझ की ओर बढ़ाया जा सकेगा। आर्थिक शक्ति का बढ़ती हुई राजनीतिक शक्ति में विलय होगा और वह निर्वैयक्तिक हो जाएगी।

ब्रजेज़िन्स्की के मन में नये समाज के निर्माण का पता विश्व की वास्तविकता के साथ मनुष्य के नए सम्बन्धों के आरम्भ में चलेगा जिसकी रोशनी में पुरानी अवधारणाएँ और उनके साथ पुरानी विचारधाराएँ अपना महत्व खो देंगी।

कुल मिलाकर, अपनी अन्तिम प्रस्थापना को प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत तर्क वही है जिसका उपयोग विसिद्धान्तीकरण की अवधारणा के समर्थक पहले ही कर चुके थे। भविष्य की विचारधारा सभी विचारधाराओं का उन्मूलन होगी। कारण यह कि, ठीक जैसे मार्क्सवाद ने औद्योगिक युग के लिए इस प्रकार का सिद्धान्त रचा वैसे ही हमारे समय में भी अपनी क्रान्ति की निजी अवधारणा निर्मित की। प्राविधिक-वैद्युतिक युग में सम्भवतः तीसरी अमरीकी क्रान्ति के सदृश है। पहली ने स्वतंत्रता की घोषणा को स्वीकृति दी। दूसरी ने खेतिहर एवं अंशतः दास स्वामित्व वाले समाज को शहरी औद्योगिक राष्ट्र में रूपान्तरित किया। तीसरी ऐसी क्षिप्रगामी प्रक्रिया है जिसमें 'प्राक् औद्योगिक', 'औद्योगिक' और 'प्राविधिक-वैद्युतिक' अमरीका का विभेद हो रहा है।

---

१. वही, १०।।

इस निष्कर्ष द्वारा वह सिद्ध करते हैं कि प्राविधिक-वैद्युतिक अमरीका अनिवार्य रूप से सर्वश्रेष्ठ हो जाएगा। इसका विरोध उसी प्रकार निष्फल होगा जैसे कि मशीनों के विरुद्ध लुड्डाइट आंदोलन हुआ था। और इससे भी बढ़कर अमरीका *केवल अपने निजी हितों के लिए चिंतित नहीं है बल्कि समस्त विश्व के* कल्याण के लिए चिंतित है। इसलिए ब्रजेजिन्स्की का दावा है कि यह अमरीका का विशिष्ट ध्येय है कि वह औद्योगिक राज्यों के समुदाय का निर्माण करे और उसका नेतृत्व करे।

ब्रजेजिन्स्की के 'प्राविधिक नियतिवाद' के विचार तथा उनके अनुरूप सत्यों की देन को भी परिभाषित करना सरल है। जहाँ तक कि प्रश्न के सैद्धान्तिक पहलू का सम्बन्ध है: वह किंचित परिवर्तित शब्दावली का उपयोग करते हुए इस विकास की उसी ज्ञात, अति सरलीकृत ऐतिहासिक प्रक्रिया—'प्राग औद्योगिक', 'औद्योगिक' और प्राविधिक-वैद्युतिक (अर्थात् औद्योगिकोत्तर) को दुहराते मात्र हैं। उनका प्राविधिक-वैद्युतिक समाज का वर्णन मुख्य रूप से बैल की 'औद्योगिकोत्तर समाज' की परिभाषा का पुनः कथन मात्र है।

तथापि, कुछ ऐसे पहलू भी हैं जो अमरीकी प्रोफ़ेसर की रचनाओं को इस विषय पर लिखी गयी अन्य रचनाओं से भिन्न एवं विशिष्ट प्रदर्शित करते हैं।

उनमें से एक है इसका *सुस्पष्ट समर्थन का स्वभाव।* ब्रजेजिन्स्की ने 'प्राविधिक-वैद्युतिक युग' को पाठक के समक्ष अमरीका के राज्य-इजारेदारी पूँजीवाद की प्रतिमा के रूप में प्रयुक्त किया है जो प्राविधिक रूप से आधुनिकीकृत है और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्तियों द्वारा सुदृढ़ की गयी है। वह बलपूर्वक कहते हैं कि प्राविधिक-वैद्युतिक युग अमरीका का युग है जो समाजवाद के अस्तित्व को आरंभ से ही नकार देता है। दोनों व्यवस्थाओं के अभिसरण के विचार का विरोध करते हुए वह स्पष्ट रूप से आह्वान करते हैं कि समाजवादी व्यवस्था को अखिल अमरीकीवाद के नये रूप में विलीन कर दिया जाये।

'प्राविधिक-वैद्युतिक युग' की समस्त परिकल्पना साम्राज्यवादी हल्कों की घोर प्रतिक्रियावादी धारा को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है। इसके प्रस्तावित संस्थानों को समस्त राज्य और सामाजिक सत्ता को आत्मसात करने और सब पर और अधिक तथा सामाजिक जीवन की समस्त जनतांत्रिक क्रियाविधि पर अपना नियंत्रण कायम करने और उसे और अधिक मजबूत करने के लिए अति व्यापार प्रशासकीय मशीनरी के उपकरण के रूप में निर्मित किया गया है। भावी 'प्राविधिक-वैद्युतिक' विश्व के आदर्श को लेखक नागरिकों पर राज्य के नियंत्रण को *अधिकतम* व्यापक बनाने के कार्य को प्राविधिक प्रगति का सर्वोच्च लक्ष्य घोषित करता है। इन प्रस्थापनाओं को ध्यान में रखते हुए ब्रजेजिन्स्की की सामाजिक जीवन के विसैद्धान्तिकीकरण से संबंधित स्थापना है जबकि जनता के बौद्धिक क्रियाकलाप

को राज्य के नियंत्रण में रखा जाएगा और कतिपय पूर्वनिर्धारित पद्धतियों (आदर्शों) तक सीमित कर दिया जाएगा। इस प्रकार ब्रज़ेज़िन्स्की का नया विचार इजारेदार पूँजीवाद तथा विशेष रूप से अमरीकी साम्राज्यवाद के स्पष्ट समर्थन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। लेकिन औद्योगिकोत्तर समाज में भी मुक्ति नहीं प्राप्त होगी। इसका सीधा-सा कारण यह है कि इस कृत्रिम योजना का वास्तविकता से संबंध नहीं है।

'नवीनीकृत' पूँजीवाद की मरीचिकाएँ

'औद्योगिकोत्तर समाज' की अवधारणा ही तात्कालिक सामाजिक समस्याओं के समाधान को तब तक के लिए टाल देती है जब तक कि किसी समय भविष्य में वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति के अनुग्रह के अंतर्गत पूँजीवाद के यांत्रिक नवीकरण के विचार से एक प्रकार अपने को पृथक् नहीं कर लेती। जहाँ तक प्राविधिक-वैद्युतिक युग की अवधारणा की बात है, इसका संबंध ठोस पूँजीवादी वास्तविकता से कम ही है।

यह कहना आवश्यक नहीं कि ऐसे समय में जबकि वास्तविक घटनाएँ पूँजीवाद के सरल रूपांतरण द्वारा स्वयं श्रेष्ठतर भविष्य की क्षीणप्राय आशा को प्रकट करती हैं, साम्राज्यवादी सिद्धान्तकारों की स्थिति में इस प्रकार के परिवर्तन आकस्मिक नहीं समझे जा सकते। एक ओर तो वे पूँजीवाद के स्वचालित पुनर्नवीकरण के संबंध में टूट रहे भ्रम को प्रदर्शित करते हैं और दूसरी ओर, मेहनतकश जनता के ध्यान को वर्तमान की ठोस समस्याओं से हटाने की इच्छा को प्रतिबिंबित करते हैं।

साम्राज्यवादी सिद्धान्तकार यह प्रभाव उत्पन्न करने की जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं कि ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन शीघ्र होने वाले हैं जो वर्तमान समाजों से भिन्न एक नये समाज के निर्माण की ओर अग्रसर होंगे जिसके लिए विद्यमान मूल्यांकन, अवधारणाएँ और कसौटियाँ अव्यवहार्य होंगी। इस विचार को क्रान्तिकारी नवीकरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पूँजीवादी विचारक कहते हैं कि सामाजिक जीवन में कम्युनिस्टों की कल्पना से भी अधिक गंभीर और सर्वग्राही परिवर्तन होने वाले हैं। दूसरा वक्तव्य यह है कि समाजवादी रूपांतरण समकालीन समाज की अति सामान्य प्रक्रिया का अंश मात्र है। वास्तविक तथ्य यह है कि यह सामाजिक विकास की निरंतरता (सातत्य) को, घटनाओं की ऐतिहासिक निरंतरता को, और अंतिम विश्लेषण में ऐतिहासिक प्रक्रिया की नियम शासित प्रकृति को अप्रमाणित करने का प्रयास है। प्रश्न को इस प्रकार उपस्थित करना साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के सामाजिक आदर्शों को और इसकी प्रेरक शक्तियों को अत्यधिक मनमाने दृष्टिकोण की वस्तुओं में परिवर्तित कर देना है।

एक और विषय प्रासंगिक है जिस पर बहुत चर्चा की गई है : इस सिद्धान्त को प्रसिद्ध अमरीकी समाजशास्त्री आल्विन टॉफलर ने अपनी पुस्तक फ्यूचर शॉक में और तत्पश्चात् दि इकोस्पाज्म में सूत्रित किया है। लेखक इस प्रस्थापना से आरम्भ करता है कि वर्तमान समाज ऐसे युग में पहुँच गया है जिसे मुख्य रूप से परिवर्तन द्वारा पहचाना जाता है, और इस समय यह अति गंभीर रूपान्तरणों के कगार पर है। वह मानव समाज के समग्र इतिहास के लगभग 65-65 वर्षों के 800 जीवनकालों में विभाजित करते हुए कहते हैं कि इनमें से 650 जीवनकाल गुफाओं में बिताए गए। केवल पिछले 70 में ही उसके पास लिखित भाषा रही। केवल पिछले छः कालों ने छापे के शब्द देखे हैं। केवल पिछले चार ही सटीकता से समय को माप सके और पिछले दो ने ही बिजली की मोटर का उपयोग किया। मनुष्य समाज के अधिकांश लोग वर्तमान वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के लाभों का उपयोग करने में समर्थ हुए, 800वें जीवन काल में।[1] केवल हाल की और विशेष रूप से विद्यमान जीवित पीढ़ियाँ ही जीवन की ऐसी प्रचंड गति में सम्मिलित हैं जिनकी कल्पना भी पूर्ववर्तियों में कोई नहीं कर सकता था। उनके पास अत्यधिक जटिल प्राविधिक उपकरण हैं, वे अधिक ऊर्जा का उपयोग कर सकते हैं, उनके पास सूचना की क्षिप्रतम व्यवस्था है और वैज्ञानिक विकास पर पहले सभी की अपेक्षा अधिक खर्च कर सकते हैं।

टॉफ्लर मानते हैं कि आधुनिक पूँजीवादी समाज अब अधिक समय तक सामान्य तरीकों से विज्ञान और प्रविधि के विकास को जारी नहीं रख सकता, लेकिन अपने इन सचमुच निर्विवाद वक्तव्यों में से लेखक निजी निष्कर्ष निकालता है। अर्थात् प्रत्येक कल्पनीय क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता स्वीकार की जा रही है वह वर्ग संबंधी संदर्भ को स्पष्ट रूप से पृथक् कर देता है। बर्जेजिन्स्की की तरह ही उसने भी वर्तमान युग के पूँजीवाद और समाजवाद के बीच मुख्य अन्तर्विरोधों को गौण अन्तर्विरोधों के समूह में विलीन करने का निश्चय कर रखा है तथा पूँजीवाद के दोषों को संक्रमण काल की विशेषताओं के रूप में मान लिया है। वह लिखते हैं - ''क्रान्ति संस्थाओं व सत्ता संबंधों को छिन्न-भिन्न कर देती है। स्पष्ट रूप से यही है जो आज सभी उच्च प्राविधिक राष्ट्रों में हो रहा है'''। यह एक ऐसा समाज है जो क्रान्तिकारी परिवर्तन की पीड़ा में मग्न है'''जो आज हो रहा है वह पूँजीवाद का संकट नहीं है, अपितु स्वयं औद्योगिक समाज का है, भले ही इसका राजनीतिक रूप कुछ भी क्यों न हो। हम इसके साथ ही साथ एक युवा क्रान्ति का अनुभव कर रहे हैं, एक लैंगिक क्रान्ति का, एक जातीय क्रान्ति का, एक औप-निवेशिक क्रान्ति का, एक आर्थिक क्रान्ति का और इतिहास में सर्वाधिक गहन और शीघ्रगामी प्राविधिक क्रान्ति का अनुभव कर रहे हैं। हम औद्योगिकवाद के सामान्य

1. अल्विन टॉफलर : फ्यूचर शॉक पृ० 15

संकट में जी रहे हैं। एक शब्द में, हम सर्वोच्च औद्योगिक क्रान्ति के मध्य में हैं।" वह अनुभव करते हैं "इसकी परिणति एक नई आश्चर्यपूर्ण अर्थव्यवस्था के रूप में होगी जिसका अनुभव आज तक किसी व्यक्ति को नहीं हुआ।" यह जिन मुद्दों को उठाएगी वे "बीसवीं शताब्दी के भीषण संघर्ष को कम कर देंगी—पूँजीवाद एवं कम्युनिज्म के संघर्ष को तुलनात्मक रूप से महत्वहीन कर देंगी। क्यों ये मुद्दे आर्थिक और राजनीतिक कठमुल्लापन से दूर ले जाएँगे।" इसके अनुसार टॉफलर की 'सैद्धान्तिक खोज' यह है कि वह एक साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा का भी प्रयत्न करते हैं और क्रान्तिकारी की भूमिका भी निभाना चाहते हैं। इस दृष्टि से वह पूँजीवाद तथा कम्युनिज्म के बीच विद्यमान विवाद को गौण बना देते हैं और इसका सही अभिप्राय स्पष्ट किए बिना सर्वोच्च औद्योगिक क्रान्ति के बारे में बात करने लगते हैं।

अपनी नई कृति 'दि इको-स्पाज्म रिपोर्ट'[3] (न्यूयार्क, 1975) में टॉफलर संकट के समाधान के संबंध में अपनी अनुशंसाओं को ठोस रूप देने का प्रयास करते हैं। वह अपनी कृति के मुख्य विचार को सादे कागज पर सूचित करते हैं। वास्तव में वह 'फ्यूचर शॉक' की सामान्य अवधारणा को ही दुहराते हैं लेकिन 1974-75 में पूँजीवादी देशों को जकड़ने वाले संकट की स्थितियों के अनुकूलित करते हुए। उनका यह विश्वास है कि आज जो कुछ दिखाई दे रहा है वह सामान्य आर्थिक उथल-पुथल नहीं है, बल्कि कुछ अधिक गहरी घटना है जिसे पारंपरिक अर्थशास्त्र के ढाँचे में नहीं समझा जा सकता। यही कारण है कि चकित (उद्भ्रान्त) अर्थशास्त्री शिकायत करते हैं कि "पुराने नियम अधिक समय तक काम नहीं दे सकते।" टॉफलर स्वीकार करते हैं कि हम औद्योगिकवाद के सामान्य संकट के साक्षी हैं और साथ ही अर्थव्यवस्था के ह्रास के, पश्चिम के ऊर्जा पर आधारित होने और इसके मूल्यों की समस्त व्यवस्था का ह्रास होने के साक्षी हैं। उनके पर्याप्त रूप से युक्तिहीन निराशावादी निष्कर्ष उन्हें इस घोषणा से नहीं रोकते कि सर्वोच्च औद्योगिक सभ्यता का उदय हो गया है जो औद्योगिक न होकर प्राविधिक है।

निःसंदेह, व्यावहारिक अनुशंसाएँ ('संक्रमण काल के लिए कार्य नीति') प्रस्तुत करने के लिए टॉफलर के प्रयास पूर्णतया असहाय हैं। अधिक से अधिक, वे केवल प्रक्रिया का पुनरुत्पादन करते हैं जो पहले से ही इजारेदार पूँजीवाद की गहराइयों में विकसित हो रही है: अन्तर्राष्ट्रीय निगमों के संक्रमणकालीन विस्तार, दीर्घकालीन आयोजनों का समर्थन—श्रम शक्ति का सेवा उद्योगों में संचरण और इसी

1. वही पृ० 185-86
2 वही—पृ० 195
3 टॉफलर 'इको–स्पाज्म' का प्रयोग समकालीन पूँजीवाद के संकटों को वर्णित करने के लिए करते हैं।

प्रकार के कार्यों की पूर्ति। यह केवल गलत अवधारणा का परिणाम है कि इन्हें पूँजीवाद के विकल्प के रूप में माना जा सकता है।

'फ्यूचर शॉक' से तुलना करने टॉफलर की इस बात की रचना को उनके आगे बड़े कदम के रूप में नहीं देखा जा सकता। तथापि यह इस अर्थ में कुछ रुचि उत्पन्न करती है कि यह पूँजीवादी समाजशास्त्रीय चिन्तन के विकास की 1970 के आरंभ की निश्चित धारा को प्रकट करती है। 'प्राविधिक नियतिवाद' की सामान्य अवधारणा की रक्षा के लिए किए गए प्रयास की और बढ़ती हुई दरारों को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है। साम्राज्यवादी सिद्धान्तकार कुछ अधिक ठोस निष्कर्षों और सिफारिशों से उसे और पुष्ट करते हैं। यही टॉफलर ने भी किया है और डब्ल्यू० रोस्तोव, डी० बेल तथा जो० गॉलब्रेथ ने भी निस्संदेह अपने-अपने ढंग से। तथापि तथ्य यह दिखाते हैं कि पूँजीवादी धारणा के समर्थक इस मार्ग से थोड़ा ही प्राप्त कर सकते हैं। जीवन की अमूर्त प्रस्थापनाओं का कोई भी अनुमान और वास्तविकता से उसकी तुलना या तो कम्युनिस्ट विरोधी सिद्धान्तों का अति दिवालियापन प्रदर्शित करती है अथवा सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं वास्तविक संशोधन द्वारा सुधार की आवश्यकता प्रदर्शित करती है। प्राविधिक नियतिवाद के समर्थकों के संबंध में भी यह सच है।

इसके प्रमाण वाल्ट रोस्तोव की कृति "पॉलिटिक्स एंड द स्टेजज ऑफ ग्रोथ" में पाए जा सकते हैं जहाँ कि वह गृह-नीति एवं विदेश नीति के ठोस मुद्दों पर सामान्य निष्कर्षों को लागू करने का प्रयास करते हैं। इस स्थापना से आरंभ करके कि 1970 का दशक राजनीति का दशक होगा, ठीक वैसे ही जैसे कि 1960 का दशक आर्थिक उन्नति से लक्षित किया गया था, वह राजनीति की दृष्टि को सुरक्षा, कल्याण और संवैधानिक व्यवस्था—जिसमें विकास की मंजिलें भी सम्मिलित हैं—की आर्थिक समस्याओं के साथ समन्वित और संतुलित करने के प्रयास के रूप में परीक्षा करने का प्रयास करते हैं।[1] वह अब भी विश्वास करते हैं कि उनका मुख्य कार्य संयुक्त राज्य अमरीका में प्राविधिक समाज के बचाव के लिए बोलना है लेकिन वह वितरण के स्तरीकरण और अन्य मानवीय कार्यों और सामाजिक उद्देश्यों के लिए नागरिकों के हक बढ़ाए जाने पर अधिक बल देते हैं।

यह स्वीकार करते हुए कि 1970 के दशक के आरंभ में संयुक्त राज्य अमरीका को गंभीर कठिनाइयों तथा अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ा, रोस्तोव अपनी अनुशंसाओं में स्पष्ट रूप से स्वयंसिद्ध बातों को दुहराने से आगे नहीं बढ़ते। गृहनीति के क्षेत्र में वह अत्यन्त अस्पष्ट दुविधापूर्ण फार्मूलों का—क्रियाकलाप के

1. रोस्तोव, पालिटिक्स एंड स्टेजेज आफ़ ग्रोथ, कैंब्रिज, 1971, पृ० 2

गतिशील संतुलन, आर्थिक उन्नति, कल्याण, राष्ट्रीय सुरक्षा और सवैधानिक व्यवस्था का समर्थन करते हैं। जहाँ तक विदेश नीति का सबध है वह अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य मे शाति सन्तुलन की एक बार फिर वकालत से अच्छी कोई बात नही सोच पाते। एक शब्द मे, रोस्तोव वर्तमान घटनाओ के वर्गीय सारतत्व से पाठको को पृथक् रखने की और पूँजीवाद को पुन. स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। जहाँ तक व्यावहारिक सुझावों का मामला है, वह टॉफलर जैसे ही हैं उनमें सत्ताधारी वर्ग द्वारा पहले से व्यवहृत सरकारी नीति से अधिक कुछ नही।

क्या पूँजीवाद के अन्तर्गत नियोजित अर्थव्यवस्था संभव है ?

इस बात को जानते हुए भी कि वर्तमान मे पूँजीवाद सकटापन्न है न तो रोस्तोव और न टॉफलर ही कोई गंभीर सिफारिशें करने का साहस करते हैं, वे वस्तुतः न चाहते हुए भी अपनी अवधारणाओ की विशुद्ध रूप से प्रचारात्मक प्रकृति को ही सामने ला रहे हैं।

जे० के० गालब्रेथ की स्थिति इससे कुछ भिन्न है। केवल इसलिए नही कि वह स्वीकार करते हैं कि पूँजीवाद मे अन्तर्विरोध बढ़ रहे है, और तदनुसार वह अपने पुराने विचारो मे सशोधन भी करते हैं, अपितु वह शासक वर्ग से भी हो रहे परिवर्तनों के प्रति विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया प्रकट करने का अनुरोध भी करते हैं। उनके विचारों का यह विकास सचमुच महत्वपूर्ण है।

यह एक लाक्षणिक बात है कि पिछले कुछ ही वर्षों के भीतर उनकी प्रकाशित पुस्तक **"द न्यू इडस्ट्रियल स्टेट"** में वह इस बात से सहमत हो जाते हैं कि विरोधी शक्तियों—इजारेदारियों, ट्रेड यूनियनों और राज्य—का सामान्य सतुलन एक तो इजारेदारियों के पक्ष में बदल जाता है और दूसरे, 'परिपक्व निगम' मूल्य कम करने की इच्छा नही रखते। दूसरी ओर, यह स्पष्ट हो गया है कि बढ़ती हुई समृद्धि के बावजूद मेहनतकश जनता वर्ग संघर्ष को समाप्त करने को तत्पर नही है। गालब्रेथ की मान्यता है इन तत्वों के सम्मिलित हो जाने के आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था मे मुद्रा-प्रसार की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी है।

इसके अनेक कारणों में से एक की ओर इशारा करते हुए वह घबराते नही। गत 1969 मे उन्होंने अपनी पुस्तक **"हाउ टु कन्ट्रोल द मिलिटरी"** मे लिखा था : "यहाँ हम अमरीका की राजनीतिक और आर्थिक प्रणाली, जिसकी रूपरेखा इसके पूर्वजों ने बनाई थी और जो आज भी युवकों के समक्ष चित्रित की जाती है, के स्पष्ट विपर्यय को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। वह दृष्टिकोण अन्तिम सत्ता, अन्तिम सप्रभुता के जनता मे निहित होने को स्वीकार करता है। और माना जाता है कि यह सत्ता सर्वग्राही है। राज्य की परिधि के अन्तर्गत नागरिक उन व्यक्तियों—राष्ट्रपति तथा काग्रेस के सदस्यों के माध्यम से जिन्हें कि वह चुनता है अपनी

इच्छा को अभिव्यक्त करता है। निजी क्षेत्र में वह इस कार्य को बाजार में वस्तुओं की खरीद करके पूरा करता है। वे (नागरिक) सम्बन्धित आपूर्ति-फर्मों को—जैसे जनरल मोटर्स, जनरल इलैक्ट्रिक, न्यूजर्सी का स्टैंडर्ड आयल—हिदायत देते हैं कि वे किस वस्तु का निर्माण करेंगी और बेचेंगी।

"तथापि, यहाँ हम सशस्त्र सेनाएँ और निगमों को पाते हैं, जो उनकी आपूर्ति करते हैं, निर्णय करते हैं और कांग्रेस को तथा जनता को निर्देश देते हैं। जनता उनको स्वीकार करती है और बिल चुकाती है।"[1]

संयुक्त राज्य अमरीका में तथाकथित सोवियत खतरे और कम्युनिस्ट विरोधी उन्माद की खिल्ली उड़ाते हुए गालब्रेथ कहते हैं—"पुराने नारे—हमें विश्वव्यापी कम्युनिस्ट हमले का मुकाबला करना चाहिए, हमें आक्रमण को पुरस्कृत नहीं करना चाहिए, हमें अपने बहादुर साथियों का साथ देना चाहिए—सिर्फ तब तक ही नहीं लगाये जाते रहे जब तक कि बार-बार दुहराने से ही उनका अर्थ समाप्त नहीं हो गया बल्कि घटनाओं ने ही उन्हें हास्यास्पद सिद्ध नहीं कर दिया।"[2] लेकिन बड़ी इजारेदारियों के प्रवक्ता के रूप में वह उनकी भूमिका को सैनिक औद्योगिक कॉम्प्लैक्स के आधिपत्य में कम करके आँकते हैं और इसकी सारी जिम्मेदारी पेंटागन तथा सेना पर डाल देते हैं।

स्पष्ट रूप से समस्या के समाधान से कतराते हुए गालब्रेथ अनिवार्य रूप से अस्थिर और अनिश्चित निष्कर्षों पर पहुँच जाते हैं। वह कहते हैं कि सैनिक औद्योगिक कॉम्प्लैक्स की सत्ता में कटौती से अमरीकी अर्थव्यवस्था सबल हो सकती थी लेकिन इस प्रस्ताव के साथ वह इतनी शर्तें लगा देते हैं कि वह स्वयं ही अपनी सिफ़ारिशों की व्यावहारिकता पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं।

कुछ समय पश्चात् ही गालब्रेथ को फिर एक बार आधुनिक पूँजीवाद के लक्षणों के अपने मूल्यांकन में संशोधन के लिए विवश होना पड़ा। फ़रवरी 1971 में पेरिस में दिए भाषण में तथा उसके बाद अप्रैल 1972 में इटली की एक पत्रिका को दिये साक्षात्कार में, उन्होंने कहा कि पूँजीवादी समाज संसाधनों और उत्पादन के वितरण के अपने तरीकों में न्याय सम्मत नहीं रहा और मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति पर विजय पाने में इसकी अक्षमता रही। यह आबादी की मकान, नगरीय यातायात, चिकित्सा सहायता आदि प्राथमिक आवश्यकताओं को विवेकपूर्वक सन्तुष्ट करने में अक्षम है और साथ-ही-साथ भारी मात्रा में ऐसी वस्तुओं के उत्पादन में लगा है जो या तो निरर्थक हैं अथवा सामान्य रूप से हानिकारक हैं। शस्त्रास्त्रों के निर्माण पर तथा प्रशासनिक तंत्र के भरण-पोषण पर अत्यधिक व्यय ने अर्थव्यवस्था को खोखला कर दिया है।

---

1 जॉन केनेथ गालब्रेथ, हाउ टु कन्ट्रोल द मिलिटरी, न्यूयार्क 1969 पृ० 30-31।
2 वही पृ० 169

उनका विचार है कि इस दयनीय स्थिति का उपचार कीमतों और वेतनों पर राज्य के नियंत्रण की नई व्यवस्था द्वारा किया जा सकता है जिसे प्रमुख निगमों के साथ संयुक्त रूप से लागू किया जाना चाहिए। पूंजीवादी देशों को आतंकित कर रहे सामाजिक खतरे के अपने समक्ष विद्यमान रहते निगम वस्तुतः ऐसा करने में रुचि ले सकते हैं।

तत्पश्चात्, उन्होंने इन विचारों को 1973 में बोस्टन से प्रकाशित अपनी पुस्तक "इकोनॉमिक्स एण्ड पब्लिक पर्पज" में विस्तृत किया है। यह नई प्रमुख कृति उनकी ग्रन्थत्रयी में अन्तिम है। (अन्य दो हैं "दि एफ्लुएण्ट सोसायटी" और "द न्यू इण्ड-स्ट्रियल स्टेट" जो क्रमश 1958 और 1967 में प्रकाशित हुई)। एक ओर तो वह पुराने निष्कर्षों को दुहराते हैं और दूसरी ओर उनको संशोधित करते हैं। गाल-ब्रेथ का अन्तर्विरोधी सिद्धान्त स्वयं पूंजीवादी वास्तविकता के अन्तर्विरोधों को प्रतिबिम्बित करता है। उनके इस प्रयास से कुछ नये लक्षण भी, जो हाल के वर्षों में उभरे हैं, सामने आये है।

घटनाक्रम ने, विशेष रूप से मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति की निरंतरता ने, उनके इन पुराने कथनों को कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के विकास के साथ श्रमिक जनगण को उधर ले जा सकेगी जिसे वह 'समृद्ध समाज' कहते हैं—पूर्णतया खंडित कर दिया है।

गालब्रेथ के पुराने कथनों के बावजूद तथाकथित योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (अर्थात प्रौढ़ निगम) और बाजार व्यवस्था जिसमें छोटी फर्में और साधारण उद्यमी भी सम्मिलित हैं, के बीच शक्तियों के परस्पर संबंधों में अत्यंत गहन और स्पष्ट परिवर्तन हो गया है। गालब्रेथ का उद्देश्य (आशय) वर्तमान पूंजीवादी समाज को विरोधों के स्थान पर 'नियोजन' और 'बाजार' अर्थव्यवस्था के बीच विरोध में विश्वास उत्पन्न करना है। वह इन दोनों श्रेणियों में से प्रत्येक को कुछ-कुछ स्वायत्त, पृथक्कृत तथा सामाजिक रूप से सजातीय घटनाक्रिया मान लेते हैं। लेकिन वास्तव में बड़े निगम, जो राज्यतंत्र से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते हैं, तथाकथित बाजार व्यवस्था का अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए व्यापक रूप से उपयोग करते है। इस प्रकार कुल मिलाकर वे पूंजीवादी समाज के सामाजिक अंतर्विरोधों को तीव्र कर रहे हैं।

यह अधिकाधिक प्रमाणित होता जा रहा है कि निगमों और पूंजीवादी राज्य द्वारा व्यवहार में लाई जा रही आर्थिक उन्नति की नीति किस प्रकार पूंजीवाद को सुदृढ़ नहीं कर सकती। इसके विपरीत, पहले से विद्यमान अंतर्विरोधों के साथ-साथ पूंजीवादी विश्व नए अंतर्विरोध उत्पन्न कर रहा है जिनमें निरंकुश मुद्रा-स्फीति का संकट महानगरों का संकट और पर्यावरण के भग होने का संकट भी सम्मिलित है।

इन सब पर तथा अन्य नकारात्मक घटनाओं पर विचार करते हुए गालब्रेथ अमरीकी अर्थव्यवस्था के संबंध में एक अति कठोर टिप्पणी करते हैं—कि अर्थव्यवस्था में अपने को पूर्ण बनाने की प्रवृत्ति होती है अब इस पर विश्वास नहीं किया जाएगा। असमान विकास, असमानता, अगंभीर तथा अनियमित नव्य प्रयोग पर्यावरण पर आक्रमण, व्यक्तित्व की उपेक्षा, राज्य पर नियंत्रण, मुद्रास्फीति, अन्तर औद्योगिक सहयोग में असफलता व्यवस्था के अंग बन गए हैं जैसे कि वे वास्तविकता के ही अंग हैं। ये साधारण खामियाँ नहीं हैं, जैसे कि मशीन पर विघ्न आकृति का धक्का हो जिसे कोई एकदम पहचान सकता है और हटा सकता है और इस प्रकार वह ठीक कर दी जाती है। वे गहराई में व्यवस्था से जुड़ी हैं।"[1]

तो फिर, उनकी राय में क्या किया जाना चाहिए? "न तो अर्थशास्त्री ही क्रांतिकारी होते हैं और न उनकी पुस्तकें ही,"[2] वह अपनी पुस्तक के आरंभ में ही यह लिखते हैं किंतु फिर भी वह अपने कार्यक्रम को 'नया समाजवाद' कहता है। जिसके संबंध में उनका विश्वास है कि वह गंभीर असुविधा, उल्लेखनीय सामाजिक अव्यवस्था और कभी स्वास्थ्य और जनकल्याण को घातक क्षति पहुँचाने की कीमत अदा करके ही हम उससे निस्तार पा सकते।

"नया समाजवाद विचारधारात्मक नहीं होगा यह परिस्थितियों की विवशता से उत्पन्न होगा।"[3]

अब, आर्थिक उन्नति के प्रभाव और राज्य, इजारेदारियों और ट्रेड यूनियनों के बीच गतिशील सतुलन प्राप्त करने की अपेक्षा गालब्रेथ 'नियोजन व्यवस्था' तथा 'बाजार व्यवस्था' के बीच अंतर्विरोधों को समाप्त करने के कार्य को केंद्रीय महत्व देते हैं। वह उनके विषय में मूलरूप से नई आर्थिक एवं सामाजिक संरचना के रूप में सोचते हैं जिनकी रूपरेखा समस्त पूँजीवादी विश्व विकास और परस्पर क्रिया के क्रम में नवीकरण के लिए तैयार की गई थी।

उनके मत में इन दोनों व्यवस्थाओं के बीच के विरोध को, जिसे कि वह मुख्य सामाजिक विरोध के रूप में चित्रित करते हैं, नियोजन व्यवस्था को (अर्थात् इजारेदारी को) समेकित करके समाप्त किया जा सकता है। सीधे-सादे रूप से आवश्यकता यह मान्यता देने की है कि हमारे विश्वास एवं सुविधाजनक सामाजिक गुण स्वयं हमारे अंदर से नहीं उत्पन्न हुए अपितु नियोजन व्यवस्था से प्राप्त हुए हैं।"[4] इसलिए वह इसे राजनीतिक एवं आगे बढ़े हुए विशेषाधिकार प्राप्त क्षेत्र के रूप में चित्रित करते हैं जिस पर कि विश्वास के साथ दावा किया जा सके क्योंकि

1. जॉन केनेथ गालब्रेथ इकनॉमिक्स एंड द पब्लिक पर्पज, बोस्टन, 1973, पृष्ठ 211
2. वही पृष्ठ 17
3. वही, पृष्ठ 277
4. वही, पृष्ठ 225

"नियोजन व्यवस्था के स्वयं अपने प्रयोजन होते हैं और वह उसके अनुसार जनता को व्यवस्थित कर देती है।"[1]

दूसरी ओर, वह राज्य की भूमिका को भी बढाना आवश्यक समझते हैं जिसे कि पूरे समाज के हित के लिए कार्य करना चाहिए क्योंकि 'आधुनिक राज्य'···पूंजीपतियों की कार्यकारिणी समिति नही है अपितु यह प्राविधिक सरचना की कार्यकारिणी अधिक प्रतीत होती है।"[2] सिद्धातत. वह उत्पादन के साधनों के समाजीकरण का विरोध करते हैं क्योकि वह यह सोचते हैं कि सत्ता की समस्या की जडें सामान्यतया सगठन में हैं, निजी उद्योगो मे नही। लेकिन उसके साथ-ही-साथ वह इस स्थापना का भी विरोध करते हैं एक सीमा तक ऐसी कुछ शाखाओ के राष्ट्रीयकरण का समर्थन करके जिनमे लाभ कम होता है किंतु वे सामाज के लिए विशेष रूप से आवश्यक है (मकान निर्माण, चिकित्सा संस्थान···नगर यातायात और कुछ अन्य भी); और अश धारकों से युद्ध उद्योगों के खरीदने की भी बात करते है।

उसका दावा है कि इन उपायो से अधिक प्रगतिशील कर निधान, प्रत्येक नागरिक के लिए निश्चित आय, स्त्रियों के लिए आर्थिक मुक्ति की सुरक्षा, शिक्षा के समान अधिकार सुरक्षित करना, स्वास्थ्य की व्यवस्था को सुधारना और इसी प्रकार के कार्य, जो सब 'जीवन के गुणों' को निर्मित करते हैं, करना सभव होगा।

इसका अर्थ यह है कि गालब्रेथ की 'नए समाजवाद' की अवधारणा के पीछे अति सावधानी भरे ऐसे सुधारो के कार्यक्रम के अतिरिक्त कुछ नही है जिसका राज्य इजारेदारी पूंजीवाद के मुख्य आधारो पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता हो। यह तथ्य अपरिवर्तित रहता है, यद्यपि अपने नवीनतम वक्तव्य में गालब्रेथ सैनिक-औद्योगिक कॉम्प्लैक्स के क्षेत्र सहित उद्योगों की कतिपय पिछडी शाखाओं के राष्ट्रीयकरण के रूप में कतिपय अतिवादी उपायो की संभावनाओं को भी स्वीकार करते हैं। यह सर्वथा स्पष्ट है कि इजारेदारी के अतर्गत राष्ट्रीयकरण से पूंजीवादी समाज की अतर्विरोधी से पूर्ण सामाजिक प्रकृति सुधर नही सकती।

'प्राविधिक' संप्रदाय के दूसरे प्रतिनिधियों की तरह गालब्रेथ भी वैज्ञानिक कम्युनिज्म के निष्कर्षों की उपेक्षा करते हैं। वह ऐतिहासिक प्रक्रिया की मूल नियमितताओ, वर्ग-संघर्ष और मजदूर वर्ग की भूमिका, लेनिन के साम्राज्यवाद के विश्लेषण और समाजवादी क्रांति के उसका सिद्धात जैसे मूल मुद्दों पर अप्रत्यक्ष रूप से विवाद खड़ा करते हैं। इस प्रकार, वर्तमान पूंजीवादी वास्तविकताओ के बहुत से रूपों पर अपने आलोचनात्मक रवैये तथा पूंजीवाद के समर्थन के अति-

1. वही, पृष्ठ 241
2. वही, पृष्ठ 172

घृणित जड़ चिंतन के संशोधन के बावजूद जॉन गालब्रैथ अंतिम विश्लेषण में स्वयं को स्वप्नलोक के निष्कर्षों तक सीमित कर लेते हैं।

वास्तव में, अपनी नवीनतम पुस्तक में उनके तर्क उसी विचार तक सीमित हैं, यानी कि प्राविधिक संरचना के हाथों में पूंजी के क्रियाकलाप का पूंजी के स्वामित्व से तथाकथित पृथक्करण कर दिया जाता है। इसी कारण, वह दावा करते हैं कि प्राविधिक संरचना सामान्य जन हित से संबद्ध होकर स्वयं वर्गोपरि संस्थान में बदल जाती है, अधिक सचित मुनाफों से नहीं। और यह संस्थान सोद्देश्य रूप से अंशधारकों के लिए उदार और निश्चित लाभांशों को सुनिश्चित करने तथा श्रमिकों के लिए उच्च एवं स्थायी वेतन के लिए चिंता करेगा।

वास्तव में ऐसा कुछ भी नहीं होता। पूंजीवादी विश्व का समग्र चित्र पूर्णतया भिन्न है। इजारेदारियां अपने लिए अधिकतम संभव मुनाफा कमाने में लगी हैं। श्रमिक निरंतर किंतु असफलता के साथ अपना जीवन स्तर ऊंचा उठाने का प्रयास करते हैं जबकि प्राविधिक संरचना के प्रतिनिधि इस स्थिति को बदलने के लिए कुछ भी नहीं कर रहे क्योंकि इस मामले में वे कुछ भी करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इसलिए, जॉन गालब्रैथ की अवधारणा न तो कुछ स्पष्ट करती है, और न व्यावहारिक मूल्य का कुछ देती ही है।

अध्याय : 5

आर्थिक विकास की अवधारणाओं का संकट

निराशावाद के उत्स

1970 के पूर्वार्ध में ही यह स्पष्ट हो गया था कि 'प्राविधिक नियतिवाद' का विचार अपने समर्थकों को असमाधेय अन्तर्विरोधों की अंधी गली में ले जा रहा है। पूंजीवादी संबंधों के ('प्राविधिक' सिद्धान्तों में इस प्रकार की परिघटनाएँ जैसे बेरोजगारी, मुद्रा स्फीति एवं वर्ग संघर्ष सुस्पष्ट रूप से अनुपस्थित थीं) सामाजिक वर्गीय सारतत्व से बच निकलने के प्रयास औद्योगिकवाद के समर्थकों के विरुद्ध मुड़ गये।

आज ये सब परिघटनाएँ इतने विशाल अनुपात प्राप्त कर चुकी हैं कि प्रचार संबंधी कोई भी वक्तव्य अधिक समय तक उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

इन घटनाओं के विद्यमान रहते हुए रोस्तोव, बैल, टॉफ्लर और गालब्रेथ पूंजीवादी विश्व में नये और अधिक गंभीर अन्तर्विरोधों के विषय में बात करते हैं। वे सभी 'औद्योगिकवाद' की अवधारणा को किसी भी प्रकार नया रूप देना चाहते हैं और व्यावहारिक सिफारिशें प्रस्तुत करते हैं, जो परीक्षा किये जाने पर सर्वथा असफल प्रमाणित होती हैं?

वैज्ञानिक विचार की यह व्यावहारिक असमर्थता है जो कि 'औद्योगिकवाद' के विचार के गंभीर संकट को सबसे आगे होकर प्रकट करती है। लेनिन के साम्राज्यवाद एवं समाजवादी क्रान्ति के सिद्धान्त के विरोध के लिए प्रचार की एक अवधारणा के रूप में उसकी कल्पना की गयी। इसका जीवन के साथ तीक्ष्ण एवं शान्त न होने वाला अंतर्विरोध है। और यह इस तथ्य के बावजूद कि इस मंच पर विपरीत ही नहीं विरोधी—अत्यधिक आशावादी और अत्यधिक निराशावादी—भविष्यवाणियाँ साथ-साथ भली-भाँति देखी जा सकती हैं। दूसरी ओर, औद्योगिक समाज की अवधारणा को पूंजीवाद के बढ़ रहे संकट द्वारा उत्पन्न नयी परिघटना के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करते हुए गालब्रेथ और उनका अनुसरण करने वाले अन्य बुर्जुआ पण्डितों ने अपनी विचारधारा में एक नये महत्त्वपूर्ण तत्त्व को प्रविष्ट किया।

अन्य चीज़ों के साथ उन्होंने सुझाव दिया कि मुद्रा-स्फीति और संकट की अन्य परिघटनाओं की जड़ें भी अत्यधिक आर्थिक विकास व सामान्य उत्पादन में सतत वृद्धि के लिए प्रयास की नीति में निहित हैं जो दीर्घकाल में जीवन के गुणों को क्षति पहुँचाती है।

1950 और 1960 के दशकों में पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने जो लिखा और बोला उससे तुलना करने पर इन विचारों पर कुछ अन्य अभिप्राय हावी दिखायी देते हैं। उनकी वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के मंगलकारी परिणामों की रंगीन आशाओं का स्थान ये वक्तव्य ले रहे हैं कि यह मानव समाज के लिए उपयोगी होने की अपेक्षा अधिक हानिकारक प्रभावित हो रहा है। पश्चिमी पंडितों के झूठे आशावाद का स्थान मायूसी और भ्रान्ति ने ले लिया है। बेल निष्कर्ष निकालते हैं; युक्तिसंगतता की, अथवा कहना चाहिए कि एक विशिष्ट प्रकार की तर्क संगति की आशाएँ निश्चित रूप से मन्द हो गयी हैं। "समाज के न्याय संगत संगठन की अवधारणा गड्डमड्ड हो गई है।"[1] औद्योगिकवाद एक अन्य प्रमुख प्रवक्ता फ्रांसीसी विद्वान् रेमण्ड आरो ने अपनी पुस्तक का नाम रखा है : ला डिसइल्यूज़न्स डु प्रोग्रेस।[2]

'औद्योगिक' अथवा 'औद्योगिकोत्तर' समाज, के पूर्ववर्ती वर्णनों में वर्तमान पूँजीवाद के स्थायी बेरोज़गारी, मुद्रास्फीति, समाज के समस्त चारित्रिक और नैतिक मूल्यों का बढ़ता हुआ संकट—जैसे भयानक रूपों को साधारणतया मौन रह कर उपेक्षा कर दी जाती थी, इस विश्वास पर कि विज्ञान एवं प्रविधि के विकास होने पर मनुष्य समाज इन सब बुराइयों से स्वतः मुक्त हो जाएगा। अब बुराइयों को सहज रूप से ही सीधे-सीधे अशुभ वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के माथे मढ़ दिया जाता है जिसे कि भद्दे नगरीकरण के लिए, आबादी के विस्फोट के लिए, पर्यावरण को छिन्न-भिन्न करने के लिए और आणविक युद्ध के ख़तरे के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी मान लिया गया है।

संयुक्त राज्य अमरीका की वैज्ञानिक राष्ट्रीय अकादमी के अध्यक्ष फ़िलिप हैंडलर कहते हैं कि विज्ञान एवं प्रविधि को दोषी ठहराना (अभिशाप देना) राष्ट्रीय सनक बन गयी है, अभी कल तक इनको जीवन के बाहुल्य का वरदानमाना जाता था।

आज अधिकाधिक चिन्ताकुल आवाजें उठ रही हैं कि परमाणु के विषय में बात करने का अर्थ है भविष्य में होने वाला आणविक सर्वनाश, रेडियो-धर्मिता का विस्तार और प्रजनन संबंधी घातक परिवर्तन; कि भारी उद्योग प्रत्यक्षतया

1. डेनियल बेल 'टैक्नोक्रेसी एंड पॉलिटिक्स' इन सर्वे 1971, खंड 16, अंक 6, पृ॰ 52-24
2. रेमंड आरों 'ला डिसइल्यूज़न्स डु प्रोग्रेस' एसे सुरला डायलेक्टीक डि ला मोडेनिटी, पेरिस 1969

पर्यावरण समुद्रो और नदियो के प्रदूषण के लिए जिम्मेदार है; आधुनिक औषधि विज्ञान की उपलब्धियाँ कुरूप अपंग बच्चो के जन्म के लिए और औषधि सेवन के व्यसन के लिए जिम्मेदार हैं। मानव मस्तिष्क के कार्यों के सबध मे तथा प्रजनन संबंधी यात्रिकता के विषय मे बढता हुआ ज्ञान निरकुशता की ओर ले जा रहा है, चिकित्सा और स्वच्छता के क्षेत्र मे प्राप्त सफलताएँ आबादी बढने के लिए उत्तरदायी है आदि-आदि।

यह बहुत पहले की बात तो नही है जब पूंजीवादी सिद्धातशास्त्री प्राविधिक प्रगति तथा आर्थिक विकास के प्रशसा भरे गीत गाया करते थे और भावुकतापूर्ण तर्क देते थे कि इससे बाहुल्य की ओर जाना सभव होगा; और बहुलता से 'सामूहिक उपभोग' की ओर जिससे सार्वभौम समृद्धि सुनिश्चित होगी। किन्तु यही आवाजें तब शोकगीत बन गयी जब यह दिखाई देने लगा कि प्राविधिक प्रगति दो स्वामियों की सेवक नही है और वह पूंजीवाद को अन्तर्विरोधो से नहीं बचा सकती। बूर्ज्वा पडितो के लिए यह अधिक उपयुक्त होता कि वे अपनी कृतियो को 'प्रगति से मोह भंग' के बजाए 'प्रगति की भ्रान्ति' का नाम देते।

किसी भी प्रकार के जादूटोनो से चाहे वे वैज्ञानिक और प्राविधिक ही क्यो न हो सामाजिक प्रगति को नही रोका जा सकता। आज की दुनिया मे आर्थिक प्रगति को रोकने का आह्वान देना और वह भी ऐसे समय जबकि बहुत से देश शताब्दियो से दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में जी रहे हैं, और लाखों लोगो को यह भी नही मालूम कि आज उन्हें खाना मिलेगा भी या नही और कल वे अपने बच्चों के लिए भोजन प्राप्त कर सकेंगे या नही।

फिर भी पूंजीवादी सिद्धान्तकार 'प्राविधिक' सिद्धान्त के सबध मे इस नये वक्तव्य के विषय मे प्राविधिक विकास के नकारात्मक परिणामो को सामने लाते हुए अपने अनुमानों को जारी रखेंगे। उनका खयाल है कि पूंजीवाद के अन्तर्गत प्राविधिक प्रगति की विध्वसक प्रकृति बन गयी है वह स्वय प्राविधिक प्रगति के कारण उत्पन्न हुई है, पूंजीवाद के कारण नही।

अधिसंख्य न होने पर भी, अनेक पूंजीवादी अन्वेषक आर्थिक उन्नति मे अपने मोहभंग की अर्थात् उन आशाओ के नष्ट होने की अभिव्यक्ति करते हैं कि विज्ञान और प्रविधिक विकास से पूंजीवादी समाज की अधिकाश तात्कालिक समस्याओं को सुलझाना संभव होगा। वे सभी अब ऐसे बलि के बकरे को खोज रहे हैं जिस पर इन आशाओ के पूरा न होने की जिम्मेदारी डाल सकें, और स्वभावतः वे पूंजीवाद को मुख्य अपराधी नही मानते। उनमें से बहुत से पूछते हैं कि क्या आधुनिक समाज के अन्तर्विरोध आर्थिक विकास के कारण उत्पन्न हुए हैं या इसके बिना ही उत्पन्न हुए हैं। और अधिकाधिक बूर्ज्वा सिद्धातकार माँग करते हैं कि 'अनिशय' आर्थिक उन्नति को प्रतिबधित (सीमित) कर देना चाहिए। 'सामूहिक उपभोग'

और 'सार्वभौम समृद्धि' पर आधारित समाज की भन्निकटता के संबंध में आशावादी भविष्यवाणियों के स्थान पर विश्वव्यापी पर्यावरणिक महाविनाश अथवा प्रलय के बारे में अशुभ भविष्यवाणियाँ की जा रही हैं।

रोम का क्लब : जीवित रहने के उपाय

प्रलय के नये विचार का सर्वाधिक पूर्ण रूप में नया विवरण रोम के क्लब[1] के तत्त्वावधान में आयोजित एक मौलिक अध्ययन में प्रस्तुत किया गया है जिसे प्रविधि के मैसाच्यूट्स संस्थान के डेनिस मीडोज के नेतृत्व में किया गया था। पुस्तक[2] में अनेकों गणनाएँ, तालिकाएँ, रेखाचित्र दिए गए हैं : इसमें औद्योगिक समाज के विकास की 'खतरनाक' प्रवृत्तियों के न केवल सांगोपांग विश्लेषण का दावा किया गया है बल्कि यह दावा करने का भी साहस किया गया है कि इसमें आसन्न संकट को दूर करने के लिए ठोस उपायों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई है।

पूंजीवादी विचारकों के मध्य हाल के वर्षों में निरंतर विद्यमान प्रवृत्ति के अनुरूप लेखकों ने वर्तमान काल की संकटपूर्ण प्रकृति और आसन्न परिवर्तन के क्रांतिकारी चरित्र को पूरे बल के साथ प्रदर्शित किया है। 'प्राविधिक' दिशा के अन्य अनुगामियों की तरह ही उन्होंने भी इसके समक्ष विद्यमान समस्याओं की जटिलता के संबंध में मानव समाज को चेतावनी दी और यह उल्लेख किया है कि 'परंपरागत संस्थाएँ और नीतियाँ उनका सामना नहीं कर सकती और न वे उनके सारतत्व को ही पूरी तरह ग्रहण कर सकती है।[3] इस सामान्य वक्तव्य से संतुष्ट न होकर लेखकों ने इन समस्याओं के सार को इस प्रकार स्पष्ट किया है : धन के ढेर के बीच निर्धनता, संपन्नता में दरिद्रता, वातावरण का अधःपतन, संस्थाओं में विश्वास का नष्ट होना, अनियन्त्रित नगरीय विस्तार, नियोजन की असुरक्षा; युवा

---

1. रोम का क्लब . वैज्ञानिकों, व्यवस्थापकों, जननेताओं, राजनीतिज्ञों का 1968 में स्थापित एक अन्तर्राष्टीय संगठन। रोम के क्लब के संगठनकर्ताओं में इटली के फिएट उद्योग की निरीक्षक कौंसिल पूर्व अध्यक्ष औलियो पेसेई भी सम्मिलित थे, जिन्होंने इसे उल्लेखनीय राजनीतिक अधिकार प्रदान रने की भी व्यवस्था की। उदाहरण के लिए, फ़रवरी 1974 में भावी कार्यक्रम पर विचार के लिए साल्ज़बर्ग के समीप हुई बैठक में आस्ट्रिया के चांसलर बूनो क्रीस्की, मैक्सिको के राष्ट्रपति लुइस एकें वेरिया, सेनेगल के राष्ट्रपति लियोपोल्ड सेन्गोर, कनाडा के प्रधानमंत्री पियरे इलियट त्रूदो, स्वीडन के प्रधानमंत्री ओलोफ पाम, नीदरलैंड के प्रधानमंत्री जे-एम डेन यूइल और अन्य प्रसिद्ध राजनयिक उपस्थित थे।
2. डोनेला एच०मीडोज, डेनिस एच मीडोज, आर्गेन रेंडर्स विलियम डब्ल्यू बेहरेंस 'द लिमिट्स टू ग्रोथ', 'ए रिपोर्ट फ़ार ए क्लब ऑफ़ रोम्स प्रोजेक्ट' ऑन द प्रेडिकमेंट ऑफ़ मेनकाइंड, यूनिवर्सल बुक्स, न्यूयार्क, 1972
3. वही, पृ० 9-10

वित्तीय एवं आर्थिक विघटन।"[1]

ऐसा प्रतीत हो सकता था कि इस प्रकार की स्पष्ट व बेलाग घोषणा के बाद उपर्युक्त सभी तथ्यों का उचित मूल्यांकन प्रस्तुत किया जाएगा। लेकिन लेखकों ने भिन्न मार्ग को ही वरीयता दी। उन्होंने वास्तव में इस प्रकार के महत्वपूर्ण विषयों पर मौन रहना ही ठीक समझा, जैसे, श्रम और पूंजी के बीच सामाजिक अन्तर्विरोधों का बढ़ना, मेहनतकश जनता के शोषण का बढ़ना, और मजदूर वर्ग का अधिकाधिक विस्तार और बेरोजगारी में वृद्धि। पूंजीवादी विश्व में औद्योगिक और विकासशील देशों के बीच बढ़ते हुए विरोध के विषय में एक शब्द भी नहीं कहा गया, नव उपनिवेशवाद की नीति के विरोध में, हथियारबंदी की दौड़, समस्त मानवता के विरुद्ध सैन्यवाद और आक्रमण की नीति के जहरीले परिणामों के संबंध में कुछ भी नहीं कहा गया।

मीडोज और उसके सहयोगी अपने प्रतिवेदन में विश्व से संबंधित पांच मुख्य प्रवृत्तियों की गतिशीलता की खोज करते हैं: औद्योगीकरण का तेजी से विस्तार, जनसंख्याओं में तेजी से वृद्धि, व्यापक कुपोषण, नवीकरणयोग्य संसाधनों की समाप्ति और वातावरण का विकृत होना। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विश्व विकास के बुनियादी कारकों का चुनाव इस प्रकार किया गया है कि उन पर ध्यान केन्द्रित किया जाए जो कमोबेश समान रूप से पूरे मानव समाज से संबंध रखते हैं, बिना इस बात का विचार किए कि उसकी सामाजिक संरचना कैसी है। एक शब्द में, लेखकों ने सारांश में दो सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओं में विश्व के विभाजन की उपेक्षा की है और वे 'एकमात्र विश्व समाज' के नए किंतु निरर्थक प्रतिरूप के साथ सामने आते हैं।

प्रतिवेदन के लेखकों का विश्वास है कि इन घातक शक्तियों, विश्व के विकास के पांच कारकों, की अंत: क्रिया सहअभाव से मानवता को महानाश की ओर धकेल रही है। सामान्य रूप से कहा जाए तो, उपर्युक्त पांचों अंग अपरिहार्य रूप से परस्पर क्रिया करते हैं और उनका विकास मानव समाज को अंधी गली में धकेलता है। उदाहरण के लिए, खाद्य उत्पादन में वृद्धि के बिना आबादी नहीं बढ़ सकती और यह केवल औद्योगिक विकास के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। औद्योगिक विकास खनिज संसाधनों के उत्पादन बढ़ने पर निर्भर है जिनके शोधन से पर्यावरण का प्रदूषण बढ़ता है, और इससे कृषि उत्पादन को क्षति पहुंचती जो इसी क्रम में जनसंख्या वृद्धि को रोकती है।

लेखक कहते हैं, इस अविभाज्य और अन्तर्विरोधी परस्पर क्रिया में सभी

1. वही, पृ० 10

तत्वों का बढ़ता हुआ प्रभाव गति की निरन्तरता द्वारा एक सामान्य रेखीय प्रक्रिया के रूप में नहीं होता। यह उस नियम के अन्तर्गत आता है जिसे घातांकीय नियम कहते हैं अर्थात् उसका वेग सदा तीव्र होता रहता है। विश्व की जनसंख्या की वृद्धि पर ज्यामितीय प्रगति में वृद्धि की वही दर लागू होती है जिस दर से फ़ैक्टरियों और नगरों की संख्या बढ़ती है और यह माँग करती है संसाधनों की निरन्तर वृद्धि की। आर्थिक प्रगति पहले से भी ऊँची संख्या की माँग करती है ठीक उस लोक कथा की तरह जिसमें कि शतरंज के चतुर आविष्कर्ता ने करने की कोशिश की थी। पुरस्कार के रूप में उसने सुल्तान से कहा कि पहले वर्ग में वह चावल का एक दाना रखे और हर वर्ग में उसे दुगुना करता जाए। शतरंज फलक की पहली पंक्ति में उनकी संख्या बहुत अधिक न थी और बहुत धीरे-धीरे बढ़ती थी, लेकिन अगली पंक्ति में संख्या लाखों तक, फिर करोड़ों तक और फिर वह खगोलीय अंकों तक जा पहुँची। खेल के आविष्कर्ता को दिए वचन को निभाने के लिए सुल्तान को सारी दुनिया को जीतकर उसे चावल के खेत में बदल देना पड़ता। किन्दकों का कहना है कि चालाक सुल्तान ने इसका सीधा-सा समाधान ढूँढ निकाला—उसने केवल उस बुद्धिमान को मौत के घाट उतार दिया।

क्या यह समाधान ऐसा ही नहीं है जिसे कि रोम की गोष्ठी के विद्वान् प्रस्तुत कर रहे हैं, क्योंकि वे वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति की माँगों के सम्मुख अपने को अक्षम पाते हैं? वे कहते हैं कि इस आसन्न महासंकट से बचने का एकमात्र मार्ग है विश्व की जनसंख्या को और साथ-ही-साथ औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि को रोकना। संगणक यंत्र की सहायता से इन पाँचों तत्वों (अंगों) की संभावित गतियों का आकलन करते मीडोज दल इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जन्म दर और मृत्यु दर संतुलित रही चाहिए तथा पूंजी-विनियोग भी मूल्य-ह्रास निधि से अधिक नहीं होना चाहिए। उनके मत से वृद्धि के स्थान पर स्थिरीकरण होना चाहिए। वे लिखते हैं: "वस्तुतः, हमारा विश्वास है"'कि नयी नयी क्रियाओं और प्राविधिक विकास का पक्षधर समाज, समानता और न्याय पर आधारित समाज संभवतः वर्तमान में अनुभव की जा रही वृद्धि की स्थिति की अपेक्षा वैश्विक संतुलन की स्थिति में ही विकसित हो सकता है।"[1]

इस प्रकार का है उनका निष्कर्ष। यद्यपि प्रतिवेदन के लेखक उन समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं, जो वास्तव में अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं और वर्तमान पूँजीवाद में जिनकी गहरी जड़ें हैं, शून्य वृद्धि जैसी अवधारणा उनके सही समाधान में किंचित भी लाभदायक नहीं है। ये काल्पनिक और प्रतिगामी दोनों प्रकार की हैं। काल्पनिक, क्योंकि पूँजीवादी प्रतिस्पर्धा तथा ऊँचे मुनाफ़ों के

1. वही, पृ० 165

लिए दौड़ की स्थितियों में उत्पादन को जाम कर देने की बात सर्वथा अकल्पनीय है, स्वयं इजारेदारियाँ ही कभी इसे स्वीकार नहीं करेंगी क्योंकि वे पूंजी के संचय किए बिना जीवित नहीं रह सकती।

प्रतिगामी, क्योंकि इसकी जड़ें सामाजिक यथास्थिति को बनाये रखने में हैं और इसका सुझाव है कि पूंजीवाद की स्थिरता के लिए पूंजीवादी देशों में मेहनतकश जनता को अपने पर अतिरिक्त भौतिक त्याग का—बढ़ती बेरोजगारी, उपभोग में कटौती और जीवन के सामान्य स्तर में ह्रास आदि—भार उठाना चाहिए। पूंजीवादी दुनिया में मेहनतकश जनता स्वभावतः सबसे अधिक कष्ट भोगेगी।

शून्य-वृद्धि की अवधारणा वैचारिक रूप से मजदूर वर्ग और जनतांत्रिक शक्तियों को नष्ट करने के लिए तैयार की गयी है क्योंकि यह विद्यमान पूंजीवाद के गहराते संकट पर पर्दा डालती है। मानव समाज की कठिन स्थिति के आरोप को यह भौतिक, प्राविधिक एवं जन संख्या के तत्वों पर डाल देती है। इसका लक्ष्य वर्ग-संघर्ष की तीव्रता को नष्ट करना है।

रोम की गोष्ठी की द्वितीय एवं तृतीय परियोजनाएँ

'वृद्धि को सीमित करो' प्रतिवेदन ने पश्चिमी विचारकों में हड़कम्प पैदा कर दिया। वादविवाद में इसकी कतिपय स्थापनाओं पर प्रश्न उठाये गये इसकी आंकड़ो संबंधी भविष्यवाणियों की बार-बार जाँच की गयी और उनमें से कुछ की आलोचना भी की गयी।

अन्त में रोम की गोष्ठी को मीडोज और उसके दल द्वारा निकाले निष्कर्षों को अस्वीकृत करने के लिए बाध्य होना पड़ा, इसलिए नहीं कि उनमें कुछ भूलें और खामियाँ थी अपितु मुख्य रूप से इसलिए कि शून्य वृद्धि की अवधारणा इजारेदारी पूंजी के हितों से मेल नहीं खाती थी।

इसके बाद रोम की गोष्ठी की दूसरी रिपोर्ट सामने आयी। इसे अमरीका के क्लीवलैंड विश्वविद्यालय के प्रणाली विश्लेषण के विशेषज्ञ प्रोफेसर मिहाजलो मेसारोविक तथा पश्चिमी जर्मनी के प्रोफेसर एडुअर्ड पेस्टल ने तैयार किया। यद्यपि दूसरी रिपोर्ट के निष्कर्ष उतने क्रान्तिकारी नहीं है (लेखकों ने सामान्यतया आर्थिक वृद्धि को अस्वीकृत नहीं किया, अपितु इसे सीमित करने की ही सिफारिश की है) क्योंकि इसने गोष्ठी के पूर्ववर्ती दृष्टिकोण की सामान्य रूपरेखा को पूर्णतया बनाये रखा है।

अपने पूर्ववर्तियों की तरह ही लेखकों ने समकालीन पूंजीवाद की संकटपूर्ण स्थिति के संबंध में चर्चा की है। उन्होंने भविष्यवाणी की कि सन् 2000 से 2025 में विश्व में अभूतपूर्व जनसंख्या-विस्फोट होगा, प्राकृतिक संसाधन निःशेष हो जाएँगे, गरीब और अमीर के बीच आर्थिक असमानता भयानक रूप से गहरी

हो जायेगी और वह आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को तीव्र कर देगी। इस 'प्रलय दिवस' को टालने के लिए लेखकों ने जिन उपायों की सिफारिश की है उन्हें वे अत्यधिक निर्णायक समझते हैं। उनके मत से विश्व की व्यवस्था मौलिक रूप से पुन संगठित की जानी चाहिए। अन्यथा, अस्वस्थ कैंसर रूपी वृद्धि के, स्वभावतः, विश्व के विभिन्न भागो मे अपने विशिष्ट रूपो मे व्यक्त, समस्त परिणामों का खतरा है। और इसके विपरीत, सुव्यवस्थित वृद्धि के अन्तर्गत विभिन्न अंगों के बीच घनिष्ट सबध उनमे से प्रत्येक के विकास को नियंत्रित करते हैं।

एक वैश्विक सत्ता के रूप मे मानवता एक विकल्प तक आ पहुँची है: या तो कैंसररूपी यह वृद्धि निरन्तर होती रहे अथवा सुव्यवस्थित विकास की ओर सक्रमण हो।

लेखकों ने साहस के साथ यह प्रस्तावित करते हुए कि विश्व व्यवस्था मौलिक रूप से पुनर्संगठित की जानी चाहिए, बडे अस्पष्ट नुस्खे और अव्यावहारिक सिफारिशें प्रस्तुत की है। कुल मिला कर वे मानव समाज को समस्त परेशानियो (चिन्ताओं) से मुक्त करने मे इतनी रुचि नहीं रखते जितनी कि पूँजीवाद को बचाने मे जिससे कि यह सुचारु रूप से कार्य कर सके। यह मनुष्य और प्रकृति के बीच की खाई को पाट कर प्राप्त किया जा सकता है। अपने नुस्खों मे मैसारोविक और पेस्टल दोनो समान रूप से विश्व के दो व्यवस्थाओ मे विभक्त होने की ओर स्वयं पूँजीवाद के आन्तरिक विकास के नियमों की उपेक्षा करते हैं। कुल मिलाकर वे निरर्थक खींच-तान करते है और पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से अग्राह्य हैं।

उदाहरण के लिए जब 'सुव्यवस्थित' अथवा 'संतुलित' वृद्धि का विचार रखते हुए विशद विषय मे वे समझते हैं कि यह विद्यमान 'असंतुलित एवं विभेदित वृद्धि' का स्थान लेगी, लेखकों के पास अत्यधिक महत्व की वस्तु के विषय मे स्वभावतः कहने के लिए कुछ नहीं है—कि पूँजीवाद की योजनाविहीन और अराजकतापूर्ण अर्थव्यवस्था की स्थितियों के अन्तर्गत इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

उनकी यह मान्यता है कि विश्व-समस्याओं के सबध मे विभेदीकृत दृष्टिकोण इस विषय मे अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। अपने अध्ययन मे उन्होंने ''''साली परम्परा, जीवन शैली व इतिहास आर्थिक विकास का स्तर (सहित), समाजिक-राजनीतिक क्रम और उन मुख्य समस्याओं की जो समा-असमान इन देशों के समक्ष आती रहती हैं, विश्व-व्यवस्था को दस भागों मे विभक्त किया. (1) उत्तरी अमरीका (2) पश्चिमी यूरोप (3) जापान (4) आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका और विकसित बाजार अर्थव्यवस्था वाले शेष देश (5) सोवियत संघ सहित पूर्वी यूरोप (6) लैटिन अमरीका (7) उत्तरी अफ्रीका और मध्यपूर्व (8) उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका (9) दक्षिण एवं दक्षिणपूर्व एशिया तथा (10)

चीन ।"[1]

1974 में रोम की गोष्ठी ने तीसरी परियोजना पर काम करने के लिए एक दल स्थापित किया। इस बार का कार्य-भार था एक नयी अर्थव्यवस्था के लिए विकासशील देशों की माँगों के उत्तर सूचित करना, नोबल पुरस्कार से सम्मानित प्रधान डच अर्थशास्त्री जान टिंबर्जेन के नेतृत्व दल ने 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध का नवरूपान्तर' शीर्षक से एक तैयार की।

गोष्ठी के पूर्ववर्ती दो प्रयासों की तरह ही इसमें आज की तात्कालिक समस्याओं के समाधान दिये गये थे, तीसरी रिपोर्ट में भी बड़ी संख्या में रोचक टिप्पणियाँ हैं, किन्तु इसमें भी वही कमियाँ हैं जो पहली दो में हैं। जैसे ही लेखक व्यावहारिक उपायों के संबंध में लिखना आरंभ करते हैं, वर्तमान विश्व समस्याओं के समाधान के लिए उनके बड़े-बड़े दावों की, तथा उनमें भी अधिक, दुविधा भरी सिफारिशों की विसंगति स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। इस संबंध में इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि लेखकों ने समस्याओं के व्यापक वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) की परीक्षा की है, उसमें आधुनिक समाज को नया रूप देने की संभावनाओं से लेकर, नयी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के संस्थान, और आय के पुनर्वितरण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा संबंध तथा विकासमान देशों को अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था, औद्योगीकरण और श्रम का अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन, खाद्य उत्पादन, ऊर्जा तथा कच्चे माल पर राष्ट्रीय कम्पनियों पर नियंत्रण, प्राविधिक विनिमय और अन्ततः हथियारों में कटौती तक आ गया है। अपने तीसरे सर्वेक्षण में लेखकों ने विद्यमान सामाजिक समस्याओं के साथ इन प्रश्नों के समाधान को सम्बद्ध किया है। उनका दावा है कि "वह इस बात में विश्वास नहीं करते कि परिवर्तन के प्रस्तावों को राष्ट्रों के बीच आर्थिक संबंधों तक ही सीमित रखना चाहिए।" यही नहीं, वे यहाँ तक कहते हैं "शुद्ध रूप से आर्थिक शब्दावली में सोचने पर दुनिया बड़ी जटिल प्रतीत होती है। नयी अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए समाज के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य पक्षों में भौतिक परिवर्तन भी अपरिहार्य है, ऐसे परिवर्तन जो नयी अर्थव्यवस्था को ला सकें।[2]

लेकिन यह दम्भपूर्ण घोषणा हवाई ही रहती है क्योंकि लेखक वस्तुतः हमारे समय की ठोस सामाजिक आर्थिक वास्तविकताओं से भटक जाते हैं। विश्व का दो व्यवस्थाओं में विभाजन, साम्राज्यवादी शक्तियों की औपनिवेशिक नीति,

1. मिहाजलो मैसरोविक और एडुअर्ड पेस्टल—'मैनकाइंड एट द टर्निंग प्वाइंट द सैकंड रिपोर्ट टू द क्लब ऑफ रोम' पृ० 40
2. जान टिम्बरजन, ए० जे० डोलमैन, जे० वान एटिंगर—रिशेपिंग दि इंटरनेशनल ऑर्डर: ए रिपोर्ट टू द क्लब ऑफ रोम न्यूयार्क 1976

अंतर्राष्ट्रीय, गरीब और वैचारिक संघर्ष का तीव्र होना आदि उनकी नजर से ओझल हो जाता है। उनकी मानवतावादी सिफारिशें —विश्व बैंक की स्थापना और ऊर्जा, प्राकृतिक संसाधनः खाद्य, औद्योगिक विनियोजन और अन्य मामलों के संदर्भ में इसी कारण स्थिर नहीं रहतीं। इन समस्याओं के निराकरण का वर्णन भी बड़ी अस्पष्ट भाषा में है क्योंकि लेखक विश्व को सम्पूर्ण सामाजिक इकाई के रूप में देखते हैं, समस्या को वास्तविक स्थिति से पृथक्कृत काल्पनिक रूप में।

पूँजीवादी विश्व में वर्तमान परिस्थिति के दिवालियापन को आवश्यक रूप से स्वीकार करते हुए रोम गोष्ठी की तीसरी रिपोर्ट असाधारण समस्याओं के क्रान्तिकारी समाधान ढूँढने में पूँजीवादी आर्थिक विचार की असमर्थता का और प्रमाण प्रस्तुत करती है।

इससे ज्ञात होता है कि मीडोज, फिर मेसारोविक और पेस्टल, तथा अन्त में टिनबर्गेन के नेतृत्व में रोम के लेखकों द्वारा तैयार की गयी भिन्न-भिन्न तीनों रिपोर्टें जो गोष्ठी के सैद्धान्तिक अध्ययन हैं वास्तव में पूँजीवाद के काल्पनिक समर्थन के विभिन्न रूप हैं। वे इस प्रकार के नये प्रयोग प्रस्तुत करती हैं जो तथ्य रूप में चीजों को उसी रूप में छोड़ देते हैं जैसी कि वे हैं, पूँजीवाद के आधारों को रत्तीमात्र भी प्रभावित नहीं करते और काल्पनिक आशाओं के प्रकट करने से आगे नहीं बढ़ती तथा पूँजीवादी विश्व के शासकों को अपनी भूख को थोड़ा कम करने की सलाह देते हैं।

दूसरी ओर, 'विश्व के विनाश की अवधारणा' स्पष्ट रूप से इस तथ्य की स्वीकृति है कि आर्थिक प्रगति पूँजीवाद की समस्याओं का समाधान नहीं है और कि पूँजीवाद के अन्तर्गत वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति के लाभों का उपयोग मानव समाज को अंधी गली में ले जाता है। क्या यह पूँजीवादी सामाजिक संबंधों के दिवालियापन की स्वीकृति नहीं है? युगों से यह सोचा जा रहा है कि आर्थिक विकास और पूँजीवाद अविभाज्य हैं। पूँजीवादी सिद्धान्तकार सदा यह प्रमाणित करने का प्रयत्न करते रहे हैं। आर्थिक प्रगति दोनों ही थी, आवश्यक भी और वांछनीय भी, और आज वे यदि 'सीमित वृद्धि' 'वृद्धि को सीमित करो' और 'शून्य वृद्धि' की बात करते हैं तो क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि पूँजीवाद की क्षमता संकुचित हो रही है, कि यह कुछ सीमाओं में ही काम कर सकती है और यह कि इसके आरक्षित भंडार खाली हो रहे हैं?

जीवन की गुणवत्ता की पहेलियाँ

यह कहना आवश्यक नहीं कि कम्युनिज्म के विरोधी विचारक सर्वाधिक प्रयास इस बात के लिए कर रहे हैं कि जनता को यह समझने से रोका जाये कि पूँजीवाद मौत की घड़ियाँ गिन रहा है। कुछ समय से वे लोग 'जीवन की गुणवत्ता'

को सुधारने के बारे का उद्योग कर रहे हैं जिससे कि समृद्धि का पथ प्रशस्त हो सके। यह शब्दावली जॉन गालब्रेथ द्वारा प्रकाशित की गयी थी। अर्थात् अमरीकी विद्वान ने इसका उपयोग सामान्य रूप से गरीबी के उन्मूलन की आवश्यकता पर बल देने के लिए किया था, धीरे-धीरे इसकी अधिक व्यापक व्याख्या की जाने लगी विशेषकर, यूरोप में जहाँ कि पूँजीपतियों ने और सामाजिक जनवादी सिद्धान्तकारों ने इसे उत्सुकता के साथ ग्रहण कर लिया।

जो लोग आज भी विश्वास नहीं करते कि मानव-समाज के समस्त विद्यमान समस्याएँ प्राविधिक साधनों और आर्थिक उन्नति की सहायता से हल कर ली जाएँगी, वे पश्चिम जर्मनी के दार्शनिक ग्यार्ज पिख्त की द फ्यूचर ऑफ द ह्यू.मनकाइंड को उद्धृत करते हैं। पिख्त कहते हैं'''मानव जाति का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि कोई गुणात्मक छलांग सामूहिक भौतिकता और सामूहिक बुद्धि को ऊँचे स्तर तक उठायेगी अथवा नहीं'''आकाशिक भविष्य आसमान से नहीं आयेगा, यदि सत्ता की खोज, और हमारी प्राविधिक और औद्योगिक सम्पदाओं का बहुगुणित होने सम्भावनाओं के परिणामस्वरूप, क्योंकि ये उपलब्धियाँ चाहे कितनी भी आवश्यक हों केवल विनाश की प्रक्रिया को तीव्र कर सकती हैं जब तक कि कोई ऐसी राजनीतिक व्यवस्था नहीं बनायी जाती जो इन सम्पदाओं का समझदारी के साथ सुविचारित उपयोग कर सके। जर्मन दार्शनिक ने निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत किया : "मानव-समाज अपना भविष्य केवल नैतिक तथा आध्यात्मिक पहलकदमी की सहायता से ही सुरक्षित कर सकता है जो इतिहास में अनुपम होगा।"[1]

पश्चिमी विचारकों को समस्या की ऐसी विस्तृत व्याख्या बड़ी अनुकूल लगी। उन्होंने इसे एक ऐसे सामान्य मंच के रूप में माना जिस पर कि 1960 एवं 1970 के दशकों के पूँजीवादी विचारों की भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाली धाराएँ विद्यमान रहें और एक-दूसरे की पूरक भी बन सकें। आधुनिक समाज के जीवन में वस्तुतः 'प्राविधिक नियतिवाद' को अस्वीकृत किए बिना ('औद्योगिकवाद' और 'औद्योगिकोत्तरवाद' की अवधारणाएँ) 'जीवन की गुणवत्ता' को बढ़ाने की अपील साथ ही अत्यधिक आर्थिक विकास के विरुद्ध चेतावनी है (पर्यावरणिक विध्वंस की अवधारणा)। इस विचार पर भी जोर दिया जाता है कि विश्व इस समय इस प्रकार गंभीर परिवर्तनों की देहरी पर खड़ा है जिसके समक्ष समाजवादी परिवर्तन पृष्ठभूमि में चले गए हैं और निरर्थक हो गए हैं।

'जीवन की गुणवत्ता' का नारा सबसे बढ़कर जनता का ध्यान पूँजीवाद के अंतर्विरोधों से, इसके सामाजिक विरोधों की कटुता से दूर हटाने के लिए, इस तथ्य

1. ग्यार्ज पिख्त 'म्युत त्सोर युतोपी वाई मासेन' म्युंचेन, 1970, पृ० 145

को छिपाने के लिए कि मजदूर वर्ग का शोषण बढ़ गया है, तथा उसको समाज के वास्तविक क्रांतिकारी रूपांतरण के सही उद्देश्य से अलग हटाने के लिए, दिया गया है। यह नारा यह भ्रम पैदा करने के लिए दिया गया है कि मजदूरों के पक्ष में सामाजिक स्थितियों का सुधार—गरीबी का उन्मूलन, बेरोजगारी में कमी, जन-स्वास्थ्य में सुधार, शैक्षणिक सुअवसर और काम और विश्राम की स्थितियाँ तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सम्मान की सुरक्षा—पूँजीवाद के अंतर्गत ही संभव है। यह सब करने के लिए, वे कहते हैं, कि यह अनिवार्य है कि आर्थिक उन्नति को स्थायी किया जाय (जब कभी भी उत्पादन के पूँजीवादी संबंधों से इसका विवाद अधिक मुखर हो उठे) और विद्यमान पूँजीवादी संस्थानों के स्वरूप को सबसे बढ़कर, गुणात्मक लक्षणों पर विश्वास करते हुए बदला जाय (समाजवादी देशों की तुलना में जो कथित रूप से शुद्ध 'परिमाणात्मक' सुधार की आकांक्षा रखते हैं)।

बहुत से सामाजिक जनवादी नेता इस दृष्टिकोण से पूर्ण रूप से सहमत हैं। वे मानते हैं कि कतिपय बूर्ज्वा संस्थाओं का विकास आवश्यक है कि पूँजीवादी समाज को अधिक समय तक पूँजीवाद न माना जाय अपितु उसका रूप 'जनतांत्रिक समाजवाद' के रूप में स्वीकृति प्राप्त करे। हैंस जोशन वोगेल घोषणा करते हैं, 'जीवन की गुणवत्ता' जनतांत्रिक समाजवाद का केंद्रीय विचार है।

दक्षिणपंथी सामाजिक जनवादी नेता उदारतापूर्वक इन संभावनाओं को चित्रित करते हैं जर्मनी की सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के कार्यक्रम में लिखा गया है 'जीवन की गुणवत्ता' साधारण रूप में जीवन का ऊँचा स्तर ही नहीं है। इसके अंतर्गत स्वतंत्रता है, जिसमें भय से मुक्ति, आत्म-निर्णय और आत्मोपलब्धि के लिए, प्रशासन में भागीदारी और उत्तरदायित्व में हिस्सेदारी, ऊर्जा को श्रम में समझदारी के साथ के प्रयोग का अवसर'''प्रकृति के साथ तादात्म्य, और सांस्कृतिक मूल्यों की अधिक उपलब्धि, स्वस्थ बने रहने का अवसर अथवा पुनः स्वास्थ्य प्राप्त करना, सम्मिलित है। जीवन की गुणवत्ता का अर्थ है हमारे जीवन की सम्पन्नता तथा भौतिक उपभोग की सीमाओं के परे जाकर श्रेष्ठ होना।[1]

तथापि, मजदूर जनता के जीवन की गुणवत्ता को सुधारने की उनकी सभी प्रतिज्ञाएँ तब तक थोथी आवाजें रहेंगी जब तक इस बात की गारंटी नहीं होगी कि इनको प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाएगा। और इस प्रकार की पूर्ण विश्वसनीयता स्वयं श्रमिक जनता की शक्ति में है।

'जीवन की गुणवत्ता' की अवधारणा के अन्य सामाजिक परिघटनाओं के मध्य द्वंद्वात्मक संबंध की परीक्षा करके एक सौ वर्ष पूर्व वैज्ञानिक कम्युनिज्म के संस्थापकों की कृतियों में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया था। मार्क्स और एंगेल्स ने

---

1 सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी का पार्टी प्रोग्राम, 1973, पृ 72

जर्मन विचारधारा में लिखा था : "उत्पादन की इस प्रणाली को साभान्यतया केवल व्यक्तियों के शारीरिक अस्तित्व के पुनरुत्पादन के रूप में ही नहीं समझना चाहिए। बजाय इसके वह इन व्यक्तियों की क्रिया का निश्चित रूप है, उनके जीवन को प्रकट करने का निश्चित रूप, उनकी ओर से जीवन की एक निश्चित प्रणाली है। वे क्या हैं'''इसकी संगति (उनके उत्पादन के साथ) वे क्या उत्पादित करते हैं और कैसे उत्पादित करते हैं—के साथ व्यक्त होती है। अत: व्यक्ति क्या हैं यह उनके उत्पादन की भौतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।"[1]

'जीवन की गुणवत्ता' सर्वोपरि एक सामाजिक अवधारणा है। इसके मुख्य सूचक हैं: प्रथम, समाज में जो भी सामाजिक, भौतिक और आध्यात्मिक मूल्य उपलब्ध हैं; दूसरे, कौन और किन परिस्थितियों में इन मूल्यों को पैदा करता है; तीसरे, समाज के सदस्यों में उनका वितरण किस प्रकार किया जाता है और अंततः किस प्रकार यह वितरण मानव व्यक्तित्व के विकास को प्रोन्नत करता है। अंतिम विश्लेषण में यह मनुष्य ही है जो सब वस्तुओं को मापता है और फलस्वरूप किसी भी समाज का जन्म इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार मनुष्य की भौतिक और आत्मिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करता है।

इस समय तक के पूंजीवादी समाज के विकास का समस्त अनुभव अकाट्य रूप से सिद्ध करता है कि भले ही इसने चाहे जितने मूल्यों का संचय किया हो पूंजीवादी व्यवस्था सदा शोषण की, सामाजिक असमानता की और गभीर वर्ग-संघर्ष की व्यवस्था रही है। यह मानव समाज की किसी विकट समस्या का समाधान नहीं कर सकती। इसके पक्षपोषक चाहे जितने वायदे क्यों न करें, पूंजीवाद सदा एक अन्यायपूर्ण व्यवस्था रहेगी, यह सामाजिक विरोध की, बेरोजगारी की, भविष्य में असुरक्षा की, नैतिक अध:पतन की व्यवस्था, भ्रष्टाचार और अपराध की व्यवस्था बनी रहेगी। पूंजीवाद के अंतर्गत 'जीवन की गुणवत्ता' के सुधार के संबंध में बात करना कैसे संभव है जबकि परोपकार की धारणा के बजाय श्रमिक जनता के शोषण द्वारा मुनाफे के ढेर जमा करना सदा और आगे भी इस व्यवस्था की मूल प्रेरक शक्ति रहेगी? और बड़ी-से-बड़ी मानवीय परियोजनाएँ भी इस स्थिति को नहीं बदल सकती।

यह एक अलग बात है कि साम्राज्यवाद के सिद्धांतकार जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने की आवश्यकता के संबंध में प्रश्न उठाने के लिए मजबूर हो गए हैं और इस प्रकार की समस्याओं के विषय में जैसे गरीबी का उन्मूलन, जनस्वास्थ्य सेवाओं का और शिक्षा का सुधार, काम और विश्राम की स्थितियों का सुधार तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्मान की बात करने के लिए बाध्य हो गए हैं। इसके पीछे दो कारण हैं जिनसे वे प्रेरित हुए हैं।

1. कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स कलेक्टेड, वर्क्स, खंड 5, पृ॰ 31-32

सर्वप्रथम, उन्हें इस तथ्य को ध्यान में रखना पड़ता है कि इन समस्याओं को समाजवाद के अंतर्गत भलीभांति हल कर लिया गया है। इसका अर्थ यह है कि 'जीवन की गुणवत्ता' में सुधार का नारा समाजवाद की चुनौती के प्रत्युत्तर में पूंजीवादी सिद्धांतकारों की पाखंड पूर्ण प्रतिक्रिया से अधिक कुछ नहीं है। बल्कि पूंजीवादी प्रचार इस अवधारणा को अपनी नीति का हथियार बना लेता है, इसके लिए वह इसे उस अर्थ से जो समाजवादी विचारधारा में लिया जाता है वंचित कर देता है इसे सारहीन बना कर वह इसको पश्चिमी आदर्श में ढाल देता है।

इजारेदार पूंजीपतिवर्ग के सिद्धांतकार 'जीवन की गुणवत्ता' के नारे को समाजवाद का विकल्प मानते हैं, एक ऐसा विकल्प जो वर्तमान प्रशासन में केवल थोड़ा-सा सुधार प्रस्तुत करता है, पूंजीवादी विश्व में समस्याओं के संबंध में किसी क्रांतिकारी परिवर्तन की बात नहीं करता।

साम्राज्यवादी शक्तियों के शासक वर्ग इस नारे का उपयोग वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति तथा पूंजीवादी देशों में चल रहे वर्ग-संघर्षों से उत्पन्न चुनौतियों के जवाब के रूप में करते हैं। सर्वोपरि यह श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन के संबंधित है जो तेजी से हो रही प्राविधिक प्रगति को ध्यान में रखते हुए व्यावसायिक प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, और काम करने की स्थितियों में सुधार पर अतिरिक्त विनियोजन के बिना सोचा भी नहीं जा सकता; पूंजीपति वर्ग यह भार उठाने के लिए विवश है, किसी लोकोपकार के विचार से नहीं, अपितु स्वयं उत्पादन की मांगों को पूरा करने के और मुनाफे बटोरने के लिए। दूसरी ओर, पूंजीवादी देशों में वर्ग-संघर्ष का वर्तमान स्तर पूंजीवादीयों के सामने वास्तव में कोई अन्य विकल्प नहीं रहने देता सिवाय इसके कि वह मजदूर-वर्ग जनता को कुछ और रियायतें दे।

तथापि इस संबंध में उल्लेख योग्य मुख्य बात है कि 'जीवन की गुणवत्ता' की धारणा के विषय में कोई समान रवैया नहीं अपनाया जाता। इस संबंध में पूंजीवाद का और समाजवाद का अनुभव एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है व परस्पर विरोधी भी है बशर्ते कि उसका मूल्यांकन सीमित और शुद्ध रूप से सब ही तुलना तक सीमित हो।

अन्त में, क्या पूंजीवादी सिद्धान्तकारों को यह नहीं दिखाई देता कि 'जीवन की गुणवत्ता' के संबंध में बात उठाने में उन्होंने बहुत विलंब कर दिया? यह एक सचाई है कि यह विषय पश्चिम में कम-से-कम तीन सौ वर्ष तक यूरोप में पूंजीवादी शासन रहने के बाद उठाया गया। यह इस कठोर सत्य की, कि पूंजीवाद जनता के हित में इस समस्या का समाधान करने में अक्षम है, अप्रत्यक्ष स्वीकृति है।

× × ×

इस प्रकार उपर्युक्त समीक्षा ने साम्राज्यवाद की बुनियादी वैचारिक अवधारणाओं की ओर समकालीन पूंजीवादी और सुधारवादी विचारों के सामान्य विकास को

निरावृत कर दिया है। गत 15-20 वर्षों में इन विचारों में आश्चर्यजनक बदलाव आया है। पचास के दशक की उल्लास की स्थिति से आगे बढ़ कर यह तेजी से पूंजीवादी विकास के अधिक तर्कपरक मूल्यांकन करने की ओर प्रवृत्त हुआ और तब निराशावाद की गहराइयों में डूबने-उतरने लगा। स्पष्ट रूप से पूंजीवाद के अंतर्गत जिसकी कोई संभावना नहीं उसी 'जीवन की गुणवत्ता को सुधारने' के आह्वान के साथ उस भविष्यवाणी के पूरा होने की प्रतीक्षा करने लगा जिसमें उसके क़यामत तक पहुँचने की बात कही गई है।

यह वह समय था जब साम्राज्यवादी सिद्धांतकार कम्युनिज्म का वास्तविक विकल्प ढूंढ़ने के लिए पागलपन भरा निरर्थक प्रयास कर रहे थे। बूर्ज्वा विद्वानों की सैद्धांतिक अवधारणाओं में वर्तमान वास्तविकता के अलग-अलग पहलुओं को सही ढंग से तराश कर किया प्रस्तुत जाता है। कभी-कभी इनमें कुछ बहुत मनोरंजक बातें भी दिखाई दे जाती हैं। किंतु इनमें से कोई भी समग्र सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत नहीं करता और इसलिए कोई भी सैद्धांतिक प्रबंध होने का दावा नहीं कर सकता। कुल मिलाकर पूंजीवादी विचारधारा आज तक जो उत्पन्न कर पाई है वह है जीवन से असंपृक्त स्थापनाएँ, मानवता के अंधी गली में पहुँच जाने से संबंधित वक्तव्य, और ऐतिहासिक प्रगति की नई 'कसौटी' के पाखंडपूर्ण पर्दे के पीछे आज की विशिष्ट समस्याओं को टालने का प्रयास। यह वर्तमान युग के मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण के समक्ष टिक पाने में एकदम असमर्थ है।

अध्याय : 6

विश्व पूंजीवाद का अधःपतन

कारण दूर कर दीजिए, रोग अपने आप चला जायेगा।
—हिप्पोक्रेट्स

लेनिन द्वारा साम्राज्यवाद का विश्लेषण

साठ वर्ष से अधिक हो गए, 1916 की गर्मियों में, लेनिन ने अपनी 'साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की सर्वोच्च अवस्था' नाम की पुस्तक पूरी की, जो कि आगामी दशकों में विश्व-मुक्ति-आन्दोलन की कार्यनीति एवं रणनीति के विविध पहलुओं को कई तरह से पूर्व निर्धारित करने की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण है।

इस काल मे पूँजीवाद के विकास मे गुणात्मक रूप से नये रूप सामने आ रहे थे : श्रम और पूँजी के बीच अन्तर्विरोधों ने अभूतपूर्व तीव्रता प्राप्त कर ली थी और प्रभावक्षेत्रो के पुन: वितरण के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों के संघर्ष का परिणाम विश्व युद्ध के रूप मे आया। पूँजीवादी सम्बन्धो के विकास के कारण उत्पन्न संकट ने मानव समाज को महानाश के कगार पर ला खड़ा किया।

लेनिन की पुस्तक उस काल की ऐतिहासिक स्थिति का प्रत्युत्तर थी। इसने उसके मूल कारणो और पूँजीवाद के साम्राज्यवाद मे विकसित होने के रचनाक्रम पर प्रकाश डाला। और साम्राज्यवाद के लाक्षणिक रूपों को तथा गहराई में विद्यमान अन्तर्विरोधो को निरावृत किया। इस कृति में लेनिन ने इतिहास में साम्राज्यवाद के स्थान को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया—समाजवादी क्रान्ति के उदय के रूप मे, एक वर्ष से थोड़े अधिक समय मे हुई 1917 की अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय ने, भविष्यवक्ता के निष्कर्षों को पुष्ट कर दिया। बाद के दशकों ने भी लेनिन के दूसरे निष्कर्षों को सही सिद्ध कर दिया।

लेकिन जीवन जितना अधिक लेनिन के साम्राज्यवाद के विश्लेषण के समर्थन में और प्रमाण देता जा रहा है, उतना ही उनको साम्राज्यवादी विचारक ग़लत सिद्ध करने के कठिन प्रयास कर रहे हैं। वे सभी उपलब्ध बहानों का उपयोग करके मजदूर

वर्ग को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि लेनिन द्वारा किया गया वैज्ञानिक विश्लेषण अपूर्ण है। वे कहते हैं कि समाजवादी क्रान्ति के नेता ने आगे होने वाले विकास द्वारा उत्पन्न परिघटनाओं को पहले से नहीं देखा और इसलिए पूंजीवाद की 'क्षमता' को कम करके आँका और इसके सामाजिक अन्तर्विरोधों की तीव्रता को भी 'बढ़ा-चढ़ाकर' बताया और इस प्रकार इसका परिणाम यह हुआ कि उनके निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण रहे।

बड़े पैमाने पर, लेनिन की रचना के सम्बन्ध में बार-बार अपनी एकांगी आलोचना के साथ-साथ पूंजीवादी सिद्धान्तकार कम्युनिस्टों को वास्तविकता को सरल बनाकर दिखाने के लिए लांछित करते हैं। उनका विश्वास है कि आजकल, और वर्तमान युग में, सामाजिक विकास की परिघटना उस समय से कहीं अधिक जटिल है जिसकी कल्पना वैज्ञानिक कम्युनिज्म के शास्त्रीय ग्रन्थों में की गई थी। इस प्रकार कट्टरता का आरोप लगाते हुए वे कहते हैं कि मार्क्सवादी जानबूझ कर उन नये अवसरों की उपेक्षा करते हैं जो हाल के वर्षों में पूंजीवाद के समक्ष उद्‌घाटित हुई हैं। कम्युनिस्टों पर लचीलेपन की कमी का आरोप लगाया जाता है : कि वे तात्कालिक सामाजिक राजनीतिक समस्याओं के संबंध में नया और व्यापक-दृष्टि-कोण काम में लेने की बजाय इनकी ओर अपनी आँखें मूंद लेते हैं।

लेनिन और उसके अनुयायियों को 'अपदस्थ करने' 'सुधारने' और उनका 'अतिक्रमण करने' के असंभव कार्य को हाथ में लेकर ये दोषान्वेषी पूंजीवादी और संशोधनवादी वस्तुतः कम्युनिस्ट विचारों की आलोचना नहीं करते। वे वास्तव में जिस पर आक्रमण करते हैं वह एक प्रकार से उनका अपना आविष्कृत भ्रष्ट सिद्धान्त है जिसकी लेनिनवाद से कोई समानता नहीं है। वास्तव में वे ऐतिहासिक विकास को यथार्थ रूप से विद्यमान प्रक्रिया की परीक्षा नहीं करते, बल्कि केवल उसको अलग-अलग, मनमाने ढंग से चुनी गई और असंबद्ध परिघटनाओं की परीक्षा करते हैं।

कई दशक पहले लेनिन ने उस वैचारिक संघर्ष की मुख्य दिशाओं की भविष्य-वाणी कर दी थी जो पूंजीवाद के विकास के साम्राज्यवादी युग में प्रवेश करते समय आरम्भ हुआ था। उन्होंने लिखा : "यहाँ हम पूंजीवाद के नवीनतम दौर—अर्थात् साम्राज्यवाद के सैद्धांतिक मूल्यांकन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात कहने जा रहे हैं वह यह है कि पूंजीवाद इजारेदार पूंजीवाद हो गया है। इस बात की अवस्था पर जोर देना चाहिए क्योंकि पूंजीवादी सुधारवादियों के त्रुटिपूर्ण दावे हैं कि इजारेदार पूंजीवाद या राज्य-पूंजीवाद कोई पूंजीवाद नहीं है बल्कि उसे—'राज्य-समाजवाद' कहा जाना चाहिए। लेनिन ने आगे बताया कि बावजूद कुछ परिवर्तनों के "हम आज भी पूंजीवाद के अन्तर्गत रह रहे हैं—उसकी नई
लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि अब भी यह पूंजीवाद है

की समाजवाद से समीपता सर्वहारा वर्ग के सच्चे प्रतिनिधियों के हाथ में समाजवादी क्रान्ति की समीपता, सुविधा व्यावहारिकता और तात्कालिकता के लिए एक तर्क है, इस बात के लिए सर्वथा नहीं कि इस प्रकार की क्रान्ति के उन्मूलन को सहन किया जाय। यह पूंजीवाद को अधिक आकर्षक बनाने के लिए प्रयास करने जैसा है। सभी सुधारवादी इस तरह के प्रयास किया करते हैं।" (जोर हमारा वी० के०)[1]

अपनी कृति "साम्राज्यवाद : पूंजीवाद की सर्वोच्च अवस्था" में लेनिन ने प्रमाणित कर दिया है कि (प्राविधिक प्रगति एवं उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप) उत्पादन और पूंजी के केन्द्रीकरण से युक्त प्रतियोगिता का पूंजीवाद बनेगा जो अधःपतित और मरणासन्न पूंजीवाद के रूप में होगा—साम्राज्यवाद जो पूंजीवाद की अन्तिम अवस्था होगी और समाजवादी पूर्व संध्या क्रान्ति होगी।"

लेनिन ने लिखा "साम्राज्यवाद पूंजीवाद की एक विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्था है। इसके तीन विशिष्ट लक्षण हैं : (1) इजारेदार पूंजीवाद, (2) परजीवी या क्षीयमाण पूंजीवाद, (3) मरणासन्न पूंजीवाद।"[2]

हमारे वैचारिक विरोधी इन बुनियादी परिणामों के विरुद्ध मुख्य रूप से आक्रमण करते हैं। इसका सीधा-सा कारण है कि ये पूंजीवाद की कलई खोलते हैं, उसकी ऐतिहासिक नियति को प्रकाश में लाते हैं, विद्यमान वर्ग-संघर्ष के सार को स्पष्ट करते हैं और विविध प्रकार से विरोधी शक्तियों के परस्पर सम्बन्ध को पूर्व निर्धारित करते हैं। इसके लिए यदि पूंजी की ओर इजारेदारी की प्रक्रिया आगे बढ़ती जाती है जैसे इसकी परजीविता निरंतर बढ़ती जाती है तो इसका अर्थ है कि कम्युनिस्ट सही कहते हैं—जब वे पूंजीवादी विश्व में वर्ग-शक्तियों के ध्रुवीकरण की बात करते हैं, और वहां विरोधात्मक अंतर्विरोधों के विषय में और पूंजीवाद के नाश के लिए वस्तुगत पूर्वावश्यकताओं के संबंध में बात करते हैं। दूसरी ओर यदि इन प्रक्रियाओं को अनदेखा किया जाए तो ज्ञात हो जाएगा कि पूंजीवाद के नवीकरण में पूंजीवादी सिद्धान्त रेत पर नहीं खड़े हैं। वास्तविक स्थिति क्या है? हमें तथ्यों को देखना चाहिए।

श्रमिक जनता के हितों की चिन्ता किए बिना पूंजी का संचयन

साम्राज्यवाद के सार तत्व को रंगीन बनाकर प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत कोई भी सिद्धांत पूंजी और उत्पादन के, और फलस्वरूप, मुनाफ़ों के संकेन्द्रण के तथ्य को बदल नहीं सकता। यह आधुनिक पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का केवल एक विशिष्ट

1. वी० आई० लेनिन, 'द स्टेट एंड रिवोल्यूशन, कलेक्टेड वर्क्स खंड 25, पृ० 447-48
2. वी० आई० लेनिन 'इम्पीरियलिज्म एंड द स्प्लिट इन सोशलिज्म, कलेक्टेड वर्क्स, खंड 23, पृ० 105

रूप नहीं है अपितु इसके विकास को शमित करने वाला कानून भी है। इजारेदारियाँ अधिकतम संभव मुनाफ़े के बिना एक दिन भी जीवित नहीं रह सकतीं। लेकिन क्योंकि मुनाफ़े की मात्रा पूँजी की दर के बढ़ने पर निर्भर होती है इसलिए इजारेदारियाँ वस्तुगत रूप से इसके उच्चतम संभव संकेन्द्रण के लिए प्रयास करती हैं।

लेनिन ने इस सामान्य नियम की ओर इंगित किया है। किन्तु जब उनकी कृति "साम्राज्यवाद : पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था" प्रकाशित हुई तब यहाँ उद्योग की समस्त शाखाओं को नियंत्रित करने वाले मात्र चन्द उद्योग थे। स्टील और लोहा उद्योग में यूनाइटेड स्टेट्स स्टील कारपोरेशन, तेल उद्योग में स्टैंडर्ड ऑयल कंपनी और ऑटोमोबाइल उद्योग में जनरल मोटर्स कारपोरेशन। निस्सन्देह आज 350 इजारेदारियाँ उत्पादन का नियंत्रण करती हैं जिनमें पूँजीवादी दुनिया की दो-तिहाई क्रयशक्ति लगी है। उदाहरण के लिए फ्रांस में केवल 25 औद्योगिक और विशाल वित्तीय कंपनियाँ सर्व शक्तिमान इजारेदारियों के उच्च स्तर पर हैं। संघीय जर्मनी में लगभग 200 परिवार अर्थ-व्यवस्था के मूल केन्द्रों पर स्थित हैं, और अमरीका में 500 कंपनियाँ दो-तिहाई औद्योगिक उत्पादन का नियंत्रण करती है, और इस क्षेत्र के तीन-चौथाई मुनाफ़े को हड़प जाती है।[1]

हमारे समय में उत्पादन बड़ी तेज़ी के साथ संकेन्द्रित होता जा रहा है। यह उन महत्वपूर्ण कारकों के क्रम में स्वाभाविक ही है—जिन्हें सयोगवश, पूँजीवादियों और सुधारवादी सिद्धान्तकारों ने बेहद झुठलाने का प्रयास किया है।

प्रथम, इस समय संकेन्द्रीकरण और केन्द्रीकरण की प्रक्रिया वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति की स्थितियों के अंतर्गत बढ़ती जा रही है। इसने जिस विशेषीकरण और प्राविधिक आधुनिकीकरण को संगठित किया है वह अधिक पूँजी लगाने की तथा आर्थिक सहयोग—अर्थात् उत्पादन के सामाजिकीकरण—की माँग करता है। यह सभी जानते हैं कि पूँजीवाद के अन्तर्गत ये तत्व प्रत्यक्ष सीधे-सीधे पूँजी के सचयन की ओर ले जाते हैं। दूसरी ओर, प्राविधिक प्रगति के सारांश को ग्रहण करके पूँजीवाद ने अत्यधिक औद्योगीकृत देशों में उत्पादक शक्तियों के सभिन विकास को प्राप्त करने का किसी स्तर तक प्रबंध किया है। उदाहरण के लिए, युद्ध के काल से इन देशों में श्रम की उत्पादकता कई गुना बढ़ गई है। इसके साथ ही साथ, वेतन में वृद्धि बहुत नीची रही है। इस प्रकार वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति की स्थिति में मेहनतकश जनता के शोषण का स्तर पूँजीवादी विश्व में घटा नहीं, अपितु इसके विपरीत, तेज़ी के साथ बढ़ा है। पूँजीवादी प्रचार इस तथ्य को छिपाने की पूरी कोशिश करता है। इसका स्पष्ट और सीधा-सा कारण यह है कि यह 1960 के दशक में दिखाए इसके आर्थिक चमत्कार के वास्तविक कारणों को प्रकट कर देता है। यह केवल आर्थिक अतिरिक्तताओं की कीमत पर हुआ

1. देखें, वर्ल्ड मार्क्सिस्ट रिव्यू, 1976, खंड 19, सं० 10, पृ० 21-22

अर्थात् अतिरिक्त मूल्यों की कीमत पर (जिसे कि उत्पादन के साधनों के विकास में प्रगति करके सुनिश्चित किया गया), श्रम के और अधिक विस्तार के कारण और विकासशील देशों की खुली लूट के निरंतर जारी रहने की कीमत पर संभव हुआ जिसका पूँजीवाद ने अपनी ऐसी व्यापक विज्ञापित समृद्धि प्राप्त करने का कुछ समय तक जुगाड़ बैठाया। लेकिन पूँजीवाद के अन्तर्गत इस उत्पादन वृद्धि के क्या परिणाम रहे और इसमें किसके हित पूरे हुए? पूँजीवादी प्रचार इस सबंध में कुछ नहीं कहना चाहता जब कि यह विषय बुनियादी महत्व का है। उत्पादन की वृद्धि से पूँजी का सघन सचयन हुआ इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक और वित्तीय इजारेदारियों के हाथ में और अधिक आर्थिक शक्ति केन्द्रित हो गयी और उनका अधिपत्य भी बढ़ गया।

दूसरे, सान्द्रीकरण की प्रक्रिया ने राज्य इजारेदारी का रूप धारण कर लिया। इसकी नई गुणवत्ता इस तथ्य में प्रदर्शित हुई कि पूँजीवादी राज्य वास्तविक रूप में सान्द्रीकरण की प्रवृत्तियों का सगठनकर्ता अथवा सरक्षक बन गया। इस क्षमता से युक्त होकर विशेष रूप से आधुनिक आयुधों का निर्माण करने वाले उद्योगों में, जो शासक वर्ग दीर्घकालीन राजनीतिक हितों तथा इसकी वैदेशिक नीति के लक्ष्यों के साथ सम्बद्ध हैं, इसका निहितार्थ है ऐसी कुंजियाँ जैसे कानून निर्माण, बजट तथा करों की नीतियाँ सरकारी अनुदान और इसी प्रकार की अन्य चीजें।

इस प्रकार पूँजीवादी राज्य उन क्रिया-कलापों को जिन्हें कि पहले निजी पूँजी द्वारा सम्पन्न किया जाता था अधिकाधिक अपने हाथ में लेता जाता है। निस्संदेह, ऐसा करते हुए वह समूचे समाज के हितों को पूरा करने का प्रयास नहीं करता। इसके विपरीत, इसका लक्ष्य इजारेदारियों के मुनाफे बढ़ाना हो जाता है, दोनों ही तरह से, जनता का शोषण जारी रखकर और सरकारी निधियों का उपयोग करके। बड़ी पूँजीवादी इजारेदारियों के हितों की पूर्ति के लिए कार्य करते हुए राज्य वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति के फलों को हड़पने की कोशिश करता है जिससे कि श्रम शक्ति का विस्तार किया जा सके और शोषण को छिपाया जा सके और इस प्रकार बहुगुणी विस्तार को सुविधाजनक बनाया जा सके। और इस पर का ध्यान हो उसे निरन्तर रूप से मजबूर करते उठाए।

तीसरा, हमारे समय में इजारेदारियों का विस्तार एक अन्तर्राष्ट्रीय परिघटना बन चुका है। विशाल इजारेदारियों और उनके इजारेदारियों ने राष्ट्रीय सीमाओं को लाँघ लिया है राज्यों की सीमाएँ अपर्याप्त सिद्ध बना लिये हैं, जिनका कोई एक स्वामी नहीं है और उन्हें विभिन्न नामों जैसे पारराष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, बहुराष्ट्रीय अथवा बहुराष्ट्रीय आदि नामों से पुकारा जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारियाँ अथवा बहुराष्ट्रीय कार्पोरेशन पहले-पहल इस शताब्दी के आरम्भ में दिखाई दी थीं, लेकिन वे शताब्दी के मध्य से बड़ी विशिष्ट भूमिका निभा

रही हैं। 1971 में परराष्ट्रीय कंपनियों ने पूंजीवादी विश्व के कुल विनियोग के 90 प्रतिशत पर नियंत्रण कर रखा था और उनका अपने बढ़े हुए सामान्य राष्ट्रीय उत्पादन तथा विदेशी व्यापार के व्यवसाय के तीसरे भाग पर नियंत्रण था। कुछ भविष्यवाणियों के अनुसार 1980 तक तथा कुछ अन्य के अनुसार 1985 तक 300 प्रमुख बहुराष्ट्रीय निगम विश्व के निर्माता उद्योगों के 75 प्रतिशत पर नियंत्रण रखेंगे और दस या बीस वर्षों के बाद कुछ उत्पादन के 75 प्रतिशत पर वे नियंत्रण प्राप्त कर लेंगे।[1]

अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों में निरंतर हो रहा विस्तार स्पष्ट रूप से हमारे समय में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास का एक निश्चित लक्षण है। यह तथ्य निस्संदेह रूप से स्पष्ट करता है कि उत्पादन के, पूंजी के निर्यात का तथा इजारेदार गुटों का विभाजन तथा पुनर्विभाजन अंतर्राष्ट्रीयकरण की दिशा में बढ़ रहा है जैसा कि लेनिन ने कई दशक पहले स्पष्ट रूप से बताया था।

अंतर्राष्ट्रीय बड़े प्रतिष्ठानों के पास विपुल पूंजी है और कपट कौशल का उपयोग करने की उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता है, इसलिए उनके क्रियाकलाप से समकालीन साम्राज्यवाद को आर्थिक विस्तार के लिए सीमातीत क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। सार यह है कि स्थानीय अधिकारियों से और राष्ट्रीय सरकारों से अनियंत्रित तथा व्यापार और चुंगी की तयशुदा नीति के प्रतिबंधों से व्यावहारिक रूप से मुक्त, ये वित्तीय व्यापारिक-आर्थिक 'सर्वोच्च शक्तियाँ' राज्य के ऊपर राज्य, 'अपने ही कानून' लागू करते हैं जो राज्यों की सीमाओं के पार चले जाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियाँ (जिनकी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत से विषयों में स्पष्ट रूप से बड़े पैमाने पर लगी अमरीकी पूंजी के आधिपत्य को छिपाने के लिए एक मुखौटा है) पूंजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था की समस्त शाखाओं पर नियंत्रण रखती हैं। और इससे भी बढ़कर, वे बहुत से मामलों में सामाजिक तथा आर्थिक विकास को निर्धारित करती हैं और इन राज्यों की नीतियों पर गहरा प्रभाव रखती हैं। एक समय था जब विदेशी पूंजी उपनिवेशों पर आधिपत्य रखती थी अब औद्योगिक रूप से आगे बढ़े हुए देश भी उसके शिकार बन गये हैं।

बहुत से अध्ययनों में इसके प्रमाण मिलते हैं। इनमें से एक है अमरीकी अर्थशास्त्री रिचर्ड बर्नेट और रोनाल्ड मूलर की 'पावर ऑफ मल्टिनेशनल कारपोरेशन्स' नामक कृति। लेखकों ने स्पष्ट रूप से इस संबंध में लिखा है—इसे वे विश्व अर्थव्यवस्था का अमरीकीकरण कहते हैं और शिकायत करते हैं कि अमरीकी इजारेदारियाँ दूसरे देशों में कठिनाइयाँ—विशेष रूप से राजनीतिक और वैचारिक

1. देखिए रिचर्ड जे, बार्बर; दि अमेरिकन कारपोरेशन, इट्स पावर, इट्स मनी, इट्स पॉलिटिक्स, न्यूयॉर्क 1970 पृ० 264

कठिनाइयाँ—पैदा करती हैं। कृति की नीचे लिखी पंक्तियाँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। "लेकिन क्योंकि निगम आधिकारिक रूप से राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं हैं, विश्व व्यवस्थापकों की विचारधारा कुछ महत्वपूर्ण संस्थापित धारणाओं के साथ संघर्ष में आती है।"[1] निस्संदेह यह राष्ट्रीय संप्रभुसत्ता, राज्यों की आर्थिक स्वाधीनता, पूंजीवादी जनतंत्र में मेहनतकश जनता के बुनियादी अधिकार आदि की ओर ही संकेत है।

निजी पूंजीवादी आधार पर अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों की रचना के साथ-साथ पश्चिम में अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवादी एकीकरण की प्रक्रिया भी विकसित हो रही है। इस संबंध में यूरोपीय आर्थिक समुदाय (ईईसी) एक संकेत है जिसे कि इजारेदारियों और बैंकों का पश्चिमी यूरोप कहा जा सकता है।

अनिवार्यतया पूंजीवादी देशों की अन्तर्राष्ट्रीय कंपनियाँ तथा अंतर्राष्ट्रीय संघों के क्रियाकलाप सम्बद्ध प्रक्रियायें हैं। ये एक सुनिश्चित प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं, जिसे पूंजीवाद द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने की इच्छा—जो विश्वमुक्ति आंदोलनके ऐतिहासिक रूप से पूर्व निर्धारित आक्रमण को दृष्टि में रखते हुए की गयी है—कहा जा सकता है। तथापि ई०ई०सी० के उदाहरण को आधार बनाकर देखें तो एकीकरण का राज्य इजारेदारी रूप निजी पूंजी से बहुत पिछड़ गया है। ऐसा किस कारण हुआ? निस्संदेह रूप से इसके अनेक कारणों में से एक मुख्य कारण है जनसत्ता (आबादी) की बहुसंख्या का प्रतिरोध।

जबकि निजी उद्योग के स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय इजारेदारियों के संगठन को छिपाना संभव है जो नियम के तौर पर, अपने कार्य पर्दे के पीछे करती हैं, अन्तर्राज्यीय संघों का निर्माण गुप्त नहीं रखा जा सकता। 'संयुक्त पश्चिमी यूरोप' के प्रवक्ताओं के जनता को कायल करने के प्रयासों के बावजूद बहुत से श्रमिक-जन स्वभावतः इसे इजारेदारियों का एक सहयोग ही मानते हैं। इसका अर्थ है ऊँचे मुनाफे सुनिश्चित करना, पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा करना, क्रान्तिकारी आंदोलन और विश्व समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष करना तथा हथियारों की होड़ को सुरक्षात्मक उपायों के पर्दे में और तेज करना—(स्वभावतः आम जनता के खिलाफ)।

दूसरा कारण है कि अंतर्साम्राज्यवादी अन्तर्विरोध निर्विवाद रूप से गहरे होते जा रहे हैं। समकालीन साम्राज्यवाद के भीतर दो उभार साथ-साथ विकसित हो रहे हैं: इजारेदारियाँ और प्रतिस्पर्धा, तथा दो मनोवृत्तियाँ—अभिकेन्द्रीय और अपकेन्द्रीय (केन्द्राभिमुखी एवं केन्द्रापसारी): अपने वर्ग शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष के लिए सभी शक्तियों को संयुक्त करने की अभिलाषा और इसके आगे अन्तर्विरोधों

1 रिचर्ड जे० बर्नेट, रोनाल्ड ई० मुलर 'ग्लोबल रीच' द पावर ऑफ द मल्टीनेशनल कार्पोरेशन्स, बम्बई, 1975, पृ० 4[illegible]

का गहरा होना। प्रथम महायुद्ध के बाद के वर्षों मे, शीत युद्ध के समय मे और सापेक्ष तथा अनुकूल आर्थिक स्थिति में केन्द्राभिमुखी शक्तियाँ पूँजीवादी विश्व मे प्रमुख थी। तथापि, बाद मे विशेष रूप में 1974-75 के सकटकाल के सबध मे स्थिति इसके विपरीत है। केन्द्रापसारी आवेग और साम्राज्यवादी अन्तविरोध निरंतर बढते जा रहे हैं। लेनिन यह लिखते समय सर्वथा सही थे "कि विकास की प्रवृत्ति एक विश्व न्यास (ट्रस्ट) की दिशा मे है जो बिना किसी अपवाद के सभी उद्योगों को और बिना किसी अपवाद के सभी राज्यो को अपने भीतर समेट लेगा।" आगे चलकर उन्होंने जो निष्कर्ष निकाला उसे जीवन ने पूर्णतया पुष्ट कर दिया है: "यह विकास ऐसी परिस्थितियों मे आगे बढता है, ऐसी रफ्तार से, ऐसे अतर्विरोधो, विवादो और विप्लवों के माध्यम से—केवल आर्थिक ही नही बल्कि राजनीतिक, राष्ट्रीय आदि—जिससे कि साम्राज्यवाद और पूँजीवाद अनिवार्यतया फट जाएँगे। और अपने विरोधी रूप मे बदल जाएँगे, इससे बहुत पहले जबकि एक विश्व न्यास आकार ग्रहण कर पाये अतिसाम्राज्यवाद', कि इससे पूर्व राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी का विश्वव्यापी समायोजित हो पाये।"[1] हमारा समय और युग विश्वसनीय रूप से प्रमाणित करता है कि पूँजी का इजारेदारीकरण तेज रफ्तार से होने के साथ-साथ पूँजीवाद के विद्यमान अतरविरोधो को बडी तीव्रता से बढाता है और नये विरोध को उभारता भी है।"

अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे राजनीतिक शक्तियो के सहयोग के संदर्भ मे निम्न-लिखित की ओर ध्यान दिलाना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है: राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनो पैमानो पर उत्पादन और पूँजी का सघन सांद्रीकरण वस्तुगत रूप से पूँजीवादी विश्व के शासक वर्ग को क्षीण करता है और साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन के मोर्चे को व्यापक बनाता है। उनके बीच विद्यमान विरोध अधिक तीव्र और गहरे हो जाते है। पूँजीवादी समाज के विभेदीकरण और सामाजिक ध्रुवीकरण की यह प्रक्रिया राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनो क्षेत्रो मे चलती है। अतर्राष्ट्रीय इजारेदारी की भूख राष्ट्रीय पूँजीपतियो के हितो की अधिकाधिक विरोधी होती जाती है। इस प्रकार नए विवादो को उभारती हैं और तीव्र करती है।

इस प्रकार, साम्राज्यवाद की पहली ऐतिहासिक विशेषता—जिसकी ओर लेनिन ने इशारा किया था वह थी: पूँजी के इजारेदारीकरण की ओर इसकी प्रवृत्ति जो आज की वास्तविकता के प्रकाश मे सतह पर दिखाई देने लगती है। कम्यु-निज्म विरोध के सिद्धातकार 'औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर' समाज के प्रवक्ता, 'पूर्ण विकास' अथवा 'जीवन की गुणवत्ता' के प्रवक्ता इस तथ्य के प्रत्युत्तर मे क्या

1. वी० आई० लेनिन, एन० बुखारिन की पुस्तिका, 'साम्राज्यवाद और विश्व अर्थव्यवस्था' की भूमिका, सकलित रचनाएँ, भाग 22, पृ० 107

रह सकते हैं? उनकी शीघ्रतान कर की गई स्थापनाएँ और वर्तमान प्रक्रिया को सुलझाने के प्रयास वास्तविकता के संपर्क में आते ही विनष्ट हो जाते हैं; यह बार-बार इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि हमारे समय में विद्यमान नई परिघटनाओं को, जो कि बड़े पैमाने पर हो रही हैं, केवल मार्क्सवाद-लेनिनवाद की स्थितियों से साम्राज्यवाद के सच्चे वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर सही ढंग से समझा जा सकता है और इसी आधार पर उनका मूल्यांकन किया जा सकता है।

परजीविता, पूंजीवाद का विशिष्ट लक्षण

लेनिन ने साम्राज्यवाद को परजीवी और पतनशील पूँजीवाद के रूप में भी चित्रित किया था। इस निष्कर्ष को खंडित करने के लिए किए गए प्रयास में कम्युनिज्म विरोध के सिद्धांतकार प्रायः यह तर्क देते हैं कि 'लाल' झंडे वालों की भविष्यवाणियों के बावजूद वर्तमान पूँजीवादी उत्पादन निरंतर विकसित हो रहा है, इतना ही नहीं, पहले की अपेक्षा तेज़ी से भी। क्योंकि वस्तुस्थिति ऐसी है इसलिए लेनिन का साम्राज्यवाद का विश्लेषण समर्थन योग्य नहीं है। कोई भी सोच सकता है कि लेनिनवाद के बूर्ज्वा आलोचक अपने निष्कर्षों में अधिक सही हो सकते थे यदि उन्होंने थोड़ा भी ध्यान दिया होता कि वास्तव में लेनिन ने इस संबंध में क्या लिखा है। उन्होंने पूँजीवाद के आधुनिकीकरण की अथवा नई परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को ढालने की उसकी क्षमता से अथवा निरंतर विकास से कभी इंकार नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने अपनी कृति 'साम्राज्यवाद-पूँजीवाद की सर्वोच्च अवस्था में लिखा था "यह विश्वास करना भूल होगी कि पतन की ओर यह प्रवृत्ति पूँजीवाद की वृद्धि को रोक देगी। यह ऐसा नहीं करती। साम्राज्यवाद के युग में, उद्योग की कुछ शाखाएँ, पूँजीपति वर्ग के कुछ समूह और कुछ देश, थोड़ी या बहुत मात्रा में, इन प्रवृत्तियों को जब-तब प्रतिबिंबित करते हैं। कुल मिलाकर, पूँजीवाद पहले की अपेक्षा तेज़ी से बढ़ रहा है, लेकिन यह वृद्धि न केवल सामान्यतया अधिकाधिक असमान हो रही है यह असमानता दिखाई भी देती है, विशेष रूप से उन देशों के पतन में जो कि पूंजी में सर्वाधिक धनी हैं।" (ज़ोर हमारा वी॰ के॰)[1]

लेनिन के विचार के अनुसार पूँजीवाद के अधःपतन और परजीविता का कारण इसका उच्चतम सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में संक्रमण के लिए आर्थिक रूप से पूर्णतया परिपक्व होना था। पूँजीवादी व्यवस्था स्वयं इस बात को सिद्ध कर रही है कि वह भौतिक संसाधनों और उत्पादक शक्तियों के पूर्ण उपयोग तथा समग्र समाज के हितों के लिए उनका उनके बुद्धिमत्तापूर्ण विकास को

1. वी॰ आई॰ लेनिन : इम्पीरियलिज्म द हाईएस्ट स्टेज ऑफ़ केपिटलिज्म संकलित ग्रन्थावली, भाग 22, पृ॰ 300

सुनिश्चित करने में दिन-ब-दिन असमर्थ होती जा रही है। फलतः पूंजीवादी विश्व के समस्त अंतर्विरोध ऐसी संकटपूर्ण स्थिति पर पहुँच गए हैं जहाँ उसका समाधान समाज के क्रांतिकारी रूपांतरण से हो ही सकता है।

पूँजीवाद की राज्य-इजारेदारी की स्थिति में इसका ऐतिहासिक रूप से पूर्व-निर्धारित अधःपतन विशेष रूप से प्रकट होता है, उदाहरण के लिए सैन्यीकरण की ओर प्रवृत्ति में, जिसकी निषेधात्मक भूमिका की नीचे परीक्षा की जा रही है। इसका अधःपतन उत्पादन शक्तियों के विकास दर की गिरावट में, सभी मनुष्यों के लाभ के लिए आधुनिकतम उपकरणों, प्राकृतिक संसाधनों तथा मानवीय श्रम का उपयोग करने में समकालीन पूँजीवाद की अक्षमता में प्रत्यक्ष दिखाई देता है और यह पूँजीवादी समाज के राजनीतिक और नैतिक अधःपतन से भी प्रदर्शित होता है।

ये परिघटनाएं न तो अस्थाई हैं और न आंशिक, उनकी जड़ें पूंजीवाद प्रकृति में ही है वे और निरपवाद रूप से सभी पूंजीवादी देशों में स्थानीय रूप ले चुकी हैं, उसके (पूँजीवाद के) सभी सामाजिक, राजनीतिक और सैद्धांतिक संगठनों के विकास को तथा समस्त मानव समाज के महत्वपूर्ण हितों के बीच मौलिक विरोधों को सतह पर लाते हुए इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ लंबे समय में स्वयं साम्राज्यवाद के विरुद्ध मोड़ ले लेती हैं।

वस्तुतः क्या यह मजदूर वर्ग के लिए संभव है कि वे अनिश्चित समय तक ऐसी स्थिति से मेल बैठाएँ जिसके अंतर्गत अत्यधिक फूल रहे सैनिक-औद्योगिक समूह निरंतर बढ़ती हुई खतरनाक मात्रा में मजदूर वर्ग का जीवन रक्त परजीवी जोंकों की तरह चूसते रहते हैं? साथ ही, यह वैज्ञानिक और प्राविधिक उपलब्धियों को समूची मानवता के लिए एक खतरे के रूप में बदल देता है। और यह एक भयानक विसंगति है कि जैसे-जैसे मानव समाज अधिक संपन्न होता जाता है और उसके हाथों में प्रकृति पर अधिक सत्ता केंद्रित होती जाती है, उसका अपना ही अस्तित्व अधिकाधिक असुरक्षित हो जाता है।

सैन्यवाद स्वभाव और सारवस्तु की दृष्टि से दोनों ही रूपों में परजीवी होता है। इसका अभिप्राय है कि न केवल श्रम और भौतिक संसाधनों का ही भयावह अपव्यय होता है अपितु शनैः-शनैः सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों को वस्तुतः सारे समाज को ही वह प्रभावित करता है। महान् जर्मन क्रांतिकारी कार्ल लिब्नेख्त ने अपने समय में लिखा था : "सैन्यवाद सबसे पहले स्वयं सेना के रूप में ही प्रस्तुत होता है, तत्पश्चात् सेना से परे एक निर्मित व्यवस्था के रूप में, जो सैन्यवादियों और अर्ध-सैन्यवादी संस्थानों के जाल के ज़रिए पूरे समाज में प्रवेश पा लेता है"'।[1] तब से

1. कार्ल लिब्नेख्त, मिलिटेरिज्म एण्ड एंटी-मिलिटेरिज्म, विद स्पेशल रिगार्ड टू यंग सोशलिस्ट मूवमेंट, ग्लासगो, 1917, पृ० 39

(अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य समेत) किसी एक भी पूंजीवादी देश ने वास्तव में सैन्यवाद को अस्वीकृत नहीं किया है। इसके विपरीत, पूंजीवादी विश्व के शासक युद्ध के लिए भौतिक संसाधनों को बढ़ाने का हर प्रयास कर रहे हैं और समूचे सामाजिक जीवन को सैन्यवादी भावना से भर रहे हैं। उद्देश्य यह है कि राज्य के आर्थिक क्रियाकलाप को, जनसंचार माध्यमों को, और विदेश नीति को सैनिक-औद्योगिक समूह की इच्छा के अधीन कर दिया जाय। सैन्यवाद वर्तमान पूंजीवाद के एकदम नग्न और भयानक रूप से अधःपतन और परजीविता का ही प्रकट रूप है।

परजीविता के अन्य रूप भी, जो उत्पादक शक्तियों की वृद्धि की गति को मद्धिम करने के साथ प्रत्यक्ष रूप में संबद्ध हैं, विकसित हो रहे हैं। निस्संदेह, विश्व साम्राज्यवाद ने अब तक प्राविधिक प्रगति को प्रोत्साहित करने, श्रम उत्पादकता को उठाने और अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने की संभावनाएं बनाये रखी हैं। तथापि, यह भी सत्य है कि और आगे वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई अस्थिरता व वैसी ही सामाजिक अस्थिरता के मूल्य पर ही की जा सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि विनियोजन प्रथमतया *समाज के लिए आवश्यक क्षेत्रों में नहीं अपितु उन क्षेत्रों में होता है जहां अधिकतम मुनाफा* उपलब्ध करने की संभावना होती है। इसके कारण होने वाले परिणाम हर जगह दिखाई दे रहे हैं पूंजीवाद के और अधिक अधःपतन एवं परजीविता के रूप में।

बूर्ज्वा सिद्धांतकार शपथपूर्वक घोषणा करते हैं कि पूंजीवादी उत्पादन में आयोजन और संगठन ने वैज्ञानिक एवं प्राविधिक प्रगति तथा राज्य क़ानूनों के द्वारा अव्यवस्था पर विजय प्राप्त कर ली है। वे दावा करते हैं, कि पूंजीवादी उत्पादन बुद्धिमत्तापूर्ण हो गया है और इससे भी बढ़कर विज्ञान और प्राविधिकी नवीनतम उपलब्धियों का उससे भी अच्छा उपयोग कर सकता है जैसा कि समाजवाद में किया जा रहा है। लेकिन वे इस तथ्य को प्रस्तुत नहीं करते कि यद्यपि पूंजीवाद अपने निजी उद्देश्यों से विज्ञान एवं प्रविधि का उपयोग करता है, साथ-ही-साथ उनकी प्रगति को मन्द करता है और इसकी उपलब्धियों का उपयोग समाज को क्षति पहुंचाने के लिए करता है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति सार रूप में पूंजीवाद के नियमों की विरोधी है। पूंजीवाद को पूंजी से अधिकतम मुनाफ़ा प्राप्त करने की अधिक चिंता रहती है, जिसे यह निरपवाद रूप से चुनता है बजाय उत्पादन की उपयुक्तता के। तथापि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक आविष्कारों का उपयोग अनिवार्य रूप से उत्पादन के खर्चों को बढ़ाता है जो एक स्तर पर पहुंचकर उनके मुनाफे में गिरावट का कारण बन जाता है। यह वह समय होता है जब इजारेदारियां वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति को बनाए रखने के लिए चिंतित रहती हैं और निरंतर उनका उपयोग करने के लिए क्षेत्रों की खोज करती रहती हैं: उदाहरणार्थ,

शस्त्रास्त्रोत्पादन जिसमें मुनाफों के निरंतर बढ़ते रहने का विश्वास रहता है। दूसरे शब्दों मे, यह उच्च रूप से औद्योगीकृत देशों को अपनी प्राविधिक क्षमता विकसित करने में समर्थ बनाती है जिससे कि वह एक खास कालावधि के दौरान वस्तुओं का और अधिक मात्रा मे उत्पादन कर सके। बेशक इसी प्रकार शस्त्रास्त्रों का। भी, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति धनी को और धनी बना देती है। दूसरी ओर, यह किसी भी प्रकार पूँजीवाद के परजीविता के स्वभाव को नही बदलती और न यह उसे बदलने की स्थिति मे ही होती है। इससे भी आगे, यह मजदूर वर्ग के साथ पूँजीवाद के संघर्ष को बढ़ाती है।

क्या कोई गंभीरतापूर्वक उस समय 'जीवन की गुणवत्ता' सुधारने की बात कर सकता है जबकि बेरोजगारी, मुद्रा प्रसार और महँगाई पूँजीवादी देशो मे बढ़ती जा रही है। बेशक, ये परिघटनाएँ पूँजीवाद के लिए नई नहीं है, बल्कि हाल के वर्षों मे उनके रूप विशेष रूप से सर्वव्यापी बन गये हैं। आम बेरोजगारी अब एक जीर्ण व्याधि, पूँजीवादी वास्तविकता का एक स्थायी पहलू बन गयी है। और व्यापारिक क्रियाकलाप की वृद्धि भी इसे नीचे उतारने का नाम नहीं लेती। लाखों लोग केवल अस्थायी तौर पर ही नौकरी से नही निकाले जाते जैसा कि अतीत मे हुआ करता था, बल्कि उनसे काम छुड़ा दिया जाता है: वे स्थाई रूप से अपने को उत्पादन की प्रक्रिया मे भाग लेने से वंचित पाते हैं। काम की आज की गति के कारण वह व्यक्ति जो काम नही पा सकता या जो उसे खो चुका है, अपनी व्यावसायिक कुशलता खो बैठता है और फलस्वरूप उद्यमी के लिए वह अपना मूल्य भी खो देता है।

कुछ समय पूर्व, सितम्बर 1976 में 'यू० एस० न्यूज एंड वर्ल्ड रिपोर्ट' ने निम्न टिप्पणी की थी : "अधिकाधिक नवयुवक अत्यधिक प्रतियोगिता पर आधारित व्यवसाय बाजार के दुष्चक्र को तोड़ने मे असफल होकर गलियो मे घूम रहे हैं।[1] इसी ने एक काले परिवार की जिंदगी पर एक विशेषज्ञ को उद्धृत किया है जिसका कहना है: "हम अपने काले समुदाय (जाति) मे 30 या उससे अधिक आयु के युवा लोग है जिनको कभी काम नही मिला, इसलिए हम एक स्थायी बेरोजगार उपसमाज विकसित कर रहे हैं, जिसके परिणाम अकल्पनीय रूप से भयानक होंगे।[2] और इस पर संपादक की टिप्पणी थी : "मोटे तौर पर अल्पशिक्षित और कार्यकौशल की कमी वाले काले हजारों और लाखो नवयुवक गरीबी ... और हिंसा के निरुद्देश्य जीवन की ओर झुक रहे हैं।"[3] ... गोरी आबादी के लिए ही सत्य नही है बल्कि ... यह सार्वभौम

1 यू. एस. न्यूज ...
2. वही, पृ० ...
3.

मान्यता प्राप्त सत्य है।

इस संबंध मे ऊँचे दर्जे की कुशलता अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने से भी किसी बड़े परिवर्तन की आशा नही की जा सकती। बेरोज़गारो मे बहुत से लोग, विशेष रूप से युवक और युवतियाँ, उच्च शिक्षा प्राप्त होते हैं। कोई समय था जब विश्वविद्यालय का प्रमाणपत्र न्यूनाधिक मात्रा में जीवन के एक स्तर के लिए गारंटी समझा जाता था। आज, जैसा कि पश्चिम में कहा जाता है यह मात्र एक महँगा लाटरी टिकट बन गया है। उत्पादन में बढ़ता हुआ यंत्रीकरण और स्वचालन मेहनतकश जनता के बड़े भाग के लिए नष्ट होने का खतरा बन गया है। यदि आगे बढ़े हुए समृद्धतम पूंजीवादी देशों मे इस प्रकार की स्थिति है तब विश्व के उन विशाल क्षेत्रों के लिए क्या कहा जा सकता है जहाँ पूँजीवाद ने स्थानीय आबादी को उत्पादक शक्तियो के विकास की दृष्टि से विषम स्थिति में डाल रखा है? आज भी, जैसाकि एक सौ वर्ष पूर्व होता था, सामान्य रूप से लोग जमीन पर, खेती के लिए, हल का उपयोग करते हैं। वस्तुतः साम्राज्यवाद ने इन देशो मे वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रगति को पहुँचने से रोकने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी है। उन सबको बाहर निकाल कर साम्राज्यवाद सभी द्वीपों के जनगण को गरीबी और अज्ञान मे रखकर दबा देना चाहता है और इस प्रकार उनको ऐतिहासिक प्रगति में भाग लेने से रोक देता है। इजारेदारियों के लिए इन लोगो का कोई उपयोग नहीं है, उनको वे अतिरिक्त मुँह समझते हैं और उनको न तो वे काम देना चाहते हैं न भोजन ही दे सकते हैं। संभवतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीवादी सिद्धान्तकार मानवसमाज को, विशेष रूप से विकासमान देशों को, 'आबादी के विस्फोट' का नारा देकर आतंकित करना चाहते हैं।

दूसरी एक और महाविपत्ति हाल के वर्षों में पूँजीवादी देशों के श्रमिकों में प्लेग की तरह फैलाई जा रही है, वह है मुद्रास्फीति। मुद्रा-स्फीति की प्रक्रियाएं स्थायी रूप से पूँजीवादी विश्व को झकझोरती रहती हैं आर्थिक मन्दी के समय में भी, जब कि खाद्य तथा निर्मित वस्तुओं की कीमतें आमतौर से ऊँची रहती हैं। पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था का सामान्य अभ्यासिक बजट के घाटे को पूरा करने में पूँजी के अत्यधिक उपयोग ने—वह भी इजारेदारियों के हित में—हथियारों पर अत्यधिक व्यय ने तथा इसी प्रकार साम्राज्यवाद की परजीविता की अन्य अभिव्यक्तियों ने पूँजीवादी समाज में मुद्रास्फीति को स्थायी बाधा बना दिया। शासक वर्गों ने इसे वेतनों में कटौती के प्रच्छन्न साधन में बदल दिया है, अर्थात् मजदूर जनता के शोषण के एक अन्य रूप में परिवर्तित कर दिया है। मजदूर वर्ग की पूँजीवादी लूट की सारी मशीनरी इस तरीके से काम करती है कि सबसे कष्ट झेलने वाले हुए हैं वेतनों, पेंशनों, छात्रवृत्तियों आदि के रूप में निश्चित आय वाले लोग। साथ छोटे उद्यमी, स्वनियोजित कारीगर, व्यापारी और

किसान उसी सीमा तक प्रभावित होते हैं जिस सीमा तक उनके उत्पादों की कीमत अनिवार्यतया उस दर से अधिक मन्द गति से बढती है जितनी कि इजारेदारियों द्वारा निर्दिष्ट है। स्पष्ट रूप से छोटे पूँजी-निवेश वालों को भी क्षति पहुँचती है, क्योंकि वे स्वयं को अवमूल्यित संपत्ति के स्वामी के रूप में पाते हैं। दूसरी ओर वित्तीय धन्नासेठ जिन्होंने पहले लगाई कम पूंजी को मुद्रा के रूप में वापस लौटा दिया है जो अपना वास्तविक मूल्य खो चुकी है। शब्दशः कहा जाए तो मुद्रास्फीति वेतनों में वृद्धि को चट कर जाती है जिसे कि मजदूरों ने स्वयं अर्जित किया है।

इन इजारेदारियों के क्रियाकलाप किस प्रकार विकासमान देश को प्रभावित करते हैं ? पूंजीवादी सिद्धान्तकार ऊर्जा संकट को पार करने की आवश्यकताओं व कच्चे माल की कमी के संबंध में बात करते हैं तथा आमतौर से इस समस्या को पर्यावरण की सुरक्षा की समस्या से जोड़ते हैं। लेकिन इजारेदारियाँ इसके समाधान के लिए कैसे प्रयत्न करती है ? निस्सन्देह यह सिद्ध करने के लिए अनेक तथ्य दिये जा सकते हैं कि वे विकासशील देशों के शोषण के कुछ सुधरे (नवीन) रूपों की सहायता से ऐसा करना चाहते हैं। कच्चे माल की बढती कीमत की उन्हें चिन्ता है लेकिन पर्यावरण के विनाश की बिल्कुल नहीं, इजारेदारियाँ विशेष रूप से बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ अपनी औपनिवेशिक स्थितियों की क्षति की पूर्ति का प्रयास करते हैं, बड़े साफ-सुथरे तरीकों की मदद से : पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में विकास-मान देशों को लाकर। वे उच्च रूप से विशेषीकृत (विशिष्टता प्राप्त) औद्योगिक प्रतिष्ठानों को श्रम और तीव्र ऊर्जायुक्त प्रक्रिया वाली और उच्च पर्यावरणिक प्रदूषणयुक्त—इस क्षेत्र में स्थानान्तरित कर देती है। नवउपनिवेशवादी तीन उद्देश्यों का अनुसरण करते हैं : सस्ते श्रम का शोषण, उनके कच्चे माल के स्रोतों को हाथ में ले लेते है और विकासशील देशों की पूँजीवादी शक्तियों पर आर्थिक निर्भरता सुदृढ कर देते हैं। और इस सबके ऊपर इन देशों पर कुछ उपकारों का भार लाद देते हैं और उनको सामाजिक सुधारों के जरिये करने में रोक देते हैं। तथापि, साम्राज्यवादी परजीविता की नयी व्यवस्था के निर्माण द्वारा इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के उनके प्रयास में इजारेदारियाँ विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की विषमता को और अधिक गहरा कर देती हैं और इसके आन्तरिक और बाह्य अन्तर्विरोधों को बढा देती है।

इजारेदार पातों में व्याप्त प्रतिक्रियावाद : इसे कैसे समझा जाए

इजारेदारियों की अपनी स्थितियों को सुदृढ बनाने की इच्छा अनिवार्य रूप से गृह एवं विदेशनीति के समस्त क्षेत्रों में जनतंत्रविरोधी प्रवृत्तियों को मजबूत करने की माँग करती है। पहले अपने समय में लेनिन ने साम्राज्यवाद की व्याख्या करते हुए इसे पातों के मध्य प्रतिक्रियावाद को पुष्ट करने के रूप में परिभाषित

किया था। आगे होने वाले पूंजीवादी समाज के विकास ने इस निष्कर्ष के समर्थन में अनेक प्रमाण प्रस्तुत कर दिये। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आक्रामकता ही, स्पष्ट रूप से राजनीतिक जीवन में प्रतिक्रियावाद सुदृढ़ बनाती है। यह समझ में आने योग्य तथ्य है।

इजारेदार पूंजीवाद का राज्य इजारेदारी में विकास पहले से अस्तित्वमान वर्तमान बुर्ज्वा जनतंत्र के मुख्य आधारों को नष्ट कर देता है। यह लोगों के सामाजिक और वैयक्तिक दोनों प्रकार के व्यवहार के नियमन की एक निश्चित पद्धति के साथ और निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत बांध देने की एक अत्यधिक कठोर प्रक्रिया है (जो सदा सतह पर दिखायी नहीं देती है)। कभी-कभी वहां जनता को दबाने के लिए फासिस्ट तरीके लागू करने की प्रवृत्ति भी दिखायी देती है। पूंजीवादी संविधानों में घोषित मेहनतकश जनता के अधिकार भी अधिकाधिक कुचले जाते हैं। साम्राज्यवाद ने ही फ़ासिज़्म के राजनीतिक आतंक एवं मृत्यु शिविरों की व्यवस्था को पैदा किया है। 1969 की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक का मुख्य दस्तावेज कहता है: "जहां कहीं भी इसके लिए संभव होता है वहीं साम्राज्यवाद जनतांत्रिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं के विरुद्ध आक्रमण शुरू कर देता है। मानव समाज को यह पैरों तले कुचल देता है और नस्लवाद को उत्पन्न करता है।"[1]

इन दिनों फासिज़्म के प्रत्याक्रमण करने के प्रयत्न आवश्यक रूप से शोर भरे प्रदर्शनों के साथ नहीं होते जैसा कि अतीत में आम तौर से होता था। उदाहरणार्थ, फ़रवरी 1933 में रीश्टाग में आग लगाने का शैतानी भरा उत्तेजक कारनामा था जिसके जरिये हिटलर के जल्लादों ने अपने सत्ता में आने की सूचना दी थी। इसके विपरीत, आजकल 'परंपरागत' फ़ासिज़्म के अवशेष, नव-फ़ासीवादी आमतौर से राजनीतिक मंच के पीछे काम करने को वरीयता देते हैं। तब तक जब तक कि साम्राज्यवादी पूंजीपति वर्ग फ़ासिस्ट आंदोलन को राजनीतिक आरक्षित सेना की भांति देखता है, इसके 'कार्यकर्ता' इस प्रकार रहते हैं जैसे आधे भूमिगत हों और किसी भी उपयुक्त मौके पर काम के लिए तत्पर हैं। तो भी फासीवादी विचारों के राजनीतिज्ञ जनतंत्र के विरुद्ध संघर्ष की अगली पांत में हैं, जैसाकि चिली की घटना थी। अथवा प्रतिक्रियावाद उनका उपयोग कुछ समय के लिए एक सहायक सेना के रूप में करता हो जैसाकि कुछ पूंजीवादी देशों में हुआ है। फ़ासीवादी और नवफ़ासीवादी आंदोलन सदा ही साम्राज्यवाद के उपकरण रहे हैं, अधिक प्रतिक्रियावादी और अधिक आक्रामक: और इसमें यह भी जोड़ना चाहिए कि वे पूंजीपति वर्ग के सहयोगी तत्व हैं। पिछला तथ्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अपेक्षाकृत नयी परिघटना है जो बाद में

1. कम्युनिस्ट एवं वर्कर्स पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक, मास्को, 1969 पृ॰ 21

दैनिक अभ्यास के रूप मे विकसित होता रहा है। काफी समय अब से यह कोई रहस्य नही रह गया है कि विदेशी इजारेदारियां प्रत्यक्ष रूप से अथवा अपनी सरकारो के जरिये किसी भी देश मे वहाँ के विभिन्न राजनीतिक पक्षो के आन्तरिक संघर्ष मे हस्तक्षेप करती है, और, स्वभावतः जनतन्त्र विरोधी शक्तियो का पक्ष लेती हैं। चिली मे यही हुआ इस तथ्य के बावजूद कि राष्ट्रपति के चुनावो से वहाँ एक लोकप्रिय संयुक्त सरकार सत्ता पर आ गयी थी, आन्तरिक तथा बाह्य प्रतिक्रियावादियों ने सीधे रूप मे हमला किया और उसे सैनिक फासिस्ट विद्रोह के रूप मे पूरा किया। यही पुर्तगाल मे भी हुआ जहाँ देश के भीतर और बाहर प्रतिक्रियावादी शक्तियों ने कम्युनिस्टो को सरकार से बाहर रखने के लिए जो कुछ किया जा सकता था सभी किया, जिन्होने संसदीय चुनावो मे समाजवादियों सहित लगभग 50 प्रतिशत मत प्राप्त कर लिये थे। यही इटली मे भी हुआ, जबकि अमरीका के नेतृत्व मे साम्राज्यवादी शक्तियाँ सरकार मे कम्युनिस्टों के शामिल होने के विरुद्ध चेतावनी लेकर सामने आयी और उस पर भारी दबाव डाला इस अकाट्य तथ्य को अस्वीकार करते हुए कि 1976 के चुनावो मे कम्युनिस्टो ने संसद के एक-तिहाई स्थानों से अधिक पर अधिकार कर लियाथा।

हाल ही के ये और अन्य उदाहरण प्रत्यक्ष रूप से बताते है कि इजारेदारियाँ मेहनतकश जनता के विरुद्ध खतरनाक अंतर्राष्ट्रीय साजिशें करती है। यह है नया 'पवित्र संयुक्त मोर्चा' जो प्रतिक्रियावाद को पैदा करता है, निस्सदेह जिसका सबसे प्रमुख रूप फासिज्म है। प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध संघर्ष केवल संसदीय और संसदेतर क्षेत्रों को ही प्रभावित नही करता, वास्तव मे यह पूंजीवादी समाज के समस्त आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को ही घेरे मे ले लेता है।

राज्य-इजारेदारी पूंजीवाद के विकास के साथ, न केवल राजनीतिक और सार्वजनिक संगठन ही अति प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के वाहक बन जाते हैं बल्कि स्वयं राज्य मशीनरी भी, साम्राज्यवादी देशो की अफ़सरशाही मशीनरी भी, अपनी समग्र आर्थिक, प्रशासनिक और विधायिका शक्तियो के साथ—स्वभावत जिसमे गुप्तचर एवं दण्डदायी संस्थाएँ भी आती है सम्मिलित रहती है।

वर्तमान मे साम्राज्यवादी शिविर मे जो कुछ हो रहा है उसे तर्कसंगत रूप से बड़ी इजारेदार पूंजी की तानाशाही का आगे विस्तार के रूप मे ही लक्षित किया जा सकता है। यह एक विविध रूपों वाली प्रक्रिया है जिसमे पूंजीवादी समाज के जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे उत्पादन, राजनीतिक संगठन और सांस्कृतिक क्षेत्र आ जाते हैं और हर जगह यह साम्राज्यवाद की ऊपरी इजारेदारी सतह और समाज के बीच कभी दूर न होने वाले अन्तर्विरोध को तीव्र करती है। ये परिघटनाएँ जो कि पूंजीवादी जनतन्त्र के गंभीर संकट को प्रकट करती है यह भी साबित करती हैं कि ये इसके विकास का ही स्वाभाविक परिणाम हैं। पूंजीवाद के ऐतिहासिक रूप मे

पूर्वनिर्धारित पतन का।

व्यापक रूप से प्रचारित पूंजीवादी जनतंत्र में पूंजीवादी व्यवस्था जो उत्पन्न करती है वह है स्पष्ट रूप से त्रुटियों से भरा कुरूप प्रतिक्रियावाद। भले ही सामंतवादी व्यवस्था की तुलना में इसने भारी उन्नति का कदम उठाया हो अथवा मेहनतकश जनता को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के चाहे जितने अवसर दिये हों, जनतंत्र अपने पूंजीवादी रूप में कभी यह दावा नहीं कर सकता, कि जनता द्वारा (बनाई गयी) सरकार की शब्दावली के सही मूलार्थ से इसकी कोई समानता नहीं है।

मनुष्य को शोषण के विषय के रूप में देखते हुए (पूंजीवाद, अपने सारतत्व और मानव विरोधी प्रकृति के कारण अन्य किसी आधार से उत्पन्न नहीं हो सकता) सकता) सामाजिक संबंधों की पूंजीवादी अवधारणा अपने अंतिम विश्लेषण में हिंसा का रूप ले लेती है। लेनिन ने लिखा था "बूर्ज्वा वर्ग किसी भी राज्य को केवल तभी सुदृढ़ मानता है जबकि सरकारी मशीनरी की सहायता से वह जहां भी पूंजीवादी शासक चाहे जनता को फेंकने की सामर्थ्य रखता हो।"[1] दूसरे शब्दों में वे जनता का उपयोग अपने उद्देश्य के लिए करते हैं।

इस प्रमुख लक्ष्य को ध्यान में रखकर शासक वर्ग अपने सम्पूर्ण जटिल राज्यतंत्र और प्रशासकीय सत्ता का—सरकारी संस्थानों, दण्डदायक संगठनों और सेना का—निर्माण करता है और यह भी निर्धारित करता है कि विचारधारात्मक जनप्रभाव के मुख्य उत्तोलकों जैसे स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय, प्रचार की मशीनरी, जनसंचार माध्यम, तथाकथित जनसंस्कृति, आदि में नियुक्तियां किस आधार पर की जाएं। ये सभी एक ही लक्ष्य की उपलब्धि के लिए चलायी जाती हैं वह है—मजदूर जनता को सामाजिक जीवन में स्वतंत्र भूमिका निभाने से और साम्राज्यवादी नीति के वास्तविक उद्देश्यों को समझने से रोका जाये और उनको शासक अभिजात वर्ग का अंधा हथियार बना लिया जाय। यदि जुझारू संघर्षों के दौरान मजदूर वर्ग पूंजीवादी देशों में कुछ राजनीतिक स्वतन्त्रताएं अर्जित करने की व्यवस्था कर लेता है, तो यह सत्ता के अनुग्रह के कारण नहीं होता, जैसाकि उनका प्रचार दावा करता है, बल्कि उनकी मजबूरी से उत्पन्न सुविधा है। ऐसी प्रत्येक रियायत सबधित देश में वर्ग शक्तियों के वास्तविक पारस्परिक संबंधों को प्रतिबिम्बित करती है, और अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भी। इसी के साथ-साथ बूर्ज्वा वर्ग इन्हें शून्य में बदलने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयास करता है। इसी संघर्ष के दौरान जनतन्त्र के पूंजीवादी पथ का विकास होता है।

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की विजय ने अन्य सिद्धान्तों की रचना की,

1 व्ला॰ इ॰ लेनिन [illegible] और [illegible] संकलित रचनाएं खण्ड 26, पृ॰ 256

जोकि पूँजीवादी प्रजातंत्र के विरोध में थे। इसने प्रत्येक नागरिक को अपनी रचनात्मक क्षमताएँ विकसित करने के लिए अधिकतम अवसर प्रदान करने का कर्तव्य सामने रखा तथा इस प्रकार मेहनतकश जनता को समाज के सक्रिय और समझदार रचयिता के रूप में बदलने का कार्यभार रखा जैसा कोई भी पूर्ववर्ती समाज नहीं कर सका था। लेनिन ने लिखा : "शक्ति का हमारा विचार सर्वथा भिन्न है। हमारा विचार यह है कि राज्य तब ही शुद्ध हो सकता है जब जनता राजनीतिक रूप से समझदार हो और यह तब ही मजबूत हो सकता है जब जनता हर चीज जानती हो, हर चीज के बारे में राय क़ायम कर सकती हो और समझदारी के साथ हर काम कर सकती हो।"[1]

जीवन ने दिखा दिया है कि पूँजीवादी जनतंत्र के अलग अलग लक्षणों की तुलना में सोवियत राज्य अपनी सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्य समस्याओं का समाधान बुनियादी रूप से भिन्न तरीके से करता है इस तथ्य ने पूँजीवाद के गंभीर संकट के आरंभिक दौर को स्पष्ट कर दिया है। यह संकट 'कम्युनिस्टों का' आविष्कार नहीं है, जैसाकि सोवियत संघ के शत्रु दुनिया को विश्वास दिलाना चाहते हैं, अपितु स्वयं पूँजीवादी समाज में चल रही प्रक्रियाओं का परिणाम है। एक ओर तो, पूँजीवादी उदारवाद की पारंपरिक आर्थिक परंपरा, निजी उद्यमों की स्वतंत्रता (जो अब पहले ही काटी जा चुकी है) का दौर समाप्त हो रहा है और इजारेदारियों ने उसका स्थान ले लिया है। यही नहीं पूँजीवाद ने, जो 1930 के आरंभ में विनाशक मंदी के चंगुल में था, अर्थव्यवस्था में राज्य हस्तक्षेप के लिए अपने द्वार खोल दिये जिससे कि वह अपना सिर ऊँचा बनाये रख सके। इस प्रकार करते हुए उसने पूरी तरह पूँजीवाद राज्य इजारेदारी की तानाशाही के लिए भौतिक आधारशिला रख दी। दूसरी ओर तात्कालिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं को हल करने में पूँजीवादी जनतांत्रिक संगठनों की अक्षमता के कारण मज़दूर जनता में असन्तोष बढ़ने लगा। इस क्रम में, कुछ पूँजीवादी देशों में यह अत्यधिक अस्थिर राजनीतिक स्थिति उत्पन्न कर देता है, प्रतिक्रियावाद जिसका व्यापक रूप से उपभोग करता है—जनता पर आधिपत्य के लिए फ़ासिस्ट तरीके लागू करने के लिए। फलस्वरूप, इजारेदारी पूँजीवाद के दक्षिणपंथी गुटों और आतंकवादी तानाशाही के समर्थकों के प्रभुत्व के लिए मैद्धान्तिक और राजनीतिक आधार आकार ग्रहण कर लेता है।

'क़ानून और व्यवस्था', 'मज़बूत सरकार' और, 'श्रेष्ठतम नस्ल का शासन' का नारा देकर वे बहुधा निम्न मध्यमवर्गीय जनता को पूँजीवादी व्यवस्था की रक्षा के लिए अपने साथ बहा ले जाते हैं।

---

1. वी० आई० लेनिन 'द्वितीय अखिल रूसी सोवियत कार्यकर्ताओं और प्रतिनिधियों की कांग्रेस' सकलित रचना, भाग 26, पृ० 256

साथ-ही पूँजीवादी जनतंत्र का संकट, जो एक समय मानवता और फ़ासि के बीच विश्वव्यापी संघर्ष के लिए भी उत्तरदायी था और शक्तिशाली रूप सेकि भी पूँजीवादी देश मे एक अन्य संघर्ष के खतरे को अभी भी बनाये हुए है, स पूँजीवाद के भीतर शक्तियों के विभेदीकरण की ओर ले जाता है। इस स्थिति इजारेदार पूँजी की तानाशाही को मजबूत करने की आकांक्षाएँ निरंतर बढ़ने ह विरोध उभारती हैं। उदार पूँजीवादी जनतांत्रिक संस्थानों के पूँजीवादी समर्थ की ओर से भी विरोध होने लगता जिन्हें अपना कार्य निरन्तर जारी रखने लिए मजदूर वर्ग पर भरोसा करना पड़ता है। इसका अर्थ है कि पूँजीवादी जनत अपने परम्परागत आधार पर निर्भर नहीं रह सकता। यह उन शक्तियों सहायता के बिना कार्य नहीं कर सकता जो इजारेदारियों के आर्थिक और रा नीतिक आधिपत्य के विरुद्ध युद्ध के द्वारा क्रान्तिकारी परिवर्तन प्राप्त करने रुचि रखते हैं।

यह मूल रूप से एक नया तथ्य है। यह ऐसे कार्यक्रम के आधार पर जो पूँजी वादी जनतंत्र की सीमाओं से का अतिक्रमण करता है, व्यापक साम्राज्यवा विरोधी मोर्चा स्थापित करने के लिए अवसर खोलता है। इस प्रकार का संयु मोर्चा 'समस्त जनतांत्रिक धाराओं के एक राजनीतिक संयुक्त मोर्चे में आने से ब सकता है जो निश्चित रूप से संबद्ध देशों की अर्थव्यवस्थाओं मे इजारेदारिय द्वारा निभायी जा रही भूमिका को सीमित करने मे निर्णायक भूमिका निभा सक हैं, बड़ी पूँजी की शक्ति को समाप्त कर सकता है तथा इस प्रकार के क्रान्तिकारी राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन ला सकता है जो समाजवाद के लिए संघ जारी रखने हेतु सर्वाधिक अनुकूल परिस्थितियों को सुनिश्चित कर सकते हों।'[1]

हमारे समय मे पूँजीवाद के पतन एवं ध्वंस की प्रक्रिया जैसा कि लेनिन अपनी कृति साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था मे चित्रित किया था, सार्वभौम रूप धारण कर लिया है।

साम्राज्यवाद जिन सकटो से गुजर रहा है, यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के 1976 के समेम्लन मे यह उल्लेख किया गया, "वे पूँजीवादी व्यवस्था के आम सकट के और बढ़ जाने के फलस्वरूप प्रकट होते हैं और विभिन्न देशों मे विभिन्न रूप और आयाम ग्रहण करते हैं।" पूँजीवादी समाज के आर्थिक, सामाजिक, नैतिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है। सम्मेलन में यह भी कहा गया : "वर्तमान गभीर सकट के इस प्रकार के लक्षण—जैसे स्थायी मुद्रास्फीति, मौद्रिक व्यवस्था का संकट, उत्पादन क्षमताओं का अधिकाधिक कम उपयोग होना और मेहनतकश जनता के लाखों व्यक्तियों का बेरोजगार होना

1. कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अन्तर्राष्ट्रीय बैठक, मास्को, 1969, पृ० 27

—बड़ी गहराई के साथ अनुभव किये जा रहे हैं।"[1]

पूंजीवाद के अन्तर्गत ये परिघटनाएँ नयी नहीं हैं। तथापि, जो नया है, वह यह है कि ये स्थायी बन गयी हैं और अपने को विशेष रूप से विध्वंसक रूप में प्रदर्शित करने लगी हैं। उत्पादन में वृद्धि, जिसके पश्चात् प्रायः मंदी आती है, अधिक समय तक बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं कर सकती, और आर्थिक गिरावट होने पर आवश्यक तौर पर कीमतें नहीं गिरतीं। श्रम की उत्पादकता में वृद्धि और उत्पादन की प्रभावशीलता महंगाई को कम नहीं कर सकती। मजदूरों की स्थिति अधिकाधिक निराशाजनक होती जाती है लेकिन पूंजी-वादी देशों की आर्थिक स्थिति में हो रहे परिवर्तनों के बावजूद—चाहे उत्पादन क्षमताओं का भार बढ़े, बेरोजगारी में गिरावट आये या वह बढ़े, मुद्रास्फीति में घटत या बढ़त हो—एक क्षेत्र ऐसा है जो सदा एक जैसा रहता है जिसमें कभी गिरावट नहीं आती। वह है इजारेदारियों के मुनाफों का क्षेत्र। यह कहना ही काफी होगा कि अमरीकी इजारेदारियों के मुनाफे 1970 से 1974 के बीच ही दुगुने हो गये। 1975 में (1929-33 की मंदी के बाद के अनुपम आर्थिक संकट की वृद्धि के समय) बेरोजगारी की तेजी से वृद्धि के साथ और मुद्रास्फीति की प्रक्रिया में तथा महंगाई में वृद्धि के साथ, अमरीकी व्यापार क्षेत्रों के प्रभावशाली मासिक फ़ार्च्यून के अनुसार, सबसे बड़ी 50 कंपनियों के व्यवसाय में 30,000 मिलियन डालर तक बढ़ोतरी हो गयी, और शुद्ध मुनाफा 1971 की तुलना में 12,000 मिलियन डालर तक बढ़ गया था।

यह इस विषय का मूल प्रश्न है। सामाजिक संबंधों की ऐसी व्यवस्था जो निर्बाध रूप से पूंजी के संचय को सुनिश्चित बनाने से और मुनाफों की राशि जमा करने से संबंध रखती है, तथा लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति से सरोकार नहीं रखती, अन्य कोई परिणाम प्रस्तुत कर ही नहीं सकती। व्यक्तियों के हितों पर संभवतः इस व्यवस्था में विचार किया जाता हो लेकिन वह भी गौण महत्व का विषय है, क्योंकि वे भी सदा पूंजी के हित में त्याग दिये जाते हैं और कभी-कभी उनकी सर्वथा उपेक्षा कर दी जाती है। पश्चिम जर्मनी की वर्टस्चाफ्टस्वोचे ने लिखा : "ऊटो के बाद विश्व में मनुष्य ही सर्वाधिक संख्या में है। लोगों के अतिरेक ने प्रत्येक व्यक्ति के अलग महत्व को कम कर दिया है। मानव जीवन, जो किसी भी मानवीय नैतिकता का सार है अत्यधिक उपेक्षित हो गया है और अब इसका मूल्य एक पाउण्ड स्टर्लिंग के पैंक साथ मिलाने से अधिक नहीं है।"[2]

वर्तमान पूंजीवादी विश्व में पूंजीवादी समाज और व्यक्ति के बीच असाध्य अंतर्विरोध अत्यधिक गहरा और दुखद बन गया है। इजारेदारियों की शक्ति

1. यूरोप में शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए' मास्को, 1976, पृ० 36
2. वर्टस्चाफ्टस्वोचे सं. 12, मार्च 15, 1974 S. 24

ने भविष्य में व्यक्ति की आस्था को तोड़ दिया है, वह उसकी नागरिक प्रतिष्ठा को कुचल देती है उसकी मनोवृत्ति को कुरूप और दाग़ वना देती है, दवाओं की आदत, और नशाख़ोरी, अपराधों की अकल्पनीय वृद्धि, समूहों की मानसिक अराजकता, आदि वे कीमतें हैं जिन्हें वर्तमान पूँजीवादी समाज व्यक्ति के साथ संबंधों की समस्या को सुलझाने में अपनी असमर्थता के लिए अदा करता है।

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पूँजीवादी विश्व के अधःपतन के उक्त लक्षणों के मुख्य केन्द्र हैं सर्वाधिक उद्योगीकृत और सम्पन्नतम पूँजीवादी देश। अमरीका में, उदाहरण के लिए, आबादी की वृद्धि की अपेक्षा 9 गुना तेज़ी से सामूहिक अपराध बढ़ रहे हैं। इस साम्राज्यवादी शक्ति में इसी प्रकार अन्य कई की सूचियाँ भी सबसे ऊँची है। अमरीका के युद्धोत्तर विकास के परिणामों की चर्चा करते हुए 1976 में राष्ट्रपति के चुनाव अभियान में जिराल्ड फ़ोर्ड जो उन दिनों अमरीका के राष्ट्रपति थे, ने विवाद की उत्तेजना में स्वीकार किया था कि वर्तमान पीढ़ी के अधिकांश जीवनों के माध्यम से अमरीका ने संकट का सामना किया। अमरीका के कई नेताओं को कत्ल कर दिया गया, एक युद्ध हुआ जिसमें अमरीका न तो जीत सका और न उसे समाप्त ही कर सका। अमरीका की सड़कों और विश्वविद्यालय परिसरों में उत्पाती दंगे हुए। "असीमित मुद्रास्फीति भुगतनी पड़ी और सबसे ख़राब मंदी सहनी पड़ी। उन्होंने कहा : "सरकार के उच्चतम स्तर पर भ्रष्टाचार ने हमारा पर्दाफ़ाश किया।"[1]

यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि फ़ोर्ड आत्मालोचना कर रहे थे। वह केवल वास्तविकता से बच निकलने में असमर्थ हो गये थे। अमरीका का यंत्रणापूर्ण अनुभव पूँजीवादी विश्व में कोई अपवाद नहीं है : यह सीधे-सादे ढंग से सामान्य शब्दावली में उस मार्ग के विषय में पूर्वानुमान है जिस पर औद्योगीकृत पूँजीवादी देश वर्तमान में चल रहे हैं। यह स्थिति चाहे जितनी अपमानजनक हो वह इस पर बढ़ते चले जाएँगे वस्तुगत अनिवार्यता के साथ तब तक जब तक कि उनकी अर्थ-व्यवस्थाएँ अमरीकी रथ के साथ जुड़ी हैं और उनके वैचारिक केन्द्र उनको अमरीकी पद्धति की ओर निर्देशित करते रहें।

यदि संयुक्त राज्य अमरीका में, जहाँ यूरोप की अपेक्षा प्रति व्यक्ति आय तीन गुना ऊँची है, विकास और समृद्धि ने ग़रीबी को हटा दिया होता, सामाजिक अन्याय और मज़दूर वर्ग की कुछ श्रेणियों के शोषण, को समाप्त कर दिया होता तब वहाँ उसके उदाहरण का अनुसरण करना लाभदायक होता। ल मोंद डिप्लोमेटिक के संपादक क्लाड जूलियन ने अपनी पुस्तक 'ले सुईसाइड्स डेमोक्रेटीस्' में लिखा : "लेकिन उस देश का अनुभव जो यूरोप से आगे बढ़कर प्राविधिक और उपभोग के

1. टाम रिपोर्ट सितम्बर 15, 1976

युग मे प्रवेश कर चुका है, सारे भ्रमों को तोड देता है : उत्पादन के विस्तार से गरीबी का अन्त नही हुआ, जीवन की गुणवत्ता की अपेक्षा जीवन का स्तर ऊँचा हुआ, फार्मों की संख्या, जहाँ मजदूरों को समस्त मानवीय हित के सभी अधिकारो से वंचित है, कई गुना बढ़ गयी है···और अन्ततः पार्यावरणिक प्रदूषण ने सभी सीमाएँ तोड दी हैं—और आज सारा यूरोप अमरीका के कदमो का अनुसरण कर रहा है।"[1]

फ्रांसीसी पत्रकार का चेतावनी भरा वक्तव्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, इस संकट की रोशनी मे जो निरंतर पूँजीवादी विश्व को कंपा रहा है और 1970 के मध्य में विशेष रूप से गंभीर हो गया है।

सत्तर का दशक : पूँजीवाद के नवीकरण का शोकगीत

यदि 'प्राविधिक नियतिवाद' की अवधारणा तथा 'जीवन की गुणवत्ता' सुधारने की पूँजीवादी शैली के भारे का दिवालियापन प्रमाणित करने के लिए किसी अतिरिक्त प्रमाण की आवश्यकता है, तो वह 1970 के मध्य अत्यधिक तीव्र संकट के रूप मे स्वयं प्रकट हो गया, जिस संकट ने समस्त पूँजीवादी विश्व को कँपा दिया। पूँजीवाद के इतिहास मे इतनी अधिक संख्या मे आये, पूर्ववर्ती आर्थिक संकटो से इतना भिन्न, 1974-75 का यह संकट बहुमुखी परिघटना के रूप मे विकसित हुआ। "यह केवल एक आर्थिक संकट होने से कुछ अलग हट कर था, यह राजनीतिक और नैतिक संकट भी था।" 1976 में यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के सम्मेलन में लियोनिद ब्रेजनेव ने इस ओर ध्यान दिलाया था कि "जनगण अधिकाधिक समझते जा रहे हैं कि पूँजीवादी समाज ऐसा समाज है जिसका भविष्य नही है।"[2]

यह ऐसे समय मे प्रकट हो रहा है जब पूरे विश्व मे वर्ग शक्तियाँ अपने को पुनर्गठित कर रही हैं और अंतर्राष्ट्रीय संबंधो मे नये परिवर्तन हो रहे हैं, यह संकट पूँजीवादी समाज के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों मे—अर्थव्यवस्था, राजनीति और विचारधारा मे—फैलता जा रहा है। परंपरागत रूपो की विविधता के अतिरिक्त इसके बड़ी संख्या मे नये पहलू हैं जो मौलिक महत्व रखते हैं।

1930 के दशक के प्रारंभ मे उत्पन्न संकट से कुछ भिन्न, जबकि विश्व पूँजीवाद की राज्य इजारेदारी की व्यवस्था अभी आरंभ हो रही थी, आकार ले रही थी, वर्तमान संकट उस समय आया जब कि इस व्यवस्था का निर्माण पूरा हो चुका था और जब यह इसके नियामक उत्तोलको जिनमे से कुछ प्रभावहीन हो चुके थे, को

1. बर्नार्ड जूलियन, ले सुईसाइड द डेमोक्रेटीस्, पैरिस 1972, पृ॰ 174
2. यूरोप में शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए, बर्लिन जून, 28-30, 1976, मास्को, 1976, पृ॰ 5

पुन: नियन्त्रित करने में लगा था। इन अर्थों में 1974-75 का संकट और उसके परिणाम वास्तव में स्वयं राज्य-इजारेदारी व्यवस्था के संकट के अतिरिक्त कुछ न थे।

अर्थव्यवस्था के राज्य द्वारा नियमन, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय इजारेदारी में एकीकरण ने इस संकट को विशेष रूप से गहरा और तीव्र बना दिया है। एक ही समय आयी उत्पादन में चक्रिक मंदी ने पूँजीवादी विश्व में अर्थव्यवस्था की सभी मूलशाखाओं को और साम्राज्यवाद के सभी शक्ति केन्द्रों को, प्रभावित कर दिया, और ऐक्यबद्धता की सीमाओं को पार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक भी पूँजीवादी देश दूसरे देश की कीमत पर संकट से बाहर नहीं निकल सका। दूसरी ओर, सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा, अपनी इजारेदारियों सहित, डाला गया निरंतर दबाव संकट को और अधिक बढ़ा देता है और नयी कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं जिन्हें इसके 'कनिष्ठ भागीदार' मेहनतकश जनता के कंधों पर डालने की कोशिश करते हैं।

पूँजीवाद अब इस स्थिति में नहीं है कि अतिरिक्त उपार्जन तथा कमी की आपूर्ति, तथा धन के व्यय के लिए पर्याप्त मात्रा में योग्यता के साथ कीन्स के नुस्खों का उपयोग कर सके जैसे कि क्लासिकीय रूपों के काल में किया जाता था—मंदी के और बेरोजगारी के साथ पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की स्फीति विस व्यवस्था से जुड़ गयी है। मुद्रास्फीति वास्तव में नियंत्रण को तोड़ चुकी है और इसने सम्पूर्ण विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के मुद्रा-क्षेत्र में भयानक संकट उत्पन्न कर दिया है। इसने भी आगे निरंतर बढ़ती हुई कीमतों, और इसी प्रकार इजारेदारियों के सरकारी अनुदानों और शस्त्रास्त्र निर्माण पर अत्यधिक व्यय ने संकट से बाहर निकलने के रास्ते खोजने और उसके परिणामों का सामना करने के अवसर समाप्त कर दिये हैं।

इस प्रकार बनाई भूमिका अब सर्वथा सही थी जब 1974 के अंत में उन्होंने संकट-संबंधी परिकल्पनाओं के वास्तविक आयामों को कम आँकने और इस प्रकार सामान्य मूल्यांकन को विकृत करने के प्रयासों के विरुद्ध चेतावनी दी थी। उन्होंने 'दि बिज़नेस वीक' में लिखा था : 'फेडरल रिज़र्व बोर्ड के अध्यक्ष ने कहा : एक बाज़ार का संकट'' एक दीर्घकालिक बाज़ार संकट, अमरीकी [illegible] [illegible] निर्णय देते हुए कहते हैं एक सबसे [illegible] संकट, [illegible] [illegible] पुष्टि करते हैं। कोई भी स्पष्ट रूप से इसके चरित्र के बारे में कुछ कहने का साहस नहीं करता, व्यवस्था के संकट के रूप में, और यह [illegible] [illegible] का नहीं है।'[1]

1 [illegible] 241 अक्टूबर 1974, पृ० [illegible]

1974-75 का आर्थिक संकट साम्राज्यवाद की पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था की छिन्न-भिन्न होने की स्थितियों के तथा गंभीर विरोधों के ऊँचे होने की स्थितियों के अंतर्गत चल रहा था। औद्योगीकृत और विकासशील देशों के बीच। यह उस समय उभरा जबकि नयी विश्व आर्थिक व्यवस्था के संगठन का प्रश्न विचारणीय मुद्दा बन चुका था। इसने न केवल पूंजीवाद के लिए वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों का समाधान करना अधिक कठिन बना दिया अपितु वह इसके आम संकट की अगली व्यवस्था का बुनियादी कारक भी बन गया।

वास्तव में, हम तथाकथित विकासमान देशों की विस्तृत जमीन पर संघर्ष के एक और दौर के आरंभ के साक्षी हैं जो इस समय आर्थिक क्षेत्रों में है। यद्यपि राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के आघातों ने साम्राज्यवाद को एशिया और अफ्रीका में बहुत से देशों की राजनीतिक स्वाधीनता को मान्यता देने के लिए बाध्य किया है, वस्तुतः वे विश्व के इन विशाल क्षेत्रों के जनगण की तथा उनके कच्चे माल की और ऊर्जा संसाधनों की लूट को जारी रखे हुए हैं।

1953 से 1973 के पिछले दो दशकों में, पूंजीवादी और विकासशील देशों के प्रतिव्यक्ति सामान्य राष्ट्रीय उत्पादन के बीच का अन्तर दुगुना बढ़ गया है। और आज यह अनुपात 16 1 के बराबर है। यह आश्चर्यप्रद नहीं है, यदि हम यह ध्यान में रखें, उदाहरणार्थ, यह तथ्य कि पश्चिम जर्मनी मुख्य रूप से जो कच्चा माल विकासमान देशों से आयात करता है वह 1962 से 1972 के बीच 2.1 प्रतिशत बढ़ गया जबकि तैयार माल का निर्यात मूल्य 24 5 प्रतिशत तक पहुंच गया—इसी काल में। हमने इस प्रकार बहुत से उदाहरण उद्धृत किए हैं जो स्पष्ट रूप से यह दिखाते हैं नव उपनिवेशवाद के नाम में जिस परिघटना की चर्चा की जा रही है वह पुराने उपनिवेशवाद से अधिक भिन्न नहीं है। इसका अर्थ है कि मुट्ठी भर आर्थिक रूप में विकसित देश विकासमान देशों को अभी भी निरन्तर लूट और कुचल रहे हैं।

और अधिक समय तक इस स्थिति को जारी रखने के अनिच्छुक विकासशील देश अपने यहां के ऊर्जा संसाधनों और कच्चे माल के स्वामित्व और मुनाफे (जो विदेशी इजारेदारियाँ ले रही हैं) के बीच साम्राज्यवादियों द्वारा लागू किए गए असन्तुलन को सुधारने, उसकी रक्षा करने के लिए ठोस कदम उठा रहे हैं। दूसरे शब्दों में वे अधिक न्याय संगत आर्थिक व्यवस्था चाहते हैं जो श्रम के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन पर आधारित हो, जो समस्त मानव समाज के हितों को पूरी तरह ध्यान में रख सके।

कुछ क्षेत्रों में और कुछ मुद्दों पर विकासमान देश पहले से ही स्थिति को अपने पक्ष में परिवर्तित कर रहे हैं। कुछ मामलों में साम्राज्यवाद अधिक समय तक पहले की तरह कच्चे माल की कीमतें मनमाने ढंग से निर्धारित नहीं कर सकता। इन परिस्थितियों में इजारेदारियों को अतिरिक्त संसाधनों की खोज के लिए

अध्याय : 7

इजारेदारी-विरोधी-मोर्चे का निर्माण

"अब इतिहास स्वयं ही न्यायाधीश है, तथा सर्वहारा उसके निर्णय का निष्पादक।"[1]

—कार्ल मार्क्स

सामाजिक विकास की मूल शक्ति

पूँजीवादी दुनिया में मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता दरअसल समय की पहचान बन गई है। पूँजीवादी विश्व में आज न तो कोई भी ऐसा दल या सामाजिक आंदोलन है जो जन-असंतोष की अवहेलना कर सकता हो और न ही एक या दूसरे सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन को समर्थन देने से चूक सकता हो। सन् 1974-75 का संकट और उसके बाद के प्रभावों ने इस प्रवृत्ति को मजबूत ही किया है। सारी समस्या का केंद्र इन मूलभूत परिवर्तनों की विषयवस्तु है—कि ये किसके पक्ष में हैं और किस तरह घटित होते हैं।

लेनिन के अनुसार, मार्क्सवादी हमेशा "एक निर्धारित क्षण में ऐतिहासिक प्रक्रिया के वस्तुगत सार तत्त्व का विश्लेषण करते हैं, निश्चित और ठोस परिस्थितियों में उसकी जाँच करते हैं, वे ऐसा यह निर्धारित करने के लिए करते हैं कि प्रमुखतया कोई आंदोलन किस प्रकार का है, उन ठोस परिस्थितियों में वह किस वर्ग के मूल नेतृत्व में, किस उद्देश्य के लिए, किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा है।"[2]

मार्क्सवादी-लेनिनवादी शिक्षण के अनुसार 'प्रेरणास्रोत' मजदूर वर्ग होता है। इस निष्कर्ष के समर्थन में हमारा अनुभव समुचित प्रमाण उपलब्ध कराता है, पिछले 150 वर्षों में सर्वहारा वर्ग अपरिहार्य वर्ग-संघर्षों के बीचोंबीच रहा है और उसने मुक्ति और लोकतांत्रिक आंदोलन में पूर्ण आत्मविश्वास के साथ नेतृत्वकारी भूमिका अदा की है। अपेक्षाकृत अल्प ऐतिहासिक अवधि में मजदूर वर्ग ने राजनैतिक शक्ति के रूप में विशाल प्रगति की है। यह हमारे युग के प्रगतिशील परिवर्तनों का नेता है। पूँजीवादी देशों में इसका संघर्ष सामाजिक विकास की प्रमुख शक्ति बन चुका है और "सारी मेहनतकश जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, और

1. मार्क्स/एंगेल्स, वर्क्स, खंड 12, पृ० 4
2. वी. आई. लेनिन, 'अंडर ए फाल्स फ्लैग', कलेक्टेड वर्क्स, खंड 22, पृ० 143

सबसे बढ़कर राष्ट्रीय हितों का प्रतिनिधित्व करता है।'[1]

मजदूर वर्ग ने मुक्ति और लोकतांत्रिक संघर्ष के नेतृत्व को, साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध भारी लड़ाइयों के दौरान लड़ते हुए जीतकर हासिल किया है। समकालीन समाज के अन्य वर्गों में इसकी भूमिका और इसका स्थान क्रमशः पहचाना गया था। एक ऐसा भी समय था जब सर्वहारा, जोकि पहले से ही लोकतांत्रिक आंदोलन में हिस्सा ले रहा था, अपने ही बलबूते पर एक स्वतंत्र शक्ति के रूप में काम नहीं कर सकता था और न अपना खुद का कार्यक्रम ही सामने रख सकता था; उसने जो संघर्ष छेड़ा था वह अपने वर्ग शत्रु—बूर्ज्वा वर्ग—के खिलाफ़ सीधे तौर पर लक्षित नहीं था किंतु वह उसके दुश्मन के दुश्मनों के विरुद्ध था—अर्थात् सामंती प्रभुओं और तानाशाही के विरुद्ध था। अठारहवीं शताब्दी के अंत की स्थिति ऐसी ही थी अर्थात् फ़्रांसीसी क्रांति और अमरीकी उपनिवेशों के स्वाधीनता संग्राम की अवधि के दौर में। दूसरे शब्दों में, उस अवस्था में यह फिर भी आवश्यक था कि बूर्ज्वा वर्ग के सामाजिक-राजनैतिक और सैद्धांतिक प्रभाव से सर्वहारा की मुक्ति की समस्या को हल किया जाय अर्थात् इसे अपने आपको एक स्वाधीन, और उससे भी अधिक, सामाजिक प्रगति की मूल शक्ति के रूप में स्थापित करना था।

यह लक्ष्य कुछ दशकों के दौर में ही पूरी तरह प्राप्त कर लिया गया। सर्वहारा वर्ग 1830 और 1840 के दशकों के वर्ग युद्धों (ग्रेट ब्रिटेन में चार्टिस्ट आंदोलन और फ्रांस और जर्मनी में मजदूर संघर्ष) में लोकतांत्रिक आंदोलन की स्वतन्त्र शक्ति के रूप में उभरने लगा था। अगले दशकों में, विशेषतया मार्क्सवाद के उदय के बाद, यह प्रक्रिया तीव्र गति से विकसित होने लगी, अधिकाधिक देशों को प्रभावित करती हुई। समय के साथ मजदूर वर्ग ने अपने खुद के कार्यक्रम का निर्माण किया जो दूसरे तमाम लोकतांत्रिक आंदोलनों के कार्यक्रमों की अपेक्षा, कहीं अधिक व्यापक और अधिक प्रगतिशील था। इस विकास की द्वंद्वात्मकता ऐसी थी कि, स्वयं के द्वारा निर्मित मंच के आधार पर एक के बाद दूसरी स्थिति पर विजय प्राप्त करते हुए सर्वहारा अपने ऐतिहासिक मिशन को न केवल अपने ही हितों को प्राप्त करने के लिए ही पूरा करने लगा, किंतु वह उसे सारे ही श्रमिक जनसमुदाय के हितों की प्राप्ति के लिए पूरा करने लगा। तब से आबादी के व्यापक गैर-सर्वहारा हिस्सों के साथ इसका पुनर्मिलन हुआ जिसका आधार था मौलिक सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए निर्धारित एक स्वतन्त्र कार्यक्रम। सामाजिक विकास के तर्क ने इस सह मिलन को अनिवार्य बना दिया था। ठीक जैसे कि बूर्ज्वा वर्ग ने अपनी आरंभिक अवस्था में अपनी ही कब्र खोदने वालों को, अर्थात् सर्वहारा को, पैदा कर दिया था उसी तरह पूँजीवाद—एक व्यवस्था के रूप में नष्ट होने के दौर में—ऐसी वस्तुगत परिस्थितियाँ पैदा कर देता

1. फ़ॉर पीस, सीक्योरिटी, को आपरेशन एण्ड सोशल प्रोग्रेस इन यूरोप, मास्को 1974, पृ॰35

है जिनमें एक ऐसा व्यापक इजारेदारी-विरोधी मोर्चा संगठित हो जाता है जिसमें सभी वास्तविक प्रगतिशील सामाजिक शक्तियां मजदूर वर्ग के चारों ओर एकताबद्ध हो जाती हैं तथा जो देर-सवेर पूंजीवादी व्यवस्था को उलट देती हैं।

प्रत्येक राष्ट्र की सीमाओं के भीतर और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर, युद्ध को रोकने के लिए सच्ची लोकतांत्रिकता तथा एक अन्य विश्व युद्ध को टालने के लिए संघर्ष समाजवादी क्रांति की प्रस्तावना के रूप में परिवर्तित हो रहा है। लेनिन ने लिखा—"सर्वहारा को लोकतांत्रिक क्रांति को पूर्ण करना ही होगा, अपने आपको किसानों के समुदाय से मैत्री के द्वारा एकताबद्ध करके ताकि निरंकुश एकतंत्र के प्रतिरोध को शक्ति के द्वारा कुचला जा सके और बूर्ज्वा अस्थिरता को शक्तिहीन बनाया जा सके।" इसके आगे उन्होंने स्पष्टतया कहा—"सर्वहारा को समाजवादी क्रांति को पूर्ण करना होगा, अपने आपको आबादी के अर्द्ध-सर्वहारा तत्वों से मैत्री के द्वारा एकताबद्ध करके, ताकि बूर्ज्वा प्रतिरोध को शक्ति के द्वारा कुचला जा सके और किसानों और टट्पुंजियों के वर्ग की अस्थिरता को संज्ञा शून्य किया जा सके।"[1]

लेनिन ने यह निष्कर्ष इस शताब्दी के आरंभ में निकाला था, उस प्रारंभिक *अनुभव के आधार पर जो सन् 1905-07 की रूसी क्रांति के दौरान प्राप्त हुआ* था। उन्होंने पूंजीवाद से समाजवाद में मानवता के संक्रमण के आगामी युग के सार तत्व तथा आधारभूत दायित्वों व उन्हें पूरा करने वाली शक्तियों का व्यापक पूर्वानुमान लगा लिया था।

जब से इस सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ तब से यह एक अक्षुण्ण सैद्धांतिक और राजनैतिक संघर्ष का केंद्र बिंदु रहा है। और स्वभावतः इस रूप में वह समकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया और सामाजिक विकास के मुख्य सामाजिक-राजनैतिक दिशा-निर्देशों के सार तत्व के मूल्यांकन कारक बन गया है। यहाँ दो प्रकार के सिद्धांत सूत्र हो सकते हैं। यदि यह मान लिया जाय की समकालीन समाज की नेतृत्वकारी शक्ति सर्वहारा है, तो ऐतिहासिक विकास की धारणा यह मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत है जिसके अनुसार पूंजीवादी लोकतांत्रिक क्रांति, प्रगति करते हुए विश्व स्तर पर प्रत्येक देश की वर्ग शक्तियों की प्रसंगानुसार मैत्री और एकता के साथ लिये समाजवादी क्रांति में रूपांतरित हो जाती है। यदि, दूसरी ओर यह मान लिया जाय कि सर्वहारा ऐसी कोई शक्ति नहीं है, और, यह भी कि अब उसका अस्तित्व ही समाप्त हो चुका है (जो कि मार्क्सवाद विरोधियों का मत है), तो बहुत ऐसी गुंजाइश है कि मनमाने नतीजे, आम तौर पर कम्युनिस्ट-विरोधी प्रकृति के, निकाले जा सकें।

1. वी॰ आई॰ लेनिन—"टू टेक्टिस ऑफ सोशल-डैमोक्रेसी इन द डैमोक्रेटिक रिवोल्यूशन" संकलित रचनाएं, खंड 9 पृ॰ 100

आजकल मजदूर वर्ग की भूमिका के विषय मे विशद रूप से विवादपूर्ण संघर्ष चल रहा है। यह सब उन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की पृष्ठभूमि के विरोध मे हो रहा है जो अन्य कारकों के अलावा वैज्ञानिक प्राविधिक क्रांति के द्वारा अधिक घटित किए जा रहे हैं। ये परिवर्तन अपने आप मे इतने महत्वपूर्ण हैं कि श्रमिक वर्ग के आंदोलन के पक्ष मे वर्ग शक्तियो के विश्व संतुलन के दायरे मे घटित होने वाली तब्दीलियों की चर्चा तर्कसंगत बन जाती है।

इस तथ्य का खंडन करने से प्रतिबद्ध बूर्ज्वा सिद्धांतकार मजदूर वर्ग के 'क्षय' 'विलय' और 'अदृश्य' हो जाने की बात भी करते हैं। एलेन तूरेन ज़ोर देकर कहते हैं—"एक कार्यक्रमबद्ध समाज मे मजदूर वर्ग अब कोई इतिहास का नेतृत्वकारी नायक नही है।"[1] इससे भी अधिक स्पष्ट वक्तव्य सिग्रिद ह्यूक के हैं जो पश्चिम में लोकप्रिय दार्शनिक और राजनैतिक रचनाओं की लेखिका हैं। वह अपनी पुस्तक, जिसका एक महत्वाकांक्षा पूर्ण आडंबरी शीर्षक 'पोस्ट-कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' है, मे लिखती हैं—'मार्क्स का प्रतिरूप परिवर्तित समाज के अनुरूप सिद्ध नहीं होता। अब सर्वहारा वर्ग का कोई चिह्न बाकी नही बचा है। प्रत्येक निवर्तमान दिन के साथ मजदूर वर्ग के संबंध मे बात करने का बहुत कम औचित्य दिखता है। यह काफी समय पहले से मध्यम स्तर के साथ एकजुट हो चुका है। अब वर्ग संघर्ष मे उसकी दिलचस्पी नही है। क्योंकि क्लासिकी मार्क्सवाद के अर्थ मे देखें तो अब ग़रीब वर्ग हैं ही नही, सर्वहारा मे यह भावना नहीं है कि वह अपने आप में एक माल है; उसका न कोई शोषण होता है न कोई दमन तथा न ही आर्थिक संबंधो का दबाव।"[2]

सिग्रिद ह्यूक कहती हैं कि वह घोषित मार्क्सवाद-विरोधी हैं और हम उनसे कुल मिलाकर इसी बात पर सहमत हो सकते हैं। वह जिस महत्त्वाकांक्षी काम को पूरा करने में संकल्पबद्ध हैं—"युवा पीढ़ियों को मार्क्सवाद के विरुद्ध लडने के लिए हथियारबंद करना।"[3] वह कुछ बहुत घिसेपिटे और पूर्णतया भ्रामक विचारो को, जिनके अनुसार 'सामाजिक भागीदारी' की संभावना व्यक्त की गई है—व्यक्त करने के अलावा कुछ भी नया विचार पैदा करने मे असमर्थ हैं। अतः उनकी रचनाएं पाठक को वापस मौड़े कम्युनिज़्म-विरोधी विचारो की ओर धकेलती हैं। तूरेन, ह्यूक और दूसरे बूर्ज्वा विचारकों से और क्या उम्मीद की जा सकती है, जो समकालीन युग के विकास की वास्तविक प्रवृत्तियो को ही उपेक्षा करना चाहते हैं। आज के बूर्ज्वा विश्व की सामाजिक संरचना की सच्ची तस्वीर को विकृत करके वे

1. एलेन तूरेन,—'ल' सोसाइटी पोस्ट-इंडस्ट्रीले', पेरिस, 1969, पृ॰ 25
2. सिग्रिद ह्यूक, दास नाक-कम्युनिस्टिक मैनीफेस्ट, डेर डाइलैक्टिक यूनिटेरिज्मस एल्स आल्टरनेटिव, स्टुटगार्ट 1974, पृ॰ 15
3 वही, पृ॰ 11

जानबूझकर इसकी मूल प्रवृत्तियों—किराए के मजदूरों की संख्या में तीव्र वृद्धि और मजदूर वर्ग के लगातार बढ़ते हुए अनुपात—को नजरदाज करते हैं।

दोनों प्रवृत्तियां आधुनिक उत्पादन की वस्तुगत आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करती हैं, और ये समाजवादी और पूँजीवादी दोनों प्रकार के देशों मे विकसित होती हैं। किंतु इसमे वस्तुगत अंतर यह है कि जहां तक समाजवादी देशों का संबंध है वहां उनमें सब काम योजनाबद्ध तरीके से किया जाता है और सब कुछ मेहनतकश लोगों की भलाई के लिए किया जाता है, जबकि पूँजीवादी देशों में वे काम सहज गति से होते रहते है और इसलिए आगे चलकर सामाजिक विरोधों और संघर्षों को *अनिवार्यतः तीव्र करते हैं।*

सोवियत संघ मे सन् 1960 से 1974 तक, जबकि कृषि मजदूरों की संख्या और उनके अनुपात मे ह्रास हुआ, तो औद्योगिक मजदूर वर्ग की संख्या 459 लाख से बढकर 702 लाख हो गई। सफेद पोश मजदूरो की संख्या भी तेजी से बढ़ गई—88 लाख से बढकर इसी अवधि मे 214 लाख हो गई।[1] ये सभी प्रक्रियाएँ—जो एक विकसित समाजवादी समाज मे, अंतिम विश्लेषण मे, औद्योगिक, यांत्रिक और उन्नत कुशल श्रम के अनुपात से निर्धारित होती है सोवियत संघ में भविष्य मे भी जारी रहेगी। समाजवाद के अंतर्गत ये प्रक्रियाएँ सारे समाज को फ़ायदा पहुँचाती है और इसलिए इनके साथ-साथ मजदूर लोगों की सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा मे भी तेजी के साथ विकास होता है तथा उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाया जाता है। समाजवादी समाज मे श्रमिक लोगों मे बीच के विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के भेदभाव को मिटा दिया है जो उनकी बढ़ती हुई सबद्धता और नैतिक और राजनैतिक एकता मे अभिव्यक्त होता है।

पूंजीवाद के अतर्गत किराये के मजदूरो की संख्या मे वृद्धि होने और मजदूर वर्ग के आकार में वृद्धि होने का परिणाम होता है *श्रम और पूँजी के बीच में मुख्य विरोध का तीव्र होना।*

उत्पादन के साधनो के सकेंद्रीकरण की तरफ पूँजीवाद का स्थायी रुझान एक ऐसे सकेंद्रीकरण की तरफ ले जाता है जो उसके विपरीत ध्रुव मे होता है। यह सकेंद्रीकरण जनसंख्या के उस विशाल जन समुदाय में होता है जिसे जीवन के सभी साधनों से—सिवाय उनकी मानवी शक्ति के—वंचित किया जा चुका है, तथा यह समूचे पूँजीवादी विश्व मे, खास कर उन्नत औद्योगिक देशों मे बखूबी देखा जा सकता है। सरकारी आँकड़ो के अनुसार किराये के मजदूरो का अनुपात, फ़ायदे वाली नियुक्त आबादी मे लगातार बढ़ता जाता है। 1970 के दशक के मध्य मे वह 70 से 85 प्रतिशत तक ऊँचा चला गया, उन देशो में जो

1. देखिए: सोवियत संघ की सन् 1975 में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, आंकड़ों की वर्ष पुस्तिका, मॉस्को : 1976 पृ॰ 9 (रूसी भाषा मे)

औद्योगिक पूंजीवादी देश हैं। ये आँकड़े लाखों-लाख लोगों की जिंदगी तथा सैकड़ों-हजारों परिवारों की तबाही की कहानी कहते हैं, आबादी के विशाल हिस्से के सर्वहाराकरण, मोहभंग, पुराने विचारों की दुखद अस्वीकृति, तथा साथ ही वर्गीय विरोधों व सामाजिक शक्तियों के सशक्त होने को भी व्यक्त करते हैं। इजारेदारों के शासन के विरोध में, पूंजीवादी उत्पादन प्रक्रिया में इन शक्तियों को ही आगे लाया गया था।

निस्संदेह बूर्ज्वा समाज के सामाजिक ध्रुवीकरण का सबसे महत्वपूर्ण पहलू मजदूरों की संख्यात्मक और अनुपातात्मक वृद्धि ही होती है। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि पिछले दशक में वे दरअसल एक विशाल वर्ग बन चुके हैं। पिछली सदी के अंत में सारी दुनिया में लगभग 300 लाख औद्योगिक मजदूर थे, जबकि आज 2000 लाख से अधिक मजदूर केवल औद्योगिक पूंजीवादी देशों में ही हैं, और दुनिया भर में काम पर लगे हुए लोगों की कुल संख्या अनुमानतः 7000 लाख है।[1]

तथापि, क्रांतिकारी आंदोलन के नेता के रूप में मजदूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका केवल इसकी संख्या शक्ति की वजह से ही नहीं है, अपितु सामाजिक उत्पादन व्यवस्था में इसके स्थान की वजह से कहीं अधिक है; संगठन के स्तर, इसकी राजनैतिक चेतना और सम्मान की वजह से भी है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति के प्रभावाधीन मजदूर वर्ग की स्थिति के गंभीर गुणात्मक परिवर्तन होने हैं, अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका बढ़ जाती है और इसी प्रकार उसका शैक्षिक स्तर और उसकी राजनैतिक सक्रियता बढ़ जाती है।

1. पिछले सौ सालों में औद्योगिक पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग का विकास निम्नलिखित प्रकार से था—

19 वीं सदी के मध्य में ग्रेट ब्रिटेन में 41 लाख औद्योगिक मजदूर थे (1951), फ्रांस में 25 लाख (1848), जर्मनी में 9 लाख (1850), संयुक्त राज्य में 14 लाख (1850)।

20 वीं सदी के मोड़ पर संयुक्त राज्य में सर्वहारा वर्ग की संख्या थी—104 लाख (1900), ग्रेट ब्रिटेन में 85 लाख (1901), जर्मनी में 85 लाख (1907), फ्रांस में 34 लाख (1906), इटली में 29 लाख (1901) और आस्ट्रिया-हंगरी 23 लाख (1900) आदि।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह प्रक्रिया इतनी तेजी से बढ़ी कि संख्या विषम हो गई। संयुक्त राज्य में 225 लाख से बढ़कर (1971) में 313 लाख हो गई, ग्रेट ब्रिटेन में 1951 में 115 लाख से बढ़कर 1966 में 125 लाख हो गई, फ्रांस में 1954 में 66 लाख से बढ़कर 1971 में 85 लाख हो गई, पश्चिमी जर्मनी में 1950 में 82 लाख से बढ़कर 1971 में 137 लाख हो गई, इटली में 1954 में 46 लाख से बढ़कर 1970 में 80 लाख, जापान में 1950 में 88 लाख से बढ़कर 1970 में 197 लाख हो गई (देखिए—वेद कोटिक्स ए हाइपोथेटिकल भाग 21 पृ० 110-14, 314)

हर जगह जहां सर्वहारा की कतारों में ताजा शक्तियों के शामिल होने से शक्ति आती है वस्तुगत रूप से मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारों के फैलने की अनुकूल परिस्थितियां पैदा हो जाती हैं और उनके झंडे के नीचे लोकतांत्रिक शक्तियों का व्यापक साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चा बन जाता है। इस सबमें गंभीर सामाजिक आर्थिक रूपांतरणों के लिए अनुकूल पूर्वापेक्षाएँ तैयार हो जाती हैं जिन्हें मजदूर वर्ग का हिरावल दस्ता इजारेदारी शासन के विरुद्ध अथक संघर्ष के दौर में जीवन के भीतर उतारने का काम करता है।

इस दिशा में उठाया जाने वाला प्रत्येक कदम स्वभावतः पूंजीवाद द्वारा उन्मत्त प्रतिरोध को प्रेरित करता है। जब तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ,पूंजीवाद जीवित रहता है, चाहे वह किसी भी रूप में हो, वह मजदूर वर्ग पर इस दृष्टि से दबाव डालता रहता है कि वह अपने मित्रों से अलग हट जाय और संघर्ष के मुख्य उद्देश्य से उसका ध्यान हट जाय। साम्राज्यवादी गिरोह श्रमिक वर्ग व उसके संगठनों के पचमेल तथा बूर्ज्वा परंपराओं एवं भ्रांत धारणाओं—जो कि बाहर से श्रमिक वर्ग में प्रविष्ट करायी जाती हैं—का दोहन करता है तथा करता रहेगा। यह दिमाग में रखना चाहिए कि आज के बहुत से मजदूर कल तक आबादी के गैर-सर्वहारा वर्ग से संबंधित थे। उनमें राजनैतिक संघर्ष का सही अनुभव नहीं है और इसलिए प्रायः वे बूर्ज्वा सिद्धांत और टटपुंजिया मध्यमवर्गीय सुधारवाद के लिए उपजाऊ भूमि का काम करते हैं।

पूंजीवादी दुनिया में मजदूर वर्ग की स्थिति विभिन्न राष्ट्रों की अनिश्चितताओं भरी आर्थिक स्थिति में बहुत विषमता लिये होती है। प्रत्येक पूंजीवादी देश में मजदूर लोगों की यही स्थिति विभिन्न श्रेणियों की होती है। पूंजीवादी प्रणाली के अलग-अलग क्षेत्रों के विकास में विषमता बढ़ती रहती है जो आगे चलकर हालात को और अधिक तेजी से बिगाड़ने लगती है और मजदूरों के कुछ हिस्सों में तमाम प्रकार के भ्रमों को बढ़ावा देने लगती है। पूंजीवाद ने हाल ही में बहुत कुछ सीखा है और ऐसे हजारों छलछंदों का आविष्कार किया है जिनसे मजदूरवर्ग के संघर्ष को झूठी राह पर धकेल दिया जाय और इस प्रकार उनकी चोट घूमकर उनपर ही पड़े, वह स्वयं निशाना न बने।

इस विषय में वैचारिक तोड़फोड़ किसी भी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है। पूंजीवादी दक्षिणपंथी अवसरवादी और 'वाम' उग्रपंथी प्रचारतंत्र दो *दिशाओं* से अपनी बंदूक का निशाना मार्क्सवाद-लेनिनवाद की उस शिक्षा और विचारधारा को बनाते हैं जिसमें लोकतांत्रिक आंदोलनों और समाजवाद के लिए संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की नेतृत्वकारी भूमिका को रेखांकित किया गया है। सभी बूर्ज्वा विद्वान, सुधारवादी नेताओं की तो बात ही क्या, अपने विचारों में उतने स्पष्ट नहीं होते जितनी कि 'पोस्ट-कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' की लेखिका है। उनमें से बहुत से न

तो किराये के मजदूरों के अनुपात में वृद्धि से इंकार करते हैं, न ही आधुनिक उत्पादन में उनकी भूमिका की बढ़ोतरी से इंकार करते हैं, और न ही, स्वभावतः इस तथ्य से कि सर्वहारा नये समाज के निर्माण में मार्गदर्शन करता है—सफलतापूर्वक, व्यापक स्तर पर। इसलिए वे एक नई दलील देते हैं जो स्पष्टतः इन वास्तविकताओं पर विचार करती है। एक समय था जब मात्र आदिम किस्म के तर्क दिये जाते थे : मजदूर वर्ग, इसके प्रतिनिधि, "साधारण मशीन-औजार पर काम करने वाले लोग" लोकतांत्रिक आंदोलन के नेता की भूमिका का दावा नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास शिक्षा का अभाव था और उनके पास आवश्यक अनुभव भी नहीं था कि आबादी के दूसरे हिस्से सर्वहारा का समर्थन करते। अब एक नया विचार प्रस्तुत किया जाने लगा है कि सर्वहारा और उसकी जीवन स्थितियों में इतने मूलभूत परिवर्तन हो गए हैं कि मजदूर वर्ग के लिए नेतृत्वकारी भूमिका अदा करने की आवश्यकता और परिणामतः समाजवादी क्रांति के लिए भी इसकी आवश्यकता स्वतः समाप्त हो गई है। कारण यह दिया जाता है कि सभी या लगभग सभी भूतकालीन पापमयी समस्याएँ सुलझा दी गई हैं या इस सामान्य अभिजात्य प्रजातंत्र में शीघ्र और सर्वोत्तम विधि से सुलझा दी जायेंगी। या इसके विपरीत इस बात पर लगातार जोर देकर कहा जाता है कि परिवर्तनों के परिणामस्वरूप दूसरे वर्ग और पूँजीवादी समाज के दूसरे हिस्से ठीक वैसे ही हो गए हैं—उतने ही 'क्रांतिकारी' या उससे भी अधिक—और इसीलिए इजारेदारी-विरोधी संघर्ष में नेतृत्व की भूमिका का दावा करने का अधिक अधिकार उनको है।

इस समस्या के संबंध में व्यापक साहित्य में विभिन्न दृष्टिकोण पाये जाते हैं। कुछ लेखक मजदूरों के श्रम को शारीरिक श्रम के रूप में ही पहचानते हैं और यह विचार आगे बढ़ाते हैं कि वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के विकास के साथ मजदूर वर्ग लुप्त हो जायगा। दूसरे, जो परंपरागत बूर्ज्वा राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धांतों के प्रति निष्ठावान हैं तथा मार्क्स के समय की थोड़ी धारणाओं से प्रतिबद्ध हैं—वे इसी व्याख्या को विस्तार देते हैं कि निगमीय मुनाफों में हिस्सा बँटाने के पश्चात् सर्वहारा अब अभावग्रस्त वर्ग नहीं रह गया है और लगभग या पूरी तरह पूँजी का सहस्वामी बन चुका है। तीसरा दल इस बात को सिद्ध करने में लगा हुआ है कि सर्वहारा अब उतना संगठित वर्ग नहीं रहा जितना कि वह पहले था तथा अब अनेक छोटे-छोटे गुटों और 'स्तरों' में बिखर रहा है। किन्तु ये सब मनीषी इस दृष्टि से आपस में मेल खाते हैं कि आधुनिक श्रमिक ने अपने लिए अचानक इस तथ्य का पता लगा लिया है कि 'मुनाफों में कटौती' हो चुकी है जिसने उसकी उपयोगिता को 'सामाजिक भागीदार' के रूप में बदल दिया है और अब उसमें क्रांतिकारी की क्षमता बाकी नहीं रही है तथा वह पूरी तरह अभिजात्य वर्ग में बदल रहा है जिसकी कि इजारेदारी पूँजी के शासन के साथ सहमति है।

जे० गालब्रेथ अपनी पुस्तक 'द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट' में जोर देकर कहते हैं कि पुराने पूँजीवाद से एकदम पृथक, वर्ग-संघर्ष इसलिए समाप्तप्राय: हो गया है कि 'पहले जो तीव्र विरोधी हित हुआ करते थे अब उनमें तालमेल क़ायम हो गया है।'[1]

लाक्षणिक दृष्टि से देखें तो गालब्रेथ, बैल और लिपसैट आदि जैसे प्रसिद्ध राजनीति विज्ञानवेत्ता 'नव औद्योगिक' और 'औद्योगिकोत्तर' समाज और 'प्राविधिक वियुतीय युग' के विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए 'मजदूर वर्ग' की धारणा को शारीरिक श्रमिकों की श्रेणी तक ही सीमित रखते हैं। इसके विपरीत संशोधनवादी और 'वामपंथी' शोधकर्ता नियमानुसार कम-से-कम अपनी रचनाओं में तो समाज के दूसरे स्तर में इस वर्ग के 'विलय' की दलील देते हैं। वर्ग के रूप में वे सर्वहारा की सामाजिक एकात्मता पर ही प्रश्न-चिह्न लगाने की कोशिश करते हैं और इस प्रकार क्रांतिकारी और रूपांतरणकारी शक्ति के रूप में इसके ऐतिहासिक मिशन को ही कम करके आँकते हैं।

हेनरी लिफ़ेवर, जो एक फ़्रांसीसी विद्वान् हैं, पूछते हैं कि 19वीं शताब्दी के अन्त व 20वीं शताब्दी प्रारंभ के काल की श्रमिक वर्ग कितना क्रांतिकारी है और किन परिस्थितियों में वह सामाजिक व्यवहार को अपनी क्रांतिकारी सामर्थ्य एवं संभावना को कायम रखता है? अपने प्रश्न के उत्तर में वह यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि वर्तमान पूँजीवादी समाज के सामाजिक बिखराव से उत्पन्न सामान्य सर्वहाराकरण के परिणामस्वरूप मजदूरवर्ग के साथ अन्य स्तर उभर आए हैं जिनका उसके साथ समावेश निकट का संबंध है। ये तत्त्व ऐसे हैं जो कुछ सुधारों को लागू करवाने के लिए काम करने को तैयार हैं, किन्तु बुनियादी क्रांतिकारी रूपांतरणों के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं।

हेनरी लिफ़ेवर जोर देकर कहते हैं—"वर्ग संघर्ष, जीवन और मृत्यु के संघर्ष के रूप में फ़िलहाल कम-से-कम हमारे औद्योगिक देशों में तो शायद ही हो चुका है श्रमिक वर्ग के रूप में कहीं अपेक्षाकृत ऐसा समरूप गुट है जो शोषण का प्रतिरोध करता है, तो भी उसमें कुछ दकियानूसी प्रवृत्तियाँ हैं जिनसे वह अधिकतम रूपांतर का निषेध कर देता है अर्थात् समाज के मूलभूत रूपांतर को मना करता है।"[2]

बुर्जुआ सिद्धान्तकार और सुधारवादी मजदूर वर्ग की क्रान्तिकारी भूमिका को उपेक्षित करने की कितनी भी धाराप्रवाह कोशिशें क्यों न करें, वे इस अकाट्य तथ्य को छिपा नहीं सकते कि पूँजीवादी दुनिया में समकालीन सर्वहारा उत्पादन के साधनों से बेगानापन अनुभव करता है और प्रशासनिक व्यवस्थाओं में भागीदारी से वंचित कर दिया जाता है : कि वह केवल अपनी श्रम शक्ति को बेच कर ही जीता है। दूसरे शब्दों में, वह अब भी निस्सन्देह पूँजीवाद का मुख्य दुश्मन है

1 जॉन केनेथ गालब्रेथ, 'द न्यू इंडस्ट्रियल स्टेट' पृ० 263

2 [illegible], [illegible], 1971, अंक 21 पृष्ठ 154

और ऐसा कोई प्रसंग नहीं दिखाई देता कि पश्चिम मे मजदूर की जिन्दगी के भौतिक स्तर मे हाल ही मे कोई ऐसा सुधार हुआ हो जो इसके विपरीत किसी बात को सिद्ध करता हो। कुछ औद्योगिक देशो मे मजदूरो की भौतिक और जीवन संबंधी परिस्थितियों मे कोई भी परिवर्तन नही है, मजदूरो की व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति मे कोई फर्क नही, तथा कोई भी शब्दजाल इस मूल वस्तुतर्क को नही काट सकता कि हमारे इस युग मे भी किराए का मजदूर शोषित वर्ग ही है जो पूँजीपति वर्ग के लिए अपने श्रम से अतिरिक्त मूल्य का निर्माण करता है। विकास के द्वारा प्रदत्त अवसरों और मजदूरों के जीवन स्तर के बीच का अन्तर बढ रहा है। कभी-कभी मजदूर इस खाई को पाटने का प्रयास करते हैं, किंतु जब तक आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति के साधन इजारेदारियों और बूर्ज्वा राज्य के हाथो मे हैं, तब तक सर्वहारा वर्ग के काम के हालात बुनियादी तौर पर वही रहते हैं। एक पूँजीवादी देश मे मजदूर केवल यही कर सकता है कि वह उन अधिक अनुकूल परिस्थितियो के लिए लड़े जिनके अधीन, जैसे मार्क्स ने कहा है कि उसे "पूँजीपति की दौलत बढ़ाने, पूँजी की शक्ति का विस्तार करने, की छूट दी जाती है तथा उन सुनहरी जंजीरो को घड़ने की छूट दी जाती है जिनका प्रयोग करके बूर्ज्वा वर्ग उसे अपने साथ रहने पर विवश करता है।"[1]

पूँजीवादी उत्पादक शक्तियो मे हाल के दशकों मे जो सरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं अर्थात् वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति और राज्य-इजारेदारी पूँजीवाद का मजबूत होना—उन्होंने किराये के मजदूरों की स्थिति मे कोई बुनियादी सुधार नहीं किया। इसके विपरीत, इसमे मजदूर वर्ग का शोषण और बढता ही है : वे मजदूरो की संख्या मे वृद्धि, असह्य मानसिक तनावों तथा बढती हुई व्यावसायिक दुर्घटनाओं के भी कारक बनते हैं। इन सब तथ्यों के आलोक मे एक निष्पक्ष प्रेक्षक 'वर्ग शान्ति' और 'सामाजिक भागीदारी' की जोर-शोर से विज्ञापित धारणाओ पर बहुत ही कम भरोसा करता है।

पूँजीवादी देशों मे आधुनिक सर्वहारा, आर्थिक एवं राजनैतिक सघर्ष के समूचे मोर्चे पर इजारेदारी पूँजीवाद के विरुद्ध खड़ा है। वैचारिक क्षेत्र में भी वह समाजवादी मार्ग का अनुसरण करने और वैज्ञानिक कम्युनिज्म के कार्यक्रम को समर्थन देने के लिए सकल्पबद्ध दिखता है। इसका प्रमाण है मजदूर वर्ग की मार्क्सवादी-लेनिनवादी हिरावल—कम्युनिस्ट पार्टियो—का विकास, उनकी बढती हुई सदस्यता और जनसमूह मे उसकी पैठ और कुल मिलाकर विश्व-कम्युनिस्ट आंदोलन का विस्तार।

अक्तूबर क्राति से पहले, रूस को छोड़कर अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग का आदोलन लगभग अविच्छिन्न रूप से सुधारवादी सामाजिक जनवादियो द्वारा नियत्रित

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, चयनित रचनाएँ तीन खंडों में, खंड 1, पृ॰ 167-68

था जो उसे अवसरवाद के रास्ते पर धकेलने चले जा रहे थे। सोवियत क्रांति की विजय और सोवियत सत्ता के सुदृढ़ीकरण और कॉमिंटर्न की स्थापना ने दुनिया की क्रांतिकारी शक्तियों की सक्रियता को अत्यधिक तेज़ी से बढ़ावा दिया और बहुत से देशों में लड़ाकू मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टियों के निर्माण को प्रेरित किया। सन् 1919 की कॉमिन्टर्न की प्रथम कांग्रेस में 30 देशों के कम्युनिस्ट संगठनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया, और सन् 1935 में सातवीं कांग्रेस में 76 कम्युनिस्ट पार्टियों के प्रतिनिधि उपस्थित थे, जिन पार्टियों की कुल सदस्य संख्या 30 लाख से अधिक थी।

विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन ने द्वितीय विश्वयुद्ध में फासिज्म के खिलाफ कड़े संघर्ष में तथा बाद में शीत युद्ध के दौरान अत्यंत महत्वपूर्ण जीतें हासिल कीं। हाल के वर्षों में इसने विकास के और भी उन्नत स्तर को प्राप्त कर लिया है। उन उन वर्षों के कुछ परिणामों का मूल्यांकन करते हुए अक्तूबर सन् 1976 में हुए सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के महाधिवेशन में लियोनिद ब्रेझनेव ने रेखांकित किया कि कड़े वर्गीय-संघर्षों में अनेक पूंजीवादी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों ने बहुत बड़ी सफलताएँ हासिल की हैं। उन्होंने अपने सामाजिक आधार को व्यापक किया है और अपने सम्मान को सुदृढ़ किया है, राजनैतिक जीवन में उनका असर बढ़ा है। आज छः बड़े पूंजीवादी देशों में से तीन—फ्रांस, इटली और जापान में व्यापक आधार वाली कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं जिनको 200 लाख से अधिक मत-दाता मत देते हैं। पिछले चुनावों के परिणामस्वरूप इटली की कम्युनिस्ट पार्टी ने ऐसी स्थिति बना ली कि व्यवहारतः उस देश में कोई भी बड़ा प्रश्न उसकी भागी-दारी के बिना हल नहीं किया जा सकता। फ्रांस में यह सामान्य मान्यता है कि कम्युनिस्टों की सोशलिस्टों और दूसरी वामपंथी ताकतों के साथ मित्रता देश के राजनैतिक जीवन की एक वजनदार हकीकत है···। भारत, फिनलैंड, डेनमार्क और कुछ लैटिन अमरीकी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियाँ अपने देशों में समुचित राजनैतिक प्रभाव रखती हैं।"[1]

आज दुनिया में कोई भी ऐसा वैचारिक और राजनैतिक आंदोलन नहीं है जो कम्युनिस्ट आंदोलन की तुलना में जनसमूह से अधिक जुड़ा हुआ हो और जिसके अधिक समर्थक हों। बहुत से देशों में बड़े जनसमूहों के द्वारा इसकी विचारधारा को स्वीकार कर लिया गया है और दुनिया की विचारधारा और राजनीति पर इसका प्रभाव बढ़ता चला जा रहा है।

वर्तमान समाजवाद के वास्तविक अनुभव को आधार बनाकर दुनिया के कम्यु-निस्ट आंदोलन ने ऐसी महत्वपूर्ण विशिष्टताएँ अर्जित की हैं जो कि विचार-

1. एल. आई. ब्रेझनेव, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की प्लेनरी मीटिंग में दिया गया भाषण, मॉस्को, 1976, पृष्ठ 52

धारात्मक एवं राजनीतिक क्षेत्र में इसके लक्ष्यों को व्यापक बनाती हैं। सबसे प्रमुख बात यह है कि सामान्य लोकतांत्रिक संघर्ष में कम्युनिस्ट हिरावल दस्ते की विजयी नेतृत्वकारी भूमिका का सवाल जो स्वभावतः वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों के साथ घुल-मिल जाता है—न केवल मजदूर वर्ग के आंदोलन के साथ जुड़ा हुआ है, अपितु मजदूर वर्ग के दूसरे समूहों के आंदोलन के साथ भी जुड़ा हुआ होता है। इसे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों के साथ भी अपने संपर्कों को मजबूत करना पड़ता है, और इसका अर्थ यह होता है कि विकासमान देशों में उनकी नेतृत्वकारी क्रांतिकारी शक्तियों में वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा को फैलाना आवश्यक है।

ये दोनों बिन्दु किसी तरह के अस्थायी कारणों के साथ संबंधित नहीं हैं जो कल आसानी से बदल सकते हैं, किन्तु अपेक्षाकृत समकालीन पूँजीवादी विकास के समूचे दौर में उभरकर सामने आये हैं—वह भी इसकी औपनिवेशिक प्रणाली के संकट के कारण। इससे भी और अधिक, वे एक ऐसी आवश्यकता के रूप में हैं जो राज्य-इजारेदारी पूँजीवाद की बढ़ती हुई परोपजीविता तथा वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के बढ़ते हुए संवेग के द्वारा आदेशित होते हैं, जोकि इजारेदारी शासन के अधीन व्यापक पैमाने पर सामाजिक विरोधों के पुनरुत्पादन की ओर ले जाती है, और वह भी पहले से अधिक तीखेपन के साथ। सन् 1969 में कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक में यह नोट किया गया—"यह केवल पूँजी और श्रम के विरोध का विकास ही नहीं है, अपितु राष्ट्र के विशाल बहुमत के हितों और वित्तीय अल्पतंत्र के हितों के बीच के गहराते हुए शत्रुतापूर्ण विरोधों का विकास भी है।"[1] व्यवहार में इसका क्या मतलब है? इस पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी जो जवाब देते हैं वे व्यावहारिक अनुभव पर आधारित होते हैं। यह एक तथ्य है कि 'मुनाफों में क्रांति' और 'सामाजिक भागीदारी' के विषय में सारी बातों के बावजूद पूँजीवादी शोषण बढ़ रहा है। श्रमिकों के वेतन इजारेदारियों के मुनाफ़ों की दर की तुलना में बहुत धीमी गति से बढ़ते हैं और उत्पादन में वृद्धि और श्रम के विशदीकरण से बहुत पीछे रह जाते हैं तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रहते हैं। छोटे किसानों की स्थिति लगातार गिरती जाती है और मध्यम स्तर के जीवन की परिस्थितियाँ और अधिक कठिन होती जाती हैं।

टट्पूँजिया और बुद्धिजीवी : वे कहाँ से संबंधित हैं?

गैर-समाजवादी देशों की आबादी के विशाल बहुमत का दैनिक जीवन इजारेदारी शासन के अधिकाधिक अविचल विरोध में खड़ा हो रहा है और यह परिस्थिति

1. कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक, मास्को, 1969, पृ० 19

अत्यधिक विचारपूर्वक अपनाए गए साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के सामाजिक आधार को व्यापक बनाती है। परिणामस्वरूप गैर-सर्वहारा आबादी के अधिक जन-समूहों में एकजुटता कायम करने की पूर्वापेक्षाएं तैयार की जाती हैं, इसमें मजदूर वर्ग के इर्द-गिर्द हैं—किसान, शहरी टटपुंजिया, कार्यालयी कर्मचारी, बुद्धिजीवी आदि सम्मिलित होते हैं। ये हिस्से असली लोकतांत्रिक माँगों के लिए और अंततः समाजवाद के लिए इजारेदारी के दमन के विरुद्ध किए जाने वाले संघर्ष में सर्वहारा वर्ग के स्वाभाविक मित्र बनते हैं।

पूंजीवादी देशों में आबादी का एक भाग जो सामान्यतया मध्य वर्ग के नाम से जाना जाता है—एक बहुत ही पंचमेल जनसमूह है। कारीगर और छोटे व्यापारी, कार्यालयी कर्मचारी, बुद्धिजीवी और अन्य पेशेवर लोग पूंजीवादी समाज में दोनों तरह से अर्थात् सामाजिक संरचना तथा उत्पादन अन्तर्तंत्र और राजनीतिक जीवन में—भिन्न-भिन्न स्थानों पर अधिकार रखते हैं। कुछ के पास पूंजी की निश्चित राशि है, दूसरों के पास अपनी मेहनत के सिवा कुछ भी नहीं है जो उनकी आजीविका का साधन बन सके। कुछ विशाल एवं लघु उत्पादन से जुड़े हुए हैं, तो दूसरे उत्पादन क्षेत्र में नियुक्त ही नहीं हैं। निष्कर्षतः कुछ तो भौतिक साधनों से सम्पन्न हैं, जबकि दूसरे, सरल भाषा में कहा जाय तो गरीबी से प्रताड़ित हैं। इन समूहों के सामाजिक और राजनीतिक हित, और इसलिए उनकी विचारात्मक अभिमुखताएँ, तदनुसार अस्थिर और प्रायः विरोधपूर्ण होती हैं।

किसान, दस्तकार और छोटे व्यापारी, जो टटपुंजियाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, का अतीत उन्हें पूंजीवाद से जोड़ता है, जबकि उनका भविष्य उन्हें निस्संदेह सर्वहारा की तरफ खींचता है। वे बड़े व्यापार के विरुद्ध असमान और कठिन संघर्ष छेड़ते हैं, किन्तु 'न्यून-माल-उत्पादन के खंड' होने के कारण वे अक्सर अपने पुराने दृष्टिकोण के अनुरूप ही कार्य करते हैं। स्वतंत्र उद्योग के 'सुनहरे अतीत' के प्रति उनका विरह भाव तथा अपनी क्षणिक स्वाधीनता—जो यथार्थ में काफी पहले समाप्त हो चुकी है—को सुरक्षित रखने का उनका अटल संकल्प उन्हें समाजवादी विचारों को अपनाने से रोकते हैं। दूसरी ओर, पूंजीवादी विश्व का यथार्थ निर्दयता पूर्वक इन भ्रांतियों के टुकड़े कर देता है और उनको इजारेदार-विरोधी मोर्चे की कतारों में ला खड़ा करता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व इन सामाजिक समूहों का एक बड़ा हिस्सा प्रतिक्रियावादी पार्टियों का प्रायः फासिस्ट दिमाग वाले जनोत्तेजकों का अनुसरण करता था तथा दक्षिण-पंथी बूर्ज्वा प्रवृत्तियों का सामाजिक आधार निर्मित करता था। समाजवाद के पक्ष में ऐतिहासिक परिवर्तनों, पूंजीवादी प्रणाली के सामान्य संकट को गहराने और इजारेदारी प्रतिक्रियावाद के और अधिक दक्षिणपंथी समूहों के निन्दनीय पतन की स्थिति में पहुँचने के कारण, उन्होंने अपनी विचारधारात्मक अभि-

मुखता को वास्तव में संशोधित कर लिया।

सन् 1950 और 1960 के दशकों में टटपुंजिया तबके ने अपने सबसे अधिक हलके में बुर्ज्वा प्रचार के सभी प्रकार के उदारतावादी विचारों के लिए भूमिका का निर्माण किया। हाल के सालों में, खासतौर से 1974-75 के संकट के संबंध में, ऐसे संकेत मिले हैं कि उनका झुकाव वापस कम्युनिस्ट-आन्दोलन की तरफ हो गया है और वैज्ञानिक समाजवाद में उनकी रुचि बढ़ गई है।

निस्संदेह, यह परिवर्तन आसानी से संपन्न नहीं हुआ। पूंजीवादी संबंधों और परंपराओं के बोझ के दबे हुए टटपुंजिया तबके के प्रतिनिधि प्रायः वैचारिक संघर्ष के क्षेत्र में सुधारवादी, उग्र वामपंथी, अराजकतावादी या अन्य अवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आते हैं। पूंजीवाद की उनकी आलोचना अक्सर एकांगी एवं अस्थिर होती है तथा समाजवादी विचारों की स्वीकृति सभी प्रकार की उदार बुर्ज्वा प्रतिबंधों से बंधी हुई होती है।

मध्यम वर्गों के विभिन्न प्रतिनिधियों के बीच न तो सीधे समुदाय के हित और न ही राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संपर्क होते हैं और न ही वे किसी एक ही वर्ग संगठन के साथ एकताबद्ध होते हैं। इसलिए, मार्क्स के कथन के अनुसार "वे अपने वर्ग हितों को अपने ही नाम से सबल अभिव्यक्ति नहीं दे सकते।"[1] बहुत-सी बातों में उनकी स्थिति राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्ग शक्तियों के सहसंबंध पर निर्भर करती है तथा मजदूर वर्ग और विश्व समाजवाद के प्रभाव पर आधारित होती है।

फिर भी, जैसे कि सन् 1969 की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अंतर-राष्ट्रीय बैठक में नोट किया गया—"उनमें एकता की कमी और पूंजीवादी विचार-धारा के प्रति विशेष भावुकता के बावजूद, मध्यमवर्ग का विशाल जनसमूह अपने हितों की रक्षा करने के लिए आगे आ रहा है, सामान्य लोकतांत्रिक मांगों के लिए व्यापक संघर्ष में शामिल हो रहा है और **मजदूर वर्ग के संयुक्त संघर्ष के बहुत बड़े महत्व के प्रति तेजी से सचेत हो रहा है।**"(जोर लेखक का)[2]

एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि हमारे समय में पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग के मुख्य दोस्त केवल मध्य स्तरीय लोग (सामाजिक दृष्टि से, किसी न किसी रूप में अभिप्राय वर्ग में संबद्ध) ही नहीं हैं, अपितु किराये के मजदूरों के बढ़ते हुए जनसमूह के प्रतिनिधि भी हैं, जिनका प्रायः पूंजीपति के साथ कोई वर्गीय संबंध नहीं होता।

बुद्धिजीवी वर्ग हमेशा से मजदूर वर्ग का काफी भरोसेमंद और शक्तिशाली

---

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, संकलित रचनाएं तीन खंडों में, खंड-1 पृ० 479
2. कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक, मास्को, 1969 पृ० 25

दोस्त है, और रहा है। वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति के आगे के विकास की दृष्टि से सामान्यतया उत्पादन प्रक्रिया में यह एक बहुत प्रभावशाली शक्ति है, विशेषतौर पर सामाजिक जीवन मे तो और भी अधिक। राज्य-इजारेदार पूँजीवाद बुद्धिजीवी वर्ग का समूहों में बाँटने के प्रति अपना 'उत्साह एवं संकल्प प्रदर्शित कर रहा है, इजारेदार पूँजी के आधिपत्य के खिलाफ संघर्ष के दौरान उनका बहुमत मजदूर वर्ग और सामाजिक क्षेत्र मे उसके आदर्शों की तरफ खिंच जाता है।

आज बुद्धिजीवियों का बड़ा भाग उन कर्मचारियों से भरा पड़ा है जिनका अनिवार्यत. उत्पादन के साधनों पर कोई स्वामित्व नहीं है। वे सरकारी अधिकारी हैं, इजारेदार-निगमों और निजी फ़र्मों के कर्मचारी हैं, इंजीनियर और तकनीशियन तथा पेशेवर लोग हैं। हमारी दृष्टि से इन समूहों के सामाजिक कार्य और संपत्ति की दृष्टि से इनकी हैसियत एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। यह तथ्य कि उनका बड़ा भाग सरकारी विभागों में नियुक्त है या निजी उद्योगों मे प्रशासक के रूप में कार्यरत है उन्हें विचारधारात्मक दृष्टि से बूर्ज्वा वर्ग निकट लाता है। इसका उन सफ़ेदपोशों पर प्रभाव पड़ता है तथा वे मार्क्सवादी विचारधारा को आत्मसात् कर पाने में असमर्थ हो जाते हैं। फिर भी जीवन के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं के कारण जो *आबादी की इन श्रेणियों से संबधित होते हैं—वे मजदूर वर्ग के* घनिष्ठ संपर्क में आते है।

कार्यालय कर्मचारियों का बड़ा भाग, इंजीनियर और तकनीशियन और पेशेवर लोग मजदूर परिवारों से आते है और अपनी आजीविका अपने ही श्रम से कमाते हैं। वेतन-भोगी होने के कारण वे स्वभावतः बड़े पूंजीपति के द्वारा शोषित होते हैं। उनका जीवन स्तर कुशल मजदूर से कुछ ही भिन्न होता है और कभी-कभी तो नीचे भी चला जाता है। उनकी स्थिति अतिशय अस्थिर होती है और पूरी *तरह पूँजीवादी देशों की आर्थिकताओं के उतार-चढ़ाव पर आधारित होती है,* अक्सर मालिक की सनक पर भी निर्भर करती है।

इस बात पर गौर किया जाना चाहिए कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दो दशकों में, जबकि इजारेदार पूंजी ने वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति की मलाई को हड़पने का बंदोबस्त कर लिया था, इन समूहों का भौतिक स्तर कमोबेश स्थिर था। उसी समय बूर्ज्वा प्रचारतंत्र ने सफ़ेदपोशो के पक्ष में 'मुनाफों के वितरण मे इंकलाब' की गुहार लगाना प्रारंभ कर दिया, तो भी यह एक खुला रहस्य है कि ज्यों ही पूँजीवादी देशों ने 1970 के दशक के मोड़ पर आर्थिक विकास की दर में कुछ गिरावट तथा मुद्रा और मुद्रास्फीति की कठिनाइयों का अनुभव किया, तो सफ़ेदपोश भी मजदूर वर्ग के इन परिवर्तनों के शिकार हो गये। 1974-75 के संकट ने इस बात ' मान्य सबूत पेश किया कि पूँजीवादी देशों में यही तलवार बुद्धिजीवी तबके पर तौर पर लटकने लगी है।

राजनैतिक प्रतिक्रियावाद का विशदीकरण, सामाजिक जीवन का नैतिक एवं बौद्धिक पतन और बूर्ज्वा संस्कृति का गंभीर संकट आदि ऐसे बिन्दु हैं जो बुद्धिजीवी तबके को पूँजीवाद के सामाजिक विकल्प पर अधिक गहराई से सोचने को मजबूर करते हैं। यह परिस्थिति उन्हें समाजवादी विश्व दृष्टिकोण को आत्मसात करने की ओर ले जाती है। 1960 के दशक के आखिर के अत्यंत व्यापक एवं उग्र छात्र संघर्ष (अर्थात् भावी सफेदपोशों का संघर्ष) पूँजीवादी प्रणाली के विरुद्ध बुद्धिजीवियों के उभरते हुए विरोध का प्रथम भयंकर आभास था।

ऐसे समय जब इजारेदार पूँजीवाद सिर्फ अपना आकार ही ग्रहण कर रहा था, लेनिन को यह पूर्वाभास हो गया था कि इसके विकास का लक्षण दो विरोधी प्रक्रियाएँ होंगी अर्थात् एक तरफ बुद्धिजीवी समूह का सर्वहाराकरण तथा दूसरी ओर मजदूर वर्ग का बौद्धिकीकरण।[1] गत कई दशकों में, और खासतौर से वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रान्ति के बाद, पूँजीवाद ने लगभग पूरी तरह से बुद्धिजीवी को उसके स्वतंत्र स्तर से वंचित कर दिया है और उसे श्रम-बाज़ार की सभी सनक भरी स्थितियों का शिकार बना कर एक साधारण वेतन भोगी के रूप में बदल कर रख दिया है। यह दरअसल बुद्धिजीवियों के बड़े समूह का सर्वहाराकरण था जो ताजा शक्ति के साथ खुलकर सामने आया। साथ ही एक जैसे कारणों की वजह से शारीरिक और गैर-शारीरिक श्रम के बीच एक ध्यान देने योग्य अभिमुखता भी उभरकर सामने आयी है। शिक्षास्तर में विचारणीय सुधार हुआ है और मजदूरों की कुशलता के बढ़ने से उनका बौद्धिकीकरण हुआ है। इंजीनियर, तकनीशियन और कुशल मजदूर के बीच का भेदभाव आधुनिक बड़े औद्योगिक संस्थान में बहुत घट गया है। निस्संदेह वे, अपने भौतिक स्तर, श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक व्यय और श्रम के प्रकृति के अनुरूप ही इकट्ठा हुए हैं।

इस नयी वास्तविकता के जवाब में बूर्ज्वा सिद्धांतकार भरसक प्रयत्न कर रहे हैं कि किसी भी कीमत पर हो बुद्धिजीवी तबके को मजदूर वर्ग से अलग किया जाये तथा सफ़ेद कालर वाले बुद्धिजीवियों और नीली कॉलर वाले श्रमिक वर्ग के बीच में दीवार खड़ी कर दी जाये।

डेनियल बेल और अन्य समान विचार के लोगों ने, उदाहरण के लिए, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह प्रस्तावित किया कि समाज में व्यावसायियों और तकनीशियनों के रूप में जो बुद्धिजीवी तबका है उसकी भूमिका को ऊपर उठा दिया जाये तथा सम्मान दिया जाये। एक नये वर्ग के रूप में यह बुद्धिवर्ग मानवता के मसीहा की भूमिका अदा करने को था। वास्तव में नेतृत्व का यह रास्ता इस

1 देखिए : वी० आई० लेनिन, 'रिव्यू कार्ल कॉट्स्की, बर्नस्टीन अंड डास सोशियल डेमोक्रेटिश प्रोग्राम, ईन एंटीक्रिटिक' , 202 'रिवोल्यूशनरी एडवेंचरिज़्म', .

प्रकार की [illegible] को आत्म-अभिव्यक्ति की ताकत ही से आ सकता था और है, वह इजारेदार की निर्भरता से मुक्त नहीं कर सकता था।

लोकतंत्र और राष्ट्रीय तथा समाजवादी मुक्ति संघर्षों के [illegible] कुछ विशेषकर [illegible] जैसे देशों की स्थिति ही होती है। [illegible] का सारा समूह इजारेदारियों के विरुद्ध अपना मजदूर कायम रखता और अपने अधिकारों के लिए एक व्यापक लोकतांत्रिक मोर्चे के घेरे में ही लड़ता।

लोकतांत्रिक जनगण और इजारेदार पूंजी के बीच आगे विकसित हुए विरोध में अत्यंत व्यापक समस्याएं निहित होती हैं। इसके अंतर्विरोध न केवल आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों तक ही फैले हुए होते हैं, अपितु संस्कृति, विज्ञान, शिक्षा आदि के क्षेत्रों तक भी फैल जाते हैं। इसी कारण मुक्ति आंदोलन की लोकतांत्रिक और समाजवादी अवस्थाओं के बीच आगे के पुनर्मेल की अनिवार्य प्रवृत्तियां सामने दिखाई देने लगती हैं। यद्यपि पद्धति, तरीकों और प्रेरणाओं की भिन्नता के बावजूद वे एक-दूसरे से गुंथे हुए होते हैं और एक-दूसरे के पूरक बनते हैं। प्रत्येक देश में, लगभग वहां बुद्धिजीवियों के मध्य व्यापक विचारधारात्मक प्रतिक्रियाएं होती हैं—जिनकी विषयवस्तु अराष्ट्रीय होती है तो जिनका आधार राष्ट्रीय—जो कि इजारेदारी आधिपत्य को सशक्त करती है। सब बातों में वह चाहे, सामान्य लोकतांत्रिक समस्याओं का समाधान हो या समाजवादी रूप परिवर्तनों का—वे अनिवार्यतः सर्वहारा और पूंजीवाद के बीच वैचारिक संघर्ष के मोर्चे को व्यापक बनाते हैं और राजनैतिक दृष्टि से, मजदूर जन-समूह को मार्क्सवादी, लेनिनवादी कार्यक्रम अपनाने की ओर ले जाते हैं।

नवउपनिवेशवाद के खिलाफ, इजारेदारी-विरोधी सहमेल के लिए

लोकतांत्रिक और समाजवादी उद्देश्य अधिकाधिक घनिष्ठता के साथ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के क्षेत्र में भी आपस में अन्तर्ग्रथित हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि दमन और हिंसा की विश्व साम्राज्यवादी प्रणाली ने सामाजिक और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की समस्याओं को अविभाज्य बना दिया है।

राजनीतिक स्वाधीनता हासिल कर लेने के बाद पुराने उपनिवेशों ने सामंती संबंधों (कुछ बातों में पूर्व सामंती संबंधों) को समाप्त करने की आवश्यकता के प्रति गंभीर सजगता प्रदर्शित की। यह भी नितांत आवश्यक था कि ऐसे अनेक रूपांतरण किये जाएँ जो 18वीं और 19वीं सदियों में पूँजीवादी जनतांत्रिक, क्रांतियों के दौरान यूरोपीय जनगण ने किये थे। लेकिन हमारे समय का सामाजिक विकास एक बिल्कुल नयी ऐतिहासिक परिस्थिति में घटित हो रहा है, जनगण की आँखों में पूँजीवाद का सम्मान समाप्त हो चुका है, और विश्व प्रक्रिया में समाजवाद एक निर्णायक शक्ति के रूप में उभर रहा है—यह संघर्ष एक नयी अंतर्वस्तु और नयी

आकृतियाँ ग्रहण कर रहा है।

पहले की बूर्ज्वा जनतांत्रिक क्रांतियो ने केवल पूंजीवाद को मजबूत बनाया जबकि आज के राष्ट्रीय आंदोलन चाहे वे बूर्ज्वा-जनतांत्रिक रूपांतरणों की सीमाओं में ही क्यों न हों, अनिवार्यतः साम्राज्यवाद पर चोट मारते हैं। यूरोप मे बूर्ज्वा-जनतांत्रिक क्रांतियाँ मुख्यतया घरेलू प्रतिक्रियावादी ताकतो के विरुद्ध ही निर्देशित थीं अर्थात् सामंती प्रभुओं तथा सामंती और महाराजाओं की तानाशाही के विरुद्ध थी। आज के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन स्पष्टतया साम्राज्यवाद और उसकी अन्दरूनी ताकतों—जो कार्यक्रम की दृष्टि से एक दूसरे से सम्बद्ध हैं—के विरुद्ध निर्देशित हैं। अपने क्लासिकी स्वरूप मे, बूर्ज्वा जनतांत्रिक क्रांतियों ने स्वभावतः मोटे तौर पर भी कभी यह संकेत तक नही दिया कि समाजवादी रूपांतरणों की संभावना है। समसामयिक राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियाँ या तो सीधे तौर पर समाजवादी निर्माण के रास्ते की ओर ले जाती हैं, या अपनी समाजवाद की ओर अभिमुखता की घोषणा कर देती हैं, और कुछ मामलो मे तो जिस किसी तरह समाजवादी उद्देश्यों को लेकर लंबी अवधि के कार्यक्रमों की ओर अपने आपको मोड़ देती हैं। जब तक कि रास्ते का अंतिम चुनाव नहीं हो जाता—कि आगे का सामाजिक-राजनैतिक विकास किस तरह का हो—और जब तक वर्ग शत्रुताएँ नवस्वतंत्र देशों मे कायम रहती हैं तो राष्ट्रीय मुक्ति क्रांतियाँ शक्तिशाली नव-उपनिवेशवादी और प्रतिक्रियावादी शक्तियों से—अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद, ध्याप्त कम्प्राडोर बूर्ज्वा वर्ग और सामंती प्रभुओं से प्रभावित होती रहेंगी! कुल मिलाकर ये क्षेत्र सबमे तीखे संघर्ष का अखाड़ा बने रहेंगे। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की अवधि मे जो साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चा बनता है वह विभिन्न वर्ग-शक्तियों को एकजुट कर देता है जिससे उन देशो मे जहाँ बुनियादी सामाजिक समस्याएँ अब भी उलझी हुई हैं, विचारधारात्मक संघर्षों की तीव्रता अनिवार्य हो जाती है।

क्योंकि मजदूर वर्ग एक नेतृत्वकारी शक्ति के रूप में उभर आया है समूचे आंदोलन को समाजवाद की ओर मोड़ दे सकता है और साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष मे अपनी नेतृत्वकारी भूमिका को क्रमश: सुदृढ़ कर सकता है। किन्तु राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के बहुत से देशो मे यह वर्ग अभी भी छोटा है और उसके पास राजनैतिक संघर्ष के आवश्यक अनुभव का अभाव है। इन देशो मे किसानो का जनसमूह, जो आबादी का बहुत बड़ा भाग है, संगठनात्मक दृष्टि से विभाजित है तथा अधिकांश देशो मे वे राष्ट्रीय बूर्ज्वा वर्ग का अनुसरण करते हैं जिसकी कि बाकायदा दुहरी भूमिका होती है; एक तरफ वह साम्राज्यवाद-विरोधी, सामंतवाद विरोधी क्रांति को पूरा करने के लिए वास्तव मे आतुर होता है तो दूसरी ओर साम्राज्यवादियों और सामंती प्रभुओं से सहमेल और समझौता करने में भी लगा रहता है।

अभी तक स्टर्लिंग क्षेत्र अन्तर्गत [illegible] भारी [illegible] की हैसियत का रहा है तथा उनकी बढ़ती हुई [illegible] को उपयोग कर रहा है। विकासमान देशों को अपनी आर्थिक स्वाधीनता हासिल करने का समस्त प्रति-काम अभी भी पूरा करना है। जब साम्राज्यवादी शक्तियों को परिस्थितियाँ मजबूर कर देती हैं कि वे स्वतंत्र देशों की प्रभुसत्ता को स्वीकार करें तो, अनुभव बताता है कि वे शक्तियाँ ऐसे ऐसे उपाय करती हैं जिससे कि पुरानी औपनिवेशिक व्यवस्था नवऔपनिवेशिक प्रणाली के रूप में कायम हो जाये। 'सहयोग' के [illegible] साम्राज्यवादी [illegible] के अधीन यह प्रणाली उपनिवेशवादी एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के जनगण के शोषण और लूट को जारी रखने में सहायक हो सकती है। अतः, यह स्पष्ट है कि [illegible] विकासमान देशों का आर्थिक स्वतंत्रता का आंदोलन समाजवाद की ओर अभिमुख होने के निर्णय पर ही अनिवार्य रूप से निर्भर करता है क्योंकि इसी में उनके अधिकारों की समानता सन्निहित होती है।

आर्थिक क्षेत्र में साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष के नये दौर की यही दिशा होगी। सारी संभावना यह है कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देश ऐसे व्यावहारिक कदम उठायेंगे ताकि साम्राज्यवादी आर्थिक प्रणाली से उनके संबंध टूट जाएं। निश्चित रूप से यह सबसे कठिन लड़ाई होगी और इसके लिए यह एक जटिल दौर भी होगा क्योंकि यह सीधे तौर पर विदेशी आधिपत्य के आधार स्तंभों पर प्रभाव डालता है तथा यह उन खंभों पर चोट करता है जिन पर कि इन देशों के राष्ट्रीय संसाधनों को लूट करने वाली साम्राज्यवादी प्रणाली खड़ी हुई है।

विकासशील देशों में करोड़ों लोगों को समाजवाद में संक्रमण जैसे महान कार्य को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए जरूरी है कि समाजवादी व्यवस्था तथा अंतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग—राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों में संलग्न देशों के संदर्भ में ये दोनों ही शक्तियाँ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मुक्ति आंदोलन का हिरावल दस्ता हैं—की घनिष्ठता कायम हो।

यही कारण है कि साम्राज्यवाद के सिद्धांतकार और उनके टटपुंजिया पिछलग्गू इस मैत्री पर हमला करते हैं। एक समय था जब बूर्ज्वा प्रचारतंत्र यह मानता था कि सामान्यतया औपनिवेशिक देशों में मुक्ति आंदोलन की अपनी सामाजिक जड़ें नहीं हैं और वे बाहर से 'कम्युनिस्ट षड्यंत्रों' के द्वारा पैदा की गयी हैं। उसके बाद वे एक बिल्कुल अलग सिद्धांत की ओर घूम गये, अर्थात् मुक्ति आंदोलन को एक भिन्न प्रकार के राष्ट्रीय और जातीय अनन्यता के गुण से मंडित बताने लगे। वे यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि न तो समाजवाद का और न ही पूंजीवादी देशों के मजदूर वर्ग का इससे कोई सरोकार है। तथापि समकालीन

वर्ग शक्तियों के वास्तविक सामान्य सहमेल में, राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन शांति, जनतंत्र और सामाजिक प्रगति के लिए संघर्ष में अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक वर्ग एवं समाजवाद का शक्तिशाली दोस्त होता है।

शस्त्ररहित शांतिमय मार्ग......

अंतर्राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन ने सार्वभौम आयाम प्राप्त कर लिये हैं; यह अभूतपूर्व गति से आगे बढ़ रहा है और हर जगह सचमुच ऐतिहासिक महत्व के रूप परिवर्तनों के अवसर तैयार कर रहा है। सब महाद्वीपों में, यह आंदोलन वहाँ के विशाल जनसमुदाय को—जो वर्गीय विकास की अलग-अलग अवस्थाओं में है तथा विभिन्न सामाजिक स्तरों से निर्मित है—क्रांतिकारी प्रक्रिया में खींच रहा है। दुनिया भर का जनसमूह उस सक्रिय राजनैतिक जीवन के प्रति अधिकाधिक चेतना संपन्न हो रहा है, जो समाजवाद और कम्युनिज्म के रूपांतरण की ओर अत्यधिक तीव्रगति से बढ़ता चला जा रहा है।

फिर भी, यह हमेशा याद रखा जाना चाहिए कि यह प्रक्रिया इस राजनैतिक संघर्ष के भँवर में ऐसे बहुत से लोगों को भी खींच ले जाती है, जो अभी अभिजात्य प्रभाव से मुक्त नहीं हुए हैं और अपने साथ मुक्ति आंदोलन में दकियानूसी दृष्टिकोणों, भ्रांतियों और मध्यम वर्गीय ढुलमुलपन को भी ले आते हैं। प्रायः एकदम विपरीत, सामाजिक दृष्टि से पंचमेल शक्तियाँ साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ती हैं, तथा समाजवाद को अपना चरम लक्ष्य घोषित करके इस अवधारणा में अपने विचार ठूँस देती हैं। कभी-कभी ये विचार उनके आज के निजी संकीर्ण आर्थिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय स्वार्थों के साथ मेल खाते हैं और साफ़तौर पर यही वह भूमि है जिस पर विभिन्न गैर-मार्क्सवादी सिद्धांत बड़ी लुभावनी अदा से पनपने लगते हैं।

कम्युनिस्टों के लिए इसमें कुछ भी अप्रत्याशित नहीं है। केवल मताग्रही और संकीर्णतावादी ही यह आशा करते हैं कि जो जनसमूह अभी-अभी क्रांतिकारी आंदोलन में सम्मिलित हुआ है वह किसी तरह की मिथ्या 'विचारधारात्मक शुद्धता' का प्रदर्शन करे। बहरहाल, दृष्टिकोण का विकास संघर्ष के दौर में ही होता है, विभिन्न भ्रांतिपूर्ण धारणाओं पर विजय तथा विरोधी विचारधारा से क्रमिक मुक्ति के परिणामस्वरूप ही संभव होता है।

लेनिन के मूल्यांकन इस बात को पुष्ट करते हैं—"समाजवादी क्रांति... समस्त विविध प्रकार के दलितों और असंतुष्ट तत्वों के चहुँमुखी जनसमूह में जन आंदोलन के रूप में एक विस्फोट के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकती। मध्यमवर्ग के अनेक हिस्से और पिछड़े हुए मज़दूर इसमें अनिवार्यतः भाग लेंगे, क्योंकि बिना इस प्रकार की भागीदारी के जन संघर्ष असंभव ही है और इसके

बिना कोई भी क्रांति संभव नहीं है। और ठीक इसी तरह अनिवार्य रूप से वे आंदोलन में अपने साथ अपने पूर्वाग्रहों को भी लाएँगे, अपनी प्रतिक्रियावादी भ्रांत कल्पनाओं, अपनी कमजोरियों और गलतियों को भी साथ लाएँगे। किन्तु वस्तुगत रूप से वे पूंजी पर आक्रमण करेंगे, और क्रांति का वर्ग-सचेत हिरावल *प्रगतिशील सर्वहारा वर्ग इस विविधरूपा, विशृंखलित, सतरंगे और बाहर से* टुकड़ों में बँटे हुए उनके वस्तुसत्य को उसी रूप में अभिव्यक्त करते हुए इस जन-संघर्ष में उनको एकजुट करेगा और उनका दिशा निर्देश करेगा।"[1]

आज यह निष्कर्ष आर्थिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक कारकों, सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं और आंतरिक और अंतरराष्ट्रीय प्रक्रियाओं की जटिल अंतःक्रियाओं में ठोस रूप में प्रकट हो रहा है। सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों की बढ़ती हुई अंतःनिर्भरता दोनों तरह चाहे वह अलग-अलग देशों के रूप में हो या एक विश्व व्यापी स्तर पर—आधुनिक युग का प्रमुख लक्षण है। वैज्ञानिक, प्रावधिक और सामाजिक क्रांति की इस वर्तमान अवधि को, मजदूर वर्ग की मुक्ति और उनके जनतांत्रिक लक्ष्यों तथा साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन की सामान्य धारा के सभी श्रमिक जनसमुदायों की घनिष्ठता के साथ गुथी हुई एकजुटता के रूप में चित्रित किया जा सकता है।

ऐसे अनेक लक्षण दिखाई दे रहे हैं जिनके अनुसार पूंजीवादी प्रणाली फिलहाल गंभीर और तेजी से गहराते हुए संकट की गिरफ्त में है। इस पर काबू पाना आसान नहीं है तथा यह निष्ठुरता से पूंजीवादी सामाजिक संबंधों को अंतिम रूप से ढह जाने की ओर ले जा रही है। इससे उबरने का कोई मार्ग निकलता न देखकर पूंजीवाद के पक्षधर मानवता को सबसे अधिक दुःसाहसिक कार्यों के लिए भड़काने की तैयारी करते हैं। फ्रांसीसी विद्वान ऐरिक मूरेज़ ने अपनी पुस्तक 'टेस्टामेंट पोअर अन मांद फ्यूचर' में मानवता की मरणासन्नता की दारुणाभरी निराशापूर्ण तस्वीर को चित्रित किया है। उसके अनुसार, वह या तो भूख की वजह से मृत्यु को प्राप्त होगी या परिस्थितिजन्य संकट से या ऊर्जा स्रोतों के शून्य जाने से। मानवता को केवल एक ही वस्तु बचा सकती है और वह है युद्ध। उनकी मान्यता है—"काफी विरोधाभास के बावजूद उपर्युक्त कारकों को, आणविक युद्ध की सम्भावित घटना ही प्रतिकारक औषधि की तरह संभाल सकती है। इससे न केवल प्राविधिक सभ्यता के उपभोक्ताओं की संख्या में ही वास्तविक कमी होगी, उनका जीवन-स्तर ही नीचा न होगा और अस्त-व्यस्त वैज्ञानिक प्रगति ही बदनाम न होगी, अपितु 'मजुलित' विनिमय की शर्तों के अधीन यह जीवित प्रकृति का अपेक्षाकृत कम विनाश करेगी, परिस्थिति वैज्ञानिक संव्याकरण के परिणामस्वरूप

1. बी० आई० लेनिन, "आत्म-निर्धारण पर विवाद का सारांश" संकलित रचनाएँ, खंड 22, पृ० 356

ने वाले इसके विकास की तुलना में। इस तरह इससे औद्योगिक अवस्था से पूर्व
ी स्थितियों वाले युग मे लौटना संभव हो पाएगा अथवा इन स्थितियो एव
यंत्रित प्राविधिक की अवशिष्ट उपलब्धियों का सयोजन सभव हो पाएगा।"[1]

कम्युनिस्ट एकदम भिन्न विकल्प प्रस्तावित करते हैं। सन् 1976 के ग्रीष्म
बर्लिन (जी० डी० आर०) मे यूरोप की 29 कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के
तिनिधियों के सम्मेलन के दस्तावेज मे टिप्पणी की गई कि—"पूंजीवादी समाज
आर्थिक और सामाजिक ढांचा मजदूर वर्ग और सामान्य जनसमुदाय की
वश्यकताओं और सामाजिक प्रगति और जनतांत्रिक राजनैतिक विकास की
हरतों के साथ अधिकाधिक असंगत होता जा रहा है। यूरोप के पूंजीवादी प्रभुत्व
ले हिस्से के मजदूर वर्ग और श्रमिक लोग सकट को हल करने का जनतांत्रिक
माधान प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं जो व्यापक जनसमूह के हितो से
नुरूप होगा और समाज के समाजवादी रूपांतरण का मार्ग प्रशस्त करेगा।"[2]

अतः मजदूर वर्ग शांतिपूर्ण तरीकों के द्वारा जनतांत्रिक समाधान के पक्ष मे
क्या यह संभव है? हां, यह सभव है। वैज्ञानिक कम्युनिज्म का सारा सिद्धात
नवतावाद का सिद्धात है, ऐतिहासिक आशावाद का सिद्धात है जो हिंसा—
ीवादी हिंसा के विरुद्ध मजदूर वर्ग की आत्मरक्षा का प्रश्न उपस्थित हो जाए
दूसरी बात है—को अस्वीकार करता है।

इस सबंध मे, समाजवादी संक्रमण के शांतिपूर्ण स्वरूपो के प्रश्न से जुड़े हुए
कों को अत्यत महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। अपने समय मे मार्क्स का
वास था कि एक "समाज का संक्रमणकालीन राज्य" हो सकता है जिसके अंत-
"एक ओर मौजूदा आर्थिक आधार अभी रूपांतरित नही हो पाया है, तथा
री ओर श्रमिक जनसमूह ने पर्याप्त शक्ति इकट्ठी कर ली है कि वह संक्रमण
न के उपायों—जो कि अतिम विश्लेषण मे बुनियादी पुनर्गठन को सभव
एंगे—के क्रियान्वयन को अपरिहार्य बना सके।"[3]

उनकी दृष्टि मे इस प्रकार को घटना प्रवाह दूर की ही सही, सभावना अवश्य
हुआ था। अब, पूंजीवाद से समाजवाद मे संक्रमण की विश्वव्यापी परि-
स्थितियों के अंतर्गत तथा स्वयं पूंजीवादी विश्व में वर्ग-शक्तियों का एक भिन्न
संबंध उभरने की वजह से इस प्रकार का विकास वास्तविकता बन गया है।
प की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो की बर्लिन कान्फ्रेंस मे इस बात की ओर
त किया गया—"साम्राज्यवाद की स्थिति, जिसने अपनी प्रकृति में कोई परि-
न नही आया है, वह शक्ति-संतुलन में उत्पन्न परिवर्तनों के फलस्वरूप कमजोर
ुरी है। यह बात इस तथ्य मे व्यक्त होती है कि साम्राज्यवाद न तो समाज-

एरिक मूरेज, 'टेस्टामेंट पोअर अन माइ फ्यूचर', पेरिस, 1971, पृ० 22
यूरोप में शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति', पृ०38
मार्क्स-एंगेल्स, बर्क खड 16, पृ० 368-69

वाद की ऐतिहासिक उपलब्धियों को ही उलट सकता है, न ही प्रगतिशील ताकतों को बढ़ने से रोक सकता है और न ही लोगों के मुक्ति और स्वाधीनता के लिए संघर्षों पर ही उसका अंकुश लगा सकता है।"[1]

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आज फिलहाल मजदूर वर्ग और सब मिला-कर इजारेदारी-विरोधी आंदोलन उस स्तर को प्राप्त कर चुका है जहाँ वह शांति-पूर्ण तरीकों से समाजवाद की ओर जाने वाले महत्वपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। दरअसल, पश्चिमी यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों ने अपने कार्यक्रमों में कुछ ऐसे आधार बिंदु तैयार किए हैं जैसे—इजारे-दारी-विरोधी लोकतन्त्र की मांगें, वामपंथी दलों की सामूहिक सरकारों का निर्माण और निःशस्त्रीकरण की नीति—जो समाजवाद के लिए उनके संघर्ष की अंतरिम अवस्थाएं अथवा उसके संक्रमणकालीन रूप हैं।

निस्संदेह, शांतिपूर्ण लोकतांत्रिक रूपान्तरण के मार्ग का यह कतई अर्थ नहीं है कि वर्ग-संघर्ष के मंदे पड़ने का आरंभ हो रहा है। इसके विपरीत, पूँजीवाद के खिलाफ मजदूर वर्ग का स्थायी, सक्रिय और शक्तिशाली हमला मात्र ही इस आंदो-लन को गतिशील रख सकता है। यह इसलिए कि क्रांति सुधारों का योगफल नहीं होती और जहाँ तक वर्ग संघर्ष के मुख्य मुद्दे का प्रश्न है अर्थात् शक्ति हथियाने की समस्या या फलस्वरूप उत्पादन के साधनों पर कब्जा करने का प्रश्न—जब तक इसका हल नहीं होता तब तक किसी भी प्रगतिशील प्राप्ति को स्थायी मान लेना असंभव है। इसलिए, क्रांति के शांतिमय रास्ते का अर्थ है कि प्रत्येक पूंजीवादी देश में और विश्व व्यापी पैमाने पर, दोनों रूपों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध जनतांत्रिक शक्तियों के राजनैतिक संघर्ष को धीमा न होने दिया। बल्कि और अधिक मजबूत और तेज किया जाय।

जहाँ तक इस समस्या के अंतर्राष्ट्रीय पहलू का संबंध है यह आवश्यक हो जाता है कि युद्ध और प्रतिक्रियावाद की ताकतों का मुकाबला करने वाली जनतांत्रिक शक्तियों के विश्वव्यापी स्तर पर एक मोर्चा बनाया जाय, क्योंकि जैसा कि लेनिन ने कहा था—"जनतंत्र की सबसे अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति युद्ध और शांति के मूल-भूत प्रश्न में निहित होती है।"[2] और जब राष्ट्रीय स्तर पर जनतांत्रिक शक्तियाँ मजदूर वर्ग और उसके कम्युनिस्ट हिरावल की ओर उन्मुख हो जाती हैं तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उस समाजवादी समुदाय की ओर भी उन्मुख हो जाती हैं जिसका नेतृत्व सोवियत संघ—जो जनगण के बीच शांति और सहयोग के लिए किए जाने वाले संघर्ष की अग्रगामी शक्ति है—करता है।

1. 'यूरोप में शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए, पृ॰ 37
2. वी॰ आई॰ लेनिन "अखिल रूस केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के सातवें कन्वोकेशन के प्रथम सत्र में प्रस्तुत अखिल रूस केन्द्रीय कार्य समिति और जन कमिसार परिषद् के कार्य-कलापों पर रिपोर्ट", संकलित रचनाएँ, खंड 30 पृ॰ 319

युद्धों को समाप्त करने की समस्या में कुछ विरोधाभास दिखाई दे सकता है, कम-से-कम उतने भर में जितना कि परवर्ती ऐतिहासिक अनुभव इस संभावना को नकारता है। फिर भी अन्य सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं की तरह इसके समाधान के लिए ऐतिहासिक नज़रिया आवश्यक है। युद्ध कैसे पैदा होता है, इसमें कौन-सी शक्तियों का हित निहित होता है या इसमें कौन अभिरुचि रखता है, क्या मानव जाति बिना युद्ध के जी सकती है, या क्या यह एक ऐसा अभिशाप है जो सदा खून का दरिया बहाने के लिए ही होता है? इन अथवा इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों का जवाब देने के लिए यह आवश्यक है कि कारकों के जटिल संयोग की परीक्षा की जाये—सामाजिक-आर्थिक घटनाओं से लेकर कानूनी तथा अन्य विविध रूपों में अभिव्यक्त और परस्पर अंतःक्रिया में संलग्न—किन्तु स्वभावतया यह भी आवश्यक हो कि यह परीक्षा सटीक स्थितियों के आलोक में ही हो।

मानवता ने शांति के अपने स्वप्न को सँजोकर रखा है, हज़ारों सालों के इतिहास में लगातार प्रचुर मात्रा में रक्तरंजित युद्धों के दौर में से गुज़रते हुए भी कई शताब्दियों से शांति के इस दर्शन ने जनगण के जीवन से सशस्त्र संघर्षों को समाप्त करने के मानवतावादी विचारों को पोषित और विकसित किया है। कभी-कभी उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को अधिक संमान बनाने वाली, मूलभूत और निर्भीक योजनाओं का मूर्तरूप भी धारण किया।

दार्शनिक शोधग्रंथों अथवा सत्ताधारियों की घोषणाओं में निरूपित शांति के आह्वान कितने भी प्रभावकारी क्यों न हों, वास्तविकता से तुलना करने पर वे अनिवार्यतः व्यावहारिक दिवालियापन को ही प्रकट करते हैं। या फिर इनके नीचे दबी-ढंकी उनकी स्वार्थपरक योजनाएँ दिखती हैं, जनता के कल्याण को बढ़ावा देने की वास्तविक आकांक्षा से जिनका दूर का भी वास्ता नहीं है। हिंसा पर आधारित समाज से और क्या आशा की जा सकती थी? दास-स्वामियों ने अधिक दास पाने के लिए युद्ध छेड़े, सामंती प्रभुओं ने सीमा विस्तार और कृषि-दासों को बढ़ाने के लिए युद्ध छेड़े, पूँजीपतियों ने, कच्चे मालों के स्रोतों के लिए, व्यापार-क्षेत्र बढ़ाने के लिए—जहाँ वे अपनी पूँजी लगा सकें—और आगे चलकर बढ़े हुए शोषण के द्वारा अधिक समृद्धि अर्जित करने के युद्ध छेड़े। यह अनुमान लगाया गया है कि पिछले 5,500 वर्षों में 14,500 से अधिक युद्ध हुए जिनमें करोड़ों की संख्या में जानें गयीं। कितने हैरतअंगेज़ आँकड़े हैं ये।

शोषण की व्यवस्थाओं के प्रारंभ से ही युद्ध निरंतर उनसे संबद्ध रहा है। फिर भी, जो सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात है वह यह कि लोगों ने प्रत्येक काल में अनवरत रूप से लगन के साथ शांति की खोज की है। लेकिन जबकि सभी स्कूली पाठ्य-पुस्तक सैनिक हलचलों और युद्धों के वर्णनों से युक्त सामग्री से भरी रहती है, शांति के विचार इस दृष्टि से उतने भाग्यशाली नहीं बन पाते हैं तथा

आम तौर से गुमनाम रह जाते हैं। तो भी उनके विकास की खोज करना श्रेयस्कर और रुचिकर होगा। इस संबंध में यूरोपीय महाद्वीप के संदर्भ में शांति की समस्याओं के क्रम में दार्शनिक और राजनैतिक विचारों के इतिहास का अध्ययन विशेषतौर पर शिक्षाप्रद है। इस विषय में यूरोप की प्राचीन, मध्यकालीन और पूँजीवादी युगीन—सभी अवधियों का इस संबंध में चिंतन अपनी छाप छोड़ता है।

उदाहरण के लिए प्राचीन यूनान के विचारकों में इस सामान्य सिद्धांत पर कोई असहमति नहीं थी कि युद्ध—व्यापक जन-संहार—एक बुराई है, तथा शांति एक वरदान है, किन्तु उन्होंने इसे आनरिक यूनानी समस्या के रूप में ही देखा। जहाँ तक बाहरी दुनिया का संबंध है उन्होंने किसी प्रकार की भ्रांतियों की अनुमति नहीं दी। "युद्ध सबका पिता और राजा है।"—इस बात पर प्राचीन यूनानी दार्शनिक हेराक्लिटस ने ज़ोर दिया था तथा इस सिद्धांत को प्रकृति और समाज दोनों की द्वन्द्वात्मकता के विकास के रूप में आगे बढ़ाया था। प्लेटो के आदर्श राज्य में शांति का शासन है, किन्तु जिन्होंने युद्ध में अपनी-अपनी सीमाओं से परे अपने आपको विशिष्ट सिद्ध किया उनका गुणगान किया गया है। अरस्तू ने स्पष्टता के साथ युद्ध के सामाजिक सार का उद्‌घाटन किया जो उनके समय के लिए असाधारण बात थी। उन्होंने युद्ध को 'अधिग्रहण की स्वाभाविक क्रिया' कहकर परिभाषित किया। उनके अनुसार युद्ध का वह कलात्मक अंश, जिसमें 'शिकार करना सम्मिलित' है—पूरी तरह न्याय संगत है। उन्होंने कहा कि वह एक कला है जिसका अभ्यास "जंगली पशुओं और आदमियों के विरुद्ध होना चाहिए जिन्हें प्रकृति ने शासित होने के लिए ही बनाया है किन्तु जो समर्पण नहीं करते।"[1] युद्ध के प्रति यह दृष्टिकोण, ज़ाहिर है, दास प्रथा की प्रकृति से पैदा हुआ था तथा उसकी मानसिकता के अनुरूप था।

चौथी शताब्दी में मकदूनिया के उदय की ठोस परिस्थितियों तथा सिकंदर—जो अरस्तू का शिष्य था—की जीतों के दौरान, युद्धकला के इस प्रकार के मूल्यांकन ने मकदूनिया के विस्तारवाद को तर्कसंगत ठहराया। ईसापूर्व 338 के अगस्त में कैरोनिआ की लड़ाई के बाद, जिसने मकदूनिया के आधिपत्य के प्रश्न को अंतिम रूप से हल कर दिया था, मकदूनिया के फ़िलिप ने पराजित कोरिंथ में अखिल यूनानी सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें व्यापक यूनानी शांति संबंधी विचारों की सुपरिभाषित राजनीतिक अभिव्यक्ति मिली। इस बात पर सहमति हुई कि—प्रथम, यूनानी राज्यों का एक महासंघ बनाया जाये जिनके बीच आपसी युद्धों पर प्रतिबंध लगाया जाये; द्वितीय : महासंघ और मकदूनिया के राजा के बीच स्थायी

1. पॉलिटिक्स ऑफ़ एरिस्टोटल, न्यूयॉर्क, 1899, पृ० 12

सुरक्षात्मक और आक्रमणात्मक संधि पर हस्ताक्षर हों, तृतीय, पर्शिया में युद्ध शुरू किया जाये। सिकंदर के बाद के अभियानों ने यह जाहिर कर दिया कि कोरिंथ सम्मेलन के भागीदारों—मकदूनियाई इनमें प्रमुख थे—ने तीसरे बिन्दु को सर्वप्रमुख समझा।

इसका निष्कर्ष है कि कूटनीति के इतिहास के इस प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय कानून की धारा ने साफतौर पर एक शोषक समाज की विदेश नीति की मुख्य प्रवृत्ति का निर्धारण कर दिया, जिस प्रवृत्ति का रुख उत्पत्ति के साधनों के प्रसार की ओर था। इसके अलावा इसमें यह इच्छा भी निहित थी कि सबसे अधिक शक्तिशाली भागीदार के साथ मिलकर आधिपत्य को सुदृढ़ बनाया जाये। जाहिर है इस संधि का निशाना सदा अन्य देश एवं जनगण ही बनते।

सदियाँ बीत गयीं। साम्राज्य उठे और गिरे, अंतर्राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे बने और टूट गये, किन्तु वास्तव में राज्य की विदेश नीति के लक्ष्य उपरिवर्णित पैटर्न में ही सीमित रहे।

तीसरे देशों की ओर लक्षित क्षेत्रीय मित्रताओं के विचार के पनपने के लिए मध्य यूरोप उपजाऊ जमीन साबित हुआ। उदाहरण के लिए, सन् 1095 में क्लेरमोंट में आयोजित रोमन कैथोलिक चर्च की कौंसिल में इसे आगे विकसित किया गया, जहाँ पोप अर्बन द्वितीय ने सभी ईसाई राज्यों को 'दैवीशांति' का उपदेश दिया और इसके साथ ही उसी समय 'काफिरों' के खिलाफ जिहाद छेड़ने का आह्वान किया। होली-सी के प्रधान के पश्चिमी ईसाइयतशाही को अपील की कि वह पूर्वी ईसाइयतशाही को बचाने आये और तुर्कों से जेरुसलम को हथिया ले और इसके साथ ही उनसे वायदा करे कि वे विजेता अपने अच्छे उपयोग के लिए उपजाऊ जमीनें हासिल करेंगे। इस अपील के बाद का परिणाम सुपरिचित है: जहाँ तक तुर्कों के खिलाफ 'पवित्र युद्ध' का संबंध है, ईसाई राज्यों ने कठिनाइयों के बावजूद इस बिन्दु पर एक समझौता किया, जिसके फलस्वरूप चार सदियों की अवधि के दौरान बहुत से और जिहाद छिड़े। किन्तु ईसाई राज्यों के बीच में 'दैवी शांति' के लिए किये गये आह्वान अपने आप में पूरी तरह असफल सिद्ध हुए।

जिहादों के दौरान तथा उनके पश्चात् यूरोप झगड़ों एवं परस्पर संहारक युद्धों की विभीषिका में फँसा रहा। उसकी सीमाओं से परे संयुक्त 'मुक्ति' मिशन यूरोप को शांति के अधिक निकट नहीं ला पाया। फिर भी, जब सन् 1453 में तुर्कों के आघातों के परिणामस्वरूप बिजेंटाइन साम्राज्य धराशायी हो गया तथा ईसाई राज्य वास्तव में एक समान शत्रु के विरुद्ध खड़े हुए, तब भी यूरोपीय एकता की बातें बड़े कानों में ही टकराकर रह गयीं। सन् 1459 में पोप पीयस द्वितीय द्वारा शांति कौंसिल के लिए ईसाई राजाओं को सम्मिलित करने का प्रयत्न

नितांत असफलता में समाप्त हुआ। उसे किसी ने गंभीरतापूर्वक नहीं लिया। और जब वह मतुआ पहुँचा, तो कांग्रेस के लिए प्रस्तावित जगह पर उसे वहाँ न तो कोई राजा मिला और न ही उनके प्रतिनिधि।

फिर भी, ईसाई राज्यों के सहमेल का विचार, जिसकी जड़ें सभ्य जनगण के मध्य राजनैतिक शांति की प्राचीन अवधारणा में निहित थीं—आगे के बहुत से वर्षों तक यूरोपीय राजनीतिज्ञों के दिमाग़ों को आंदोलित करता रहा। साथ ही, वे दूसरे देशों के विरुद्ध लक्षित सैनिक और राजनैतिक सहमेल के अलावा यूरोपीय शांति के लिए किसी अन्य रूप की कल्पना तक नहीं कर पाये।

उदाहरण के लिए, 17वीं शताब्दी में बहुचर्चित, मैक्सीमिलीन सली की महत्वाकांक्षी योजना यही थी। प्रमुख फ्रांसीसी राजनेता तथा किंग हेनरी चतुर्थ के सलाहकार ड्यूक दे सल्ली ने उदीयमान फ्रांसीसी तानाशाही के हितों की वकालत की और एक साथ दो समस्याओं को सुलझाने का भरसक प्रयत्न किया। सबसे पहले उसने हैप्सबर्ग राजशाही को कमज़ोर करने की कोशिश की, जो फ्रांस का शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी था, और फिर उसने पश्चिमी यूरोपीय राज्यों को इस दृष्टि से एकताबद्ध करने की कोशिश की कि बल्कान से तुर्कों को बाहर निकाला जाये। अप्रत्यक्षतः यह योजना मस्कोवी के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त करने के लिए भी निर्धारित की गयी थी, जो ज़ार इवान चतुर्थ के अधीन बहुत मज़बूती से स्थापित हो चुका था और दृढ़ता के साथ शक्ति अर्जित कर रहा था।

अपनी योजना के समर्थन में एक दलील के रूप में सली ने सीमांत प्रदेशों की 'प्राकृतिक' धारणा को प्रस्तुत किया, जिसके बारे में उसका विश्वास था कि यह सभी पश्चिमी यूरोपीय देशों के लिए, क्रमानुसार समझौतों के आधार पर (योजना यह थी कि पूर्वी यूरोप को 15 समान शक्तिशाली राज्यों में विभाजित किया जाय) स्थापित किया जाना था। इन देशों को एक महासंघ के चौखटे में फिट किया जाना था अर्थात् 'ईसाई गणतंत्र' के रूप में, जिसकी मुखिया सशस्त्र सेना युक्त एक महासंघीय कौंसिल होती तथा जो गृहयुद्धों तथा धार्मिक युद्धों को रोक सकती। यदि यह महान् योजना व्यवहार में उतार दी जाती, तो फ्रांस के 'प्राकृतिक सीमांत प्रदेशों' का विस्तार दक्षिण में पिरेनीज़ तक हो जाता और उत्तर और पूर्व में आल्प्स और राइन तक। बोरबोन हैप्सबर्गों के प्रभाव को क्षीण करके 'ईसाई गणतंत्र' पर आधिपत्य स्थापित कर लेते। सल्ली की प्रायोजना का यह प्रमुख लक्ष्य था। जहाँ तक उसके तुर्की विरोधी उन्मुखता का संबंध है, इसे समान ख़तरे को सामने रखकर प्रस्तावित सहमेल को सुदृढ़ करना था और उस भूमिका को सुदृढ़ करना था जो इसमें फ्रांसीसी ताज द्वारा अदा की जानी थी।

यद्यपि सली की योजना की प्रकृति काल्पनिक थी, फिर भी यह एक अग्रगामी क़दम था क्योंकि यूरोपीय सैटलमेंट की नींव रखने की ऐसी कोशिश थी जिसका

आधार 'प्राकृतिक सीमांत प्रदेशों' की तर्कसंगत धारणा थी तथा शक्ति संतुलन के एक प्रकार के समझौते की प्रक्रिया जिसे पुष्ट करती थी। यह कहना अनावश्यक है कि सली की प्रायोजना कार्यरूप लेने में असफल रही, क्योंकि यूरोप में 'प्राकृतिक सीमांत प्रदेशों' के सिद्धांत को कोई समर्थक नहीं मिला। किंतु सार्वभौमिक शांति के विचारों के सामान्य विकास में इसका अपना स्थान है। इस महान् योजना में निहित कुछ विचार बहुत बाद में प्रबोधन के बहुत से चिंतकों की रचनाओं में प्रतिध्वनित होते रहे जिन्होंने दरअसल शांति की समस्या को गंभीर दार्शनिक अध्ययन की एक विषयवस्तु बना दिया।

प्रबोधन और उसका शांति का आदर्श

विनाशकारी सैनिक संघर्षों की ताजा लहर यूरोपीय महाद्वीप में बूर्ज्वा संबंधों की स्थापना का प्रतीक थी इन्होंने भूतपूर्व सभी युद्धों—जिनमें 'सप्त वर्षीय युद्ध', 'तीस वर्षीय युद्ध' और 'सौ वर्षीय युद्ध' शामिल हैं—की तुलना में बहुत अधिक मात्रा में विनाश किया। राष्ट्रीय सत्ताएँ स्थापित हुईं तथा तोप और तलवार से उपनिवेश जीत लिये गए। साथ ही, नए युग के परिवर्तन की ताजा लहर ने ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की खोज की प्रेरणा पैदा की जो और अधिक स्वीकार्य हों। ऐसा प्रतीत हुआ कि यूरोप में राजनैतिक क्रियाकलाप शांति के आदर्शों से जितना दूर होते गए, विश्व व्यापी समझौते की दिशा में प्रगतिशील चिंतन की कोशिशें लगातार उतनी ही अधिक तेज होने लगी। तात्कालिक परिणाम के रूप में सतत शांति के लिए संधि का विचार सामने आया। अपने समय के महान् विचारकों—थॉमस हॉब्स, जॉन लॉक, विलियम पेन, चार्ल्स सेंट पियरे, ज्यां-जैक्स रूसो, और अंततः इम्मान्युअल कांट—सबने इस विचार को अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवदान दिया।

बहुत से दशकों तक सतत विश्व शांति के लिए संधि करने का विचार, प्राकृतिक विधान और सामाजिक अनुबंध की सामान्य धारणा के घटक के रूप में प्रबोधन के दार्शनिक अध्ययनों पर छाया रहा। यह अपनी सादगी और मानवी चिंतन पर आस्था के कारण लोगों को आकर्षित करता था। उनकी सुरक्षा और संपत्ति के प्राकृतिक अधिकार को आश्वस्त करने के उद्देश्य से प्रबोधन के चिंतक यह दलील देते थे कि लोगों को एक ही राज्य के निर्माण हेतु एक समझौता करना होगा। आखिर राज्यों को ऐसा करने से अर्थात् सुरक्षा को आश्वस्त करने और पारस्परिक विनाश को टालने का समझौता करने से कौन-सी बात रोकती थी?

उदाहरण के लिए, विलियम पियरे—जो अपनी रचनाओं में लॉक और हॉब्स के विचारों पर भरोसा करते थे और जो जितना अधिक दार्शनिक थे उतना ही अधिक राजनीतिज्ञ थे—ने अपनी पुस्तक 'एन एसे टुवार्ड्स द प्रेजेंट एंड फ्यूचर पीस आफ यूरप' में लिखा—"शांति न्याय से कायम रहती है, जो कि सरकार का

एक प्रतिफल है जैसे कि सरकार समाज का और समाज सहमति का प्रतिफल होता है।"[1] पेन के अनुसार, कानून की शक्ति ही लोगो मे निहित शांति और न्याय की आकांक्षा को प्रतिबिंबित करती है तथा इसे यूरोपीय राज्यो के सामान्य सहमेल और सर्वोच्च संगठन के अपने क्रियाकलाप के आधार रूप मे भी निहित रहना चाहिए। यह संगठन विवादपूर्ण प्रश्नों को हल करने की दृष्टि से गठित कांग्रेस हो सकती है अथवा संसद। पेन सल्ली की महान् योजना का अपने शोधग्रंथ मे उल्लेख करते हुए पश्चिमी यूरोप के राज्यों के अलावा रूस और तुर्की को भी सम्मिलित करते हुए संभावित सहमेल की भौगोलिक सीमाओ को और अधिक विस्तार देते हैं।

प्रबोधन के प्रारंभिक काल के फ्रांसीसी दार्शनिक और कूटनीतिज्ञ चार्ल्स द सेंत-पियरे ने अपनी मौलिक रचना 'प्रोजेत द पेक्स परपेच्युएल'—जो उत्रेख्त मे सन् 1712 की वेस्टफालियन कांग्रेस के शीघ्र बाद मे प्रकाशित हुई थी—मे समान-धर्मा विचार प्रकट किए गए थे। उत्रेख्त की शांति ने स्पेनिश उत्तराधिकार के युद्ध को समाप्त कर दिया। सल्ली की ग्रेट डिजाइन से भिन्न सेंत-पियरे की महाद्वीपीय राज्यों के सहमेल की प्रायोजना मे सीमाओ के परिवर्तनो का प्रावधान नही था, लेकिन मौजूदा सीमांत प्रदेशों के आधार को कायम रखते हुए उन्हे भविष्य के लिए एकजुट करने को प्रस्तावित किया गया था। उनका प्रस्तावित सहमेल किसी राज्य के विरुद्ध निर्देशित नही था; उन्होंने प्रबोधन के तत्वों अर्थात् विवेक, न्याय और कानून को लोगो के शांतिपूर्ण विकास की गारंटी देने वाले आदर्शों के रूप मे घोषित किया था।

उदीयमान बुर्ज्वा वर्ग तथा 'थर्ड एस्टेट' के विचारधारात्मक नेताओ ने निस्संदेह मानवता की सेवा की, किंतु इसलिए नही कि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय संबंधो (जो सदा बगैर फलित साबित हुए) की एक या दूसरी योजना को ईजाद किया। महत्त्व-पूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक विधान और सामाजिक अनुबंध के सिद्धांत से संबद्ध होने की वजह से ये योजनाएं धरती पर टिकी हुई थी और न्याय के लिए अपनी खोज मे, वे तर्क पर आधारित थी भाग्य एवं विधाता की ओर उन्मुख नही। बजाय इसके कि वे राजाओ और सामंतो की अनुकंपा पर भरोसा करते, उन्होंने सार्वभौम शांति को लोगो के स्वयं के अविभाज्य अधिकार के रूप मे घोषित किया। शांति की समस्या को हल करने के तमाम प्रयत्नो—जो पहले के मध्य काल मे किए गए थे—की तुलना मे शांति के इन नए प्रयत्नो मे अपेक्षाकृत अधिक सहज बुद्धि तथा सच्चा लोकतंत्र निहित था।

अठारहवी सदी के दार्शनिको और विशेषतया फ्रांसीसी प्रबोधन के प्रति-

---

1. "यूरोप की वर्तमान और भावी शांति के निमित्त—एक निबंध" विलियम पेन द्वारा लिखित 'यूरोप की शांति' : 'फल्स के फल' और अन्य रचनाओं से : लंदन, टोरंटो, न्यूयॉर्क, पृ० 6

निधिया ने इस क्रांतिकारी प्रस्ताव को आगे रखा और विकसित किया। उनका मत था कि यह नई राज्य थी जिसके तहत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति और राज्यों की आंतरिक व्यवस्था के बीच के अंतर्संबंध का पता लगाया गया था। स्थायी शांति के लिए समझौते का विचार सीधा तानाशाही के खात्मे करने पर निर्भर करता था और ज्यां-जैक्स रूसो ने अपनी पुस्तक 'दु कांट्रैट सोशल' में इस मत का विकास किया और अपने प्रसिद्ध निष्कर्ष में लोगों को शासन के जोर से स्वाधीनता प्राप्त करने की बात कही— "जिस अधिकार से उनसे उनकी आजादी छीन ली गई थी उसी अधिकार के उपयोग से उसे वापस लेना है।"[1]

जब हम शांति के विचारों पर गौर करते हैं, जिन्हें हमने प्रबोधन से विरासत में लिया है, तो डोम लेजर मैरी डिसकैम्स—जो एक बेनेडिक्टाइन पादरी और विवेक के उस समृद्धतम युग के सर्वाधिक साहसी चिंतक थे—के विषय में चर्चा न करना अन्यायपूर्ण होगा। यद्यपि अपने अधिकतर समकालीनों, डिडेरोट और रूसो, से उनकी ख्याति कम थी, किंतु हमारी राय में उनका अपने समय के दार्शनिक विचारों के निर्माण में किसी से भी कम प्रभाव नहीं रहा है। रूसो, डिडेरोट और फ्रांसीसी प्रबोधन के अन्य प्रतिनिधि उनके और आमूल परिवर्तनकारी विचारों से भली प्रकार परिचित थे सिद्धांत रूप में वे उनसे सहानुभूति भी रखते थे।

डोम डिसकैम्स ने अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्थापन के लिए किसी प्रकार की परियोजनाओं को सूचित नहीं किया। लेकिन सन् 1770 में उन्होंने एक शोधग्रंथ की रचना की जिसका शीर्षक 'ऑब्जर्वेशंस मोरालस' था, जिसमें उन्होंने सीधे रूप में शाश्वत शांति कायम करने की समस्या को निजी संपत्ति की समाप्ति के साथ जोड़ा। उन्होंने लिखा कि—"बहुधा आपका और मेरा अस्तित्व उन लड़ाइयों का कारण रहा है जो सभी युगों और सभी देशों के इतिहास में निरंतर उबलती रही हैं।"[2] इस दार्शनिक की राय में सामाजिक समानता नितांत अनिवार्य है यदि मानवता मैत्री और भाईचारे से *जीना चाहती है और निजी संपत्ति से उत्पन्न भेदभाव को मिटाना चाहती है।*

ज्यों ही डिसकैम्स इस विषय के व्यावहारिक पक्ष की ओर मुड़े, ये प्रगतिशील विचार—भावावेग युक्त अपीलें जिनको मुखर कर रही थीं—असहाय, मासूमियत से भरे एवं प्रभावहीन दिखने लगे। न्याय संगत सामाजिक व्यवस्था को प्राप्त करने के संबंध में उन्होंने लिखा—"हमारे *असमाप्य युद्ध हमारी लोभवृत्तियों की उपज भी है, इसलिए हमें अपने लालच और लालसाएँ छोड़ देनी होंगी।* हमें अपने हाथ

---

1. ज्यां-जैक्स रूसो, "दु कांट्रैट सोशल", खंड III पेरिस, 1964, पृ० 352
2. देखिए—डोम डिसकैम्स, ले उराइ सिस्टम ऊ ले मोट दे आइ एजिम मैटाफिजिक एत मोरेल, जेनेवा, 1963, पृ० 163

आने शासकों की ओर बढ़ाने चाहिए और उन्हें ताजोतख्त से नीचे उतरकर हमारे बराबर आने के लिए बाध्य करना चाहिए। इसमें वे इंकार नहीं करेंगे ज्यों ही वे अपनी स्थिति की तुलना समानता की स्थिति के साथ करेंगे।"[1]

शांति के प्रश्न के प्रस्तुतीकरण में प्रबोधन के दार्शनिकों द्वारा उठाये गये नये अग्रगामी कदम ने निश्चित रूप से जड़ता को तोड़ा था। किन्तु यह किसी व्यावहारिक निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए नितांत अपर्याप्त था। यूरोप और अमरीका में जो दुर्दान्त घटनाएँ घटित हुई उनके फलस्वरूप विवेक की विजय की आशा की भी वही गति हुई जो कि विधाता की इच्छा पर आश्रित अन्य बड़ी आशाओं की हुई थी।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संघटन से संबंधित प्रबोधन के विचार सन् 1776 के स्वाधीनता के उस घोषणापत्र में सीधे तौर पर प्रतिध्वनित हुए जिसने संयुक्त राज्य अमरीका के निर्माण की घोषणा की थी। थॉमस जेफरसन द्वारा लिखित इस घोषणापत्र—जिसे मार्क्स ने 'मानव के अधिकारों की प्रथम घोषणा'[2] की संज्ञा दी थी—पर स्पष्टतया फ्रांसिस बेकन, मौंटेस्क्यू, डिडेरोत तथा लॉक का प्रभाव था।

लेकिन यदि हम संयुक्त राज्य अमरीका की तत्काल निर्मित विदेश नीति के क्षेत्र से संबंधित व्यावहारिक क्रियाकलाप की ओर घूम कर देखें तो पाएँगे कि ज्यों ही उन्होंने स्वाधीनता प्राप्त की वैसे ही उन्होंने तथाकथित 'शक्ति संतुलन' की नीति के अन्तर्गत उन प्रगतिशील विचारों को त्याग दिया। बुर्जुआ वर्ग के उन कट्टर विशेषज्ञों—जैसे जार्ज वाशिंगटन, एलेक्जेंडर हैमिल्टन, जॉन एडम्स, जॉन जे और अमरीकी राज्य के अन्य जनकों—के हाथों में शक्ति संतुलन की नीति दुनिया में सबसे अधिक जनसंहारक लड़ाइयों का अधिकतम लाभ उठाने की इच्छा के रूप में परिवर्तित हो गयी। समुद्र पार का यह गणतंत्र एक ऐसे राज्य की नींव रख रहा था जो देश में सदियों तक असम्मानजनक गुलामी की संस्था को सुरक्षित कर सके और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विस्तारवाद की नीति का अनुसरण करे और विश्व शांति के प्रति कतई चिंतित न हो।

प्रबोधन के विचारों का फ्रांसीसी क्रांति के कार्यक्रम पर—जो सन् 1789 का मानव और नागरिक अधिकारों का घोषणापत्र कहलाता है—और भी अधिक प्रभाव पड़ा। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते हुए इसकी दूसरी धारा में कहा गया था—"प्रत्येक राजनैतिक संगठन का उद्देश्य मानव के

1. टोम डिसर्कस, पूर्वोक्त पृ० 185
2. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, चयनित रचनाएँ तीन खंडों में, खंड 2 मास्को, 1973, पृ० 22

प्राकृतिक और अविभाज्य अधिकारों को सुरक्षित करना है। ये हैं स्वतंत्रता, संपत्ति, सुरक्षा तथा दमन का प्रतिरोध।"[1]

अमरीका से भिन्न, क्रांतिकारी फ्रांस में जैकोबाइनी तानाशाही के पास ऐसा बल था जो कि इन सिद्धांतों को जीवन में क्रियान्वित करने के लिए प्रस्तुत था। सैनिक पराजयों के समय जबकि प्रतिक्रियावादी यूरोप की सेनाएँ फ्रांस के पास चारों ओर से छाई हुई थी, तथा हस्तक्षेपवादियों के ऊपर प्रथम विजयों के बाद, दोनों ही बार, जैकोबियनों ने दृढ़ता से क्रांतिकारी युद्ध की रणनीति लागू की। राष्ट्रीय सम्मेलन में अपने विवरणों में मैक्सिमिलियन रोब्सपियरे ने साफ तौर पर घोषणा की कि किसी भी परिस्थिति में फ्रांसीसी गणतंत्र अपनी प्रभुसत्ता का समर्पण नहीं करेगा और अपने आंतरिक मामलों में किसी को हस्तक्षेप करने की इजाजत ही देगा। साथ ही, यह भी कि अपनी राजनीतिक प्रणाली को किसी दूसरे देश पर हथियारों की ताकत से थोपने का उसका कोई इरादा न था।

जैकोबियनों की मान्यता थी कि ये सिद्धांत केवल तात्कालिक रणनीतिक नारे ही नहीं हैं, किन्तु ये विदेश नीति के आधारभूत सिद्धांत हैं और, उन्होंने सभी देशों से अपील की कि वे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में नैतिक एवं न्याय के सिद्धांतों पर ज़ोर दें। तब से जैकोबियन मानवता के सभी हितों का पक्ष लेते रहे। रोब्सपियरे ने एक बार कहा कि यदि फ्रांस की स्वतंत्रता नष्ट होती है तो प्रकृति कफन से ढक जाएगी और मानव ज्ञान, अज्ञान, बर्बरता तथा तानाशाही की ओर वापस लौट पड़ेगा जो कि असीम सागर की भांति समूची दुनिया की तबाही के कारक बनेंगे। उनके शब्द एकदम सटीक भविष्यवाणी साबित हुए। 9वीं थर्मीडोर के प्रतिक्रांतिकारी राज्य-विप्लव ने जैकोबियनों के क्रियाकलाप की हत्या कर दी और इसके साथ ही अंतर्राष्ट्रीय मामलों में न्यायसंगत सिद्धांतों पर दिया जाने वाला बल भी समाप्त कर दिया गया।

इमानुअल कांट की 'चिरंतन शांति'

सार्वभौमिक शांति का विचार समाप्त नहीं हुआ। इसके विपरीत, नेपोलियनी युद्धों के प्रारंभ में यह और आगे विकसित हुआ; इस बार फ्रांस के बाहर ऐसा हुआ। जिस व्यक्ति ने इसका अध्ययन प्रारंभ किया तथा प्रबलता से इसका प्रचार किया वह था जर्मनी के पौराणिक दर्शन का संस्थापक इमानुअल कांट। उनकी विश्व दृष्टि, मार्क्स के शब्दों में, फ्रांसीसी बूर्ज्वा क्रांति पर आधारित जर्मन सिद्धांत थी।

उस महान दार्शनिक ने अपने पूर्ववर्ती विचारकों के शांति प्रयत्नों के निराधा- [illegible] का तथा उनकी व्यावहारिक सिफारिशों की असफलता का

[1] [illegible] पृ० [illegible]

विश्लेषण किया। वह अन्य किसी पूर्ववर्ती की तुलना मे समस्या की सपूर्ण जटिलता को अधिक गहराई से समझने की क्षमता से सपन्न थे। सभवतः यही कारण है कि उन्होंने अपने शोधग्रंथ का आरंभ सदेह भरे प्रश्न को उठाकर किया—'चिरतन शांति'। इसका निर्णय हमे नही करना है कि वह डच सराय वाले की कब्र पर लिखे इस व्यग्यात्मक अभिलेख का निशाना समूची मानवता है, अथवा वे शासक हैं जिनकी युद्ध पिपासा सहज शांत होने वाली नही है, अथवा वे दार्शनिक जो मधुर स्वप्न देखते हैं।"[1]

तथापि काट स्वय शांति के इस स्वप्न को ऐसा नही मानते थे जिसे पूरा नही किया जा सकता। इसके विपरीत, वह स्थायी शांति को आवश्यक समझते थे और इससे भी अधिक उसको ऐतिहासिक विकास का एक अपरिहार्य परिणाम मानते थे। उनका तर्क था कि लोगों के बीच के सबधों के सारतत्व मे ही निहित तात्विक अंतर्विरोधो का फायदा उठाकर प्रकृति उन्हे उच्चतम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर आगे बढ़ाती है ताकि कालावधि मे मानव जाति कानून के तत्वाधान मे एकजुट हो जाए।

प्रकृति ने लोगों को पृथ्वी पर आबाद किया है। वह ऐसे हालात भी पैदा करती है ताकि पारस्परिक सबद्ध भिन्न इकाइयाँ उस जीवन की अच्छी बातो का विनिमय करें, जो जीवन लोगो को राज्य के रूप मे एकताबद्ध करता है। जो पहले शत्रुता और झगडे में अस्तित्वमान थे, उन्हे राज्यो के लोगों को सहमेल के रूप मे रहने के लिए प्रकृति के द्वारा प्रेरित किया जाएगा। अपनी एक अन्य रचना मे काट ने लिखा—"चाहे यह विचार कितना ही स्वप्निल क्यो न लगे और चाहे अब्बे द सेंत पियरे और रूसो की कितनी ही हँसी क्यो न उड़ी हो (शायद इसलिए कि उनकी आस्था वे इसके तुरत क्रियान्वयन मे थी।) फिर भी, यही वह अनिवार्य समाधान है जो लोगों को पारस्परिक विध्वसात्मक प्रयत्नो की स्थिति में डुबकी लगाने से बचा सकता है।"[2]

चिरंतन शांति पर अपनी शोध रचना मे काट ने उन सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया जिनके बारे मे उन्हें विश्वास था कि वे इस उद्देश्य की प्राप्ति मे हमे आगे बढ़ाएँगे। उनमे ये हैं—(1) उस सधि को वैध नही समझा जाएगा जिसमे भावी युद्ध के लिए मौन या गुप्त सामग्री निहित है; (2) कोई भी स्वतंत्र राज्य पर चाहे वह छोटा हो या बड़ा—विरासत, विनिमय—क्रय या दान के आधार पर अन्य किसी राज्य का आधिपत्य कायम नही हो सकता (3) मौजूदा सेनाएँ (लगातार मौलों में व्याप्त) समयानुसार क्रमशः पूर्णतया समाप्त कर दी जाएँगी; (4) राष्ट्रीय ऋणों को राज्यो के बाहरी विभाजन के आधार पर अनुबधित नही किया जाएगा;

1. इम्मानुअल काट, 'स्थायी शांति' सं: लेविस, व्हाइट बेक, न्यू यॉर्क, 1957, पृ॰ 3
2 काट्स गेसाम्मेल्ट श्रिफ्टन, खड VIII बर्लिन, 1912, पृ॰ 24

(5) कोई भी राज्य ताकत के जोर पर दूसरे राज्य के विधान या उसकी सरकार में हस्तक्षेप नहीं करेगा (6) कोई भी राज्य युद्ध के दौरान शत्रुता के कारण कोई ऐसे अपराध नहीं करेगा जो आगे की शांति में पारस्परिक विश्वास को असंभव बना दे जैसे हत्यारों की नियुक्ति, विषैले पदार्थों का उपयोग, संधि का उल्लंघन और विरोधी राज्य में देशद्रोह के लिए भड़काना।[1]

ये सब सिद्धांत जो प्रस्तावों के विचारों को सूत्रबद्ध करते हैं, और बहुत-सी बातों में उन सीमाओं से परे भी जाते हैं, परस्पर अन्तर्संबंधित हैं—यदि उनको इस रूप में समझा जाए कि वे उस समय सूचित किए गए थे जबकि संयुक्त राज्य अमरीका ने स्वाधीनता हासिल की ही थी और फ्रांसीसी गणतंत्र प्रतिक्रियावाद के खिलाफ क्रांतिकारी युद्धों में व्यस्त था।

यह अन्तर्संबंधित प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से अंतिम तीन बिन्दुओं में स्पष्टतया अभिव्यक्त हुई है जिनमें कांट ने स्थायी शांति को सुरक्षित करने के लिए शर्तें कायम की हैं। उनकी राय में शांति के लिए मुख्य सामाजिक-राजनैतिक पूर्वशर्त स्वतंत्रता एवं कानून पर आधारित सरकार का गणतंत्रीय रूप है, जिसके अन्तर्गत नागरिक स्वयं युद्ध और शांति के प्रश्नों को तय कर सकें। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अंतर्गत यह राज्यों के ऐच्छिक सहमेल—जहाँ महासंघ के चौखटे के भीतर प्रत्येक राज्य राष्ट्रीय सप्रभुता के अधिकार का उपभोग कर सके—पर आश्रित होगी। आचरण और नीति संबंधी शर्त यह होगी कि राज्यों के बीच ऐसे संबंधों का निर्माण किया जाये जिनके अन्तर्गत कोई भी राज्य अन्य राज्यों की सीमाओं को हथिया नहीं सके।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कांट ने एक आदर्श गणतंत्र के लोकतांत्रिक कानूनों का अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र तक विस्तार करने के प्रयास किए। उनके अनुसार जनगणों की एक विशाल मैत्री—जिसमें हर राज्य को उसकी सुरक्षा और उसके कानून के प्रति सम्मान की गारंटी होगी—कानून के सिद्धान्तों पर आधारित आन्तरिक नागरिक व्यवस्था की अंतर्राष्ट्रीय समतुल्य होगी।

जनगणों के सहमेल का अर्थ 'जनगणों के राज्य' की स्थापना नहीं थी, अर्थात् सहमेल का अर्थ किसी एक राज्य पर दूसरे राज्य का किसी छिपे रूप में आधिपत्य होना नहीं था। वास्तविकता में यह ऐच्छिक सहमेल का वह रूप था जो स्वतंत्रता और शांति की स्थिरता के लिए निर्मित किया जाना था। कांट ने इसे जिस रूप में देखा, स्पष्ट है कि, उसके पीछे महासंघ बनाने का इरादा था; उनकी समझ यह थी कि यह सहमेल "क्रमशः तमाम राज्यों तक फैल जाएगा और इस प्रकार स्थायी शांति की ओर ले जाएगा," यह एक वस्तुगत यथार्थ हो जाएगा। "क्योंकि यदि भाग्य निर्दिष्ट करता है कि एक शक्तिशाली और प्रबुद्ध जनगण अपने आप को एक

1. देखिए—इम्मानुअल कांट, 'चिरस्थायी शांति', पृ॰3-7

गणतंत्र में विकसित कर सकता है, तो वह अपने स्वभाव के अनुरूप स्थायी शांति की ओर भी अपने आप को प्रवृत्त कर सकता है—यह दूसरे राज्यों के साथ महासंघ का आधार निर्मित करता है ताकि वे इसमें संबद्ध रह सकें और राष्ट्रों के कानून की धारणा के अधीन स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकें। यह महासंघ ऐसे अधिक-से-अधिक संघों के द्वारा क्रमशः व्यापक होता जाएगा।"[1]

कांट ने स्थायी शांति को एक मधुर स्वप्न या दार्शनिकों की एक हवाई आशा के रूप में ग्रहण नहीं किया। मानवता इसे स्वैच्छिक महासंघ के रूप में ही प्राप्त करती है जहाँ कि अमन, कानून और न्याय ही सर्वोच्च शासक होंगे। कांट ने उन मूलभूत सिद्धांतों को परिभाषित किया जो कि ऐसे समुदाय की नींव का निर्माण करेंगे। अब केवल यह प्रश्न शेष रहता है कि इस उद्देश्य को व्यवहार में कैसे प्राप्त किया जाए और क्या यह सचमुच प्राप्य भी है। कांट का जवाब है—"स्थायी शांति की गारंटी महान् कलाकार प्रकृति से किसी भी रूप में कम नहीं है। अपनी यांत्रिक प्रक्रिया में प्रकृति को हम देखते हैं कि उसका लक्ष्य मनुष्यों के बीच में तारतम्य पैदा करना है—उनकी इच्छा के विरुद्ध और वास्तव में उनके बीच मतभेदों के होते हुए भी उनमें तारतम्य लाना है।"[2] और कांट एकदम निश्चित हैं कि "प्रकृति दृढ़तापूर्वक यह चाहती है कि अततः सत्य की विजय हो। जिस काम की हम उपेक्षा करते हैं वह अपने आप ही होता है।"[3]

तो यह है कांट का जवाब। यह आसानी से देखा जा सकता है कि कोनिग्स्बर्ग का संत डिसकैंप्स से दूर नहीं गया है। वस्तुतः हकीकत इससे उल्टी है। डिसकैंप्स ने कम-से-कम शक्तियों से अपील करने की राय दी थी कि न्यायसंगत बनो और उन्हें न्याय के सामने झुकाओ, जबकि कांट की राय है कि हर बात प्रकृति पर छोड़ दी जानी चाहिए, उसके अनुसार प्रकृति ही इस प्रश्न का सबसे बढ़िया समाधान खोज निकालेगी।

बूर्ज्वा चिंतन की बंद गलियाँ

हमारे खयाल में कांट की 'चिरंतन शांति' अपने युग के दार्शनिक विचार को अंतिम विचारणीय देन थी जो अंतर्राष्ट्रीय कानून और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र उदीयमान बूर्ज्वा वर्ग के युग का प्रतिनिधित्व करती थी। यह कहा जा सकता कि उन्होंने न्याय और विवेक (इन पारिभाषिक शब्दों के बूर्ज्वा विश्लेषण के रूप में) के सिद्धांतों पर आधारित संबंधों की लंबे समय की खोज को एक निष्कर्ष दिया और, साथ ही उन्हें चुकता भी कर दिया। कांट के बाद अभिजात्य चिंतन ने

1. इम्मानुअल कांट, 'स्थायी शांति', पृ० 18-19
2. वही, पृ० 24
3. वही, पृ० 31

आधारतः कोई नई बात नहीं पैदा की, और जो कुछ उसने पैदा किया उससे मानवता को स्थायी शांति के अधिक निकट नहीं लाया जा सका। एंगेल्स ने नोट किया—"विवेक पर आधारित राज्य पूरी तरह ढह गया। प्रतिश्रुत शाश्वत शांति विजय के अनंत युद्ध में परिवर्तित हो गई।"[1]

पूंजीवादी समाज का इजारेदारी अवस्था में प्रवेश की विशिष्टता व्यापक प्रतिक्रियावाद और विश्व युद्धों के ऐसे खूनी अतिरेक रहे हैं इतिहास में जिनकी मिसाल नहीं मिलती। तब से सैन्यवाद एक ऐसा स्थायी कारक बन गया है जो पूंजीवादी देशों के सभी क्षेत्रों में फैल गया है। फ्रांस प्रशा युद्ध के बाद एंगेल्स ने लिखा—"सैन्यवाद का आधिपत्य है और वह यूरोप को निगल रहा है।" उससे पहले उन्होंने लिखा था—"सेना राज्य का मुख्य उद्देश्य हो गया है और अपने आप में एक अंतिम लक्ष्य भी, लोगों के समुदाय केवल सैनिकों की भर्ती देने और उनको खिलाने के लिए ही रह गए हैं।"[2] वस्तुतः नई जीतों की तैयारी के लिए।

सैन्यवाद की बढ़ोतरी के साथ युद्ध की मात्रा में भी बढ़ोतरी हुई। यह अनुमान लगाया जा चुका है कि 17वीं शताब्दी में यूरोप में हुए युद्धों में 30 लाख लोगों ने अपनी जानें गँवाईं; 18 वीं शताब्दी में 50 लाख से अधिक जानें गईं; 19वीं सदी में लगभग 60 लाख जानें गईं और 20वीं सदी में प्रथम विश्वयुद्ध में एक करोड़ तथा द्वितीय विश्व युद्ध में पाँच करोड़ से अधिक जानें गईं। सैन्यवाद के महोत्सव की अनवरत बाढ़ और आक्रमण बूर्ज्वा चिंतन की सामान्य प्रवृत्ति हो गई जो इन परिस्थितियों के अधीन समस्या के किसी सकारात्मक समाधान को खोजने में नितांत असमर्थ साबित हुआ या उसने वास्तव में युद्ध का गुणगान करना चालू कर दिया।

कांट के बाद सबसे अधिक प्रसिद्ध दार्शनिक जिन्होंने इस विषय-वस्तु पर चिंतन किया वह थे, जोहन गोटफ्राइड वोन हर्डर और जोहन गोटलीब फ़िख्ते। कांट के साथ तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हर्डर ने रूसो की तरह एक क़दम आगे बढ़ाया। वह जनसमुदाय की रचनात्मक भूमिका पर आस्था रखते थे। फ़िख्ते ने अपने तईं जनगण के महासंघ बनाने के कांट के विचार का विकास किया। उनका विश्वास था कि ज्योंही यह महासंघ सारी दुनिया में फैल जाएगा—"चिरंतन शांति का आगमन हो जाएगा तथा मात्र वह ही राज्यों के बीच के वैध साहचर्य को संभव बनायेगी।"[3] किंतु, क्योंकि उन्होंने कांट के कुछ विचारों को मात्र विकसित और ज़ोर-शोर से प्रसारित किया, हर्डर और फ़िख्ते दोनों ने ही इस समस्या के

1 फ्रेडरिक एंगेल्स, ड्यूहरिंग मतखंडन, पृ० 303

2 वही पृ० 204

3. जोहन गोटलीब फ़िख्ते, "डर्ड औफसात्ज इन डीसम बाइन स्ट्रीटर डेर इमेनुअल कांट मेनशे-कान। डाय सिस्टम डेर सिटेंलेहर (1798)" पृ० 386

समाधान के रूप में कोई नई बात पैदा नहीं की, और जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह यह कि उनके विचारों के आह्वान का अपेक्षाकृत उससे भी बहुत कम प्रभाव पड़ा जितना कि उनके प्रसिद्ध पूर्ववर्ती के अनेक विचारों का पड़ा था।

जहाँ तक 'चिरतन शांति' की अन्य प्रायोजनाओं का संबंध है—मुख्यतया उदार शांतिवादी प्रकृति की—जो उस समय और बाद में फिर समूची उन्नीसवीं सदी में दिखाई दीं, वे प्रायः बहुत अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध नहीं हुईं। दर्शन की विभिन्न शाखाओं की संकीर्ण शास्त्रीय सीमाओं में बँधी हुई होने के कारण वे कोई व्यापक सामाजिक हलचल पैदा नहीं कर पायीं। यही नहीं, सैन्यवाद एवं आक्रमण के खिलाफ बुर्ज्वा उदारवादियों के सकोची विरोध वस्तुतः अनेक छद्म-वैज्ञानिक सिद्धांतों—जो जाहिराना तौर पर सैन्यवाद और हमले को न्यायसंगत बताते थे—ने दबा दिया।

बुर्ज्वा चिंतन का यह कायापलट इस रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है कि यह अब शासक वर्ग के नये सामाजिक कानून के अनुरूप बन गया था। ज्यों ही पूँजीवाद ने साम्राज्यवाद की अवस्था में प्रवेश किया वैसे ही बुर्ज्वा वर्ग की शांति में रुचि घटने लगी, इसने अपने सारे प्रयत्नों को उपभोक्ता बाजारों तथा पूँजी विनियोजन के क्षेत्रों को विभाजित और पुनर्विभाजित करने में लगा दिया। इसकी व्यावहारिक सक्रियता इस प्रकार चालित होने लगी ताकि वह कच्चे माल के स्रोतों पर विचार करके जहाँ भी संभव हो वहाँ अधिक-से-अधिक जमीन हथिया सके। उसे इस बात का डर भी था कि कहीं ऐसा न हो कि मुक्त भूमि अथवा विभाजित भूमि के पुनर्विभाजन के भयंकर संघर्ष में वह पीछे रह जाय।[1] इसके मूल मंत्र का उद्घोष युद्ध की वकालत करने वाले जनरलों ने किया न कि विवेक एवं न्याय के आधार पर विश्व का पुनर्गठन करने का आह्वान करने वाले दार्शनिकों ने।

हेल्मथ वोन मोल्ट्के, जो जर्मन सैन्यवाद के स्तंभों में से एक था तथा कैसर विल्हैल्म और 'लौह चासलर' बिस्मार्क का प्रिय था, ने युद्ध की पूर्व संध्या पर ज़ोर दिया कि समस्त विभाजित जमीनों को पुनर्विभाजित किया जाए। उनके अनुसार चिरंतन शांति मात्र एक स्वप्न था, और वह भी गुलाबी नहीं। उनकी राय में युद्ध ईश्वर के द्वारा स्थापित विश्व व्यवस्था का एक तत्व है जिसमें मनुष्यों के सर्वश्रेष्ठ गुण अपने आप प्रकट हो जाते हैं, उनका आरोप था कि बिना युद्ध के विश्व का अधःपतन हो गया होता तथा वह भौतिकवाद के दलदल में लुप्त हो गया होता।

---

1 वी० आई० लेनिन, "साम्राज्यवाद पूँजीवाद की सर्वोच्च अवस्था" संकलित रचनाएँ खंड 22, पृ० 262।

उन वर्षों में बूर्ज्वा सामाजिक चिंतन अनेक भिन्न-भिन्न धारणाओं में बिखर गया, इनमें से प्रत्येक अलग रूप में युद्ध को अपरिहार्य सिद्ध करने की कोशिश करने लगा। इस दृष्टि से कुछ बूर्ज्वा विद्वानों ने सामाजिक विकास के सामाजिक नियमों के स्थान पर कुत्सित सामाजिक डार्विनवाद ('अस्तित्व के लिए संघर्ष' 'सबके खिलाफ सबका युद्ध') अथवा नव माल्थसवाद के नाम पर ('युद्ध अतिरिक्त जनसंख्या का परिणाम है') जैवीय नियमों को चलाने की कोशिशें कीं। अन्य कुछ विद्वानों ने युद्ध के कारणों को उपचेतनीय सहजातवृत्तियों में ढूँढा जिन्हें उनके अनुसार स्वयं *प्रकृति ने मूलतः मानवीय मानसिकता के रूप में निर्मित किया है।* तीसरे प्रकार के लोगों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि "युद्ध की घटनाक्रियाओं" की अज्ञेयता भी एक सामाजिक घटनाक्रिया तथा इसे मानव जाति पर लटकते हुए एक रहस्यमय प्रारब्ध की संज्ञा दी।

उन्नीसवीं सदी के पूँजीवादी विचारों के व्यापक वर्णक्रम में विश्व के भविष्य के विषय में निराशावादी भविष्यवाणियों का स्पष्टतया वर्चस्व था। इसमें कुछ वस्तुगत तर्क भी था। सभ्यता के विनाश के काले चित्र, चाहे आंतरिक बुराइयों की *वजह से हों अथवा उन अनिवार्य युद्धों के परिणामस्वरूप हों,* दार्शनिकों की रचनाओं में या उपन्यासों में पृष्ठ दर पृष्ठ पर खिंचे मिलते हैं, बूर्ज्वा चिंतन के गंभीर संकट को ही प्रतिबिंबित करते हैं और उस गतिरोध को दर्शाते हैं जिसमें इसने अपने आपको फँसा दिया था। इस परिस्थिति ने इस तथ्य को भी प्रतिबिंबित कर दिया कि मानवता का सामान्य पतन और उसका आत्मविनाश ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य हो सकता था, और रहेगा, यदि दुनिया केवल पूँजीवाद के *नियमों* के अनुसार ही जीवित रहती रही, और यदि दुनिया के समाजवादी रूपांतरण के अपने कार्यक्रम को लेकर मज़दूर वर्ग इतिहास के रंगमंच पर प्रकट नहीं हुआ।

कल्पनालोक से एक वैज्ञानिक कार्यक्रम और राजनैतिक आचरण तक

मानवता का समस्त पूर्वानुभव अकाट्यता से सिद्ध करता है कि सार्वभौमिक शांति के विचार तब तक जड़ नहीं पकड़ सकते जब तक समाज शोषण पर आधारित है। इस आकर्षक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समस्त विविध प्रायोजनाओं—जिन्होंने बहुत सी सदियों तक दार्शनिकों की कल्पना को उत्तेजित किया और राजनीतिज्ञों के दिमागों को घेरे रखा—में तीन सामान्य लक्षण थे। किसी-न-किसी रूप में वे सब वर्गीय समाज के शासकीय उच्च स्तर के हितों को ही प्रतिबिंबित करते थे, जिसके परिणामस्वरूप वे सब संकीर्ण और अस्थिर थे और न तो वे जनसमुदाय तथा नीचे के लोकतांत्रिक तबके को अपील करने का साहस ही कर सकते थे और न उन्होंने ऐसा किया ही, और अंतिम निष्कर्ष यह निकला कि उन्होंने अपने आपको दिवालिया साबित कर दिया।

अतः इससे क्या नतीजा निकाला जाय ? क्या इससे उस पुराने निराशावादी दृष्टिकोण की पुष्टि होती है कि इतिहास केवल एक ही बात सिखाता है अर्थात् यह कि इसने कभी किसी को कुछ भी नहीं सिखाया ? या इसके विपरीत, यह कि सार्वभौम शांति का विचार केवल तभी सच्चाई में बदला जा सकता है जबकि सामाजिक शक्तियों के द्वारा निर्धारित निश्चित ऐतिहासिक परिस्थितियाँ निर्मित कर दी गई हों ? अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि पिछली पीढ़ियों के विचारक शांति का रास्ता ढूंढने में असफल रहे और इस विषय पर कई दफा उन्होंने एकदम मासूमी भरे विचार प्रकट किए। फिर भी, जो आश्चर्यजनक है वह यह कि असीम युद्धों में खून में लथपथ लोग निराश नहीं हुए, निरुत्साहित नहीं हुए और शांति की निर्णायक विजय में उन्होंने अपना विश्वास कायम रखा।

कम्युनिस्ट इतिहास को जीवन का एक महान् शिक्षक मानते हैं बशर्ते उसके अनुभव को सही रूप में समझा जाय और लागू किया जाय। युद्ध और शांति की समस्या के संदर्भ में भी यही कहा जा सकता है। किसी भी विगत् युग ने इस समस्या का आमूल समाधान प्रस्तुत नहीं किया है क्योंकि इस विषय में उनका दृष्टिकोण संकीर्ण था तथा उसमें पूर्वापेक्षाओं का व ऐसी सामाजिक शक्तियों का अभाव था जो शांति के कार्यक्रम को वास्तव में कार्यरूप देने में समर्थ हों। ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार का समाधान समकालीन युग में संभव बन चुका है जबकि अब पूँजीवाद समाज की अगुवाई में नहीं है, बल्कि मजदूर वर्ग वह समाजवादी हिरावल दस्ता है जिसका अंतर्राष्ट्रीय जीवन में अधिक वर्चस्व है। इन स्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की नई प्रणाली की स्थापना के लिए पूर्वापेक्षाएँ बढ़ जाती हैं। तथा वैज्ञानिक कार्यक्रम—जो स्थायी लोकतांत्रिक शांति की ओर उन्मुख है—का वास्तविक प्रारूप तैयार कर लिया गया है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने युद्ध और शांति की समस्या के प्रस्तुतीकरण में मौलिक रूप से नये तत्व पैदा किए हैं। इस समस्या का विश्लेषण एक या दूसरे वर्ग के नीति संबंधी लक्ष्यों के प्रसंग में किया गया और इस प्रकार पहली बार एक सचमुच वैज्ञानिक आधार प्राप्त कर लिया गया है। इस विषय में लेनिन के द्वारा एक विशिष्ट भूमिका अदा की गई, जिन्होंने सार्वभौम शांति की प्राप्ति को समाजवादी क्रांति के कामों के साथ जोड़ा।

सैन्य सिद्धांतकार कार्ल वॉन क्लॉजविट्ज के इस दृष्टिकोण "युद्ध अपने स्वयं के मुख्य लक्षणों में एक नीति है जिसने कलम को तलवार में बदल दिया है"[1] से सहमति व्यक्त करते हुए लेनिन ने "सरकारों तथा वर्गों की नीतियों से कटकर युद्ध को सड़क के अबोध व्यक्ति की युद्ध संबंधी अवधारणा का डटकर विरोध किया

1. वोम क्रीग, हिंटरलैसन्स वर्क डैस जनरल्स कार्ल वॉन क्लॉजविट्ज, एलॉर्टर वर्ड बन्ड्, बोन बेर्के, ड्रेस्डेन, 1834, पृ० 572

जिसके तहत युद्ध को शांति पर एक सामान्य हमले के रूप में देखने के प्रयास किए जाते हैं तथा इसके बाद उस भंग शांति को पुनर्स्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं। इस संदर्भ में टिप्पणी करते हुए लेनिन ने केवल यह कहा : "वे लड़े, और फिर उनमें मेल हो गया।"

यह पूर्णतया अज्ञान से भरा हुआ दृष्टिकोण है, ऐसा जिसे अनेक वर्षों पहले छोड़ दिया गया था, और युद्धों के किसी ऐतिहासिक युग के किसी भी कमोबेश सावधानीपूर्ण विश्लेषण के जो तिरस्कार योग्य है।

और तब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला—"युद्ध अन्य जरियों से अपनाई गई नीति का सिलसिला है। सभी युद्ध उन राजनैतिक व्यवस्थाओं से अभिन्न होते हैं जो उनको पैदा करती हैं। यह नीति जिसे किसी राज्य, राज्य के किसी सबधित वर्ग विशेष के द्वारा युद्ध से पहले से अपनाया जाता रहा है उसी को अनिवार्यतः युद्ध के दौरान भी जारी रखा जाएगा, कार्यवाही का रूप मात्र अकेला बदलता है।"[1]

समस्या के इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण ने युद्ध को एक 'अज्ञेय घटनाक्रिया' की रहस्यमय महिमा से वंचित कर दिया और इसे मानव जाति के 'युगों पुराने अभिशाप' की संज्ञा से मुक्त कर दिया। अन्य सामाजिक घटनाक्रिया की तरह यह इतिहास की अन्य घटनाक्रियाओं की कतार में रख दिया गया जो 'सार्वभौम शांति' एक भावना मात्र थी उसे मजदूर वर्ग के आंदोलन के व्यावहारिक काम के स्तर तक ऊपर उठा दिया गया। अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा और सामाजिक विकास की समस्याएँ उनके आंगिक अंत.संबंधों के परिप्रेक्ष्य में परखी गईं। मार्क्सवादी-लेनिनवादियों ने शांति मात्र की अवधारणा का एक नितांत नया विश्लेषण प्रस्तुत किया, उन्होंने इसे किसी नीति के परिणाम और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के रूप में देखा, जो एक राष्ट्र द्वारा दूसरे पर दमन करने को बिना शर्त अस्वीकार करते हों। इस सिद्धांत का तात्पर्य यह है कि सारे जनगणों के हितों का सम्मान किया जाय और उनके उस पवित्र अधिकार को माना जाय जिसको प्राप्त कर वे आज़ादी से अपने सामाजिक-राजनैतिक संघटन की अपनी व्यवस्था का चुनाव कर सकें।

यह मौलिक रूप से नया दृष्टिकोण पुरानी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संघटन संबंधी पूर्ववर्ती धारणाओं के लिए चुनौती था। सदियों और सहस्राब्दियों के दौरान जबकि सत्ता पर शोषकों का कब्जा था, जनसमुदायों के हित निरंतर कुचले जाते रहे। और इतिहास के पास अंतर्राष्ट्रीय मसलों को हल करने के लिए ताकत के अलावा अन्य कोई साधन नहीं था। राजनैतिक नक्शा बार-बार खींचा जाता, मिटाया जाता और दुबारा खींचा जाता रहा—उन शोषक सत्ताधारियों की इच्छा के अनुसार जो अपने पक्षधरों की शक्ति के जोर से अन्य सीमाओं पर चढ़ बैठते थे, या प्रभाव

1 वी० आई० लेनिन, "युद्ध और क्रांति", संकलित रचनाएं, खंड 24, पृ० 339-400

के नए क्षेत्रों पर दावा करते थे, या अन्य जनगण या राज्यों की कीमत पर अपनी अन्य सुविधाएँ बटोरते थे।

अंतर्राष्ट्रीय संतुलन की एकमात्र गारंटी ताकत के इस्तेमाल में समायी हुई थी, जो दरअसल साधारणतया हिंसा और आतंक का संतुलन मात्र था। इस प्रकार की स्थिति के पीछे वे अनवरत युद्ध थे जिनकी वजह से अमुरक्षा की नींव पर टिका कोई भी राजनैतिक संयुक्त मोर्चा देर-सवेर अपनी अस्थिरता जाहिर कर देता और इसे संशोधित करने का मौका प्रस्तुत कर देता। साथ ही, जनगण के विशाल हितों और अधिकारों के हड़पे जाने के कृत्यों ने और नए अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों और सशस्त्र लड़ाइयों को उभारा।

यद्यपि कुछ राज्यों द्वारा दूसरे राज्यों को गुलाम बनाने के लिए अपनाए गए साधन तथा उनके मुक्का-कानून के सूत्र सदियों तक कई बार बदलते रहे, फिर भी शोषक समाज में पैदा हुए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का सार वही रहा, क्योंकि वे निश्चित रूप से ताकत के ज़ोर वाली नीति पर टिके हुए थे। और कूटनीति में भी अपने राजनैनिक उद्देश्यों के अनुरूप साधनों और तरीकों का अनुसरण किया जाता था। मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा—"अब तक समस्त विद्यमान शासकों और उनके कूटनीतिज्ञों ने अपने कौशल और प्रयासों का प्रयोग एक राष्ट्र को दूसरे के विरुद्ध करने में ही लगाया है तथा एक राष्ट्र का उपयोग दूसरे को अपने अधीन करने के लिए किया जाता रहा है, इस प्रकार तानाशाही शासन को ही कायम किया जाता है।"[1]

हर युग अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की अपनी व्यवस्था पैदा करता है। समकालीन अवधि में, जबकि मजदूर वर्ग और उसके मित्र सामाजिक विकास की प्रभावकारी शक्ति बन रहे हैं, अंतर्राष्ट्रीय मामलों में लोकतांत्रिक सिद्धांत पहले से कहीं अधिक बड़ी भूमिका अदा कर रहे हैं। लेनिन ने लिखा—"उस पुरानी दुनिया के मुकाबले, जो राष्ट्रीय दमन, राष्ट्रीय कलह और राष्ट्रीय पृथकता की दुनिया है—मजदूर एक नए संसार का प्रतिरूप प्रस्तुत कर रहे हैं, एक ऐसे संसार का जो सारे राष्ट्रों के श्रमिक जनसमूहों की एकता का संसार होगा, एक ऐसे संसार का जिसमें विशेषाधिकार नहीं होंगे, आदमी के द्वारा आदमी का दमन नहीं होगा।"[2] यह आधारभूत सिद्धांत-सूत्र मजदूर वर्ग की विदेश नीति के सार तत्त्व को ही अभिव्यक्त करता है और साफतौर पर स्थायी, लोकतांत्रिक शांति की सचमुच की कारगर गारंटियों को

1 कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स, "मजदूरों की विदेश नीति" संकलित रचनाएँ, खंड 7, पृ० 165

2. वी० आई० लेनिन, "मजदूर वर्ग और राष्ट्रीय प्रश्न" संकलित रचनाएँ, खंड 19, पृ० 92

परिभाषित करता है।

साफ़तौर पर दिखाई देता है कि शांति सामाजिक प्रगति से अलग नहीं की जा सकती। जैसे ही सामाजिक रूपांतरणों की आवश्यकता परिपक्व हो जाती है यह उनके लिए प्रवेश द्वार खोल देती है। किसी भी देश के विकास के ठोस रास्ते का एकमात्र निर्णायक जो उसे परिभाषित कर सकता है, और करना चाहिए, वह है वहां का जनगण जिसके पास सर्वसत्तात्मक अधिकार है कि वह स्वयं अपने भविष्य का निर्णय करे और इसमें किसी बाहर के हस्तक्षेप को घुसपैठ न करने दे। न तो क्रांति का निर्यात, न प्रतिक्रांति का निर्यात, और न ही राष्ट्रों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप—यह वह नींव है जिस पर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की एक स्थायी व्यवस्था का भवन खड़ा किया जा सकता है। मात्र यह प्रवृत्ति मानवता को शांति, सुरक्षा और सहयोग की परिस्थितियों के अंतर्गत आगे की सामाजिक प्रगति की असली संभावना एवं क्षमता प्रदान कर सकती है।

शांति, लोकतंत्र, सामाजिक प्रगति। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की समग्र अवधारणा को ध्वस्त किए बिना इस त्रयी में से एक भी तत्व को बाहर नहीं किया जा सकता। साफ़तौर पर यही वह धारणा है जिसे कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद की अंतर्राष्ट्रीय दादागीरी, लूट और हिंसा की नीति का प्रतिरोध करते हुए जवाबी नीति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह नीति समकालीन ऐतिहासिक युग की आवश्यकताओं के समाधान के रूप में उदित हुई है और मजदूर वर्ग और समाजवादी हिरावल दस्ते की बिना पर घोषित की गई है। यह धारणा ऐतिहासिक प्रक्रिया के आधारभूत क़ानूनों का पूरा विश्लेषण करती है और उन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कामों का—जो लोकतंत्र और स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत मुख्य प्रेरक शक्तियों से संबंधित हैं—अपने में समावेश करती है।

इसकी ठोस अभिव्यक्ति राज्यों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति में होती है चाहे उन राज्यों की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओं में भिन्नता ही क्यों न हो। जैसा कि विश्व के दो व्यवस्थाओं में विभाजित होने से पहले ही लेनिन ने अपनी प्रसिद्ध रचनाओं—'यूरोप के संयुक्त राज्यों के लिए नारे पर (1915)' और 'सर्वहारा क्रांति सैनिक कार्यक्रम (1916)' में सैद्धांतिक आधार पर इसे सूत्रबद्ध कर दिया था।

साम्राज्यवादी युग की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करते हुए लेनिन इस नतीजे पर पहुँचे कि आर्थिक एवं राजनैतिक विकास में विषमता होने के कारण समाजवाद कुछ देशों अथवा किसी एक देश में ही पहले-पहल विजयी हो सकता है। फलस्वरूप समाजवाद और पूँजीवाद के समानांतर अस्तित्व का इतिहास की कमोबेश लंबी अवधि तक क़ायम रहना संभव और स्वाभाविक दोनों ही है।

जहाँ तक इस अवधि में भिन्न व्यवस्थाओं वाले राज्यों के आपसी संबंधों का

सवाल है, 'शांति संबंधी आज्ञप्ति'—जोकि सोवियत राज्य की विदेशनीति से संबंधित पहला दस्तावेज़ है—मे मजदूर वर्ग की स्थिति को साफतौर पर प्रतिपादित कर दिया गया था। इसे लेनिन ने निर्धारित किया था और समाजवादी क्रांति की विजय के बाद दूसरे दिन अर्थात् 8 नवंबर 1917 को अखिल-रूसी सोवियत कांग्रेस में इसे स्वीकार कर लिया गया था। सोवियत सरकार ने सभी युद्धरत राज्यो और राष्ट्रो का आह्वान किया कि वे बिना किसी लेनदेन, और समामेलन तथा अर्थदान के न्यायसंगत जनतांत्रिक शांति की स्थापना के संदर्भ मे वार्त्तालाप चालू करें। इसमें सभी राष्ट्रों का आह्वान किया गया था और विशेष तौर पर ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी के मजदूर वर्ग का और सभी सरकारों का। यह आज्ञप्ति सभी राष्ट्रों की समानता को मान्यता देने पर आधारित थी चाहे वे बड़े हों या छोटे और इसमें किसी एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र पर किसी भी प्रकार के दमन को अस्वीकार कर दिया गया था। इसने विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यो मे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नींव डाली।

अक्तूबर क्रांति द्वारा निरूपित इन सिद्धांतों ने, बिना अतिशयोक्ति के यह कहा जा सकता है कि, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात कर दिया। सोवियत राज्य अभी अस्तित्व मे आते ही लेनिन द्वारा प्रतिपादित ये सिद्धांत, निरंतर सोवियत विदेश नीति की आधारभूमि रहे है।

समाजवाद के विरोधी इस बात पर जोर देते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय तनाव और उसके फलस्वरूप युद्ध की आतंक भरी अभिव्यक्ति का एक कारण, चाहे वह मुख्य कारण न भी हो, यह तथ्य ही है कि समकालीन दुनिया दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओं में विभाजित है। यह खींच-तान किया हुआ आधारहीन तर्क है। यह या तो मार्क्सवाद की उनकी गलत समझ की वजह से है, या इस विषय में अपने अज्ञान को मार्क्सवादियों पर थोपने की उनकी इच्छा की वजह से है।

निस्संदेह, सोवियत राज्य का उदय, इसकी उपलब्धियाँ, विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना, तथा इसकी अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का समेकीकरण क्रांतिकारी प्रक्रिया को गति देता है तथा मजदूर वर्ग के लोगों की चेतना के निर्माण को प्रेरित करता है—ये सब दुनिया-भर मे वर्ग-संघर्ष को प्रेरित और तीव्रतर करते हैं। तथापि विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के सहअस्तित्व की नीति से इनका कोई वास्ता नहीं है। क्या हजारों वर्षों के मानव इतिहास को रक्तरंजित युद्धों की शृंखला वस्तुतः विचारधारात्मक संघर्षों का ही परिणाम है? ये चाहे सैद्धांतिक प्रवृत्तियों में ढके हुए हों अथवा नहीं, उनका मुख्य कारण सदा से ही शोषक वर्गों की और अधिक दौलत मंद होने की लालसा रही है।

अनेक उदाहरण यह जाहिर करते हैं कि सामाजिक व्यवस्थाओं और सिद्धांतों की भिन्नता ने राज्यों को एक-दूसरे के साथ शांतिपूर्वक सहअस्तित्व का निर्वाह

करने से नही रोका। हमारा कार्यक्रम कल्पनालोक से परे है—यह पूरी तरह राजनैतिक क्रियाकलाप से परिपुष्ट हो चुका है।

समाजवाद और अंतर्राष्ट्रीय शांति अविभाज्य हैं

विश्व-समाजवाद की सुदृढ़ता और हमारे इस ग्रह पृथ्वी पर समाजवादी दृष्टिकोण का फैलाव कम-से-कम युद्ध के आतंक को तो तेज नहीं ही करते हैं. इसके विपरीत, समाजवादी देशों की विदेश नीति के आधार का निर्माण करने में यह विश्व दृष्टिकोण अपनी शांतिपूर्ण प्रवृत्ति को निर्धारित करता है और इस प्रकार यह एक शांति का कारक बन जाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को पुख्ता करता है।

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का सिद्धांत सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राज्य की विदेश नीति की अलघनीय आधारभूमि है। हेलसिंकी सम्मेलन की अंतिम धारा में सजीव तथा व्यापक रूप से व्याख्यापित, यह सिद्धांत सोवियत गणतंत्र के नये संविधान में प्रतिष्ठापित किया गया है जिसमें कहा गया है—

"संयुक्त समाजवादी सोवियत गणतंत्र के दूसरे राज्यों के साथ संबंधों का आधार निम्नांकित सिद्धांतों का अनुपालन है—सर्वसत्तात्मक समानता; ताक़त के उपयोग अथवा उसकी धमकी का पारस्परिक परित्याग; सीमाओं की अलंघनीयता का पालन; राज्यों की सीमा संबंधी अखंडता; झगड़ों का शांतिपूर्ण निपटारा; आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप; मानवाधिकारों और मौलिक स्वाधीनताओं के प्रति आदर; जनगणों के समान अधिकारों और अपनी नियति के आत्म-निर्णय का अधिकार, राज्यों के बीच में सहयोग; और सामान्यतया स्वीकृत सिद्धांतों, अंतर्राष्ट्रीय क़ानून के नियमों, और यू एस एस आर द्वारा हस्ताक्षरित अंतर्राष्ट्रीय संधियों से उत्पन्न कर्तव्यों को सुदृढ़ आस्था के साथ पूरा करना।"[1]

यदि ये आधार सूत्र सार्वभौम मान्यता प्राप्त कर लें और सभी राज्यों के लिए निर्विवाद रूप से इनको विदेशी संबंधों का मानदंड समझ लिया जाय, तो लगभग 90 प्रतिशत तनाव के लिए उत्तरदायी कारण—जो अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को बिगाड़ते हैं—स्वतः समाप्त हो जायेंगे। समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मामलों में खड़ी होने वाली सर्वाधिक उलझन भरी राजनैतिक समस्याओं के शांतिपूर्ण निपटारे की विश्वसनीय गारंटी होगी।

जहाँ तक सोवियत संघ और दूसरे देशों का संबंध है ये सिद्धांत उनकी सामाजिक व्यवस्था से सहज रूप से पैदा होते हैं। कारण यह है कि उन्होंने उन जड़ों को ही नष्ट कर दिया जो आक्रमण को पालती हैं : उत्पादन के साधनों पर निजी पूंजीवादी स्वामित्व को तथा उन ताकतों को जो उन्हें संगठित करती है—जैसे शोषक वर्गों को जो युद्ध में अपना हित समझते हैं और अपनी दौलत के साधनों को बढ़ाने

1. संविधान (मौलिक क़ानून)—सोवियत संघ, मास्को, 1977, पृ॰ 32

के उद्देश्य से दूसरे जनगणों को गुलाम बनाने में रुचि रखते हैं। इस अकेले सिद्धांत ने समाजवादी देशों को अन्य देशों के साथ उनके संबंधों के क्षेत्र में ऐसे विशिष्ट स्थान पर ला खड़ा किया है पिछली पीढ़ियों को जिसका ज्ञान तक नहीं था।

सोवियत संघ के जनगण तथा अन्य देशों के जनगण के हितों में आपस में, एक-दूसरे से कहीं भी टकराव नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत ये मूलतः एक-दूसरे से मेल खाते हैं। समाजवादी देशों और तमाम दुनिया के बाकी देशों के श्रमिक जन-समुदायों के बीच की सुदृढ़ एकजुटता वर्गहीन समाज के निर्माण के उनके समान लक्ष्य पर तो निर्भर करती ही है, दमन एवं आक्रमण का विरोध करने वाले साम्राज्यवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे को मजबूत करने की समान इच्छा पर भी आधारित है।

सोवियत संघ और दूसरे देशों, जहाँ मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियाँ सत्ता में हैं—ने अपने लिए कभी भी, और कहीं भी किसी प्रकार की खास रियायतों की तलाश नहीं की। वे इस बात को पक्के तौर पर मानते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की वास्तविक सुदृढ़ लोकतांत्रिक प्रणाली तभी बनाई जा सकती है जबकि सभी राष्ट्रों और राज्यों के वैध हितों का, चाहे वे बड़े हों या छोटे, अमीर हों या ग़रीब, औद्योगिक हों या विकासमान—पूरी तरह खयाल रखा जाए।

अपनी विदेश नीति का निर्धारण करने और उसको लागू करने में समाजवादी देश अपने आपको पूरी तरह यथार्थ के ठोस विश्लेषण पर आधारित करते हैं न कि मनमाने लक्ष्यों को दृष्टिगत रखकर। इससे वे इस योग्य हो जाते हैं कि वे प्रत्येक अवस्था की वस्तुगत आवश्यकताओं का लेखा-जोखा ले सकें और अपने आपको तदनुकूल कदम उठाने के लिए अभिमुख कर सकें।

समाजवाद की विदेश नीति सुसंगत एवं निरंतर गतिशील है तथा वह अवसरवादी टेढ़े-मेढ़ेपन की शिकार नहीं है। भिन्न सामाजिक व्यवस्था वाले राज्यों के साथ अपने संबंधों में समाजवादी देश पर्याप्त लचीलापन काम में लेते हैं और जब आवश्यकता होती है तो आपसी हित के मामलों पर समझौता करने से इन्कार नहीं करते। किन्तु इन समझौतों में किसी भी तरह से, तीसरे देशों की कीमत पर, खींच-तान करके, किसी प्रकार का लाभ उठाने की लालसा की गंध तक नहीं आती।

इतिहास में सोवियत संघ ही ऐसा पहला राज्य था जिसने साफतौर पर अपनी विदेश नीति के लक्ष्यों की घोषणा की, वही वह पहला राज्य था जिसने न तो कोई बात अपने देशवासियों से छिपायी और न ही दूसरे देशों के लोगों से। इसके विपरीत, वह इन लक्ष्यों की अधिकाधिक जानकारी सारी दुनिया के श्रमिक जन-समुदाय को देने में हमेशा से ही अभिरुचि रखता रहा है। जितना अधिसंख्य जनसमुदाय सोवियत विदेश नीति से परिचित होगा और उसके असली उद्देश्यों को और अच्छी तरह समझेगा, उन अन्य देशों में उसके उतने ही अधिक पक्षधर हो

जाएँगे।

समाजवादी क्रांति समकालीन युग की वस्तुगत प्रक्रिया है। इसमें कम्युनिस्ट अपने इस विश्वास को गुप्त रहस्य बनाकर नहीं रखते कि आगे चलकर एक अवधि मे पूँजीवादी व्यवस्था को एक वर्गहीन समाज के लिए जगह खाली करनी पड़ेगी और स्पष्टतया इसलिए कि यह समाज के आंतरिक विकास की एक उपज है, जैसा कि लेनिन ने संकेत दिया कि कोई भी क्रांति किसी दूसरे देश में किसी आदेश या किसी समझौते से फूटकर पैदा नहीं हो सकती।[1] यह एक प्रकार के जुए की तरह होगा कि सामाजिक परिवर्तन को कृत्रिम रूप से उत्तेजित किया जाए, बाहर से क्रांति को उभारा जाए या मानो उन्हें ताकत से थामे रखा जाए। जहाँ तक विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के राज्यों के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की स्थितियों का संबंध है तो वे, जैसा कि सुज्ञात है, किसी भी देश मे सरकार के वर्गीय सार तत्व को नहीं छूती। कम्युनिस्ट कभी और किसी भी परिस्थिति में शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का फ़ायदा नहीं उठाते कि दूसरे देशो के वर्ग-संघर्ष में हस्तक्षेप किया जाए, चाहे इसीलिए कि "कोई भी शक्ति पूंजीवाद को नष्ट नहीं कर सकती थी यदि इतिहास के द्वारा इसे निचोड़ा और नष्ट नहीं कर दिया होता।"[2]

इस प्रकार दीर्घकालिक लोकतांत्रिक शांति के लिए संघर्ष के कामों को मजदूर वर्ग के आजादी के संघर्ष के कामो के साथ जोड़ते हुए, समाजवाद की विदेश नीति वर्तमान क्रांतिकारी युग के मौलिक कानूनों के चहुँमुखी मूल्यांकन और इसकी वस्तुगत आवश्यकताओं पर आधारित होती है और प्रमुख संचालक शक्तियों के हितों को प्रतिबिंबित करती है। इसका अर्थ है कि समाजवाद के जन्म, तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार मे उसकी विदेश नीति के सिद्धांतो के प्रवेश मात्र ने विश्व शांति के लक्ष्य को प्रथम बार विश्वसनीय आधार प्रदान किया है। समाजवाद हजारों वर्षों की आक्रामक और अंतर्राष्ट्रीय डकैती की नीति के मुकाबले प्रतिरूप के रूप में *लेनिन* द्वारा सार रूप मे प्रस्तावित करता है—"युद्धों का अंत, राष्ट्रों मे शांति, लूट और हिंसा की समाप्ति—यही है हमारा आदर्श।"[3]

छः दशकों के दौरान कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत राष्ट्र ने *इस महान लक्ष्य* को प्राप्त करने के लिए अधिकतम दृढ़ संकल्प के साथ काम किया है। समाजवाद की विदेश नीति के सैद्धांतिक आधार के बतौर यह धारणा जो लेनिन द्वारा अक्तूबर क्रांति से पूर्व सूत्रबद्ध की गई थी—प्रमुख तत्व थी और सोवियत राज्य की उसको

---

1. वी आई लेनिन—"मॉस्को की ट्रेड यूनियनों और फ़ैक्टरी कमेटियों की चौथी कांग्रेस" *संकलित रचनाएँ*, खंड 27, पृ० 480
2. वी. आई लेनिन, 'युद्ध और क्रांति' संकलित रचनाएँ, खंड 24, पृ० 417
3. वी आई लेनिन, 'क्रांति की समस्या' संकलित रचनाएँ, खंड 21, पृ० 293

पहली विदेश नीति के राजनैतिक उद्देश्य के रूप में उल्लिखित की गई थी। यह लेनिन की प्रतिभा की ही अभिव्यक्ति थी। व्यावहारिक योजना के तौर पर। फिर भी, यह अवधारणा लम्बे अरसे तक सर्वहारा द्वारा राज्य सत्ता पर कब्जा करने के बाद भी विकसित नहीं की जा सकी।

इसके विपरीत, सोवियत गणतन्त्र के आरम्भिक वर्षों के दौरान कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने क्रियाकलाप को इस समझ पर आधारित किया कि साम्राज्यवाद के साथ नये संघर्ष अपरिहार्य बन गये थे। "हम युद्धों के एक काल से गुजर चुके हैं, और हमें दूसरे के लिए तैयारी करनी आवश्यक हो गई है"[1] —लेनिन ने सन् 1920 में कहा था। उन दिनों दुश्मन से घिरे हुए उस नवजात समाजवादी राज्य ने युद्ध के प्रज्वलित घेरे को तोड़ने तथा थोड़ी राहत प्राप्त करने पर सबसे पहले अपना ध्यान केन्द्रित किया। और जब तक वहाँ साम्राज्यवाद के साथ सशस्त्र संघर्ष की अनिवार्यता बनी रही, उसका काम दरअसल दम लेने की अवधि को यथासंभव लम्बा करने तक सीमित रह गया था। अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के इस सामान्य मूल्यांकन के सहीपन को घटनाओं ने सही साबित कर दिया और उस विदेश नीति के सहीपन को भी जिसका कि पार्टी ने इस मूल्यांकन के आधार पर अनुसरण किया था।

अभी भी बहुत सा मार्ग तय करना बाकी था सोवियत संघ में समाजवाद की सम्पूर्ण विजय को सुरक्षित करना था, द्वितीय विश्व युद्ध में साम्राज्यवाद की आक्रामक ताकतों को पराजित करके खदेड़ना बाकी था। यह अनिवार्य था कि सबसे पहले विश्व मंच पर शक्तियों के संतुलन को आमूलतः बदलकर समाजवाद के पक्ष में लाया जाय, इससे पहले कि कम्युनिस्ट पार्टी हमारे युग के व्यावहारिक कार्य के रूप में समाज के जीवन से युद्ध को बाहर निकालकर समाप्त करने के ऐतिहासिक काम को अंजाम देने की व्यवस्था कर सके। इसके साथ ही यह भी जोड़ा जाना चाहिए कि हमारे समय में समस्या का इस प्रकार का स्पष्ट प्रस्तुतीकरण वस्तुतः समूची मानवता की सच्ची और विशाल आवश्यकता को संघटित करता है।

1. वी. आई. लेनिन, "सोवियतों की आठवीं अखिल-रूसी कांग्रेस" संकलित रचनाएं, खंड 31, पृ॰ 501।

अध्याय . 9

आज का मूल मुद्दा

"····युद्ध अथवा मानवता के अंत का प्रारंभ।"
—जॉन बर्नाल

युद्ध नई शक्ल में सामने आ रहा है

युद्ध और शान्ति की समस्या का मूल्यांकन करने के लिए यह बुनियादी तौर पर जरूरी है कि अपने समय और इस युग की दो आधारभूत प्रक्रियाओं का लेखा-जोखा किया जाय : मजदूर वर्ग के मुक्ति और जन-तान्त्रिक आन्दोलन का फैलाव तथा वैज्ञानिक तथा प्राविधिक क्रांति का तीव्र विकास। दोनों तथ्य इस समस्या के प्रस्तुतीकरण और समाधान में बहुत महत्वपूर्ण संशोधन प्रस्तुत करते हैं।

निस्संदेह, युद्ध सदा से ऐसी नीति रहा है जिसने कलम की जगह तलवार को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। जब तक पूंजीवाद कायम है इसके आक्रामक केंद्रों का राजनीतिक प्रवाह युद्ध के आतंक को अनिवार्यतः उत्पन्न करेगा।

तथापि पिछले दिनों युद्ध एक नयी शक्ल में सामने आ चुका है, और युद्ध विरोधी शक्तियाँ इस हद तक विकसित एवं मजबूत हो चुकी हैं कि आज कोई भी आक्रमणकारी अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर उनके प्रभाव की उपेक्षा नहीं कर सकता। आक्रामक द्वारा कतिपय आर्थिक अथवा राजनीतिक लाभों की आशा करना एक बात है, जबकि शत्रु को हराकर रेगिस्तान, जो रहने योग्य भी न हो—पर कब्जा कर पाने की काल्पनिक संभावना की गणना करना एकदम दूसरी बात है। जब युद्ध विरोधी शक्तियाँ कमजोर, असंगठित और असुरक्षित हों तो यह एक बात है तथा तब एकदम दूसरी जबकि वे सैद्धान्तिक एवं संगठनात्मक—दोनों आधारों पर स्वयं को सुगठित करके समाजवादी देशों के समुदाय की शक्ति पर भरोसा करके सचेत बनाते हैं। यह भी एक बात है कि जबकि विगत समय में, तमाम भयानकताओं, अत्याचारों, मरणों और कष्टों—जो अनिवार्य रूप से युद्धों के साथ उभरते हैं—के

बावजूद, उनमें से कुछ "प्रगतिशील थे अर्थात् उन्होंने हानिप्रद और प्रतिक्रियावादी संस्थाओं के नष्ट करने में मदद करते हुए मानवता के विकास को लाभ पहुँचाया।"[1] और आज यह एकदम दूसरी बात है जबकि उन समस्याओं, जो इस समय की और भविष्य की पीढ़ियों के सामने दिखाई दे रही हैं, का चरित्र इतना बदल चुका है कि कोई भी सैनिक संघर्ष उन्हें हल नहीं कर सकता। इन समस्त कारकों ने वस्तुतः युद्ध की भूमिका को ही बदल दिया है तथा समाज के जीवन में इसके स्थान को भी।

सबसे पहले हमें समस्या के वैज्ञानिक एवं प्राविधिक पहलू की जाँच कर लेनी चाहिए। विगत दशकों और खासतौर से द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से तेजी से हुए आर्थिक विकास के फलस्वरूप इस क्षेत्र में चौंकाने वाले परिवर्तन हो चुके हैं। एंगेल्स ने लिखा है—"आर्थिक पूर्वापेक्षाओं पर स्पष्टतया सेना और नौसेना से अधिक कोई भी अन्य वस्तु निर्भर नहीं करती, हथियारबंदी, संरचना, संघटन, कार्यनीति और रणनीति ये सब राज्य के उत्पादन और संचार व्यवस्था की तत्कालीन अवस्था पर निर्भर करते हैं।"[2] पूँजीवाद ने एक ओर तो उत्पादक शक्तियों को बहुत ऊँचाई तक विकसित किया है—पूर्ववर्ती सामाजिक संरचनाएँ जिसकी कल्पना तक नहीं कर सकती थीं—वहीं साथ ही सशस्त्र सेनाओं का आमूल पुनर्गठन भी अत्यंत व्यापक स्तर पर किया है।

दुनिया के नक्शे को ताकत के जरिए बदलने और उसे नये सिरे से बनाने के काम को अपने लिए निर्धारित करते हुए पूँजीवादी शक्तियों ने अपने सैन्य-संगठन में नये लक्षण पैदा किये हैं। अब सेनाएँ केवल युद्धकाल के लिए ही नहीं बढ़ायी जाती, किन्तु यह वृद्धि स्थायी और व्यापक हो गई है और नियमित सैनिकों से निर्मित होती है न कि भाड़े के सिपाहियों, भाड़े के सेनानायकों, भर्ती किये हुए लोगों से, जैसा कि पहले रिवाज था। पहले सेनाएँ सार्वत्रिक अनिवार्य सैनिक भर्ती से निर्मित होती थीं। उद्योगों और संचार साधनों का विकास उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप था। सैन्यवाद पूँजीवादी दुनिया का एकनिष्ठ साथी बन गया।

युद्धक्षेत्रों में सैनिक कार्रवाइयों का परिणाम अब नये हथियारों और नई रणनीतियों पर निर्भर करता है। एंगेल्स की राय में सन् 1870-1871 का फ्रैंको-प्रशियन युद्ध युद्धकला में मोड़ का बिन्दु था। उन्होंने लिखा—"सर्वप्रथम, जो हथियार काम में लाये गये वे इतनी पूर्णता को प्राप्त कर चुके हैं कि आगे की सारी प्रगति···आगे के सारे सुधार रणभूमि की दृष्टि से बहुत कम महत्व के रह जाते हैं। इसलिए इस दिशा में विकास का युग समाप्त हो चुका है। दूसरे, इस युद्ध ने सभी महाद्वीपीय शक्तियों को इस बात के लिए विवश कर दिया है कि कठोरता के साथ

1 वी॰ आई॰ लेनिन, संकलित रचनाएँ, खंड 21, पृष्ठ 299
2 एफ॰ एंगेल्स, ड्यूरिंग मतखंडन, पृष्ठ 200

प्रथा की समाप्त सैन्य प्रणाली अपनायी जाय और, इसके साथ ही सेना का ऐसा भार भी जो कुछ ही वर्षों में उनके विनाश का कारण बन जायगा।"[1]

वस्तुतः सन् 1914-18 के प्रथम विश्वयुद्ध ने यद्यपि युद्धरत पक्षों से सारे आर्थिक संसाधनों को अभूतपूर्व आयामों में एकत्रित करने की माँग की, तथापि उनकी समस्त सेनाएँ पंक्ति-व्यवस्थित युद्धकाल की सेनाओं से कुछ मामलों में ही भिन्न थीं तथा उनकी रणनीतियाँ व्यवहारतः अपरिवर्तित रहीं। सैन्य उपकरणों ने निस्संदेह एक कदम आगे बढ़ाया, किंतु यह परिवर्तन गुणात्मक न होकर मात्र परिमाणात्मक ही अधिक था। यद्यपि सेनाओं के युद्धाभ्यास और बारूद शक्ति में कई गुना वृद्धि हुई, परंतु नये किस्म के हथियारों—उदाहरण के लिए विषैली गैसों—की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं रही। टैंक और विमानन युद्ध के अंतिम दिनों में ही दिखाई दिये। युद्ध में फौजों की कार्रवाई अपेक्षाकृत तंग अग्रिम-दस्ते के स्तर पर केंद्रित रहती थी जो देश की नागरिक आबादी से साफतौर पर अलग होती थी।

समय के परिवर्तन के साथ, हथियारों का और अधिक आधुनिकीकरण हो जाने से और खासतौर से विमानन के विकास के कारण युद्ध अपने मैदानी चरित्र को न्यूनाधिक खोने लगा। वायुसेनाओं के घने जाल, पर्वतीय मार्ग, रेडियो स्टेशन और सभी प्रकार के भीतरी और बाहरी सैन्य-प्रकृति के संचार साधनों की उपलब्धि मोर्चे के आगे और पीछे की पारंपरिक अवधारणा पर आघात करती है। और जब द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ तो इसने मोर्चे से सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तक के लाखों लोगों को तत्काल अपनी खूनी भँवर में फँसाकर उनका खून चूस लिया।

सबसे पहले द्वितीय विश्वयुद्ध ने इस बात को जाहिर किया कि गत दो दशकों में हथियारों के विकास में कितनी बड़ी तरक्की हुई। सेनाओं का यांत्रिकीकरण, तोपखाने की बारूद शक्ति में वृद्धि, राकेट छोड़ने वाले तोपखाने का प्रकट होने और बैलिस्टिक और क्रूज प्रक्षेपास्त्रों के प्रथम नमूनों का दिखाई देने और वायुसेना के व्यापक उपयोग ने लाखों लोगों के लिए और भी बड़े संकट को पैदा कर दिया।

जब द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत हुआ तब तक और भी भयकर जनसंहारक हथियार दुनिया की देहलीज पर प्रकट हो चुके थे। एटम बम के नाम से ज्ञात इस हथियार का विस्फोट युद्ध के आखिरी दिनों में हिरोशिमा पर डाल कर किया गया था।

आणविक शस्त्रों तथा इनके छोड़ने के तरीकों के विकास ने युद्ध की पारंपरिक धारणा तथा उसकी प्रकृति में आमूल चूल बदलाव ला दिया। आगे-पीछे की मोर्चा-बंदी, फ़ौज और नागरिक जनसंख्या की प्रचलित धारणाएँ, रणनीतियों और

1. एफ़ एंगेल्स, पूर्वोक्त, पृष्ठ 204

कार्यनीतियों के साथ 'मैदानी युद्ध' आदि सब आणविक विस्फोटों में भस्म हो गये और अब सैनिक इतिहास के संग्रहालय में रखे जा सकते है।

प्रमुख अमरीकी समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री पॉल कॉसर ने ठीक ही कहा है, कि आणविक प्रक्षेपास्त्र रूपी नये हथियार के उदय के साथ ही सैनिक उपकरणों का विकास एक निश्चित विकट रेखा के पार चला गया है। जो कोई देश आणविक-प्रक्षेपास्त्र की चपेट में आयेगा वह पृथ्वी की सतह से साफ हो जायेगा।

न केवल ताप-नाभिकीय युद्ध के परिणाम महत्वपूर्ण हैं, किंतु सैनिक क्रिया-कलाप का सभावित रास्ता भी है। यह कई दृष्टियों से आवश्यक हैं, जिसमें स्वभावतः नीतिगत उपकरण के रूप में आधुनिक युद्ध का मूल्यांकन भी शामिल है।

पश्चिम में, ढेरों साहित्य है जिसमें आणविक युद्ध के खतरों को चित्रित किया गया है। इसके निकृष्टतम मृत्यु-परक पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। एक बार छिड़ जाने पर यह सामाजिक जीवन को तत्काल विखंडित कर देगा, जिससे सचार साधन, यातायात और उत्पादन शून्य बिन्दु तक पहुँच जाएँगे। प्राचीन कालीन किलेबंदी का स्थान राडार चौकियाँ ले लेंगी जोकि समूचे क्षेत्र को घेर लेंगी। दबे-ढके आणविक मिसाइल छोड़ने वाले उपकरण उपयोग के लिए तैयार हैं, और कोई भी राष्ट्र नहीं जानता कि कौन कब उस पर हमला करने वाला है। सभी प्रक्षेपास्त्रों और प्रति-प्रक्षेपास्त्रों से, आक्रामक और प्रत्याक्रामक दोनों रूपों में हथियारबंद है। सैकड़ों किलोमीटर तक फैली हुई आबादियों पर रासायनिक-तकनीकी युद्ध लड़े जाएँगे तथा उनकी आवाज पृथ्वी के लोगों तक नहीं पहुँच सकेगी। समय-समय पर एक आक्रमणकारी आणविक मिसाइल अपने लक्ष्य को चीरती हुई निकलेगी और तब चाहे लदन हो, पेरिस हो या न्यू यॉर्क—वह धूल और धुएँ का विशाल गुब्बार बनते हुए बाहर किलोमीटर ऊपर हवा में उड़ जाएगा। अब कोई भी युद्ध विशारद सभवत नहीं जान सकता कि मैदानों में और उससे ऊपर सीमा के आर-पार क्या हो रहा है, कौन रक्षात्मक है और कौन आक्रामक। युद्ध की अनवरत सकटमय हलचल जारी रहेगी जब तक कि अंतिम प्रयोगशाला छोटे-छोटे टुकड़ों में नहीं उड़ा दी जाएगी इत्यादि। आणविक विभीषिका इस प्रकार के डरावने के चित्र जो अत्यधिक बारीकी से खींचे गए हैं—निस्सदेह आतकपूर्ण प्रभाव पैदा करते हैं।

आणविक हथियारों के युग में वे युद्ध की सर्व-सत्यानाशी प्रकृति को रेखांकित करते हुए ये चित्रण इस विचार को भी उद्घाटित करते हैं कि समकालीन विकास के फलस्वरूप अस्त्र-शस्त्र मनुष्य के नियंत्रण से बाहर हो रहे हैं। भूतकाल में कोई भी राजनीतिज्ञ और सेनानायक युद्ध में जाकर, सभावित त्रुटिपूर्ण गणनाओं और

युगों के बावजूद इसके परिणामों का मूल्यांकन कर सकता था और सुनियोजित क्रियाकलापों के लिए मार्ग-दर्शन कर सकता था। वह हमेशा घटनाओं में हस्तक्षेप भी कर सकता था और यदि आवश्यक होता तो सैनिक कार्यवाहियों के जारी रहने को रोक सकता था। आधुनिक हथियार इस सबको एकदम कठिन या नितांत असम्भव भी बना देते हैं। किसी जिन्न को बोतल से बाहर निकाल दिया जाए तो वह स्वयं अपनी जिन्दगी जीने लगता है। और यह अकारण नहीं था कि ब्रिटेन के भौतिकी वैज्ञानिक और विचारक जॉन बर्नाल ने सही बात पर चेतावनी दी कि एटम बम का विकास "या तो युद्ध के अंत के आरंभ को, या मानवता के अंत को चिह्नित करता है।"[1]

आणविक हथियारों के विषय में इतना ही काफी है। उनका विकास कई दशकों से चल रहा है. उनकी विनाशक क्षमता लगातार तेजी से बढ़ रही है और बहुत से देशों के शस्त्रागार फिलहाल हथियारों के भयानक जखीरे बने हुए हैं। हथियारों की दौड़ को तत्काल नहीं रोका गया तो दुनिया के संभावित हालात की भविष्यवाणी कोई नहीं कर सकता।

इतना होने पर भी सैन्य-औद्योगिक समूह हठपूर्वक तथा हृदयहीनता के साथ अपनी आणविक-प्रक्षेपास्त्र क्षमता की वृद्धि को जारी रख रहा है, तथा अन्य जन-संहारक और विध्वंसक साधनों की खोज में लगा हुआ है। हथियारों की नित नई किस्में और नए तरीके पैदा करने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है।

उस समय जबकि हिरोशिमा और नागासाकी विध्वंस की आग में जल ही रहे थे और आणविक बमबाजी के शिकार रेडियेशन की रुग्णता से मर ही रहे थे, फ्रांसीसी जनरल चासिन एक नरभक्षी प्रस्ताव लेकर सामने आया। उसने लिखा—"आज तक, युद्ध लोगों के मारने का एक कमजोर साधन साबित हुआ है। यदि इस तड़ित-युद्ध में तीन करोड़ रूसी लोग अपनी जिन्दगी खो भी बैठें—जिसकी संभावना की जाँच हम कर चुके हैं···तो भी अन्य पन्द्रह करोड़ बच जाएँगे और दस सालों में उनकी जनसंख्या फिर पहले के स्तर पर पहुँच जाएगी। अब, यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि युद्ध का कोई ऐसा तरीका निकाला जाए जो इमारतों को नुकसान पहुँचाए बिना लोगों को मारना संभव बना दे, किन्तु फिर इसी के साथ इस बात की संभावना भी न रहे कि बचे हुए लोग उनका उपयोग कर सकें। निश्चय ही, इसका तरीका रेडियोधर्मी बादलों का उपयोग ही हो सकता है। निस्संदेह, वर्तमान में यह तरीका पूरी तरह विकसित नहीं हो सका है और, जो विशेष रूप से महत्वपूर्ण है वह यह कि, इसका प्रयोग बहुत व्ययसाध्य है। तो भी, इसके विषय में गंभीरता से सोचा जा रहा है।"[2]

1. जे० डी० बर्नाल, 'वर्ल्ड विदाउट ए वार' लंदन, 1958, पृ० 7
2. जीन बॉमीयर के 'ले हिटलर ए ट्रूमैन' पेरिस, 1950, पृष्ठ 97 से उद्धृत।

सैन्य-औद्योगिक समूह के रणनीतिज्ञ जीवाणविक हथियार के विकास को बढाने के लिए भी बड़े लालायित हो रहे हैं। सचमुच, सन् 1972 मे जीवाणविक (जीववैज्ञानिक) और जीवविषैले हथियारो के विकास, उत्पादन और भडारण पर प्रतिबध लगाने के निमित्त एक अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया और उसमे हस्ताक्षर लिये गए, और तब से इस पर सौ से अधिक देशो ने हस्ताक्षर कर दिये है। किन्तु पश्चिम मे बहुत से राजनैतिक सट्टेबाज अब भी जीववैज्ञानिक हथियारो के विकास पर जोर देते हैं। हाल के वर्षों मे जीवशल्य के क्षेत्र मे सफलताओ के बाद ये समस्याएँ फिर से सार्वजनिक ध्यानाकर्षण की वस्तु बन गई हैं, जो अनेक ऐसी सभावनाएँ पैदा करती हैं जिनमे उत्पत्ति संबंधी विकास की असीम सभावनाएँ खुली हैं, और साथ ही यह सभावना प्रबल होती जाती है कि एक अवयव के जीस को दूसरे अवयव के सैल मे प्रत्यारोपित कर जीवाणु को 'पुनर्निमित' किया जाए।

वैज्ञानिको की माँग है कि इस क्षेत्र मे होने वाली शोध पर कड़ा नियत्रण रखा जाए। पश्चिमी जर्मनी के पत्र 'स्टर्न' के वैज्ञानिक टिप्पणीकार अलरिक शिपक इस बात का स्मरण दिलाते है कि किस प्रकार जेनोआ के व्यापारियो द्वारा यूरोप मे अचानक प्लेग के कीटाणु ले आने से सन् 1348-1350 की महामारी तेजी से फैल गई और उसने सारे महाद्वीप को द्वितीय विश्व युद्ध से भी अधिक विनाश की चपेट मे ले लिया। उनकी टिप्पणी के अनुसार—"शोधकर्त्ता इस मनहूस सभाव्यता से अधिकाधिक घबरा रहे हैं कि वे स्वय परख नली मे जीवाणु के निर्माण के जरिए सारी दुनिया मे छूत फैलाकर उसे नष्ट करने का निमित्त बन सकेंगे। मनुष्य को परेशान करने वाले एक सौ साठ विभिन्न प्रकार के जीवाणु ऐसे हैं जिनका परिणाम रोग और मृत्यु होता है। हाल ही मे वैज्ञानिक नये कीटाणुओ को सयुक्त करने की स्थिति मे भी आ गए हैं जिनको उन्होंने स्वय ने अदृश्य सूक्ष्म जीवित अवयवो की इस विविधता मे पैदा कर दिया है। वे जीस के साथ परि-चालित कर उन्हे सुधारते है और इस प्रकार जीवित कृत्रिम अवयवों को प्राप्त करते हैं"। इसके प्रतिफल के रूप मे जो वस्तु अस्तित्व मे आती है, वह इतनी नई है कि वैज्ञानिक स्वय इसके विषय मे भविष्यवाणी करने मे असमर्थ हैं कि वे क्या बनाएँगे।"[1]

अब हम जिस स्थिति में हैं वह बड़ी विचित्र है: प्रकृति के ऊपर आदमी की जितनी बड़ी शक्ति है, वह अपने हित मे उसका उपयोग करने मे उतना ही अधिक असमर्थ है। इसे सिद्ध करने के लिए अनेक उदाहरणों में से एक उदाहरण दिया जा रहा है। बहुत वर्षों से विश्व स्वास्थ्य सगठन चेचक से लड़ता आया है और अब

---

1 'स्टर्न', दिसम्बर 1970, पृष्ठ 59-60

इसके प्रयास लगभग उन्हें सफलता का सेहरा पहनाने को हैं। सन् 19
वसंत मे दुनिया भर मे केवल चेचक के 13 रोगियों के मामले दर्ज किए
जबकि औषधियों के आविष्कार से पूर्व इस छूत की बीमारी से लाखों की
नष्ट हो जाती थी। ये सब रोगग्रस्त इथोपिया के पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं
और कोई मामले दर्ज नही किए गए तो सन् 1978 मे विश्व स्वास्थ्य संग
घोषणा कर देगा कि दुनिया भर में चेचक का पूर्ण उन्मूलन हो गया। यह
की महान विजय है।

किन्तु आज जब बहुत से देशों के डाक्टरों के पास उपयोगार्थ टी
दवाइयाँ और सर्वाधिक आधुनिक तकनीकी साधन हैं—जिनमें हैलिकॉप्ट
पार के वाहन—और साथ ले जाए जा सकने वाले रेडियो आदि के साधन हैं—
वे इथोपिया के पहाड़ो मे चेचक से लड़ रहे हैं (बहुत से विशेषज्ञों का विश्वास
वह इस रोग का पालना है), उधर पश्चिम मे प्रयोगशालाएँ कृत्रित रूप से
अधिक भयंकर कीटाणुओं को करोड़ों लोगों को मारने के लिए तैयार कर रहे
क्या यह हमारे युग का विरोधाभास नही है ?

जबकि कुछ वैज्ञानिक भयंकर कीटाणुओं और सैन्यवाद के बीच के अशुभ
मेल के विरुद्ध चेतावनी दे रहे हैं, पश्चिम मे ऐसे वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ
फिलहाल इसके संभावित लाभों का मूल्यांकन कर रहे हैं। लॉर्ड रिची-काल्डर
हथियारबंदी मे ब्रिटेन के विशेषज्ञ हैं, का विश्वास है कि बहुत-सी बातों मे छूत
एटम बम की अपेक्षा अधिक वांछनीय होगा। क्योंकि मौतों की संख्या की दृष्टि
यह आणविक हमले की आसानी से बराबरी कर सकता है और इससे खर्च भी
होना है।

पश्चिमी अनुमानों के अनुसार लगभग 2500 करोड़ डालर हथियारं
शोधकार्य पर प्रतिवर्ष खर्च किए जाते हैं तथा उक्त कार्य में 400,000 इंजीनि
और शोधकर्ता लगे हुए हैं।[1] और, निस्सदेह ये विशाल प्रयत्न शुद्ध मानवीयता
दृष्टिगत रखकर नहीं किए जा रहे।

पश्चिमी राजनीतिज्ञों द्वारा वास्तविक या संभाव्य शत्रु को हानि पहुँचाने
निमित्त पर्यावरण को कृत्रिम रूप से प्रभावित करने की व्यक्त संभावना को
वैज्ञानिक परिकल्पना मात्र नहीं समझा जा सकता। 'मौसम विज्ञान अन्य युद्ध'
विषय मे चर्चा है, दुश्मन पर आक्रमण करने के साधनों के विकास के रूप मे कृत्रि
भूकपों, समुद्री तूफानों, बवंडरों और विनाश तरंगों आदि पर काम हो रहे हैं। औ
अंटार्कटिका और ग्रीनलैंड मे बर्फ के पर्वतों की आकस्मिक अस्थिरता पर नजर

1. निःशस्त्रीकरण या विनाश ? शस्त्रीकरण और निःशस्त्रीकरण, [illegible]
[illegible], स्टॉकहोम, 1975, पृष्ठ 8

कि यदि उनको पिघला दिया जाय, चाहे अंशत: ही सही, अ गतिशील कर दिया जाय और महासागर मे धकेल दिया जाय तो दुश्मन की सीमा एक भयानक बाढ की चपेट मे आ जाएगी। दरअसल, समकालीन हथियारो की दौड मे सलग्न उन्मत्तो की मनोकल्पनाओ की कोई सीमा नही है।

विज्ञान एव प्रविधि द्वारा सभव बनाए गए अवसरों के अपराधपूर्ण दुरुपयोग के अतिरिक्त जनसहार की समस्त प्रायोजनाओं का एक सामान्य लक्षण है जो उनकी मुख्य कमजोरी भी है : वे सब सभ्यता को विनाश तथा मानवता को विध्वस की ओर ले जाएँगे, बजाय किसी राजनीतिक उद्देश्यो की प्राप्ति के। जनसहार के हथियारो के नए प्रकार और नई प्रणालियाँ, विश्वव्यापी और अनियत्रित जनसहार के हथियार (दोनों प्रकार से—सीधे परिणामो की दृष्टि से और विशेषतया उनके निष्कर्षों के दृष्टिकोण से) आणविक युद्ध की तुलना मे चाहे मात्रा मे उससे भी अधिक घातक क्यो न हों—विदेश नीति के महत्वपूर्ण यत्र नही रह गए है। नीति के अस्त्र के रूप मे हटकर वे विनाश के साधनों मे बदल रहे हैं।

पश्चिम मे यथार्थवादी विचारो के लोग इस स्पष्ट निष्कर्ष की अपेक्षा नही कर सकते। स्वय जनरल डगलस मैकार्थर जिन्हे अन्य किसी अमरीकी सैन्य कमाडर की तुलना मे जापान पर गिराए गए परमाणु बम के नतीजों को देखने का अधिक उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ था, ने सयुक्त राज्य अमरीका की सेनेट को बताया—"महानुभावो, मैं आपको बताता हूँ कि इसने उन मूलभूत धारणाओ को ही अवैध घोषित कर दिया जिनके आधार पर युद्ध को अतिम आदेश के रूप मे अपनाया जाता था, जब अंतर्राष्ट्रीय झगडो का निपटारा करने मे राजनीति असफल हो जाती थी। अब उसकी असफलता इसमे अतर्निहित हो गई है।"[1]

निस्सदेह, यह कहा जा सकता है कि सामान्य समस्त सैनिक जुओं के विरुद्ध कभी भी पर्याप्त प्रभावकारी गारटी नही रही। और यह सच भी होगा, किंतु यह भी सत्य है कि कोई भी राजनीतिज्ञ, जो वस्तुगत तथ्यो को स्वीकार करता है, ताप-नाभिकीय महाविपत्ति के आतंक की उपेक्षा नही कर सकता।

इससे यह नतीजा निकलता है कि जब हथियारो का विकास एक निश्चित स्तर से ऊपर उठता है तो राजनैनिक स्थिति तदनुकूल परिवर्तित हो जाती है। विज्ञान एव प्रविधि के वस्तुगत विकास की दृष्टि से एक समय आता है जब मानवता के सामने युद्ध के विरुद्ध युद्ध की अनिवार्यता पेश आती है। व्यवहार मे ऐतिहासिक मच पर यह नई स्थिति तब पैदा हुई जब सोवियत सघ और सयुक्त राज्य अमरीका एक 'आणविक गतिरोध' की अवस्था मे पहुँच गए, यद्यपि सिद्धातत:

---

1 सुदूर पूर्व में सैना की स्थिति, 'विदेशी सबधो पर समिति के सामने सुनवाइयाँ', स० रा० सीनेट, 82 कांग्रेस, प्रथम सत्र, भाग 1, वाशिंगटन, 1951, पृष्ठ 148

यह संभावना काफी पहले सामने आ चुकी थी।

क्लाउजेविट्ज ने पहले ही इसे संभव मान लिया था कि हथियारों की विनाशात्मक शक्ति के बढ़ने के फलस्वरूप राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति और युद्ध छेड़ने के साधनों के बीच अंतर स्पष्ट दिखाई देगा। उन्होंने लिखा—"यदि युद्ध राजनीति का एक भाग है, तो परिणामतः यह उसके गुण-धर्म को भी ग्रहण करेगा। राजनीति की महिमा एवं शक्ति में वृद्धि के साथ युद्ध भी उसी पथ का अनुसरण करता है और यह वृद्धि उस ऊँचाई तक पहुँच सकती है जब युद्ध की छवि निरंकुश बन जाए।"[1] दूसरे शब्दों में, युद्ध अपने ही नियमों के अनुसार जीना शुरू कर देता है राजनीतिक सीमाओं में जिसकी समाई नहीं बैठती।

अपने संस्मरणों में नादेज्दा क्रुपस्काया ने लेनिन के इस सुप्रसिद्ध वक्तव्य को उद्धृत किया है—"आज आधुनिक उपकरण तेजी के साथ युद्ध के विनाशात्मक शक्ति को बढ़ाते हैं। लेकिन एक समय आयेगा जब युद्ध असम्भव हो जायेगा।"[2] वर्तमान पीढ़ियाँ इस प्रकार के उस बिंदु तक पहुँच चुकी हैं या अभी पहुँच रही हैं, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। यह अभी से स्पष्ट है कि जन-विध्वंस के आधुनिक साधनों (जो संख्या में तेजी से बढ़ रहे हैं और लगातार जिन्हें पूर्णता तक पहुँचाया जा रहा है) ने मानव के सामने यह विकल्प रख दिया है या तो शांतिपूर्ण सहअस्तित्व या आत्मविध्वंस।

फिर भी, जो विशेष महत्वपूर्ण है वह यह कि हमारे समय में यह सिद्धांत अब कोई अमूर्त नैतिक श्रेणी या विचार नहीं रहा, किंतु समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का निर्माण करने वाले राजनैतिक तथ्यों में उसका महत्व बढ़ता जा रहा है। ये हालात बड़ी मात्रा में मौजूदा दुनिया के जनमत को निर्धारित करते हैं, शांति के लिए संघर्ष में व्यापक जनप्रयासों को प्रेरित करते हैं और बहुत से पश्चिमी राजनीतिज्ञ भी औपचारिक रूप से शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति के समर्थन में एक बड़ी दलील के रूप में इसे स्वीकार करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व विदेश मंत्री हेनरी किसिंगर ने कहा—"रणनीतिक आणविक संतुलन के युग में—, जब दोनों पक्ष सभ्य जीवन को बरबाद करने की क्षमता रखते हैं, तो सह अस्तित्व का कोई विकल्प ही नहीं है। ऐसी स्थितियों में शांति की आवश्यकता अपने आप में एक नैतिक आदेश है।"[3] और जैसाकि अमरीकी राष्ट्रपति जॉन कैनेडी ने इसे व्यक्त किया था कि अंतिम निष्कर्ष के रूप में जो सूत्र हम सबको जोड़ता है वह यह

---

1. वॉम क्रीज, हिंटरलैस धर्क इस जनरल्स कार्ल वॉन क्लॉजविट्ज, एर्स्टर्ट र्क इस्लू वॉन क्रीग, ड्रेस्डन' 1885' पृ. 567
2. एन. के. क्रुप्स्काया, लेनिन के संबंध में' मॉस्को' 1960' पृ० 40 41 (रूसी भाषा में)
3. द न्यूयॉर्क टाइम्स, जुलाई 16, 1975

है कि हम सब इस छोटे से ग्रह के निवासी हैं। हम सब एक ही हवा में सांस लेते हैं। हम सबको अपने बच्चों के भविष्य की चिंता है। और हम सब मरणशील हैं।

सभी अमरीकी प्रतिनिधियों के सोचने का तरीका यही नहीं था। एक ऐसा समय था कि वे अपनी आणविक इजारेदारी का उपयोग सोवियत संघ को डराने के इरादे से करते थे और समूची दुनिया पर अपने आधिपत्य के दंभ को 'न्याय संगत' करार देते थे। समाजवाद की शक्ति के इस असंतुलन को ठीक करना पड़ा। यह तब हुआ जब सोवियत संघ ने अपने स्वयं के आणविक और हाइड्रोजन हथियारों का विकास कर लिया। साधनों के रूपांतरण और इसके फलस्वरूप युद्ध के चरित्र ने भी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के प्रयासों को भी संशोधित किया।

शान्तिकामी शक्तियों के पक्ष में : तनाव-शैथिल्य को दृढ़ समर्थन

महत्त्वपूर्ण होते हुए भी यह तथ्य अपने आप इस मुद्दे को समाप्त नहीं कर देता। लोगों के जीवन से युद्ध का निष्कासन बहुत बड़े प्रयासों की मांग करता है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना आवश्यक है जहां उन शक्तियों की बात में दम हो, और उन्हीं की चलें भी जो तात्कालिक मुद्दों के शांतिपूर्ण समाधान के लिए प्रयत्नशील हैं और वैसा करने की योग्यता भी रखती हैं।

कम्युनिस्टों को पक्का भरोसा है कि ऐसा समय आयेगा जब दास-स्वामित्व प्रणाली व्यवस्था की भांति युद्ध भी अनिजीवित रहकर समाप्त हो जाएंगे। तब और अधिक युद्ध नहीं होंगे। यह आस्था दुनिया के विकास की कम्युनिस्ट संभावना से पैदा होती है, जिसके लक्षण वर्तमान युग में स्पष्टतया दिखाई देने लगे हैं—आज की ठोस वास्तविकताओं के रूप में।

दरअसल, आज उन देशों—जहां मजदूर वर्ग के हाथ में सत्ता है, और जो युद्ध की पहल कतई नहीं करते—की अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में दृढ़ भूमिका लगातार तेजी से बढ़ रही है। उनके कार्य व्यापार का अर्थ एवं अन्तर्वस्तु, सामाजिक, आर्थिक सैद्धांतिक तथा अन्य तत्त्वों का समुच्चय—उन्होंने यह सब युद्ध के लिए नहीं, बल्कि शांति के अनिवार्य आह्वान के लिए व्यवस्थित किया है। अपने प्रयासों को केवल रचनात्मक कामों पर ही केंद्रित करते हुए, समाजवादी देशों ने शांति के लिए मजदूर वर्ग के संघर्ष के इतिहास में एक नये बुनियादी अध्याय की शुरुआत कर दी है। और आज यह मात्र मानवीय लक्ष्य ही नहीं है, किंतु समाज की वस्तुगत ऐतिहासिक आवश्यकता भी है। इतिहास में पहली बार पूर्णतया एक परिस्थिति का विकास हो चुका है जिसके तहत दूसरे लोगों के खिलाफ आक्रमण हमेशा के लिए प्रतिबंधित किया जा चुका है, तथा बहुसंख्यक राज्यों के राजनीतिक शब्दागार से निष्कासित किया जा चुका है—उन देशों की आंतरिक व्यवस्थाओं तथा उनके विकास के वस्तुगत नियमों के अनुरूप।

समाजवादी समुदाय और इसकी घरेलू और विदेशी नीतियाँ दुनिया भर की नैतिक और राजनैतिक स्थिति पर अपना असर बढ़ाती चली जा रही हैं। समाजवाद ने राजनैतिक संघर्ष के सामने ऐसे ज्वलत मुद्दे पेश किये हैं जैसे कि शोषण की समाप्ति और सब प्रकार के शोषण तथा राष्ट्रीय दमन का उन्मूलन, असली जनतंत्र की प्राप्ति और व्यक्ति की स्वतत्रता की उपलब्धि, तथा मानव की भलाई के लिए विज्ञान और प्रविधि की उपलब्धियों का उपयोग। ये मुद्दे आधुनिक पीढ़ियों की ऐतिहासिक प्रगति के लिए केंद्रीय महत्व के हैं। फिर भी, समाजवाद ने व्यवहार में उतारकर दिखा दिया है कि इन कामों को कैसे पूरा किया जा सकता है।

सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों ने यह प्रस्तावित किया है कि अंतर्राष्ट्रीय सबधों को सुसंगत जनतांत्रिक सिद्धांतों के आधार पर टिका हुआ होना चाहिए। उन्होंने व्यवहार मे यह दिखा दिया है कि शांति को मजबूत करने के लिए क्या किया जाना है तथा उनकी सुरक्षा और जनगण के सहयोग को कैसे प्रबल बनाया जाना है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस में रखी गयी केंद्रीय समिति की रिपोर्ट मे महासचिव एल० आई० ब्रेझनेव ने इस बात पर जोर देते हुए कहा—"आज समाजवाद दुनिया भर के अरबों लोगों के विचार और उनकी भावना पर जबरदस्त प्रभाव डाल रहा है। यह श्रमिक लोगों को उनकी स्वतंत्रता उनके सच्चे जनतांत्रिक अधिकार, उनका कल्याण, व्यापकतम संभव ज्ञान और सुरक्षा की एक सुदृढ़ चेतना को प्रदान करने का भरोसा दिलाता है। यह शांति सभी देशों की सर्वसत्ता के प्रति सम्मान की भावना और समान, अतर्राष्ट्रीय सहयोग को जन्म देता है अपनी स्वतंत्रता एव स्वाधीनता के लिए संघर्ष मे जनगण की सहायता मे स्तंभ की भूमिका अदा है। निकट भविष्य मे समाजवाद की असीम क्षमताओं एव सभावनाओं का निस्संदेह रूप से उदय होगा जो पूँजीवाद की तुलना मे उसकी ऐतिहासिक श्रेष्ठता को प्रमाणित कर देंगी।"[1]

पूँजीवाद पर समाजवादी ताकतों की बढ़ती हुई प्रबलता, और विश्वशांतिकारी प्रक्रिया का तेज विकास समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सबंधों की प्रकृति को रूपान्तरित कर रहे हैं। यह तथ्य सामाजिक-वर्गीय प्रेरणाओं के मजबूत होने, जनसमूह की भूमिका के उच्चतर होने मे तथा जनसमूह की सामान्य जनतांत्रिक लक्ष्यों की ओर अभिमुखता में अभिव्यक्त होता है, तथा साथ ही सामान्य जनतांत्रिक लक्ष्यों व मुक्ति संघर्ष के लक्ष्यों, जोकि अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर श्रमिक वर्ग के लिए चुनौती बने हुए हैं, मे भी व्यक्त होता है।

इजारेदार पूँजीवादी शासन के युग मे जो अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष पैदा हुए, पूँजीवाद के विभिन्न राष्ट्रीय दलों की ताकत के आधार पर ही उनका हल हो पाया।

---

1 कम्युनिस्ट और मज़दूर, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस, मॉस्को, 1976, पृ० 14

और वह भी साम्राज्यवादी के आपसी अंतर्विरोधों की सीमाओं में आज दो व्यवस्थाओं के संघर्ष की स्थिति में तथा मुक्ति आंदोलन की मुख्यधारा में विकसित ये अंतर्विरोध एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक-वर्गीय अंतर्वस्तु को ग्रहण कर रहे हैं। समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में उत्पन्न संकटों के काल में न केवल एक दूसरे राज्य के हित आपस में टकराते हैं। (यद्यपि स्वभावत: उन्हें नकारा नहीं जा सकता), किंतु अनिवार्यत: प्रगतिशील विश्व शक्तियाँ और प्रतिगामी ताकतें भी टकराती हैं। यह महत्वपूर्ण प्रश्न यह ही नहीं कि शोषक आपस में स्थान बदल रहे हैं बल्कि शोषण की प्रणाली की स्थितियों को ही बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। साधारणतया यह केवल किसी एक या दूसरे राष्ट्र की आजादी का ही प्रश्न नहीं है, अपितु सामाजिक प्रगति की संभावना का सवाल भी है।

विगत दशकों का सबसे बड़ा सशस्त्र संघर्ष वियतनाम की लड़ाई का था जो एक विचारणीय बिंदु है। वे कौन-सी शक्तियाँ थीं जो वहाँ एक-दूसरे के आमने-सामने थीं और उनके उद्देश्य क्या थे? वास्तव में दुनिया की प्रतिगामी शक्तियों और प्रगतिशील ताकतों के बीच के एक ऐतिहासिक संघर्ष का दृश्य हिन्द चीन में घटित हुआ, यह उपनिवेशवाद और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के बीच का संघर्ष था और यह पूँजीवाद और समाजवाद के बीच का संघर्ष था। वियतनामी लोग अपनी राष्ट्रीय मुक्ति के लिए लड़े तथा वे अपनी चुनी हुई समाजवादी प्रणाली के लिए लड़े। वियतनाम की मजदूर पार्टी की केंद्रीय समिति के प्रथम सचिव ले दुआन ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस में कहा—"हमारी पार्टी ने दो झंडों को ऊँचा उठाया, एक राष्ट्रीय लोकतांत्रिक क्रांति का झंडा और दूसरा समाजवादी क्रांति का झंडा, तथा हमारी सारी जनता को संघर्ष में उतारने के लिए राष्ट्रीय आजादी के आंदोलन को समाजवादी शक्ति के साथ एक प्रवाह के रूप में संयुक्त कर दिया। इसने राष्ट्र की शक्तियों को हमारे समय की क्रांतिकारी शक्तियों के साथ जोड़ दिया, आंतरिक शक्तियों को अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों के साथ जोड़ दिया और दुश्मनों की कतारों के विभिन्न अंतर्विरोधों का लाभ उठाया। इस प्रकार आक्रामक के ऊपर विजय हासिल करने के लिए एक विशाल संगठित शक्ति पैदा कर दी।"[1]

दक्षिण-पूर्व एशिया में जहाँ संयुक्त राज्य अमरीका और उसके दोस्तों ने वियतनामी लोगों को समाजवादी उपलब्धियों को छोड़ने के लिए मजबूर करने की कोशिश की थी, जबकि मध्य-पूर्व में साम्राज्यवाद अरब देशों के प्रगतिशील शासनों को समाप्त करना चाहता है; अंगोला में जहाँ [illegible] के आंतरिक मामलों में एक [illegible] में दूसरे

1. [illegible]

अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष जो हमारे समय में हो रहे हैं तथा जिनमें कोई भी व्यक्ति सामाजिक-वर्गीय संघर्ष की उस अंतर्वस्तु को महसूस कर सकता है जो ठोस स्थितियों के मुताबिक विभिन्न रूपों में व्यक्त होती है।

इसका अर्थ यह है कि अंतर्राष्ट्रीय विरोधों की गांठें और भी अधिक उलझ रही हैं, बाहरी हस्तक्षेप का जनप्रतिरोध बढ़ रहा है और इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय पारस्परिक विरोधों को हल करने के लिए सैनिक उपकरण जो सामाजिक विरोधों से गुंथे हुए होते हैं, कम-से-कम उपयोग योग्य बनते जा रहे हैं।

वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की वर्गीय प्रकृति की ताजा पुष्टि तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया में मिलती है। समाजवाद के पक्ष में शक्ति संतुलन की और अधिक बदल जाने के परिणामस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य विश्व की सामाजिक प्रगति का परिणाम भी है और भावी विकास के लिए प्रेरणादायक तत्व भी। आवश्यक रूप से इसका मतलब यथास्थिति के बना रहना नहीं है और न यह क्रांतिकारी संघर्ष को बाधा नहीं पहुँचा सकता, जैसा कि कई बार जोर देकर कहा जाता है, किंतु इसके विपरीत इसका अर्थ राजनीतिक और सामाजिक प्रगति की व्यापक संभावनाओं के द्वार खोलना है। यह निर्विवाद है कि तनाव-शैथिल्य के विरोधी, वस्तुगत स्थिति को अनदेखा करके, इस पर स्वयं की व्याख्या थोपने के प्रयास करते हैं कुछ इस बात पर आमादा हैं कि वे इसे "क्रेमलिन चाल" की सज्ञा दें, एक ऐसी 'एकमार्गी सड़क' कहें जिस पर चलने वाले लोग एकमात्र समाजवाद की ओर ही अग्रसर होते हैं, आदि।

विश्व की प्रगतिशील शक्तियाँ अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य को अच्छे-पड़ौसी-संबंधों को स्थापित करने के शक्तिशाली साधन और आपसी विश्वास और समझ को मजबूत करने के उपाय के रूप में मानती हैं। इस दिशा में यूरोप में सुरक्षा और सहयोग के विषय पर आयोजित हेलसिंकी सम्मेलन के सर्वसम्मत समझौते इस दिशा में महत्वपूर्ण क़दम हैं। तनाव-शैथिल्य की गतिशीलता विभिन्न कारकों के कारण हर जगह एक जैसी नहीं है। किंतु हर बात इसके सकारात्मक नतीजों को सुरक्षित रखने और गुणात्मक वृद्धि को मद्दे नजर रखते हुए की जानी चाहिए। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति के महासचिव लियोनिद ब्रेझनेव ने कहा—"हम सब जानते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य को प्राप्त करने में बहुत बड़े प्रयत्न करने पड़े हैं। इसी तरह तनाव-शैथिल्य की संचित पूँजी को सुरक्षित रखना भी आसान नहीं है। किंतु कोई भी कठिनाई, कोई भी बाधा हमें वापिस लौटने को मजबूर नहीं कर सकती। शांति को शाश्वत और अविनाशी बनाने के लिए किए गये काम की तुलना में कोई भी अन्य कार्य अनिवार्य, आवश्यक और महान् नहीं हो सकता।"[1]

1. प्रावदा, 19 जनवरी' 1977

शांति दरअसल अविभाज्य है और अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य इसे मजबूत करता है। इस विषय में पूंजीवादी सिद्धांतकारों द्वारा अटकलबाजी के लिए कोई स्थान नहीं है। तथ्य स्वयं बोल रहे हैं।

यूरोप में यह सभी को ज्ञात है कि, अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य की स्थिति में ही समाजवादी देशों ने अपनी अंतर्राष्ट्रीय स्थिति को और अधिक मजबूत किया, जर्मन जनवादी गणतंत्र—जर्मनी की भूमि पर दुनिया के प्रथम मजदूरों और किसानों के राज्य ने—अंतर्राष्ट्रीय कानून में मान्यता प्राप्त की, ग्रीस में काले कर्नलों का किला ढह गया, पुर्तगाल में फ़ासिज़्म को शिकस्त दी गयी, स्पेन में चारों ओर राजनैतिक परिवर्तन की एक नयी तूफानी लहर चल पड़ी, और प्रगतिशील ताकतों ने फ्रांस, इटली व अन्य देशों में नयी व बड़ी जीतें हासिल की।

स्वभावतः यह कोई निरा संयोग ही नहीं था कि तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया का उदय हुआ और यूरोप में ही इसका विकास हुआ, जो कि अंतर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट आंदोलन का पालना तथा समाजवाद का जन्मस्थान रहा है। दो विश्वयुद्धों की त्रासदी से उबरकर और फ़ासिज़्म के मुकाबले विजय हासिल करके यूरोप के लोग म्यूनिख समझौतावादियों की समर्पणवादी नीति को नहीं भूल सकते, तथा हमेशा ओरेडूयोर और कोवेन्ट्री, बूकेनवाल्ड और ओस्विमिम को सदा याद रखेंगे।

यही नहीं, यूरोपीय राज्य—अन्य महाद्वीपों के किसी भी देश की तुलना में दुनिया के बाकी भागों से जिनके हजारों आर्थिक, व्यापारिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक संपर्क हैं—वे इस ग्रह पर होने वाले परिवर्तनों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले पहले राज्य हैं।

एशिया में यह तनाव-शैथिल्य के युग में ही हुआ कि वियतनामी लोगों ने अपनी मातृभूमि की संपूर्ण स्वाधीनता और उसके एकीकरण के संघर्ष में निर्णायक जीत हासिल की। लाओस के लोक जनतांत्रिक गणराज्य और जनवादी कंपूचिया का निर्माण किया गया।

अफ्रीका में तनावशैथिल्य के युग में ही इस महाद्वीप में औपनिवेशिक साम्राज्यों के अंतिम अवशेष समाप्त हुए तथा नये स्वाधीन राज्यों का समूह—अंगोला, मोजाबिक और गिनी-बिसाऊ—अस्तित्व में आया।

सभी महाद्वीपों से, हर जगह, तनाव-शैथिल्य सामाजिक प्रगति के साथ-साथ चलता है। आधुनिक यथार्थ के दोनों तत्व बहुधा एक-दूसरे की परिपूर्ति करते हैं और उनको सुदृढ़ करते हैं।

एक जमाना था जब कई सदियों तक अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष प्रायः स्थानीय महत्त्व के हुआ करते थे तथा तीसरे देशों के हितों को वे सीधे तौर पर प्रभावित नहीं करते थे। इस परिस्थिति ने अनेक 'पृथकतावादी' नीतियों को बढ़ावा दिया और बहुत से

मामलों में तीसरे देशों के विरोधों का लाभ उठाने का तथा उनमें झगड़ा कराने का लालच प्रस्तुत किया। आज कोई भी अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति वास्तव में पृथक नहीं हो सकती, और कोई भी विस्फोटक संघर्ष विश्वयुद्ध की धमकी से कम नहीं माना जाता।

दोनों विश्वयुद्ध इस बात के चौंकाने वाले प्रमाण हैं। तब से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बढ़ते हुए दायरे, और सबसे बढ़कर, सत्यानाश करने वाले विश्वव्यापी ताप-नाभिकीय युद्ध के आतंक ने देशों तथा जनगणों की पारस्परिक निर्भरता को वस्तुगत रूप से गहनतर बना दिया है। वस्तुतः सभी देशों की विदेशनीतियाँ पारस्परिक हितों और विरोधों के अविभाज्य समुच्चय का निर्माण करती हैं।

आज कोई भी विरोध या संघर्ष अनिवार्यतः विश्वनीति के अन्य स्नायु केंद्रों को प्रभावित करता है। कोई यदि सोवियत संघ और अमरीका के बीच के सशस्त्र संघर्ष की कल्पना करता हुआ उसे 'दो चीतों' की लड़ाई कहे, जैसाकि राजनैतिक लोक कथा में कहा गया है, जिसमें एक बाहरी दर्शक पहाड़ की चोटी पर बैठा हुआ सुरक्षित रूप में युद्ध को देखता दिखाया गया है, तो ऐसा करना यथार्थ की अपनी समस्त समझ एवं चेतना को खोना होगा। यह मानना अधिक तर्कसंगत होगा कि यदि आक्रामक तीसरे विश्वयुद्ध को भड़काने की कोशिश में सफल हो गये तो उसे किन्हीं निश्चित सीमाओं के भीतर सीमित रखना असंभव होगा।

'आक्रमण को मोड़ देना', 'सीमित सशस्त्र संघर्ष' और 'स्थानीय युद्ध' जैसी धारणाएँ भूतकाल के गर्भ में जा रही हैं, वापस कभी नहीं आएँगी। वास्तव में, अब यह अधिक आसान है कि तलवार को वापस म्यान में डालने की बजाय उसे कसम की जगह रख दिया जाए। और जॉन फुलर की यह चेतावनी निर्विवाद रूप से तर्कसंगत थी—"बुराई बुराई को पैदा करती है, और यदि तुम सैमसन की तरह अंधे हो जबकि तुम अपने दुश्मन के घर के खंभों को नीचे गिरा देते हो, तो इसके खंडहर तुम्हें कुचल देंगे।"[1] अब हर वस्तु इस तरह आपस में जुड़ी हुई है कि केवल एक ही चिनगारी सारे विश्व को जलाकर महा अग्निकुंड में बदल देगी—ऐसी स्थिति में केवल विश्वशांति ही लोगों की असली सुरक्षा गारंटी हो सकती है।

विश्व राजनीति के अग्रिम मोर्चे पर जन शक्तियों का उभार

इन परिवर्तनों का कारण और तदनुरूप परिणाम, वह बढ़ी हुई भूमिका है जो विशाल जनसमूहों के द्वारा अदा की जाती है। पहले शोषक देशों का विशिष्ट शासक वर्ग जनसमुदाय के बिखराव और उसकी राजनीतिक अज्ञानता का उपयोग, उनकी पीठ के पीछे से बहुत से अंतर्राष्ट्रीय सवालों का समाधान निकालने और उन पर अपनी इच्छा लादने के लिए किया करता था। आज इस प्रकार के किसी

1. जे.एफ.सी. फुलर, 'द्वितीय विश्व युद्ध' 1939-45, लंदन, 1948 पृष्ठ 412

उपाय को अपनाना एक कालदोष कहलाता है। सोवियत गणतंत्र पहला देश था जिसने उस गोपनीयता को तोड दिया जो कभी विदेश नीति को घेरे हुए होती थी। इसने ज़ार सरकार द्वारा की गयी गुप्त संधियों को सार्वजनिक रूप से प्रकट कर दिया और ऐसी कूटनीति को जन्म दिया जो सोवियत लोगों और विश्व के जनगणों दोनों के लिए खुले रूप से जाहिर हो। शांति संबंधी आज्ञप्ति के वादविवाद को समेटते हुए लेनिन ने कहा था "हम किसी प्रकार की रहस्यात्मकता नहीं चाहते। हम ऐसी सरकार चाहते हैं जो हमेशा अपने देश के जनमत के सीधे निरीक्षण में काम करे।"[1] यह गुप्त कूटनीति पर उसकी तोडने वाली चोट थी। विदेशनीति, पेशेवर विशिष्ट वर्ग के संकीर्ण दायरे का क्षेत्र नहीं रही। राष्ट्राध्यक्षीय पहलों और मंत्रियों के दफ्तरों से पैदा होने वाली नीतियाँ सड़कों पर आ गईं, इन्होंने नए आयाम ग्रहण किए और वे सब लोगों के सरोकार बन गईं।

आज करोड़ों श्रमिक लोग न केवल राजनैतिक मामलों पर अपना प्रभाव डालना चाहते हैं, अपितु कारगर ढंग से प्रभाव डालने में समर्थ भी हैं। 8 नवम्बर सन् 1917 को शांति के विषय में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में लेनिन ने कहा— 'हमें "'जनगण को युद्ध और शांति के प्रश्नों पर हस्तक्षेप करने देने के लिए उनकी मदद करनी पड़ेगी।"[2] आज यह उद्देश्य एक यथार्थ बन चुका है, तथा इसने अन्य मामलों के अतिरिक्त हाल के वर्षों में शांति आंदोलन द्वारा अर्जित दायरे में अभिव्यक्ति पाई है।

इस आंदोलन का इतिहास स्वयं इस तथ्य को उजागर करता है। युद्धोत्तर शान्तिनायकों का आंदोलन एक ऐसी विशाल हलचल के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था जिसके दौरान आणविक शस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने के आह्वान की स्टॉकहोम अपील पर पचास करोड़ लोगों ने हस्ताक्षर किए थे। औपचारिक रूप में यह आंदोलन अप्रैल 1949 में पेरिस में आयोजित कांग्रेस में शुरू हुआ था। शांति योद्धाओं का अपनी अगली कांग्रेस एक साल बाद शैफील्ड में करने का इरादा था। लेकिन ब्रिटेन की लेबर सरकार ने, जिसके प्रधान क्लिमेंट एटली थे—उनको इजाजत न दी। उस निर्णय के पीछे क्या कारण थे? सब प्रकार की व्याख्याएँ प्रसारित की गई कुछ लोगों का कहना था कि कांग्रेस में 'पर्याप्त प्रतिनिधित्व' का अभाव था, अन्य कुछ लोगों का आरोप था कि इस कांग्रेस में विभिन्न प्रश्नों पर इसका नज़रिया 'पूर्वाग्रह पूर्ण' होने की संभावना थी, कुछ अन्य लोगों के लिए यह एक 'कम्युनिस्ट अभियान' था। जनता को भड़काने वाली ये चालाकियाँ इतनी

1 वी आई, लेनिन 'द्वितीय अखिल रूसी मजदूरों और सैनिक डिप्टीज की कांग्रेस', संकलित रचनाएं', खंड 26, पृष्ठ 254

2 वही, पृष्ठ 252

महत्वपूर्ण नहीं थी, जितना कि यह कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी ग्रेट ब्रिटेन के शासक गिरोह ने शांति आंदोलन के सदस्यों के प्रति असम्मान प्रदर्शित करने को राजनैतिक दृष्टि से श्रेयस्कर एवं उपयोगी माना। बहुत आगे के बाद जब उनकी सारी कोशिशें हवाई बन गईं, तो ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर प्रतिबंध ही लगा दिया गया वैज्ञानिक फ्रेडरिक जूलियट-क्यूरी को डोवर में गिरफ्तार कर दिया गया तथा उन्हें देशनिकाला दे दिया। बाद में यह कांग्रेस वारसा में संपन्न हुई।

इसके ठीक दो दशक बाद में शांतिकामी शक्तियों का विश्व सम्मेलन मॉस्को में (अक्तूबर 1973 में) संपन्न हुआ। वस्तुतः इसमें विश्व के शांतियोद्धाओं की उस एकजुटता का प्रतिनिधित्व व्यक्त हुआ। जो बहुत से दूसरे आधुनिक जनतांत्रिक आंदोलनों के साथ कायम हो चुकी थी। यद्यपि जनतांत्रिक आंदोलन शांति के संघर्ष के समस्त विचारों को उसी रूप में नहीं अपनाते, तो भी वे इसके प्रस्तावकों को सहयोग देने की इच्छा रखते हैं। मॉस्को कांग्रेस में एक हजार से अधिक राष्ट्रीय पार्टियों, संगठनों और आंदोलनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया जो 143 देशों और 120 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का प्रतिनिधित्व करते थे। इस मंच पर यह इतना व्यापक प्रतिनिधित्व था कि अपने सामाजिक सम्मान की परवाह करने वाला कोई विरला ही ऐसा राजनेता होगा जो शांति आंदोलन के प्रति खुल्लम-खुल्ला एक ऐसा नकारात्मक रुख अपनाने का दुस्साहस करे जैसाकि पच्चीस साल पहले क्लिमेंट एटली ने अपनाया था।

वर्तमान में शांति शक्तियों के आंदोलन के आयाम विशाल हो गए हैं और उसने सचमुच ही जन आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर लिया है किन्तु इसके परिमाणात्मक परिवर्तनों की अपेक्षा गुणात्मक परिवर्तन और अधिक महत्वपूर्ण हैं। सामान्य रूपरेखा के अनुसार ये हैं—पहला, समकालीन शांति आंदोलन सारे समाजवादी समुदाय के शक्तिशाली भौतिक आधार और उसकी सक्रिय विदेश नीति पर भरोसा करता है; दूसरा, आज, पहले से कहीं अधिक यह एक संगठित शक्ति के रूप में काम करता है जिसके पास सार्वभौम लोकतांत्रिक शांति के लिए एक समान मंच है; तीसरा, इसके पास अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के पूरे विश्लेषण पर आधारित स्पष्टतया परिभाषित कार्यक्रम है।

ये सब तथ्य शांतिप्रिय शक्तियों के पक्ष में अंतर्राष्ट्रीय जीवन के स्वरूप को संशोधित करते हैं। उनमें अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य की ओर क्रमिक अभिमुखता और बदलाव का कारण प्रमुख रूप से अंतर्निहित है। जैसे-जैसे यह प्रक्रिया सबल होती जाती है, जनतांत्रिक लक्ष्य और श्रमिक लोगों की मुक्ति के बीच का घनिष्ठ अंतःसंबंध—घरेलू मामलों और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में—दोनों में तेजी से मुखर होता जाता है। कमोबेश लंबी अवधि तक अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखते हुए सामान्य जनतांत्रिक, राष्ट्रीय मुक्ति और दूसरे साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन

जनसमुदाय को, क्रमश समाजवाद को चुनने की ओर ही आगे बढाते है । हमारे समय मे जनतान्त्रिक आदोलन ने अपने जनाधार को व्यापक करने के लिए अतुलनीय बडे अवसर प्राप्त किए हुए हैं और साथ ही ये आदोलन बुनियादी सामाजिक परिवर्तन के लिए सर्वहारा के द्वारा किए जाने वाले सघर्ष के नजदीक आ रहे हैं ।

अतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व समाजवाद ने अपने लिए युद्धो को रोकने का लक्ष्य निर्धारित किया है। (जो वास्तव मे सामान्य लोकतान्त्रिक मांगो का हिस्सा है) और, इसके साथ ही सारी मानवता को, पूँजीवाद मे समाजवाद के रूपातरण के लिए सर्वोत्तम सभव पूर्वापेक्षाओ को प्राप्त करने के निमित्त स्वय को प्रयत्नशील बना रखा है। आज की परिस्थितियों मे उस पूँजीवाद को विवश करने का प्रश्न है, जो हमेशा बाहर प्रसार करने की नीति का अनुसरण करता है, ताकि लोगो के उस अधिकार को मनवाया जा सके जिसके तहत स्वय के भविष्य के विषय मे स्वय निर्णय लेने के अधिकार का उपयोग किया जा सके। दूसरे शब्दो मे, यह आज के युग के प्रमुख वर्गीय अर्तविरोध के समाधान की संभावनाओ का प्रश्न है अर्थात् मजदूर और पूँजी के बीच का, और बिना ताप-नाभिकीय युद्ध के भावी सामाजिक प्रगति का प्रश्न है—शाति के हालात मे परिवर्तन की समस्या का एक प्रश्न।

लियोनिद् ब्रेझनेव ने नोट किया था—"सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने हमेशा इस बात को माना और अब भी मानती है कि दो व्यवस्थाओ—पूँजीवाद और समाजवाद के—के बीच का सघर्ष आर्थिक, राजनैतिक तथा वैचारिक क्षेत्र मे भी जारी रहेगा। यह अपेक्षित ही है समाजवाद और पूँजीवाद के वर्गीय दृष्टिकोण परस्पर विरोधी हैं तथा इनमे मेल संभव नही है। किन्तु हम ऐतिहासिक दृष्टि से अनिवार्य इस संघर्ष को एक ऐसे रास्ते पर मोड देंगे जो युद्ध के विध्वसो से मुक्त हो, जो खतरनाक युद्धो से दूर हो तथा जो एक अनियत्रित हथियारो की दौड या होड से परे हो।"[1]

साम्राज्यवाद ने अपने तई अपनी विदेश नीति की मुख्य दिशा के आर्थिक, राजनैतिक और वैचारिक क्षेत्रो मे समाजवाद के विरुद्ध सघर्ष मे बदल रखा है। फिर भी, विश्व समाजवाद का अस्तित्व ही साम्राज्यवादियो को मजबूर करता है कि वे सामान्य रूप से अधिक सचेत हों और विस्तार के युद्ध जैसे उग्रवादी रूप को टाल दे। शक्तिशाली प्रगतिशील ताकतो द्वारा हमला किए जाने पर तथा अपनी ताकत को मोर्चाबंदी में लगाने से पहले वह इस तथ्य पर गौर अवश्य करता है। कुछ दशकों पूर्व तक साम्राज्यवादी शक्तियों के शासक गिरोह अपने विरोधों को युद्ध से सुलझाने का साहस करते थे। यदि सोवियत संघ और समाजवादी समुदाय नही

1. एल आई ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण करते हुए' मास्को, 1975, पृष्ठ 94-95

संघर्ष अथवा स्थानीय युद्ध राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के क्षेत्र में ही भड़के। उनमें साम्राज्यवाद के उन प्रयासों की झलक भी मिलती है जिनका मकसद किसी भी कीमत पर उनकी आजादी के सुदृढ़ीकरण की गति को धीमा करना था। किंतु औपनिवेशिक प्रयासों का दादागिरी के प्रतिरोध एक दूसरी प्रवृत्ति के द्वारा किया जा रहा है -अर्थात् विकासमान देशों के द्वारा किए जाने वाले सक्रिय शांति-संघर्ष और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के द्वारा ताकि दुनिया में एक न्यायसंगत आर्थिक व्यवस्था का निर्माण हो सके। इस बात पर जोर देने के सभी आधार हैं कि यह प्रवृत्ति जोर पकड़ती जाएगी ज्यों-ज्यों एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के स्वतंत्र राज्य अधिकाधिक आत्मविश्वास के साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता और सामाजिक प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ते चले जाएंगे।

पश्चिमी यूरोप के देशों, उत्तरी अमरीका और जापान—जो कि विश्व पूँजीवाद के गढ़ हैं -में भी विशाल जनसमूहों का जनतांत्रिक संघर्ष एक नई अंतर्वस्तु धारण कर रहा है। यह सार्वजनिक सक्रियता के पहले से अधिक व्यापक क्षेत्रों में फैलता जा रहा है और मुक्ति आंदोलन के समाजवादी लक्ष्यों के साथ घनिष्ठता से गुंथता जा रहा है। औद्योगिक देशों में इजारेदारी विरोधी आंदोलनों के अग्रिम मोर्चे पर मजदूर वर्ग और कम्युनिस्ट पार्टियाँ हैं। व्यापक जन-तांत्रिक और सामाजिक रूपांतरणों के उनके कार्यक्रमों में इजारेदारी के आधिपत्य को कुचलना, और शांति और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा को आश्वस्त करना जैसी बुनियादी माँगें हैं।

धक्काशाही का दिवालियापन

कठोर वर्ग-संघर्षों के दौर में विकसित होने वाले उपर्युक्त परिवर्तन पश्चिमी रणनीतिज्ञों को इस बात के लिए मजबूर करते हैं, चाहे वे इसे पसंद करें अथवा नहीं, कि वे अपने पहले की कसौटियों और अनुमानों की समीक्षा करें और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए नए उपाय सोचें। इसकी अभिव्यक्ति अन्य बातों के अलावा अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव की कोटि के रूप में शक्ति की अवधारणा के पुनर्मूल्यांकन में होती है।

इस प्रकार के पुनर्मूल्यांकन के लिए बूर्ज्वा राजनीतिक चिंतन को एक लंबे टेढ़े-मेढ़े रास्ते पर चलना पड़ा। सदियों से पूँजीवादी राज्यों ने अपनी विदेश नीति के लक्ष्य ताकत के जरिए प्राप्त किए हैं—या तो दूसरे देशों पर अपना प्रभुत्व थोपा है या स्वयं पर ऐसे आधिपत्य की संभावना के ख़िलाफ लड़ते रहे हैं। इस परिस्थिति ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति की विशेष धारणा को उभारा और किसी सर्वाधिक राज्य की ताकत को एक विशेष अर्थ प्रदान किया। वस्तुतः यह सशस्त्र शक्ति के बराबर मान लिया गया। "बड़ी बटालियनें सदा ठीक होती हैं।" बहुत वर्षों तक पूँजीवादी देशों के सैनिक और राजनीतिक नेता नेपोलियन जिसने—'शक्ति' को

न्यशक्ति के समरूप मान लिया था—वे इस सारगर्भित परिभाषा को, नितांत वाद्य मानते रहे थे।

सिद्धांततः अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को सुलझाने संबंधी साम्राज्यवादी शक्तियों के यासों में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भी कोई गंभीर परिवर्तन नहीं हुआ। यूं भी, ाथमिकता के आधार पर सैन्यशक्ति का निर्माण, ताकि दूसरे देशों पर दबाव ाला जा सके, अपनी समस्त विविधताओं में वह बदनाम नीति थी जिसे 'जन प्रति-ार' की संज्ञा दी गई थी, तथा उन वर्षों में जिसे अमरीकी साम्राज्यवाद ने लागू रने की कोशिश की थी। इस समस्या के सैद्धांतिक अनुसंधानों के संबंध में वे इन्हीं ारणाओं के चक्र में घूमते रहे।

किसी राज्य की युद्ध की क्षमता के रूप में उसकी 'शक्ति' के निर्माण में कौन-ौन से घटकों का योग होता है इसे उस क्षेत्र के प्रसिद्ध अमरीकी अधिकारी हेंस ोर्गेन्थ्यो ने चित्रित किया। तदनुसार ये घटक हैं : देश की भौगोलिक स्थिति, उसके ाकृतिक संसाधन, औद्योगिक क्षमता और सैनिक तैयारी— जिसमें शस्त्रीकरण े विकास का स्तर, सैन्य नायकों की प्रकृति और सशस्त्र सेनाओं की संख्या और उनकी कुशलता शामिल हैं। इनमें जनसंख्या और उसका राष्ट्रीय चरित्र (युद्ध के प्रति रुख) भी शामिल हैं, प्रचलित राष्ट्रीय रीति-रिवाज (सरकारी नीतियों के संबंध में रुख), और कूटनीति की कुशलता—जिसे देश की शक्ति का महत्वपूर्ण तत्व बनाया गया है—आदि भी शामिल हैं। निष्कर्षतः "राष्ट्रीय शक्ति के विभिन्न तत्वों द्वारा प्रत्यक्षतः राष्ट्रीय हित से संबंधित, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के मुद्दों पर अधिकतम प्रभाव डलवाने की कला" को भी ये अपने दायरे में ले लेते हैं।[1]

फिर भी, जैसे समय गुजरा, यह फ़ार्मूला यथार्थ के साथ एक स्पष्ट विरोध के रूप में सामने आया। विदेश नीति के मुख्य हथियार के रूप में सशस्त्र बल प्रयोग की परम्परागत धारणा अपनी प्रासंगिकता खोने लगी। और 'विशाल बटालियनों' की सर्वशक्तिमत्ता पर सबसे पहले संदेह प्रकट करने वालों में सबसे अधिक शक्ति-शाली साम्राज्यवादी देश संयुक्त राज्य अमरीका प्रमुख था।

शीत युद्ध के वर्षों के दौरान संयुक्त राज्य अमरीका ने हथियारों की दौड़ और जगखोरी के सट्टे में 10,000,000 लाख डालर से ऊपर की विशाल धनराशि का व्यय किया। इसने महाविशाल युद्ध यंत्र का निर्माण किया, जैसाकि अन्य कोई देश आज तक नहीं कर पाया, और एक कल्पनातीत सैनिक क्षमता का निर्माण किया जोकि पृथ्वी पर से सारे देशों का सफाया करने में सक्षम है। किंतु क्या इससे दुनिया में उसका प्रभाव बढ़ा, या क्या कम-से-कम इससे वह अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों को पूरा कर सका? इस प्रश्न को इस बात के प्रमाण के रूप में

1 हैंस जे॰ मोर्गेन्थ्यो, "राष्ट्रों के मध्य राजनीति, शक्ति और शांति के लिए संघर्ष", न्यूयार्क 1966 पृष्ठ 139

ही पेश करना पर्याप्त होगा कि हमारे युग में कइयों ने सशस्त्र सेनाओं के निर्माण का अर्थ यह मान लिया है कि इससे स्वतः राजनैतिक प्रभाव बढ़ जाता है।

यह सामान्य सत्य उस समय जाहिर हो गया जब वियतनाम में अमरीकी आक्रमण की पराजय के बाद सबके सामने यह स्पष्ट हो गया कि संयुक्त राज्य अमरीका की शक्ति का किसी तरह यह अर्थ नहीं है कि वह सारी दुनिया पर थानेदारी या स्कूल मास्टरी कर सके।

वियतनाम में लगभग तीस साल तक लड़ाई चली। इसमें लगभग बीस लाख से अधिक जानें गई, अन्य लाखों लोग अपंग हो गए और लाखों अपने पीछे अनाथ और शरणार्थी छोड़ गए, शहर और गाँव ध्वस्त हो गए तथा भूमि जहरीली बना दी गयी व क्षत-विक्षत कर दी गयी।

साम्राज्यवादी शक्तियों में पहले फ्रांस और बाद में संयुक्त राज्य अमरीका ने दुराग्रह के कारण हिंदचीन के जनगणों के स्वाधीनता अपनी पसंद की समाज व्यवस्था बनाने के उनके अधिकार को मानने से इनकार किया। संयुक्त राज्य अमरीका की महाविशाल सैन्य मशीनरी और पूँजीवादी विश्व की नेतृत्वकारी शक्ति के रूप में इसकी प्रतिष्ठा पर इसके परिणामस्वरूप आघात लगा।

संयुक्त राज्य अमरीका को वियतनाम पर हमला करने की वजह से भारी कीमत चुकानी पड़ी। इस युद्ध में सरकारी आँकड़ों के अनुसार अमरीका का सीधा खर्चा 1,410,000 लाख डालर से ऊपर था। संयुक्त राज्य की वायुसेना ने 70 लाख टन से अधिक बम गिराए, या द्वितीय विश्व युद्ध में सभी मोर्चों पर पश्चिमी मित्र देशों के द्वारा जितना बम भार गिराया गया उससे तीन गुना से अधिक बम लंबे समय से पीड़ित हिंद चीन की धरती पर गिराए गए। यह भी याद रखने योग्य है कि सन् 1968 के अंत तक वियतनाम में संयुक्त राज्य अमरीका के इन सैन्य अभियान दलों में 580,000 से अधिक सैनिक भाग ले चुके थे।

इन प्रयासों का परिणाम सुपरिचित है। आज अधिकाधिक संख्या में राजनैतिक एवं लोक-नेता इस बात को मानने लगे हैं कि विदेश नीति के हथियार के रूप में सेना की ताकत अब प्रासंगिक नहीं रही। दरअसल, हमने दक्षिण पूर्व एशिया में फौजी हस्तक्षेप का न केवल परास्त होना देखा है, अपितु सन् 1947 में ट्रूमैन नीति के तहत लागू की गई अमरीका की विश्वनीति का दिवाला भी देख लिया।

वियतनाम युद्ध के सबक, और मुख्यतया संयुक्त राज्य अमरीका के शासकीय गिरोह और दूसरी साम्राज्यवादी ताकतों के द्वारा अपनाई गई सोवियत संघ के प्रति आणविक ब्लैक मेल की नीति की निष्फलता की बढ़ती हुई मान्यता ने इस आवश्यकता को बढ़ा दिया है कि विदेश नीति में सैन्य शक्ति की धारणा और उसकी भूमिका के स्थान पर दूसरे उपाय किए जाएँ। अमरीका के राजनैतिक

पर्यवेक्षक यह नतीजा निकालते हैं कि न तो अब, और न भविष्य में ही, सैन्य कुशलता और क्षमता को राजनैतिक लाभों की एकमात्र गारंटी मानी जा सकती है। अमरीकी विद्वान् राल्फ एन० क्लों निम्नांकित अनुभव प्रकट करते हैं—"बड़ी ताकतों ने, कुछ हिचकिचाहट के साथ इस बात को मानना शुरू कर दिया है कि राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों के रूप में सैन्यशक्ति की उपयोगिता घटती जा रही है।"[1] वह आगे नोट करते हैं कि बिल्कुल ऐसी संभावना है कि भविष्य में भी ऐसी ही स्थिति कायम रहेगी, "दुनिया को अभी आगे के उस सैन्यशक्ति के पतन को और अधिक देखना है जिसे विदेश नीति के हथियार और दुनिया में सम्मान के मापदंड के रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा है।"[2]

अनेक पश्चिमी रणनीतिज्ञों ने इन विचारों को स्वीकार कर लिया है। उनका विश्वास है कि सैन्यशक्ति हमेशा राजनैतिक प्रभाव के बढ़ने की गारंटी नहीं होती। एक समय, फ़ौजी ताकत में नगण्य बढ़ोतरी भी ठोस राजनैतिक लाभ में रूपांतरित हो सकती थी किंतु अब यह असंभव है।

यह तथ्य बेहद लाक्षणिक है कि पश्चिमी राजनीतिज्ञ अब उस समीकरण चिह्न को हटा रहे हैं जिसे साधारणतया 'शक्ति' और 'सैन्यशक्ति' तथा 'सैन्यशक्ति' और 'अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव' के बीच लगाया जाता था। इससे यह जाहिर होता है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में नए और अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण पर क्रमशः ज़ोर दिया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में इनका जितना अधिक क्रियान्वयन होगा, इनका उतना ही अधिक स्वागत होगा।

इस प्रकार 'ताकत' कूटनीति, पर आधारित जो समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में धक्काशाही या मुक्काशाही के रूप में लाई जाती रही है, दिवालियापन की ओर बढ़ रही है। यह अकाट्य तथ्य सभी क्षेत्रों में ज़ाहिर होता है: वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति के विकास में, अथवा समाज के जीवन में सामाजिक-राजनैतिक रूपांतरणों में। दुनिया उस युग में पहुँच गई है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति की माँग है कि विश्व की तत्कालिक आवश्यक समस्याओं को सुलझाने के लिए नए मानदंड अपनाए जाएँ।

---

1. राल्फ एन० क्लों, पूर्वी एशिया और संयुक्त राज्य सुरक्षा, वाशिंगटन, 1975, पृ० 1
2. वही, पृ० 70

अध्याय : 10

अमिट शांति के आसार : मार्ग और प्रगाढ़ मैत्रियाँ

"क्या आप कृपा करके मुझे यह बताएँगी कि मैं यहाँ से किस ओर
जाऊँ ?"
"यह तो इस पर निर्भर करता है कि तुम कहाँ पहुँचना चाहते हो।"
बिल्ली ने कहा।

लेविस केरोल : "एलिसेज एडवेंचर्स इन वंडरलैंड"

सैन्य-उद्योग समूह : मानवता के लिए एक चुनौती

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के इतिहास में 1970 का दशक शांतिप्रिय शक्तियों
के पक्ष में गभीर परिवर्तनों का काल रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव शैथिल्य
शान्ति के लिए संकल्पबद्ध जन-संघर्ष का प्रतिफल है—हमारे इस वर्तमान सम
की अग्रगामी प्रवृत्ति बन चुकी है।

इन हालात में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी अपने शान्ति प्रयासों
पहले से अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान कर रही है। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी
25वीं कांग्रेस ने शांति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा जनगणों की स्वाधीनत
और स्वतंत्रता के लिए आगे के संघर्ष के कार्यक्रम को सूत्रबद्ध किया। निःशस्त्री
करण की समस्या उसका मर्म है :

—हथियारों की दौड़ समाप्त करो;
—सभी आणविक हथियारों के परीक्षण बंद करो;
—रासायनिक हथियारों पर प्रतिबंध लगाओ और उन्हें नष्ट करो;
—जनसंहार के हथियारों के नए प्रकारों और उनकी नई प्रणालियों के विका
पर प्रतिबंध लगाओ;
—सैनिक खर्चों में कटौती करो;
—अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में सैन्य-शक्ति का उपयोग न करने की विश्व सं

को अन्तिम रूप दो।

ये ठोस माँगें नि:शस्त्रीकरण की समस्या को व्यावहारिक स्तर पर ले आती हैं और समस्त मानवता के लिए सही मायने में टिकाऊ शान्ति के मार्ग को प्रशस्त करती हैं। जनसंहार के हथियारों से भरपूर इस दुनिया में इनके जरिए राजनैतिक तनाव-शैथिल्य से सैनिक-तनाव शैथिल्य की स्थिति में मानवता के रूपांतरण, सैन्यवाद पर अंकुश लगाने, युद्ध के भौतिक आधार को नष्ट करने और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की भरोसेमंद गारंटी के निर्माण के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

किन्तु शक्तिशाली ताकतें अभी भी अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य का विरोध करती हैं। सैन्य-औद्योगिक समूह, जो सैन्यवादियों और कारखानेदार उत्पादक इजारेदारियों का अपवित्र गठजोड़ है, आज भी युद्ध के हथियारों पर लगातार ज़ोर दे रहा है। साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद का प्रभावशाली गिरोह निरंतर पूँजीवादी देशों को आक्रामक कार्यवाही के लिए भड़काता है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के अनेक अड्डे—जो दुनिया के कई हिस्सों में सुलग रहे हैं—किसी भी क्षण सशस्त्र संघर्षों के रूप में भड़क सकते हैं। कभी भी वे सैन्य मुठभेड़ों के रूप में, चाहे मध्यपूर्व में, साइप्रस में, अंगोला में या दूसरे क्षेत्रों या देशों में आग की लपटों में बदल सकते हैं। हमलावर ताकतें तनाव को और अधिक बढ़ा रही हैं, हथियारों की दौड़ को तेज़ कर रही हैं, लड़ाइयों को भड़का रही हैं और पुराने प्रतिक्रियावादी सैन्य शासनों को सहायता और समर्थन दे रही हैं।

1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में एक विरोधाभास की स्थिति पैदा हो गई। शान्ति काल में—और वह भी तब जबकि संयुक्त राज्य अमरीका के शासक और अन्य पूँजीवादी देशों के शासनतंत्र सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार कर रहे थे कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य एक तथ्य है—संयुक्त राज्य अमरीका का सैनिक बजट द्वितीय विश्व युद्ध व कोरिया तथा वियतनाम के युद्धों के दौरान किये गये कुल सैनिक व्यय को पार कर गया। यह अमरीका के दो सौ वर्षों के अस्तित्व में भी कभी इतना ऊँचा नहीं रहा और अब उसका रुझान स्पष्टतया और अधिक वृद्धि की ओर ही दिख रहा है। सन् 1976 में वह बजट 114 बिलियन डॉलर था, और वाशिंगटन की भविष्यवाणी के अनुसार 1980 तक 150 बिलियन डॉलर और सन् 1985 तक वह 200 बिलियन डॉलर से अधिक हो जाएगा।[1]

यदि तुलना की दृष्टि से एक लंबी अवधि को लिया जाय, तो हम पाएँगे कि संयुक्त राज्य और दूसरे पूँजीवादी देशों के सैन्य खर्चों में तेज़ वृद्धि की यह सामान्य प्रवृत्ति और अधिक वृद्धि की ओर सुनिश्चित रूप से मुखरित हो रही है।

1. वाशिंगटन पोस्ट, 3 अप्रैल 1976

इसका अनुमान लगाया गया है कि संयुक्त राज्य अमरीका ने अपनी स्था[illegible] बाद के 150 वर्षों में, जिसमें प्रथम विश्व युद्ध के वर्ष भी शामिल हैं, [illegible] उद्देश्यों (इस अवधि के अंतिम दशक में वह पहले से ही सफलतापूर्वक [illegible] प्रसार और सैन्यवाद में यूरोपीय शक्तियों से मुकाबला कर रहा था) प[illegible] बिलियन डॉलर खर्च किए। सन् 1976 के आरंभ में प्रतिनिधि सभा को सं[illegible] करते हुए कांग्रेस के सदस्य जॉन सिबर्लिंग (डैमो० ओहियो) ने कहा कि पिछले तीन दशकों में ही, जबकि कहीं से भी संयुक्त राज्य की सुरक्षा को [illegible] नहीं था, वाशिंगटन ने अपने भिन्न-भिन्न शस्त्रीकरण कार्यक्रमों पर 1.6 बि[illegible] डॉलर खर्च किए। ऐसे सभी संकेत हैं कि भविष्य में यह चक्र और अधिक [illegible] तक पहुँच जाएगा। सन् 1980 में समाप्त होने वाले पाँच वर्षों में संयुक्त [illegible] अमरीका सैनिक उद्देश्यों पर कम-से-कम 630 बिलियन डॉलर खर्च करता [illegible] है।

संयुक्त राज्य अमरीका के साथ और प्रायः इसके सीधे दबाव में, अन्य [illegible]वादी देश भी शस्त्रीकरण पर अपने खर्चों को निरंतर तेजी से बढ़ा रहे हैं। [illegible] कहना पर्याप्त होगा कि सन् 1974 तक अपनी स्थापना के बाद के 25 व[illegible] दौरान नाटो के सैनिक खर्चे सीधे तौर पर सात गुना से अधिक बढ़ गए।

क्या इस मानव श्रम के दुरुपयोग, उत्पादन क्षमताओं और भौतिक साधन[illegible] अपव्यय का कोई अंत भी हो सकता है? आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्राविधिक [illegible] ने हथियारों की दौड़ को 'विनाश इकाइयों' की संख्या बढ़ाने के स्तर से स्था[illegible]तरित करके हथियारों की गुणात्मकता को सुधारने और सुपर-बम की खोज [illegible] की स्थिति में पहुँचा दिया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि सैनिक खर्चों [illegible] वृद्धि लगभग दुगोत्तर होती जा रही है।

विज्ञान और प्रविधि की प्रगति ने वैज्ञानिक अनुसंधान और उस[illegible] क्रियान्वयन—आविष्कार और उसके प्रयोग—के बीच के अन्तराल को बहुत कम [illegible] दिया है। सैन्य-औद्योगिक इजारेदारियों ने अपने यहाँ इस बात की भी गाँठ बाँध [illegible] है कि किसी भी उपलब्धि का हथियारों के उत्पादन में यथासंभव उपयोग कि[illegible] जाए। बारूद का उपयोग इसके आविष्कार के सैकड़ों वर्ष बाद। पहले-पहल युद्ध[illegible] किया गया था। और अग्नेयास्त्रों को पूर्ण करने में लगभग तीन सौ वर्ष लगे। अ[illegible] यह सैद्धांतिक तौर पर संभव है कि बिना किसी व्यवधान के किसी वैज्ञानिक आवि[illegible] [illegible] को तत्काल प्रयोग में लाया जा सके। [illegible] में समस्त सेनाओं का विना[illegible] [illegible] के विकास में [illegible] [illegible] इसके एकदम विपरीत है - युद्ध के साधनों की प्रभावशीलता भी बढ़ती है और [illegible] [illegible] हुआ है। इस प्रकार विज्ञान आज [illegible] की आवश्यकताओं की पूर्ति [illegible] के रूप में अनुकूल बनता है।

समकालीन अवधि के इस महत्व पर जॉन फुलर—जिन्होंने द्वितीय विश्व-युद्ध का अध्ययन किया था—ने ध्यान दिया था। उन्होंने लिखा—"इसका क्या अर्थ है ? कि विज्ञान ने जुड़कर नागरिक संगठन की बजाय सैन्य-संगठन ने नेतृत्व हथिया लिया···

"इस प्रकार विज्ञान को युद्ध द्वारा अनुशासित कर दिया गया ताकि युद्ध राज्य की पुख्ता नींवें डाली जा सकें—शान्ति-राज्य में इसे जितना अनुशासित किया गया था उससे कहीं अधिक। यदि लगातार ऐसा ही चलता रहा, और निससंदेह ऐसा ही होगा भी, तो यह सभ्यता को उस स्थायी आधार पर टिका देगा जिसे 'युद्धपरता' कहा जा सकता है; ऐसी स्थिति में आदमी की प्रतिभा का केन्द्रबिन्दु रचना नहीं विनाश होगा।"[1]

वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति का हथियारों के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का दूसरा पहलू यह है कि वह उनके अप्रचलन व अनुपयुक्तता का कारक बनता है। आदमी ने धनुष को हजारों वर्षों तक काम में लिया था, राइफलों को सदियों तक और एक ही प्रकार के टैंकों, हवाई जहाजों और युद्धपोतों का सशस्त्र सेनाओं द्वारा कई दशकों तक उपयोग किया जाता रहा। किन्तु आज ऐसा नहीं है, आधुनिक हथियार वस्तुतः कुछ ही वर्षों में अनुपयोगी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए लड़ाकू वायुयानों और मिसाइलों की औसत जीवन-अवधि पाँच से सात साल से अधिक की नहीं होती।

अतः समकालीन स्थितियों में हथियारों को उसी तेजकदमी से परिष्कृत करना पड़ता है, और ऐसा लगभग सभी क्षेत्रों में करना होता है, उसी तीव्र गति से जिसमें विज्ञान एवं प्रविधि विकसित हो रहे हैं। आज जब दर्जनों और सैंकड़ों उद्योग सब प्रकार के हथियारों के विकास में भाग ले रहे हैं, यह अत्यन्त कठिन होता जा रहा है और कभी-कभी तो असंभव-सा कि उत्पादन की नागरिक और सैनिक शाखाओं के बीच स्पष्ट रेखा खींची जा सके। युद्ध-उद्योग आधुनिक उत्पादन के सभी क्षेत्रों में घुसपैठ कर रहा है, अपने हिस्से की आदेशात्मक माँग कर रहा है और हर जगह ऊपर की मलाई हड़प रहा है।

परिणामस्वरूप सैन्य-उपकरण—जिसे विज्ञान तथा प्रविधि के तीव्र विकास के साथ कदम मिला कर चलना पड़ रहा है—की कीमत में भीमकाय बढ़ोतरी हो रही है। अस्त्रों को रद्दी धातु में बदल जाने से रोकने के लिए इसे लगातार अपनी आधुनिकतम उपलब्धियों को आत्मसात करना पड़ रहा है—धातुकर्म और प्रकाशतंत्र

1 जे॰ एफ॰ सी॰ फुल्लर, 'द्वितीय विश्वयुद्ध', 1939-45 पृ॰ 409

से इलैक्ट्रोनिक्स और माइक्रोनैटिक्स तक।'

कुछ वर्ष पहले यूनेस्को 'कूरियर' ने लिखा था कि संयुक्त राज्य अमरि त्रिशूली पनडुब्बी सन् 1979 में पूरी कर दी जायगी जिसकी कीमत 1 लाख डालर होगी, जो मोरक्को के वार्षिक बजट के दुगने के करीब होती है

आज भी हालात ऐसे ही हैं। सन् 1976 तक दुनिया में सेना का स्रोतों के अनुसार 250 बिलियन डालर तथा अन्य के अनुसार 300 बिलि दोनों में से एक भी संख्या अफ्रीका, दक्षिणी एशिया और मध्यपूर्व के देशों क राष्ट्रीय आय को एक साथ मिलाने पर भी उससे अधिक ऊँची रहेगी। और दस, बीस या तीस वर्षों में ये खर्चे कितने बढ़ जाएँगे ? यदि हथियारों की समाप्त नहीं किया गया तो भावी पीढ़ियों के लिए कितनी खराब जिन्दगी आएगी ?

पूंजीवादी देशों में सैन्यवाद का वर्तमान शोधोन्माद इजारेदारियों द्वारा है, सबसे बढ़कर संयुक्त राज्य अमरीका के औद्योगिक समूह द्वारा, जिसकी शांत ही नहीं होती। यह एक साधारण-सी बात है कि शस्त्र उद्योग के लाभ न उद्योग शाखाओं की अपेक्षा दुगुने ऊँचे हैं या वे उनसे आगे हैं। खून सूंघने वाले जीवों की तरह, पूंजीपति अपने मुनाफों को बढ़ाने के लिए कोई मौका पाते ही पड़ता है, तथा युद्धादेशों के लिए पापमय घिनौने प्रतियोगी संघर्ष में घुस जात स्वभावतः अधिक शक्तिशाली निगम सबसे ऊपर आ धमकते हैं, इसलिए कि यारों का निर्माण बड़े पैमाने की पूंजी वाला प्राथमिकता प्राप्त प्रभाव क्षे चुका है। और यही वह ताकत है जो संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य साम्र वादी शक्तियों की सरकारों पर और उनकी घरेलू तथा विदेशी नीति पर अधिक प्रभाव रखती है।

विश्व का प्रेस संयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति ड्वाइट

1. निम्नांकित आँकड़े हथियारों की कीमत के गतिविज्ञान को जाहिर करते हैं—

प्रकार	53 218	1972 (1,000 डालर)	वृद्धि (कितना गुना)
लड़ाकू विमान	70	12,000	226
बमवर्षक विमान	4,700	30,000	138
टैंक	8,700	900	13
सबमैरिन	55,000	175,000	37
विध्वंसक	1945	200,000	23
विमान वाहक	(1,000 डालर)	900,000	18

देखिए : ओ॰ एम॰ कुजमिन, 'सैन्य-औद्योगिक संस्थान', मास्को, 1974, पृ॰ 91

(क्रमी

2. यूनेस्को कूरियर, दिसंबर 1975

आइजनहावर के उस विदाई भाषण को प्रायः उद्धृत करता है जो जनवरी 1961 में दिया गया था और जिसमे उन्होंने निम्नांकित अनुभव प्रकट किया था—"विशाल सैन्य प्रतिष्ठान तथा बड़े शस्त्र उद्योग का संयोजन अमरीकी अनुभव में एक नई चीज है। इसके कुल प्रभाव—चाहे आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक ही क्यों न हों—को हर शहर मे महसूस किया जा रहा है, हर राजकीय भवन और संघीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय मे महसूस किया जा रहा है। हम इसके विकास की आदेशात्मक आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। तो भी हमें इसके गंभीर निहितार्थों को समझने में भूल नहीं करनी चाहिए"'।

"सरकार की परिषदों में हमें इसके अनुचित प्रभाव की उपलब्धि के खिलाफ चेतावनी देनी चाहिए, चाहे सैनिक-औद्योगिक समूह के द्वारा इसे चाहा गया हो अथवा न चाहा गया हो।"[1] और जब इस वक्तव्य का हवाला दिया जाता है तो लगभग प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से दूरदृष्टि से सपन्न तथा निरर्थक मानता है।

संयुक्त राज्य अमरीका का सैन्य-औद्योगिक समूह जो तेजी से विगत पन्द्रह वर्षों से बढ़ रहा है, ने एक ऐमी राष्ट्रव्यापी घटनाक्रिया के रूप मे विकास कर लिया है जो वस्तुतः अमरीकी राष्ट्र के जीवन के समस्त क्षेत्रों मे घुस जाती है। इसने अभूतपूर्व आयाम तथा स्वायत्त स्वरूप ग्रहण कर लिया है। यह अपने ही कानूनों के अनुसार जीवित रहता है, इससे भी अधिक यह कि वह सारे समाज पर उन्हें थोपने की कोशिश करता है। लियोनिद् ब्रेझनेव ने इस सम्बन्ध में नोट किया—"व्यावसायिक सैन्यवादियों और इजारेदारियों का अपवित्र गठबंधन युद्ध के हथियारों की बदौलत भाग्यों का निर्माण कर रहा है, जिसे आम तौर पर सैन्य-औद्योगिक समूह के नाम से पहचाना जाता है, इन देशो में वह एक तरह से 'राज्य के भीतर अलग राज्य' बन चुका है और उसने ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिसे आत्म निर्भर कहा जा सकता है।"[2]

संयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य पूंजीवादी देशों में सैन्यवाद की बढ़ोतरी ने सैन्य-औद्योगिक समूह के दबाव के अधीन अभूतपूर्व सवेग प्राप्त कर लिया है।

किन्तु यह वृद्धि फिलहाल उस अवस्था को पहुँच रही है जहाँ तख्ती पर संकेत है जो कहता है—"ठहरो, सड़क बन्द।" समकालीन सैन्यवाद का अतिप्राचीन आयाम, तथा हथियारो की दौड़ की निरर्थकता आपस मे मिलकर—सैन्य-औद्योगिक समूह के निरन्तर गहराते सकट वातावरण ही बनाते हैं।

अपने अन्तर्राष्ट्रीय लक्ष्यों की दृष्टि से साम्राज्यवाद की सैनिक क्षमता क्रिया-

---

1. ड्वाइट डी० आइजन हावर "द व्हाइट हाउस इयर्स, वेजिंग पीस 1956-1961, लदन पृ० 616
2. एल० आई० ब्रेझनेव 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण' मास्को, 1975 पृ० 320

हाल उन सीमाओं को पार कर गई हैं, जिनमें रहकर अपने वर्चस्व के लिए स
उनका उपयोग कर सकती थी, तथा राजनैतिक लक्ष्यों की सीमाओं से भी पी
गयी है। समकालीन पूंजीवाद ने एक ऐसी तलवार निर्मित की है जिसे वह
खींच सकता है और न ही उठा सकता है, बशर्ते वह स्वयं को नष्ट करने की जं
ही मोल न ले ले। एक बार नेपोलियन ने इच्छा व्यक्त की थी कि कितना
होता यदि उसके पास तोपखाने की जगह विद्युत होती। आज जब प्रबल शत्रु
पास आणविक मिसाइलें हैं और एक-दूसरे को कई बार नष्ट कर सकने की स
है तो आगे के लिए हथियारों की दौड़ बेतुकी हो जाती है।

हथियारों की दौड़ के आर्तरिक पहलू क्या हैं? एक निश्चित अवस्था में
वाद अनिवार्यतः आर्थिक सीमाओं तक पहुँच जाएगा जिनके परे उसका भावी वि
राज्य की आंतरिक सुदृढ़ता को एक खतरा बन जाएगा। जैसाकि ड्वाइट
आइजनहावर ने कहा है—"सैनिक प्रतिष्ठान, जो स्वयं में उत्पादक नहीं है
निश्चित रूप से देश की ऊर्जा, उत्पादकता और विचारशक्ति को अपने उपभोग
वस्तु बनाता है और यदि वह बहुत ज्यादा हड़प लेता है, तो हमारी कुल शक्ति
जाती है।"[1] तब से अमरीका का सैन्य-औद्योगिक समूह कैंसर की गांठ के स
फूल कर मोटा हो गया है तथा सारे आर्थिक ढांचे को पीड़ित कर रहा है—सम
पूंजीवादी बाजार में, इसके साथ ही, कर-वृद्धि तथा मुद्रा-स्फीति एवं मुद्रा-संकटों
वृद्धि परिलक्षित होने लगी है। अब अधिकाधिक अमरीकी वैज्ञानिक अपने आ
पूछते हैं कि क्या वह समय आ गया है, या ठीक नजदीक आ रहा है, जब सै
आवंटनों की वृद्धि का देश की आर्थिक स्थिति पर अधिकतम हानिकारक प्रभ
अनुभव किया जा सकेगा।

इस समस्या का सामाजिक-राजनैतिक पहलू भी बहुत विचारणीय मह
रखता है। श्रमिक जन-समूह अनिश्चित काल तक इस तथ्य को बर्दाश्त नहीं
सकता कि उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकताएं सैन्य-औद्योगिक सम
—जो राष्ट्र के खून को बहाता है—की बलिवेदी पर चढ़ाई जाती रहें।

अतः सैनिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक कारण सैन्यवाद को वस्तु
सीमित करते हैं और निःशस्त्रीकरण के पक्ष में काम करते हैं। अब प्रश्न यह है कि
दुनिया की राजनीति की विशिष्ट समस्याओं पर उनका प्रभाव कितनी तेजी
बढ़ेगा।

इस विषय में लियोनिद ब्रेझनेव ने शान्ति शक्तियों के विश्व सम्मेलन में अपन
अनुभव व्यक्त करते हुए कहा—"कहना न होगा कि साम्राज्यवाद के हमलाव
विरोधी द्वारा इधर हथियारों की दौड़ का विस्तार किया जा रहा है तथा अन्य

---

1 'करेंट्स्पन रिकॉर्ड' अंक 6, 1970, पृ० 82

राष्ट्रीय तनावशैथिल्य—जो अब शुरू हो चुका है—दो प्रक्रियाएं हैं जो विपरीत दिशाओं में गतिशील हो रही हैं। वे अनन्त काल तक समानान्तर रेखाओं की तरह साथ-साथ विकास नहीं कर सकतीं।"[1]

अब चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के राजनैतिक सुधार की दिशा में प्रथम गंभीर कदम उठाए जा चुके हैं, मुख्य समस्या—जो दुनिया के भविष्य पर विचारणीय प्रभाव डालती है—वह है हथियारों की दौड़ को समाप्त करना। आज अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को सुदृढ़ करने का अन्य कोई रास्ता नहीं है सिवाय राजनैतिक तनाव-शैथिल्य में सैनिक तनाव-शैथिल्य को और बढ़ाना और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के आधार पर सर्वतोमुखी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना। यही स्पष्टतः वह नीति है जिसका सोवियत संघ और दूसरे समाजवादी देश अनुसरण कर रहे हैं।

रणनीतिक प्रचुरता की धारणा

वे पश्चिमी विद्वान, जो यह भ्रम पाले हुए हैं कि वे डरा-धमका कर या धौंस-पट्टी से अपने राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं, एक भिन्न क़िस्म की मुद्रा धारण कर लेते हैं। हाल ही में पिछले दिनों यह स्पष्ट हुआ कि उनमें से अधिकांश की 'युद्ध' शब्द में कोई रुचि नहीं है तथा वे घोषणा करने लगे हैं कि यह आवश्यक हो गया है 'संघर्ष से हटकर बातचीत के युग में' प्रवेश किया जाय। तो भी सैनिक कार्रवाइयां जो ताकत की स्थितियों द्वारा निर्धारित नीति के नतीजे हैं—दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में भड़क उठती हैं। भिन्न-भिन्न बहानों के अधीन दबाव का उपयोग किया जाता है, अन्तरराष्ट्रीय कानून और प्रतिबद्धताएं रौंद दी जाती हैं तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियां हठपूर्वक एकतरफा लाभों के लिए लड़ रही होती हैं। हथियारों की दौड़—जोकि युद्ध की बुनियाद है—निरन्तर बढ़ती हुई मात्रा में जारी रह रही है।

जनवरी सन् 1976 में संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति जेराल्ड फोर्ड ने अपने संघीय संदेश में कहा—"हमारी सैन्य शक्तियां सामर्थ्यवान और तैयार हैं...। हम लगातार अपनी सैनिक शक्तियों की कुशलता को बढ़ाने की दृष्टि से ही अपनी अर्थव्यवस्थाओं को बनाते हैं। जो बजट मैं प्रस्तुत करने जा रहा हूं उसमें अमरीकी शक्ति की वह आवश्यकता व्यक्त हो रही है जो कि उस वास्तविक दुनिया के लिए आवश्यक है जिसमें हम रहते हैं।"[2]

कुछ समय बाद उन्होंने एक साक्षात्कार में अपने वक्तव्य के तात्पर्य की व्याख्या की—"अब मैं 'तनाव शैथिल्य' शब्द का प्रयोग कतई नहीं करता, मैं सोचता

1 एल० आई० ब्रेझनेव 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण' 1975, पृ० 319

2. द न्यूयार्क टाइम्स, 23 जनवरी 1976

हूँ कि हमें जो कहना चाहिए वह यह कि संयुक्त राज्य महान् शक्तियों—सोवियत संघ, जिसके साथ चीन और अन्य देश होंगे—के साथ मिलेगा और तनावों को शिथिल करने की कोशिश करेगा ताकि हम शान्ति की नीति को ताकत के माध्यम से जारी रख सकें।"[1]

(ज़ोर मेरा—वी० के०)

यह पारिभाषिक शब्दावली का प्रश्न नहीं है। आखिर, यदि किसी खास कारण से राष्ट्रपति कोई 'तनाव-शैथिल्य' शब्द को पसन्द नहीं करते थे तो वह उसकी जगह और दूसरा शब्द काम में लेने के लिए स्वतंत्र थे। फिर भी जो समानार्थी शब्द प्रयोग किये गये वे थे—"शान्ति की नीति, ताकत के माध्यम से।"

इस कथन का क्या मतलब है? पश्चिम में 'भय के संतुलन' के माध्यम से शांति का कुख्यात विचार शीत युद्ध के अर्थ में समझा जाता है। यहाँ कुछ उदाहरण हैं जो *तथाकथित यथार्थवादी राजनैतिक पर्यवेक्षकों* की मौलिक रचनाओं से उद्धृत किए गए हैं, जो प्रत्यक्षतः अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य का समर्थन तो करते हैं, फिर भी हथियारों की दौड़ को जारी रखने की वकालत करते हैं।

"*डराना-धमकाना तनाव-शैथिल्य का विलोम नहीं है*, जैसी कि मौलिक परिवर्तनवादी विचारकों की राय है, किन्तु इसकी पूर्वपिक्षा है। यदि तनाव-शैथिल्य के लिए प्रयत्न करने में डराने को अस्वीकार कर दिया जाता है तब यह केवल पूर्वगामी व्यवस्था को ही हानि पहुँचाएगा।"[2]

एक और दृष्टिकोण है, जो भी ठीक उतना ही *विरोधाभासपूर्ण* है, "हथियारों की होड़ तनाव-शैथिल्य का एक स्थायी लक्षण रहेगा।···अभी तक मोटे तौर पर बराबरी कायम हो पाई है तथा तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया तेज हो गई है, किन्तु *एक हल्का-सा अप्रत्याशित असंतुलन भी राजनैतिक तनावों को पैदा कर देगा* जिसके परिणामस्वरूप यह नाज़ुक प्रक्रिया खतरे में पड़ जाएगी।"[3]

दो अन्य अमरीकी राजनीतिज्ञों, मस्की और ब्रोक, का विश्वास है कि तनाव-शैथिल्य शक्तिशाली सुरक्षात्मक क्षमता की आवश्यकता को समाप्त नहीं करता, *जिसका मतलब है कि संयुक्त राज्य अमरीका को ऐसा करना पड़ेगा।*

यहाँ 'नई' यथार्थवादी नीति के प्रतिपादक, या *'यथार्थवादी'* *'निरोध'* के सिद्धांतकार पुरानी कहावत के अनुसार ठीक तरह से वर्णित किए जा सकते हैं—"नहीं जानते हुए कि क्या किया जाना है, वे वही कर रहे हैं जो वे जानते हैं।" ये

---

1. द न्यूयार्क टाइम्स, 2 मार्च 1676
2. वोल्फ़ैम वॉन रैवन, शिफ़्टडीट इम स्पानुन्सफ़ैल्ड डर इन्टस्पानुंग, बोन, 1972 पृ० 55
3. मॉरिस एल स्टैटन, "कन्टैम्पोरेरी अमेरिकन फ़ॉरेन पॉलिसी, मिनिमल डिप्लोमेसी, डिफ़ेंसिव स्ट्रेटेजी, एंड डिटेन्ट मैनेजमेंट" लेक्सिंग्टन, मासाचुसेट्स टोरन्टो, लन्दन, 1974, पृ० 216, 217

'यथार्थवादी चिंतक' विश्व राजनीति में नए दृष्टिकोणों को अपना समर्थन व्यक्त करने की कितनी ही कोशिश क्यों न करें, वे, दरअसल, पुराने दृष्टिकोणों से ही चिपके रहना चाहते हैं, क्योंकि सैनिक शक्ति का उपदेश देकर वे वास्तव में धक्का-शाही के युग में लौट जाने की ही वकालत करते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य के जवाब में, हाल ही के वर्षों में उभरी 'यथार्थ-वादी निरोध' की अवधारणा—अमरीका एवं अन्य पूंजीवादी देशों के बहुत-से राजनीतिज्ञ जिसके पक्षधर हैं—मूलतः अंतर्विरोधों से भरी हुई है।

साम्राज्यवाद के 'परमाणविक इजारेदारी' से 'परमाणविक महानता' में और 'परमाणविक महानता' से 'परमाणविक समता' में अर्थात् एक हद तक समाजवाद के साथ सशस्त्र शक्ति के संतुलन में संक्रमण ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्रमिक समेकीकरण को चिन्हित किया। सशस्त्र शक्तियों के संतुलन में परिवर्तन, प्रमुखतः सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका के बीच में संतुलन का परिवर्तन, तेजी से साम्राज्यवाद की हमलावर प्रवृत्तियों को बढ़-चढ़कर नियंत्रित करता है और संयुक्त राज्य अमरीका के शासक गिरोह को मजबूर करता है कि वह 'विशाल प्रतिरोध' की खुली जंगखोर नीति को 'उदार प्रत्युत्तर' की नीति के रूप में तब्दील करे, जिसे कि नई स्थिति में और अच्छी तरह लागू किया जा सकता है। यह संतुलन उन्हें 'यथार्थवादी निरोध' के रूप में व्यक्त नवीनतम अवधारणा का स्थानापन्न खोजने के लिए भी विवश करता है।

दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की सुदृढ़ता की प्रक्रिया अभी तक पर्याप्त मात्रा में समेकित नहीं हो पायी है तथा नितांत अंतर्विरोधी और अनिश्चित बनी हुई है। 'यथार्थवादी निरोध' की नीति (जिसे 'डराने-धमकाने के माध्यम' से सफलतापूर्वक प्राप्त किया जाना है) को किसी भी तरह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के विकास के लिए स्वीकार्य आधारभूमि के रूप में नहीं माना जा सकता। दरअसल यह उसी 'आतंक के संतुलन' की नीति की निरंतरता ही है।

वर्तमान परिस्थिति ऐसी नहीं है इतिहास में जिसके समतुल्यों का अभाव हो। इतिहास ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है जबकि विशिष्ट किस्म की परिस्थितियों के कारण, नीति विशेष ने अपना खुद का संवेग प्राप्त कर लिया, तथा उसे जन्म देने वाले कारणों के अस्तित्वहीन हो जाने के लंबे समय बाद, जो कार्य रूप में परिणत हो पाई। यथार्थ का विरोध करते हुए इस प्रकार की नीति प्रायः ऐसे अंतर्राष्ट्रीय गतिरोधों में बदल गई जिन्हें युद्ध के द्वारा ही सुलझाया जा सका। राजनीतिज्ञों ने हठपूर्वक जितना अधिक इस मार्ग का अनुसरण किया, इसका दुखद परिणाम उतना ही अधिक संभाव्य बनता गया।

हमारे आणविक युग में अंतर्राष्ट्रीय विरोधों को सैनिक उपायों से सुलझाने की बात जाहिरा तौर पर मनुष्य के अस्तित्व के लिए ही खतरा उत्पन्न कर देती

है। 'यथार्थवादी दिशा' के प्रतिनिधि यह स्वीकार करते हैं। ऐसा लगता है कि परिणामस्वरूप वे परंपरागत 'शक्ति की नीति' को पूरी तरह संशोधित कर लेंगे तथा निःशस्त्रीकरण की तरफ़ मुड़ जाएँगे। तो भी, अभी वे 'यथार्थवादी' इस स्थिति में ऐसे आवश्यक निष्कर्ष निकालने को तत्पर नहीं दिखते। असामंजस्यपूर्ण विरोधी तत्वों को समन्वित करना उनका लक्ष्य है : एक ओर तापनाभिकीय युद्ध को समाप्त करने की महती आवश्यकता को स्वीकार करना और उसके साथ ही हथियारों की दौड़ को जारी रखने का समर्थन करना।

'यथार्थवादी' नीति के प्रतिपादकों के विचारों से कम-से-कम दो नतीजे निकाले जा सकते हैं। सर्वप्रथम, वे विचार पूँजीवादी राजनैतिक चिंतन के विकास की उस अवस्था से जुड़े हैं जो 'परमाणविक गतिरोध' से उलझी हुई हैं, और दूसरे, वे समस्या के सकारात्मक समाधान की खोज की निरर्थकता को प्रमाणित करते हैं।

अपने समय में हेनरी किसिंजर, तब तक जो हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अल्प-ख्यात प्रोफेसर मात्र थे, ने उस विरोधाभास वाली स्थिति का मूल्यांकन करने में अन्योक्ति का सहारा लेते हुए उसे 'अतिमार क्षमता' कहकर परिभाषित किया था। दो वैमनस्यपूर्ण आदिवासी जन-जातियाँ ज़हरीले तीरों से लैस एक गहरी घाटी में आमने-सामने रहती है और दोनों ही दुश्मन पर मरणातक चोट करने की सामर्थ्य से सपन्न हैं। किन्तु इससे पहले कि चोट खाए दुश्मन पर ज़हर का असर हो दूसरी जनजाति भी प्रत्याक्रमण कर सकती है। इसका अर्थ यह है कि पहले हमला करने वाला मैदान मार नहीं पाएगा। विनाश दोनों का होगा।

फिर भी, सारा सकेत इस ओर है कि साम्राज्यवाद इस निष्कर्ष को मानने से इन्कार करता है। वह घुमावदार रास्तों की तलाश करता है ताकि वह अपने आपको किसी प्रकार से अधूरी स्वीकृतियों तथा आधे मन से किये गये प्रयासों—जो संपूर्ण समस्या का हल कर ही नहीं सकते—तक सीमित रख सके। वह पुरानी नीति को जारी रखने के लिए नए अवसर ढूँढ़ता है।

किसिंजर को भी विश्वास है कि अमरीका अपनी सारी योजनाओं का आधार इस मान्यता को नहीं बना सकता कि युद्ध, यदि शुरू हो जाय तो वह सार्वभौम होगा, अतः उनका कहना है कि एक ऐसी रणनीतिक धारणा की खोज की जानी चाहिए जो अमरीका के कूटनीतिज्ञों को अधिकाधिक कार्य स्वतंत्रता प्रदान करे और साथ ही इस बात का पता लगाने में मदद करे कि आणविक युग क्या वास्तव में भयाक्रांत ही रहेगा।

पश्चिमी रणनीतिज्ञों ने, इन नए मौक़ों की इस रूप में खोज तथाकथित सीमित युद्ध नीति के रूप में की, तथा 1960 के दशक के आरंभ में इसका बेहद व्यापक ... हुआ। इसके सिद्धान्तकार यह सलाह देते थे कि शक्तिशाली दुश्मन की

महज बुद्धि पर भरोसा किया जाय। उनका कहना था कि चूंकि एक संपूर्ण युद्ध आत्मविनाश की आशंका को व्यक्त करता है, इसके काल्पनिक भागीदारों में यह पर्याप्त समझ होगी कि वे उसे सम्पूर्ण विनाश की ओर न ले जाएं। यह संभव है कि उसे बीच में ही रोक दिया जाय और छोटे-से युद्ध (आणविक हथियारों के 'सीमित मात्राओं में प्रयोग पर आधारित') से सन्तुष्ट रहा जाय। उनका दावा था कि ऐसे छोटे युद्धों को, आणविक संघर्ष की तुलना में, नियंत्रित किया जा सकता है।

यह स्पष्ट है कि 'सीमित युद्ध' की धारणा केवल एक ऐसा उपेक्षाभाव है जो आणविक युग की नई गुणात्मक परिस्थिति को अनदेखा करता है। इस प्रकार इससे यह भ्रम पैदा किया गया कि शोषक वर्ग की परम्परागत नीति—जो दादागीरी, ब्लैकमेल और हिंसा की नीति है—को बिना किसी गम्भीर संशोधन के आगे भी जारी रखा जा सकता है। इस नीति के समर्थन में जो दलीलें दी गयी थीं वे केवल महाप्रभुओं के अलिखित समझौतों के संदर्भ—दोनों अतिवादी छोरों से बचने से सम्बन्धित—तक सीमित थीं, क्योंकि अन्त सार्वभौम विनाश का भय ही अंतर्राष्ट्रीय नीति में शक्ति के विवेकशील प्रयोग को जन्म दे सकता है। ऐसी तर्कसंगति को कैसे आश्वस्त किया जा सकता था, और वह क्या आकार ग्रहण करती, और कौन-सी ऐसी प्रभावशाली गारंटियाँ थीं कि जिनसे आणविक शक्तियाँ इसका समर्थन करेंगी—ये सब महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं जिन्हें अनुत्तरित छोड़ दिया गया है।

अतः कोई आश्चर्य नहीं कि 'सीमित युद्ध' की अवधारणा का बचाव करना बेहद कठिन सिद्ध हुआ—खासकर इसलिए भी कि 1960 के दशक में ही, सैनिक रणनीति एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के पश्चिमी विशेषज्ञ इसे पर्याप्त संदेह की दृष्टि से देखने लगे थे। उदाहरण के लिए, जार्ज केनन की टिप्पणी बेहद विवेकसम्पन्न थी, "यह मानना कि परमाणविक युद्ध की स्थिति में दुश्मन के साथ हथियारों की विनाश क्षमता तथा उनके निशानों (जहाँ वे मार करेंगे) के बारे में किसी प्रकार का अलिखित अथवा कामचलाऊ समझौता सम्भव हो पायेगा, मुझे एकदम क्षीण तथा शेखचिल्ली की जैसी आशा प्रतीत होती है।"[1]

प्रतिष्ठित अमरीकी विद्वान हेन्स मॉर्गेन्थो ने भी सीमित युद्ध की नीति की आलोचना की थी। महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रारंभ में इस विचार के प्रति उनकी भी आस्था थी। किन्तु इससे दूर जाते-जाते अन्त में वह इसके विरोधियों के बीच में पहुंच गये। उन्होंने ठीक ही नोट किया कि परमाणविक युद्ध कोई शतरंज का खेल तो है नहीं जहाँ हर स्थिति को शांति से धैर्य से परखा जाता है। इसकी एक-एक चाल किन्हीं खास स्थायी नियमों के अधीन नहीं होती क्यों हो यह शुरू हुई कि

1 जॉर्ज एफ. केनन, रशिया, दि एटम एंड द वेस्ट, न्यूयॉर्क, 1958, पृ० 57-58

यह विश्वविनाश में परिणत हो जाएगी। फलस्वरूप, सामरिक शक्ति को विशेष नीति के उद्देश्यों के साथ जोड़ने की किसी भी कोशिश को आणविक हथि-यारों की अभूतपूर्व विनाशात्मक शक्ति ने समाप्त कर दिया।

फिर भी सीमित युद्ध की धारणा को इसके स्पष्ट दिवालियापन के बावजूद पश्चिम में समर्थक मिल जाते हैं, खास तौर से तब जब इजारेदारियाँ सैनिक खर्चों को बढ़ाना चाहती हैं। बहुत समय नहीं गुजरा, जबकि सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका [illegible] (सान्ट) अर्थात् [illegible] शस्त्र-सीमीकरण संधि की बातें कर ही रहे थे, कोई प्रशासन में पूर्णतः [illegible] के प्रमुख [illegible] शत्रु पर युद्ध [illegible] के हमलों — शत्रु को स्थायी तौर पर सदमा पहुँचाने व व्यापक पैमाने वाले अंतिम उत्तर भी इसमें सम्मिलित थे — की योजना लेकर आगे आये।

विरोधाभास, अब जबकि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया को विश्व-जनमत द्वारा औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है, इस प्रकार के अंग-नीति के वक्तव्य 1970 के दशक की मुख्य राजनीतिक प्रवृत्तियों के संदर्भ में सर्वथा बेतुकापन ही प्रकट करते हैं। यही कारण है कि 'यथार्थवादी दिशा' के भाष्यकार उन धारणाओं के साथ काम करना चाहते हैं जो युग-चेतना के अधिक अनुरूप होती हैं। वे शांति के लिए बोलते हैं, किन्तु इस सीमा में बँधे हुए कि, इसे 'शक्ति संतुलन' पर आधारित होना चाहिए। यहाँ यह समझना आसान होगा कि तथाकथित यथार्थवादी सिर्फ सीमित युद्ध के प्रतिपादकों की नीति को ही जारी रख रहे हैं। हिंसा और हथियारों की दौड़ से पीछे हटने में वे कठिनाई महसूस करते हैं, और यही नहीं, वे अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा को मुख्य गारंटी के रूप में आणविक बराबरी की चर्चा भी करते हैं।

आणविक गतिरोध युद्ध को अर्थहीन बना देता है, 'यथार्थवादी' इस बात को जोर देकर कहते हैं। किन्तु समसामयिक अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विश्वव्यापी युद्ध को अस्वीकार करते हुए और कठोर तरीकों के एक निश्चित अवमूल्यन के लिए लगातार अनिच्छा से माँग करते हुए भी वे एक ही साँस में हथियारों की दौड़ को जारी रखने की 'आवश्यकता' को सिद्ध करने की कोशिश भी करते हैं। उनके तर्क के अनुसार हमारे समय में शांति और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा केवल तभी सुनिश्चित हो सकती है जबकि शक्तिशाली दुश्मन आपस में एक-दूसरे को आत्म-विनाश की धमकी से डराते रहें, जिसका अर्थ है कि 'आतंक का संतुलन' उन्हें लगातार काबू में रखता रहेगा। अतः 'यथार्थवादी' इस स्थिति को कायम रखना जरूरी समझते हैं, जबकि उनकी राय में निःशस्त्रीकरण शक्ति-संतुलन को उलट देगा और इस प्रकार युद्ध की संभावना बढ़ा देगा। उनकी राय में, इसके विपरीत 'भय का संतुलन' जितना अधिक मजबूत होगा, ध्रुवीकृत संघर्ष में उतनी ही अधिक ताकत

होगी। किसिंजर ने लिखा था—"अस्थिरता तब अधिक होगी जबकि दोनों पक्षों के पास दस-दस मिसाइलें हों, इसकी तुलना-सतुलन उस समय ज्यादा मजबूत हो जायगा, यदि प्रतिपक्ष के पास मानो 500 मिसाइलें हों।"[1]

तर्क पद्धति की इस धारा का निहितार्थ यह है कि हथियारों की दौड़ कोई बुराई नहीं है बल्कि यह एक वरदान है जो स्थिरता कायम करने की सकारात्मक भूमिका का निर्वाह करती है, एक प्रकार की शांति की गारंटी है। संक्षेप में, हथियारों की दौड़ को निःशस्त्रीकरण के समतुल्य विकल्प के रूप में घोषित किया जाता है। यह तर्क न केवल खतरनाक है, बल्कि आत्मघाती भी है। किन्तु इससे 'यथार्थवादियों' को एक मौका मिल जाता है ताकि वे शांति और राजनैतिक तनाव-शैथिल्य के पक्ष में बोल सकें और साथ ही और किसी भी ऐसे प्रस्ताव का विरोध कर सकें जो सैनिक तनाव-शैथिल्य और निःशस्त्रीकरण को आगे बढ़ाने वाले हों। इससे यह संभव हो जाता है कि चिंतन के स्तर पर जन भावना की कद्र करने के साथ ही सैन्य-औद्योगिक समूह के हितों की हिफाजत भी की जा सके।

हमें यह पूछने का हक है कि क्या मानवता इस तर्क को गंभीरता से ले सकती है। क्या हम इस तथ्य से तसल्ली प्राप्त कर सकते हैं, जैसाकि सेवानिवृत्त फ्रांसीसी एडमिरल मार्क द जॉयबेयर लिखते हैं—"आणविक शक्तियाँ, वे इसे पसंद करें अथवा नहीं, व्यापक संघर्ष—जिसमें अस्वीकार्य अदृश्य जोखिम निहित है—को टालने की दृष्टि से एक-दूसरे के साथ शांतिपूर्वक रहने को अभिशप्त है।"[2] क्या जनसाधारण ऐसी शांति को शांति के रूप में स्वीकार कर सकता है? इसका केवल एक ही उत्तर है, नहीं, हरगिज नहीं।

'आणविक शांति' को अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा की गारंटी के रूप में देखना असंभव है। पॉल वासिर इस ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि कभी भी ऐसी स्थिति उभर सकती है जब दो आणविक शक्तियाँ, सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमरीका एक-दूसरे को बन्दूकों की नलियों में से देखने लगें। उस दशा में चुनाव करने की कोई गुंजाइश नहीं होगी कि आतंक-ग्रस्त होकर शत्रु द्वारा हमले की पहल का इन्तजार किया जाय, या आतंक की दशा में बटन दबा दिया जाय तथा बड़े पैमाने पर आणविक आक्रमण शुरू कर दिया जाय। शत्रुओं में से किसी एक द्वारा, दूसरे शत्रु को स्तब्ध करने के उद्देश्य से किये गये हमले के साथ ही खतरा क्रमशः बढ़ जायगा। वस्तुतः 'आणविक शांति' का निर्मम सार तत्त्व यही है।

'यथार्थवादियों' द्वारा अभिशंसित अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के पैटर्न के अनुसार,

---

1. हेनरी ए किसिंजर, 'द नैसेसिटी फॉर च्वाइस' प्रोस्पेक्ट्स आफ अमेरिकन फॉरेन पॉलिसी, लंदन, पृ० 217
2. मार्क द जॉयबेयर, ला पेक्स न्यूक्लियर, पेरिस, 1975, पृ० 65

हथियारों की दौड़ जारी रहनी चाहिए। यह ऐसा है जैसे मानवता एक बारूद के पीपे पर बैठने को, तथा अपने सम्भावित शत्रु को डराते रहने के लिए अपनी शक्ति और अपने प्राकृतिक संसाधनों को बरबाद करने के लिए अभिशप्त है। स्वाभाविक ही है कि इन परिस्थितियों में तनाव अंतर्राष्ट्रीय जीवन का एक स्थायी कारक बन जाता है। वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों को यह सलाह दी जाती है कि वे इस विचार से तालमेल बिठायें कि उनकी सुरक्षा सीधे तौर पर केवल भय के बने रहने में ही निहित है और यह भी कि जनगणों के बीच में कभी भी असली विश्वास और सहयोग क़ायम नहीं हो सकता।

इस प्रकार की व्यवस्था में एक और विश्व युद्ध का ख़तरा भी एकदम वास्तविक बना रहता है। प्रतिक्रियावादी इसे 'स्थायित्वकारी' कारक के रूप में बदल देते है—इसे अंतरराष्ट्रीय जीवन का दीर्घकालिक तत्त्व समझकर। सचमुच, वे यह घोषणा करते हुए कि युद्ध नहीं होना चाहिए—एक आरक्षण क़ायम कर लेते हैं। बूर्ज्वा रणनीतिज्ञ इस बिंदु पर फिर भी कोई गारण्टी नहीं देते। उनके तर्क का अनुसरण किया जाय तो मानवता के सिर पर निरन्तर लटकती डेमोक्लीज की तलवार की भाँति युद्ध की आशंका ही शांति को सुनिश्चित कर सकती है।

विश्व इतिहास का समस्त अनुभव इस तर्क के अक्षरशः विरुद्ध चिल्ला उठता है। मार्क्स ने लिखा—"हमारे समय के कट्टर नीति के प्रस्तावक किसी भी मत ने इतना दुर्भाग्य पैदा नहीं किया जितना कि उसने जिसकी यह घोषणा है कि 'यदि तुम शांति चाहते हो, तो युद्ध के लिए तैयार रहो।' यह महान् सत्य मुख्यतया इस कारण विशिष्ट बन चुका है कि इसने एक बड़ी झूठ को थाम रखा है तथा यह एक ऐसी गुहार है जिसने सारे यूरोप को हथियारों के लिए लामबन्द किया है।"[1] इससे पता चलता है कि अतीत में हालात कैसे थे।

और जितने भर में यह बड़ा झूठ अभी तक फलफूल रहा है, हालात आज भी वैसे ही हैं। विगत कई दशकों से संयुक्त राज्य अमरीका का सैनिक यंत्र देश की सुरक्षा के लिए कभी भी चालित नहीं किया गया। इसकी बजाय उसका उपयोग प्रायः संयुक्त राज्य अमरीका की सीमाओं से बहुत दूर के इलाकों में पेंटागन की हमलावर योजनाओं को लागू करने के लिए किया जाता रहा था। वास्तव में, यह बहुत कम होता है जब तनाव वृद्धि एक आवश्यक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे को सुलझाने में मदद करता है। फिर भी, ऐसी नीति के भरपूर उदाहरण हैं जिसके क्रियान्वयन ने वर्षों और दशकों तक नई लड़ाइयों को भड़का कर दुनिया की तकलीफ़ को बढ़ाया। कोई भी देश किसी प्रकार की गारण्टियाँ हासिल नहीं कर सकता कि वह हथियारों की दौड़ जीत जायगा, क्योंकि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति के युग में ऐसी

1. मार्क्स एंगेल्स, कृतं खण्ड-13, पृ. 444

गारण्टिया हैं ही नहीं। दूसरी तरफ़, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जनसंहारक हथियारों की विनाशात्मक शक्ति में और अधिक वृद्धि किसी भी देश की सुरक्षा के लिए सीधे खतरे को बढ़ा देता है।

अतः 'यथार्थवादी दिशा' के व्याख्याकार आज की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या के समाधान के रूप में कोई भी जवाब नहीं दे सकते। स्थायी शान्ति और सहयोग की सम्भावनाओं के स्थान पर वे जो प्रस्तुत करते हैं वह दरअसल शीत युद्ध की ही अंशतः संशोधित किस्म है। दूसरी तरफ़, इस बात पर ग़ौर किया जाना चाहिए कि 'यथार्थवादी दिशा' बूर्ज्वा राजनैतिक और सैन्य चिंतन के द्वारा विश्व की घटनाओं की सही अवस्था पर अधिक ध्यान देने की बदली हुई प्रवृत्ति का संकेत देती है।

सामान्यतया 'यथार्थवादी दिशा' को संक्रमण काल—जब पश्चिमी रणनीतिज्ञ विदेश नीति की कतिपय पारम्परिक रूढ़ियों को त्यागने को विवश तो है किन्तु मौजूदा दौर के परिवर्तनों को समझने को पूरी तरह प्रस्तुत नहीं हैं—के सिद्धान्त के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। संक्रमण काल की एक स्पष्ट प्रवृत्ति, 'यथार्थवादी दिशा' एक तरफ तो विरोधी शक्तियों के नितांत विरोधी प्रभाव के प्रति संवेदनशील है, और दूसरी ओर यह स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के विकास की संभावनाओं के सब प्रकार के मनमाने कामचलाऊ प्रबन्ध के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करती है।

शीतयुद्ध की खंदकों में

विचारधारात्मक और राजनीतिक प्रवृत्तियों का वर्गीकरण कितना ही सापेक्ष क्यों न हो, तनाव-शैथिल्य के मौजूदा विरोधियों को दो मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है: वे जो कि तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया को शून्य तक पहुँचा देना चाहते हैं और वे जो इसे अपने संकीर्ण स्वार्थी हितों की दृष्टि से इसकी व्याख्या करते हैं तथा इस तरह लोकतंत्र और समाजवाद को नुकसान पहुँचाते हैं।

उनका वस्तुतः इसी प्रकार का दृष्टिकोण था, धुर दक्षिणी पार्श्व में शीत युद्ध के ऐसे कट्टर डायनासॉर हैं जो हिंसा एवं आक्रमण की पूजा करने का उपदेश देते हैं, इनके पथ को मान्यता देते हैं। सम्राट फ़र्डिनैंड द्वितीय—जो यह कहा करते थे कि "विधर्मियों के शासन वाले देश से तो रेगिस्तान ही बेहतर है"—के दर्शन से वस्तुतः इन लोगों का दृष्टिकोण पूरी तरह मेल खाता है: समाजवादी समुदाय के साथ शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व से तो युद्ध की आशंका ही बेहतर है। रीगन, वालेस, मीनी, गोल्डवाटर, जैक्सन, श्लेसिंजर तथा सोवियत-विरोध के अन्य समर्थक—चाहे वे अमरीका में हों या पूँजीवादी दुनिया में अन्यत्र—या तो तनाव-शैथिल्य को तथ्य के रूप में मानने से इन्कार कर देते हैं या उसे इस रूप में प्रस्तुत करते हैं

जो इसे केवल शीत युद्ध के संशोधित रूप में ही परिगत कर देना है। वे आश्चर्यजनक अड़ियलता के साथ यथार्थ के तथ्यों की उपेक्षा करते हैं तथा गुजरे हुए समय के अपने दृष्टिकोणों पर अड़े हुए हैं।

इस प्रकार 1960 के दशक के मध्य में अमरीका के वामपंथी नेताओं में प्रमुख, बेरी गोल्डवाटर, समस्त सड़कों-चौराहों पर चिल्लाते फिरे कि वह कम्युनिस्टों की जीत के हालात में जीवित रहने से बेहतर तो यही मानेंगे कि दुनिया मे राजशाही वापस कायम हो जाय। तब से पुलों के नीचे बहुत-सा पानी प्रवाहित हो चुका है। ह्वाइट हाउस में राष्ट्रपति की कुर्सी के असफल उम्मीदवार अपने मंत्रोच्चार से अमरीकी जनता को न तो मनवा सके और न ही डरा सके। तनाव-शैथिल्य एक तथ्य बन गया और सोवियत अमरीका सम्बन्धों में विचारणीय प्रगति हुई।

किन्तु गोल्डवाटर तथा उनके साथी—साम्राज्यवाद के 'ब्लैक हण्ड्रेड्स' से सम्बद्ध—समाजवाद के प्रति इसके अलावा किसी अन्य रुख को अपनाने को तैयार नहीं है। उनका आदर्श वाक्य है—"कार्थेज का सत्यानाश करो।" दुनिया पर आधिपत्य करने वाले आज के दावेदारों की समाजवादी देशों के बारे में इसके अलावा और कोई नजरिया हो ही नहीं सकता। इन्हीं गोल्डवाटर ने सन् 1976 के चुनाव अभियान के दौरान, तथा हाल के वर्षों में अन्य पश्चिमी दक्षिणपंथी राजनीतिज्ञों ने इस सम्बन्ध में अपना रुख बिल्कुल साफ़ रूप में, बिना किसी लाग-लपेट के, सबके सामने रख दिया। अमरीकी विदेशी सम्बन्धों के विशेषज्ञ रोबर्ट स्ट्राउज़-ह्यूप, विलियम किंटनर और स्तेफान पोस्सोनी ने अपनी पुस्तक 'अमरीका के लिए एक अग्रगामी रणनीति' में लिखा—"हम उस राजनीतिक व्यवस्था का जीवित रहना बर्दाश्त नहीं कर सकते जिसमें स्वयं के विकास की निरन्तर विकासमान सामर्थ्य एवं हमारे विनाश का निष्ठुर संकल्प, दोनों ही निहित हों। हमारे पास इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं कि हम दुश्मन को ध्वस्त करने के लिए 'केटोवादी' रणनीति अख्तियार करें।"[1] दस वर्ष पश्चात्, सन् 1970 में पोस्सोनी ने, इस बार जे० पॉर्नेल्ले के सहयोग से, जो नीति प्रतिपादित की उसमें उनके पुराने युद्धोद्घोष की गूँज सुनाई पड़ती है। 'प्रविधि की रणनीति' नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा: "हमें अपने दुश्मन को आणविक शक्ति के द्वारा अन्तरिक्ष युद्ध में पराजित करने की सामर्थ्य हासिल करनी ही होगी।"[2]

निस्संदेह, अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सामान्यीकरण के विरोधियों में सभी

1. रॉबर्ट स्ट्रॉस्ज-ह्यूप, विलियम आर० किंटनर और स्तेफ़ान टी० पोस्सोनी 'ए फॉरवर्ड स्ट्रेटेजी फ़ॉर अमेरिका, न्यूयार्क, 1961, पृ० 405-06
2 'द स्ट्रेटेजी ऑफ़ टेक्नालॉजी, विनिंग द डिसाइसिव वार' कैंब्रिज, 1970

इतने स्पष्टवक्ता नही हैं। वे जो अपने सम्मान को गोल्डवाटर या प्रोस्मोनी से ऊँचा समझते हैं अपने सार्वजनिक वक्तव्यों मे अधिक सतर्कता बरतते हैं। वे अनिवार्यतः तनाव-शैथिल्य का सीधा विरोध नही करते, किन्तु साथ ही, वे इसके आगे के विकास को अनेक सीमाओ और शर्तों को बाँध देते हैं, जिससे यह या तो बिल्कुल अर्थहीन हो जाता है या साम्राज्यवाद को वे लाभ पहुँचाते हैं जिनसे वह 'ताकत के जोर' की नीति के माध्यम से प्राप्त करने मे असफल रहा था।

प्रायः दो सिद्धान्त—जिनमे से प्रत्येक दूसरे को काटता है—सूत्रबद्ध किये जाते हैं। एक ओर, इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि तनाव-शैथिल्य को सम्भव बनाने का सारा श्रेय 'दबाव' को जाता है—'स०रा० अमरीका का सैनिक श्रेष्ठता', 'नाटो की बढी हुई शक्ति' इत्यादि को। इसका श्रेय कुछ आर्थिक कठिनाइयो, जो समाजवाद को घेरे हुए हैं, को भी दिया जाता है जिन्होंने सोवियत सघ को मजबूर कर दिया कि वह शातिपूर्ण मुद्रा धारण करे। दूसरी तरफ़, हर प्रयास ऐसा प्रभाव पैदा करने के लिए किया जाता है कि सोवियत सघ और समूचे समाजवादी समुदाय का, पूँजीवादी देशों की अपेक्षा तनाव-शैथिल्य से अधिक फायदा होगा, कि तनाव-शैथिल्य एकमार्गी सडक है, और यह बात भी कि, समाजवादी देश इसके लाभो का बड़ा हिस्सा हज़म कर जाते हैं। इम विचित्र तर्क से तो यह अर्थ निकलता है कि दो व्यवस्थाओ के आपसी मुकाबले में, साम्राज्यवाद ने समाजवादी देशों को ऐसी अच्छी स्थिति मे पहुँचा दिया है उन्हें जहाँ कि 'एक तरफ़ा' फ़ायदे मिल रहे हैं।

यह ज़ाहिरा तौर पर बेतुकेपन की हद है। किन्तु शीतयुद्ध के बाज़ या तो अपनी तर्क-पद्धति के बेतुकेपन से अपरिचित हैं अथवा जानबूझकर उसे स्वीकार करने से इन्कार कर रहे हैं। वे अपनी सोवियत-विरोधी नीति को न्यायसगत सिद्ध करने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं और हथियारों की दौड को बरकरार रख सकते है। यदि सोवियत सघ ताकत से सामने झुक सकता है, तो यह ज़रूरी है कि दबाव बढाया जाय और अमरीका की सैनिक श्रेष्ठता को और बढ़ाया जाय; तथा यदि सोवियत सघ तनाव-शैथिल्य मे रुचि रखता है और पश्चिम के साथ आर्थिक, वैज्ञानिक एव प्राविधिक सम्बन्धो का विकास करना चाहता है तो उसे इस बात पर मजबूर किया जाना चाहिए कि यह सब प्रकार की रियायतें 'अदा' करे। उनके आधारभूत कुछ भी क्यों न हो, निष्कर्ष निश्चित रूप से वही है: अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियावाद के सोवियत-विरोधी मोर्चे को हर सम्भव तरीके से मजबूत किया जाना चाहिए।

अतीत की तरह ही, अब भी वे 'सोवियत धमकी', 'लाल खतरे' तथा 'कैमलिन प्रसारवाद' (उनका आरोप है कि यह अकेला तत्त्व ही उनकी विदेश नीति की असफलताओं तथा समूची पूँजीवादी दुनिया के सकटो के लिए ज़िम्मेदार

है) के नारे उछालकर अपने दृष्टिकोण एवं नीति को तर्क-संगत सिद्ध करते हैं। और यह घिसा-पिटा सिद्धांत एक नये प्रश्न को जन्म देता है। क्या वह समय नहीं आ गया है जबकि सं० रा० अमरीका और इसके नाटो दोस्त 'सोवियत संघ को नियन्त्रित करके' विश्व व्यवस्था की यथास्थिति की रक्षा करने की ओर उन्मुख हों? इस प्रकार, वस्तुतः जो कुछ हमारे सामने है वह ताकत की ज़ोर-ज़बरदस्ती की कुख्यात नीति का एक नया संस्करण मात्र है। शीतयुद्ध की खंदकों में तंग होकर बैठे हुए लोगों की मानसिकता इसी तरह की है।

यूरोप में तनाव-शैथिल्य के विरोधियों को वर्तमान समय के चीनी नेतृत्व से भी सक्रिय समर्थन प्राप्त हो रहा है। यही नहीं, दुनिया में चीन ही एक ऐसा राज्य है जिसका नेतृत्व तृतीय विश्वयुद्ध के पक्ष में खुला समर्थन करता है और पेकिंग का रुख, उसका निकृष्ट सोवियत-विरोधवाद पूंजीवादी विश्व के उन राजनैतिक और सैद्धानिक रणनीतिज्ञों के लिए चिंतन का आधार साबित हो जाता है जो तनाव-शैथिल्य की प्रक्रिया को जानबूझकर बारूद से जलाकर राख कर देना चाहते हैं।

'बहुध्रुवी' विश्व और 'वृहत् राजनीति'

ताकत के ज़ोर वाली नीति की छाया लगातार पश्चिमी राजनीतिज्ञों—जब वे समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की प्रवृत्ति पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को थोपने का प्रयास करते हैं और इन सम्बन्धों के विकास की भविष्यवाणी करते हैं—को अक्सर प्रभावित करती है। इसका एक सबूत तो ऐसे अनेक प्रतिरूपों में मिलता है जिन्हें बहुध्रुवी विश्व की संज्ञा दी जाती है तथा जिनके बारे में यह दावा किया जाता है कि वे उन अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के वर्तमान सहमेल का स्थान लेंगे जो दो 'महाशक्तियों' के बीच की प्रतिस्पर्द्धा द्वारा निर्धारित है।

इस धारणा को परिपुष्ट करने के लिए साम्राज्यवाद के सिद्धान्तकार तथ्यों के साथ बाजीगरी करते हैं। वे इस, दो सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं में सम्पन्न विश्व-विभाजन की जगह—जिन व्यवस्थाओं में उनके सम्बन्धों की अभिव्यक्ति निहित है, तथा जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पैदा हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की द्वि-ध्रुवीय आकृति के रूप में साधारणतया अभिव्यक्त है—इस धारणा को स्थापित करना चाहते हैं जो सम्पूर्ण समस्या को तोड़-मरोड़कर इसे संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के बीच के संघर्ष के रूप में चित्रित एवं प्रस्तुत करते हैं।

जैसे-जैसे व्यक्तिगत देशों या क्षेत्रीय समूहों की शक्ति बढ़ी, सोवियत-अमरीकी संघर्ष समान दूसरे केन्द्रों की प्रतिद्वन्द्विता के कारण फीके पड़ गए। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के द्विध्रुवीय स्वरूप को जिसके बारे में ज़ोर देकर कहा

जाता है कि जड से उखाडकर उसकी जगह जिस बहुध्रुवीय स्वरूप ने ले ली थी, उसकी सीमाओ मे, अधिक-से-अधिक विरोधी देशो तथा गठबधनो की प्रतिस्पर्द्धा है, दो व्यवस्थाओ—समाजवाद तथा पूँजीवाद—के बीच की प्रतियोगिता नही है। पश्चिमी सिद्धान्तकार इस घोसेभरे सूत्र का उपयोग अनेक प्रकार के मनमाने तात्पर्यों और अर्थों के निर्माण के लिए करते हैं। किन्तु जैसे-जैसे बहुध्रुवीय विश्व की धारणा नित नई किस्मे पैदा करता है (अमरीका-रूस-चीन : 'प्रतिस्पर्द्धा का त्रिकोण', अमरीका-पश्चिमी यूरोप-जापान, 'सहयोग का त्रिकोण'; पश्चिम मे अमरीका-पश्चिमी यूरोप-सोवियत सघ का एक त्रिकोण, पूर्व मे अमरीका-सोवियत संघ-चीन-जापान का चतुष्कोण आदि)। वैसे-वैसे उसका खुल्लमखुल्ला प्रतिक्रियावादी आधार और इस विचारधारा का शीतयुद्ध की नीतियो से सीधा रिश्ता तेजी के साथ अभिव्यक्त हो रहा है।

वस्तुतः 'बहुध्रुवीय' विचारधारा के आलोक मे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो की सरचना ही 'शक्तिकेन्द्रो' के स्थायी वैमनस्यपूर्ण संघर्ष का रूप ग्रहण कर लेती है। साथ ही, पश्चिम मे इस तथ्य को किसी तरह नही छुपाया जाता कि यह केवल उनके आर्थिक और राजनैतिक सघर्ष का ही प्रश्न नही है, अपितु हथियारो मे शक्ति सतुलन का भी प्रश्न है, जिसमे आणविक हथियार भी शामिल हैं, क्योकि यह मान लिया गया है कि देर-सबेर तमाम 'शक्ति केन्द्र', 'आणविक क्लब' के सदस्य बन जाएँगे।

शीतयुद्ध परम्परा को जारी रखते हुए, 'बहुध्रुवीय' नीति के प्रतिपादक इस मान्यता के आधार पर कार्य करते हैं कि प्रस्तावित 'शक्ति सतुलन' मे आधिपत्य की भूमिका सयुक्त राज्य अमरीका को अदा करनी चाहिए। 'सर्वे' भविष्यवाणी करता है कि "सयुक्त राज्य अमरीका निकट भविष्य मे ही, दो निर्णायक त्रिभुजो के शिखर पर खडा होगा। अमरीका-सोवियत सघ-चीन त्रिभुज—जो कि शान्ति, युद्ध, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व, निःशस्त्रीकरण तथा हथियारो पर नियत्रण के लिए बेहद महत्वपूर्ण है तथा अमरीका-जापान-पश्चिमी यूरोप त्रिभुज—जो कि विकसित दुनिया के साथ अन्तर्क्रियाओ तथा अधिकाश राष्ट्रो की समृद्धि की दृष्टि से एकदम महत्वपूर्ण है—के शिखर पर खड़ा होगा।[1]

दरअसल क्लॉ की 'पूर्व एशिया और सं० रा० अमरीका की सुरक्षा' मे भी हमे यही विचार मिलते हैं। क्लॉ का विश्वास है कि दुनिया के इस हिस्से मे सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए यह अनिवार्य है कि सोवियत सघ-चीन-जापान-अमरीका के चतुर्भुज मे 'शक्ति सतुलन' कायम हो। निर्णायक के रूप में स० रा० अमरीका को अन्य भागीदारों के बीच के सघर्ष का पूरा लाभ मिल पायेगा।[2]

---

1. सर्वे, बसत 1973 खंड-19, अंक-2 पृ० 125
2. राल्फ एन० क्लॉ, 'ईस्ट एशिया और यू.एस. सिक्योरिटी, वाशिंगटन, 1975, पृ० 134

शीतयुद्ध की मानसिकता को बनाये रखते हुए कई विदेशी लेखक यह प्रमाणित करते हैं कि विश्व की बहुध्रुवीय संरचना को वस्तुतः सोवियत संघ को सैनिक और राजनैतिक रूप से घेरने के लिए ही काम में लिया जाना चाहिए। विलियम किटनर अपनी योजना का खुलासा करते हुए लिखते हैं—"एक बार पांच शक्तियों का विश्व उदित हो जाय तो इसकी अन्तर्निहित सुदृढ़ता के लिए तर्क संगति बिठायी जा सकती है। पहली बात तो यह है कि सोवियत संघ और चीन प्रसारवादी शक्तियां हो सकती हैं। उनकी शत्रुता—उनके आपस के गहरे एवं व्यापक संघर्षों से उत्पन्न—ही पूर्ण रूप से समाप्त हो जाय तो बात अलग है, वर्ना उनकी महत्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाया जा सकता है। उन पर इसलिए भी अंकुश लगाया जा सकेगा कि दूसरे शक्ति केन्द्र पास ही स्थित हैं जैसे, पश्चिमी यूरोप जो सोवियत यूनियन के पास है, और जापान जो चीन और सोवियत संघ दोनों के पास है। द्विपक्षीय झगड़ों के खड़े होने पर, जैसे पश्चिमी यूरोप और सोवियत संघ, चीन और जापान या सोवियत संघ और जापान के बीच में, ऐसी स्थिति में दोनों अर्थात् पश्चिमी यूरोप और जापान के लिए यह विचारणीय प्रेरणा होगी कि वे संयुक्त राज्य अमरीका का अघोषित समर्थन प्राप्त कर सकें।"[1] इस प्रकार कोई भी आकृति बने, और कितने ही 'ध्रुव' उभरें, संयुक्त राज्य अमरीका को महान् 'निर्णायक पंच' होने का सम्मानजनक रुतबा स्वतः मिल जाता है, और सोवियत संघ की नियति संघर्षपूर्ण पक्षों में से एक होकर अत्यन्त विनीत भूमिका निभाने की बन जाती है।

वास्तव में 'बहुध्रुवीय' धारणा का उद्देश्य मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विश्व के दो सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओं वर्ग विभाजन के सिद्धांत की जगह विभिन्न 'शक्ति केन्द्रों' के अस्तित्व के विषय में मनमाने प्रबन्ध के सिद्धांत को घोषणा है। उनके अनुसार ये शक्ति केन्द्र इस अवस्था में होंगे कि एक-दूसरे से लगातार संघर्ष में रहेंगे और इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय तनाव चलता रहेगा तथा शीतयुद्ध अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का स्थायी प्रतिमान बन जाएगा।

पहली नजर में यह एक भिन्न और विपरीत सूत्र प्रतीत होता है जिसने 'वृहत् राजनीति की धारणा को या 'अटलांटिक अन्त.निर्भरता' की रणनीति—जो सं० रा० अमरीका और पश्चिमी यूरोप में बहुत लोकप्रिय हो रही है—को उभारा तथा आगे बढ़ाया है। इस धारणा को प्रकट करने के लिए इसके लेखक बूर्ज्वा सिद्धांतकारों की सामान्य पद्धति का सहारा लेते हैं। कुछ उपलब्ध प्रक्रियाओं को

1. साल्ट—इम्प्लीकेशंस फ़ॉर आर्म्स कंट्रोल इन द 1970—सम्पादित डब्लू० आर० किटनर और आर० एल० फाल्ट्ज़ग्राफ़, जे० आर० यूनिवर्सिटी ऑफ़ पिट्सबर्ग प्रेस, 1973, पृ० 179

अपना प्रस्थान विन्दु सिर्फ इसलिए बनाकर ताकि उस आधार पर अपना सम्पूर्ण मनमाना भवन खड़ा किया जा सके। विचारणीय बात सब देशों की बढ़ती हुई आर्थिक अन्त.निर्भरता है, विश्व-अर्थव्यवस्था के अन्तर्राष्ट्रीय की तरफ सामान्य प्रवृत्ति और पूँजीवाद के अन्तर्गत लम्बे समय से विकसित होती जा रही एकसूत्रता की प्रक्रियाएँ हैं। वस्तुत समकालीन उत्पादक शक्तियों का स्तर दोनों जरूरतें महसूस करता है अर्थात् अधिक तर्कसंगत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन की, तथा राज्यों के बीच मे अधिक प्रभावशाली आर्थिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक और अन्य प्रकार के सहयोग की। इसका अर्थ है कि एक ऐसा युग आ रहा है जब ये सारे प्रश्न विश्वव्यापी स्तर पर खड़े होंगे।

यह एकदम स्पष्ट है कि पूँजीवाद इस समस्या को सुलझाने मे असमर्थ है। आर्थिक गतिविधियों के अन्तर्राष्ट्रीयकरण की माँग के जवाब मे इसने पारराष्ट्रीय इजारेदारियों और बहुराष्ट्रीय निगमों जैसे अतिविरूप सस्थान पैदा कर दिए। बिल्कुल स्पष्ट है कि विश्व उत्पादन की वस्तुगत आवश्यक्ताओं को प्रतिबिम्बित करने की अपेक्षा वे इजारेदारी पूँजी के हितों की ही रक्षा करते हैं और उनमे भी सबसे बढ़कर सं० रा० अमरीका के इजारेदारियों के हितों की रक्षा। अन्तर्राष्ट्रीय इजारेदारियाँ—खासतौर पर जो अमरीकी पूँजी से सम्बन्धित हैं—अपने प्रभाव को समेकित करने और बढ़ाने के लिए कृतसकल्प हैं। उनका उद्देश्य वित्त, उत्पादन और बिक्री की एक विश्वव्यापी प्रणाली का निर्माण करना, दुनिया की आर्थिक परस्पर निर्भरता के जाल को बुनना और इस प्रकार मजदूर वर्ग और इस ग्रह के प्राकृतिक ससाधनों के शोषण को जारी रखना और बढ़ाना है।

परस्पर निर्भरता की अवधारणा कई तरह से इस महत्वाकांक्षा का सकेत नाम है। आर्थिक दृष्टि से यह इजारेदारी पूँजी के हितों को प्रतिबिम्बित करती है तथा राष्ट्रीय सीमाओं से परे इसके अपने अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार की महत्वाकांक्षा इसमे दिखाई देती है। राजनैतिक दृष्टि से यह समाजवादी विश्व के विरुद्ध पूँजीवादी देशों को एकजुट करने की योजना से प्रेरित लगती है और सीमित क्षेत्रीय दल-बन्दियों के रूप मे विकासमान देशों को भी समाजवाद के विरुद्ध प्रेरित करती है। वैचारिक दृष्टि से यह अखिल अटलांटिकवाद और अखिल यूरोपीयवाद या इसी प्रकार की अखिलता या सर्वदेशीयता की धारणाओं—जो एक या दूसरे प्रकार मे राष्ट्रीय या वर्गीय सिद्धात पर प्रक्षारोपित की जाती है—पर आधारित है।

अन्तर्निर्भरता की रणनीति को पूँजीवाद की विदेशनीति के उद्देश्यों को अर्थ-व्यवस्था के साथ जोड़ने के लिए—तैयार किया जाता है, खासतौर से इन तत्वों को जोड़ने के लिए जैसे वित्त, कच्चा माल और ऊर्जा। इन सब साधनों का अन्तर-राष्ट्रीय इजारेदारियों के हाथो मे संकेन्द्रीयकरण होना पश्चिम मे सारे रोगों की रामबाण दवा समझा जाता है। उदाहरण के लिए, अमरीकी विद्वान पी० एफ़०

इकर लिखते हैं कि विश्व अर्थव्यवस्था को एक ऐसे संगठन के निर्माण की ज़रू
है जो समूची मानवता के कल्याण में रुचि रखता हो, और जो अपने मूद के लक्ष
का अनुसरण करते हुए दुनिया की सारी अर्थव्यवस्था के लिए काम कर सके
उसका विश्वास है कि ऐसा संगठन बहुराष्ट्रीय विश्व व्यवसाय संघ ही हो सक
है।

इसके साथ ही यह स्पष्ट है कि अमरीकी इजारेदारियाँ दुनिया में सब
अधिक शक्तिशाली होने के कारण सबसे ज्यादा दूरगामी योजनाओं को मन
रखती हैं। अमरीकी वैज्ञानिक सेयोम ब्राउन इस बिन्दु पर किसी सन्देह क
गुंजायश नहीं छोड़ते। उनका विश्वास है कि विशाल इजारेदारियाँ, जिनमें प्रमुख
अमरीकी इजारेदारियाँ हैं, विश्व राजनीति में पहले से कहीं बड़ी भूमिका अद
करेंगी। और अधिराष्ट्रीय सम्पर्कों की एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करेंगी जो
कि अन्य कड़ियों तथा राज्यों को अपने अधीन बना लेंगी।[1]

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर इसी प्रकार के विचार एक अन्य
अमरीकी अध्येता प्रोफ़ेसर रिचर्ड स्टर्लिंग ने, जो 'मैक्रो पालिटिक्स: इंटरनेशनल
रिलेशंस इन ए ग्लोबल सोसायटी' पुस्तक के लेखक भी हैं, ने प्रकट किए हैं। वह
कठोरता से, और बहुधा औचित्यपूर्ण ढंग से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में ताक़त के
उपयोग की धारणा की आलोचना करते हैं। वह लिखते हैं—"राजनीतिज्ञ की
सर्वोच्च कुशलता हिंसा का प्रबन्ध करना नहीं है लेकिन ऐसी परिस्थितियाँ पैदा
करना है जिसमें हिंसा की संभावना न्यूनतम हो।"[2] वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति
के सिद्धान्त एवं व्यवहार को संचालित करने वाले दृष्टिकोण के रूप में सूक्ष्म राज-
नीति के विस्थापन की चर्चा यह कहते हुए करते हैं कि इस प्रकार के लक्ष्यों की
पूर्ति उतनी ही महत्वपूर्ण और युगांतरकारी होगी जितनी (भौतिकी के क्षेत्र में)
कापरनीकस द्वारा की गयी क्रान्ति थी।"[3]

यह फिर भी स्पष्ट है कि लेखक इस क्रान्ति को *मुख्यतया पश्चिम के पूँजीवादी*
और विकासमान देशों की राजनैतिक और आर्थिक एकता के सुदृढ़ीकरण के रूप में
देखता है जिसका आधार एक 'विश्व व्यापी' बाजार है जिसका नेता अमरीका है,
उसकी राय के अनुसार "पश्चिमी एकजुटता का टूटना विश्व की अर्थव्यवस्था और
विश्वसमाज की वस्तुगत रचनात्मक आवश्यकताओं के उद्देश्य के पूरी तरह विपरीत
जाएँगे।"[4]

---

1. देखिए: सेयोम ब्राउन, 'न्यू फोर्सेज इन वर्ल्ड पालिटिक्स,' वाशिंगटन, 1974
2. रिचर्ड डब्लू० स्टर्लिंग, 'मैक्रोपालिटिक्स, इंटरनेशनल रिलेशंस इन ए ग्लोबल सोसायटी,' न्यूयार्क, 1974, पृ० 109
3. वही, पृ० 335
4. वही, पृ० 540

स्टर्लिंग पूँजीवादी देशों की 'विश्वस्तरीय एकजुटता' के विचार को प्रत्यक्षत वस्तुगत वैज्ञानिक फार्मूलों का जामा पहनाते हैं जबकि रोबर्ट क्लीन स्पष्ट शब्दों में इसके राजनैतिक सार को उद्घाटित करते हैं। इस तथ्य पर अफ़सोस व्यक्त करते हुए कि अमरीका की सैन्य शक्ति का क्षय प्रारम्भ हो गया है, वह इस स्थिति के निदान के लिए संयुक्त राज्य के नेतृत्व में एक नये सैन्य गठबंधन—जिसमें कनाडा, यूनाइटेड किंगडम, एफ० आर० जी० (जर्मन गणसंघ), फ्रांस, इटली, नीदरलैंड्स, इज़रायल, जापान, ताईवान, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड शामिल हों—का निर्माण प्रस्तावित करते हैं। क्लीन का विश्वास है कि इसमें मैक्सिको, स्पेन, ईरान, टर्की, मिस्र, सऊदी अरब, भारत, पाकिस्तान, इंडोनेशिया, सिंगापुर, दक्षिणी कोरिया, ब्राज़ील, नाईजीरिया और दक्षिण अफ्रीका भी इसमें सम्मिलित हो सकेंगे। यह स्पष्ट नहीं है कि वह दक्षिण अफ्रीका पर ही आकर क्यों रुक गये तथा इस सूची में उन्होंने अन्य दो दर्जन देशों के नाम क्यों नहीं जोड़ दिये, किन्तु यह एकदम स्पष्ट है कि वह शीत युद्ध की अवधि की विश्व आधिपत्य की अखिल अमरीकी नीति को वह चमका-दमका कर प्रस्तुत करना चाहते हैं।

इस प्रकार अपने आधारभूत लक्ष्यों की दृष्टि से 'बृहत् राजनीति' या 'परस्पर निर्भरता' की अवधारणा सार रूप में 'बहुध्रुवीय' विश्व के प्रति रूपों के साथ मेल खाती है। यहाँ हमें एक ऐसी इच्छा का आभास मिलता है जो पूँजीवादी देशों और नवस्वतंत्र राज्यों के एक समूह के निर्माण के उद्देश्य को समर्पित है' सं० रा० अमरीका के नेतृत्व में तथा सोवियत संघ और समूची समाजवादी दुनिया के प्रतिरोध के लिए।

वैचारिक संघर्ष या मनोवैज्ञानिक युद्ध

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि बूर्ज्वा चिंतन के कुछ प्रतिनिधि, वे जो अभी तक पुराने दकियानूसी विचारों से चमत्कृत हैं, शीतयुद्ध के ध्वस्त गढ़ों की मरम्मत करने के मौके की तलाश में हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य के प्रतिरोध के लिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के पूर्णतया भिन्न पैटर्न प्रस्तुत करते हैं। साथ ही, अन्य पश्चिमी सिद्धान्तकार तथा राजनीतिज्ञ तनावशैथिल्य के झंडे के नीचे अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने की कोशिश करते हैं तथा इस प्रकार 1950 और 1960 के दशकों के कम्युनिस्ट विरोधी छद्म-उदारवादी रुझान को कायम रखने की फ़िराक़ में हैं।

भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के देशों के बीच में व्यापक संपर्क कायम करने के नाम पर इस रुझान के पोषक तनावशैथिल्य की प्रक्रिया को अपने नितांत स्वार्थी हितों के पक्ष में व्याख्यायित करने की कोशिश करते हैं। इसके पीछे 'प्राविधिक नियतिवाद' और 'दो व्यवस्थाओं के अभिसरण' की बुख्यात धारणाओं को एक ताज़ा संवेग प्रदान करने का ही विचार है। तनावशैथिल्य और तमाम प्रकार के

अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्कों व सहयोग का फैलाव उनके लिए पूँजीवादी और समाजवादी विश्वो के बीच की वर्ग-विभाजक रेखा को काटने तथा समाजवादी देशो के भीतर अपने सैद्धान्तिक प्रभाव को जमाने के साधन मात्र हैं।

विल्हैल्म ग्रेव—जो जर्मन गणराज्य के भूतपूर्व चांसलर कोनरड एडिनावर के भूतपूर्व सहायक थे तथा जो शीतयुद्ध के उत्साही प्रचारक थे—टिप्पणी करते हुए कहते हैं—"आगे चलकर तनावशैथिल्य की नीति सशोधित लक्ष्यों और तरीकों की ओर संक्रमण का प्रतिबिंब बन जाती है : वह उन सारे अल्पकालिक प्रयासों की अस्वीकृति है जो पूर्वी यूरोप के जनगणों को कम्युनिस्ट शासनतंत्र से मुक्ति दिलाने के लिए किए जाते हैं···। यह आवश्यक है कि पूर्वी ब्लॉक में आंतरिक परिवर्तन की दीर्घकालिक प्रक्रियाओं की ओर मुड़ा जाय, जिसके दौरान पूर्वी राज्यों की सामाजिक-राजनैतिक प्रणाली के क्रमिक पुनर्गठन की दृष्टि से हरसंभव सहायता दी जायगी।"[1]

समाजवादी समुदाय में राजनैतिक विकृति पैदा करने की दूरगामी योजनाओं के अनुसरण में, और इसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की समूची प्रणाली की विकृति में, पश्चिमी रणनीतिज्ञ प्रमुखतः राष्ट्रवाद पर भरोसा करते हैं। यह मात्र संयोग नहीं है कि हाल के वर्षों में अमरीका तथा अन्य पूँजीवादी देशों में बहुत से विदेश नीति विशेषज्ञ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में, खास कर तनाव-शैथिल्य के क्षेत्र में, बार-बार राष्ट्रीय कारक की ओर मुड़ते रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के इतिहास के ब्रितानी प्रोफेसर एफ॰ एच॰ हिंस्ले ने एक पुस्तक प्रकाशित की, 'राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था'। लेखक की राय में राष्ट्रवाद ऐतिहासिक विकास की प्रमुख संचालन शक्ति है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य के आलोक में इस सिद्धान्त का उनका विश्लेषण काफी दिलचस्प है।

पूँजीवादी विद्वानों के बहुमत से अलग हट कर, हिंस्ले राष्ट्रवाद को एक ऐतिहासिक श्रेणी के रूप में देखते हैं, किन्तु अन्य विद्वानों की तरह वह भी राष्ट्रवाद की सामाजिक वर्ग-प्रकृति को दृढ़तापूर्वक नकारते हैं। इस बात पर जोर देते हुए कि किसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था के समाज में, अगर वह अत्यधिक विकसित है तो, राष्ट्रवाद अन्तर्निहित होता है, वह अपने इस सिद्धान्त का विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की सीमा तक कर देते हैं। इससे भी बढ़कर वह राष्ट्रवाद को शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के घटक के रूप में चित्रित करते हैं क्योंकि उनका मानना यह है कि व्यक्तिगत राष्ट्रीय हितों के सही मूल्यांकन को सामान्य सूत्रधार के रूप में चालित कर दिया जाय तो, इससे 'शक्ति संतुलन' पैदा होने के

---

1. विल्हैल्म जी॰ ग्रेव, [illegible] 1970, पृ॰ 614

कारण, यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सुदृढ़ करता है।[1]

हिन्स्ले तनावशैथिल्य का अपने ही तरीके से पक्ष लेते हैं। उनका कहना है कि समकालीन युग में "इतिहास में पहली बार उनके (आणविक शक्तियों के) पास इसके अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं कि वे, अपने स्वयं के बीच हो सकने वाले आगे के युद्ध से अपने आपको इसलिए अलग रखें ताकि काबू न की जा सकने वाली हिंसा को टाला जा सके।"[2] लेकिन वह यह नहीं मानते कि इस उद्देश्य को भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है, तथा उनका दावा है कि समस्याओं का समाधान राष्ट्रीय हितों —जो उनकी दृष्टि में असंपृक्त एवं आत्मनिर्भर शक्ति है—पर सर्वाधिक गौर करने पर निर्भर करता है।

अतः, निकट से जाँच करने पर हिन्स्ले का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रतिरूप जो राष्ट्रवाद के झंडे के तले दुनिया में सामाजिक-राजनीतिक यथास्थिति बनाये रखने के प्रयास का ही दूसरा नाम है।

पिछले दिनों पश्चिम में एक अन्य सिद्धान्त जो व्यापक रूप से प्रचारित हुआ है वह यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य और 'दुनिया की राजनीति के विसैनिकीकरण' के माध्यम से ही अन्ततः 'विराजनैतिकीकरण' हो सकता है। उदाहरण के लिए, इसी प्रश्न की जाँच सेयोम ब्राउन की पुस्तक 'विश्व राजनीति में नई शक्तियाँ' में की गई है। लेखक इस मान्यता को लेकर आगे बढ़ता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की नई व्यवस्था जो 'शीतयुद्ध के भूराजनैतिक और सैद्धान्तिक आधारों की समाप्ति की परिस्थितियों में' फिलहाल नई शक्ल धारण कर रही है, पूर्ववर्ती द्विध्रुवीय व्यवस्था से समुचित रूप में भिन्न होगी, प्रमुखतया उसके बहुकेन्द्रवाद की दृष्टि से उन्होंने लिखा—"अटलांटिक के दोनों ओर तथा जापान के राजनेताओं के सामने यह सिद्ध हो चुका है, कि 1950 के दशक का जबरदस्त गठबंधनों का प्रतिरूप बेटिकाऊ है और 1960 के दशक के ढीले-ढाले सम्बन्ध भी बहुत से मुद्दों पर छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। गठबंधन अधिकाधिक एक बड़े जाल में रूपान्तरित हो रहा है जिसमें शत्रुतापूर्ण और सहयोगपूर्ण सम्बन्ध आपस में एक-दूसरे को काटते रहते हैं। और यह जो बाद वाला लक्षण है वह आगे बढ़कर कम्युनिस्ट क्षेत्र के बाहर की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की धुन को परिभाषित और व्यवस्थित करता है।"[3] ब्राउन की मान्यता है कि कम्युनिस्ट विश्व भी उसी अपकेन्द्रीय प्रवृत्ति से कमोबेश

---

1. एफ. एच. हिन्स्ले, 'नैशनलिज्म एंड दि इंटरनेशनल सिस्टम', लंदन, सिडनी, ऑकलैंड, टोरन्टो, 1973, पृ० 147
2. वही, पृ० 154
3. सेयोम ब्राउन, 'न्यू फोर्सेज इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स', पृ० 44

मात्रा में प्रभावित होता है।

तब शीतयुद्ध की अवधि के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की व्यवस्था की जगह कौन-सी प्रणाली लेगी ? नहीं, यह बहुध्रुवीय विश्व नहीं होगा जिसमें अधिक तथा कम मजबूती वाले 'शक्तिकेन्द्रों' का सम्मिश्रण हो। ब्राउन की राय में यह एक ऐसा विश्व होगा जोकि विभिन्न मुद्दों के इर्द-गिर्द बने विभिन्न गठबंधनों (एक-दूसरे को काटते हुए) से निर्मित होगा, एक प्रकार का "बहुतंत्र जिसके प्रति समर्थन व निष्ठा व्यक्त करने में राष्ट्र-राज्य, उपराष्ट्रीय दल और पारराष्ट्रीय विशेष हित और समुदाय आदि सब आपस में होड करेंगे, तथा इसके अन्तर्गत विरोधों का समाधान, परिवर्तनशील शक्ति-सम्बन्धों के संदर्भ में अस्थायी सौदेबाजी के आधार पर होगा।"[1] इस प्रकार की तार्किकता का सैद्धान्तिक पूर्वाग्रह स्पष्ट है। दरअसल, यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की 'विसैद्धांतिकीकरण' वाली धारणा की एक नई व्याख्या मात्र है तथा इसे असंदिग्ध रूप से राष्ट्रीय रंग दे दिया गया है।

पूंजीवाद और समाजवाद के वर्ग विभाजन को धुंधलाने के लिए बूर्ज्वा सिद्धांतकार इन दिनों खासतौर से उन तथाकथित सार्वभौम समस्याओं के बारे में अटकलें लगा रहे हैं जो प्रायः कृत्रिम रूप से भड़कायी हुई भावुकताओं के लिए आधारवस्तु बन जाती हैं। और यहाँ आकर दोनों—खुले कम्युनिस्ट-विरोधी और पूंजीवादी चिंतन में उदार-समीक्षात्मक रुचि वाले—चिंतक प्रतिनिधि बड़े चाव से 'आधुनिक सभ्यता' के पापों का भंडाफोड़ करने वालों की भूमिका अदा करते हैं। वे मानवता की उन विनाशों से रक्षा करने के लिए तैयार रहते हैं जो परिस्थिति-जन्य संकट, जनसंख्या विस्फोट, अति शहरीकरण इत्यादि के द्वारा पैदा होते हैं। इन तथा इसी तरह की अनेक अन्य समस्याओं को उनके ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ से काट दिया जाता है तथा बूर्ज्वा प्रचारतंत्र द्वारा अतिशक्तिपूर्ण तरीके से इन्हें अधिराष्ट्रीय अधिसामाजिक स्वरूप वाली प्राकृतिक विपदाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ये ही दलीलें इसलिए काम में ली जाती हैं कि समाजवाद को सैद्धांतिक आधार पर पूंजीवाद के साथ समझौता करने के लिए प्रभावित और प्रेरित किया जा सके और यह भी इस बार हमारे ग्रह को बचाने के बहाने से। सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देश इस बात के लिए लाछित किए जाते हैं कि उनमें सैद्धांतिक 'पूर्वाग्रह', 'असहनशीलता' तथा मानवता को एक ऐसे समय 'विभाजित' करने की प्रवृत्ति है; जब उसे एक करने की आवश्यकता है चाहे सामाजिक व्यवस्थाओं में भिन्नता की उपेक्षा भी करनी पड़े, ताकि, उनके कथनानुसार विनाशकारी प्राविधिक विकास से उत्पन्न होने वाले समानस्तरों से संघर्ष किया जा

1 सेयोम ब्राउन, उपरोक्त, पृ० 186

ा अतः यह सूत्र 'सम्मिमुखता' सिद्धांत की ही वह नई किस्म है जो 'विसैद्धाति-करण' के समर्थन में नई दलील के रूप में काम करने के लिए प्रस्तुत की जाती
।

किन्तु शायद अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का कोई दूसरा ऐसा पहलू नहीं है जो कि ार की व्यापक अटकल बाजियों का उस सीमा तक विलय हो जितना कि अंत-ट्रीय संपर्कों का व्यापक होना तथा सूचना का आदान-प्रदान है। प्रायः बाकी ाजवाद के विरोधी प्रायः यह काल्पनिक विश्वास पैदा करते हैं कि पश्चिमी ्नयों समाजवादी विश्व के साथ सभी प्रकार के सपर्कों का विस्तार करना हती हैं; लोगों और विचारों के एक 'स्वतंत्र' विनिमय के वे पक्ष में हैं। समाज-ी देशों, जिन्हें 'बंद समाज' कहा जाता है, पर उसका विरोध करने का आरोप ाया जाता है। यही कारण है कि समाजवादी देशों पर दबाव बढ़ाने की अपीलें जाती हैं ताकि वहाँ की आबादी को, अन्तर्राष्ट्रीय तनावशैथिल्य के झडे के े लाकर, पश्चिमी विचारधारात्मक मूल्यों को आत्मसात करने का प्रेरित किया सके।

फिर भी, इस प्रश्न पर सोवियत संघ का दृष्टिकोण नितांत स्पष्ट है जिसमे ी अटकलबाजी के लिए को स्थान नहीं है। लियोनिद ब्रेझनेव ने इस विषय मे ा—"यह अक्सर सुनने मे आता है कि पश्चिमी देश सास्कृतिक क्षेत्र मे सहयोग महत्त्व देते हैं, और खासतौर पर विचारों के आदान-प्रदान, सूचना-प्रसार और ट्रों के बीच संपर्क को विशेष महत्त्व देते हैं। हमें अपने तहेदिल से यह घोषणा े की इजाजत दें, कि हम भी इसके पक्ष मे हैं, बशर्ते यह सहयोग एक-दूसरे को मुता, कानून और उसके रीति रिवाजों के प्रति सम्मान रखकर कायम किया य तथा इससे की जनगणों पारस्परिक आध्यात्मिक समृद्धि, पारस्परिक ्वास तथा शांति के विचारों और अच्छे-पड़ोसीपन की भावना को बढ़ावा े।"[1]

यह दृष्टिकोण भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के राज्यों के बीच लेनिन की ्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति से ही उभरा तार्किक रूप है। यह समकालीन ाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों—अर्थव्यवस्था, राजनीति एवं विचारधारा—को े मे समेटता है तथा उनके विशेष लक्षणों को भी प्रतिबिंबित करता है। आर्थिक मे कारगर सहयोग के विकास की आधारशिला रखना पारस्परिक लाभ का ांत है। राजनीति मे इसका मुख्य लक्षण एक-दूसरे के मामलो में अहस्तक्षेप का प्रत्येक देश के स्वाधीनता के सप्रभु अधिकार के प्रति सम्मान रखना ताकि वह ा किसी बाहरी दबाव के अपनी घरेलू समस्याएँ सुलझा सके। विचारधारा के

एल० आई० ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण', मास्को, 1975, पृ० 90-91

क्षेत्र में—जहां समझौते के लिए कोई गुंजायश नहीं है—शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व का अर्थ है। व्यापक सांस्कृतिक सहयोग, सूचना का आदान-प्रदान और प्रत्येक देश की सम्प्रभुता तथा सभी जनगणों के रीति-रिवाजों के प्रति आपसी सम्मान के आधार पर विभिन्न सपर्क।

सोवियत सघ और अन्य समाजवादी देश न तो अपनी विचारधारा और न ही अपनी संस्कृति को किसी अन्य पर थोपते हैं, किन्तु वे अनिवार्यतः इस पक्ष में हैं कि सारी मानवता की पहुंच के भीतर सास्कृतिक मूल्यों को लाया जाय। यही एक केन्द्रीय और अत्याज्य शर्त है जो विश्वप्रगति और अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा का उत्स है, क्योंकि सच्ची सस्कृति दूसरे देशों के सास्कृतिक क्रिया व्यापार, प्रगति और परंपराओं को दबाती नही है, बल्कि उन्हे समृद्ध करती है; वह लोगों को आपस में विभाजित नहीं करती, अपितु उन्हे निकटतर लाती है।

दुनिया मे ऐसा दूसरा कोई भी देश नही है जहां चिंतन और संस्कृति सम्बन्धी सभी लोगो की सर्वकालिक सर्वश्रेष्ठ उपलब्धियों को इतना ऊंचा मूल्यांकन प्राप्त हो तथा उनका इतना व्यापक प्रसार किया गया हो जितना कि सोवियत सघ मे हुआ है। दुनिया के प्राचीन आदर ग्रंथ और समसामयिक रचनाएँ सोवियत संघ मे करोड़ों प्रतियों के संस्करणों मे छापी जाती हैं। सोवियत नाट्य-गृहों के रंगमचों पर अनेक विदेशी लेखकों के नाटक खेले जाते हैं, देश के सिनेमाओं और टी० वी० पर दुनिया के जाने-माने कलाकार और मंचीय व्यक्तित्व प्रदर्शित होते हैं। सोवियत संघ में तथा अन्य समाजवादी देशों मे अन्तर्राष्ट्रीय सूचना के आदान-प्रदान व जनगणों के पारस्परिक सपर्क को प्रोत्साहित किया जाता है। केवल सन् 1975 में ही 580 लाख से अधिक विदेशी यात्रियों ने पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद के सदस्य राज्यों की यात्रा की और लगभग 350 लाख समाजवादी समुदाय के लोगो ने विदेशी राज्यों की यात्राएँ की। अतः 'बंद समाज' की चर्चा का क्या अर्थ हो सकता है?

जून सन् 1976 में यूरोप की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के सम्मेलन में लियोनिद् ब्रेझनेव ने कहा था—"नहीं, समाजवादी देश एक 'बंद समाज' नहीं है, हम प्रत्येक सच्चे और ईमानदार व्यक्ति के लिए खुले हैं, और हम हर प्रकार से सपर्क का विस्तार करने के लिए तैयार हैं, तनावशैथिल्य की अनुकूल परिस्थितियो का उपयोग करने मे अग्रणी हैं। किंतु युद्ध, हिंसा, जातिवाद और घृणा को प्रचारित करने वाले प्रकाशनों के लिए हमारे दरवाजे हमेशा बंद रहेंगे। और इससे भी अधिक विदेशी गुप्तचर सेवाओं के सदेशवाहकों और उनके द्वारा खड़े किये गये सोवियत विरोधी घुसपैठिये संगठनो के लिए भी ये हमेशा बंद रहेंगे। सपर्कों की 'स्वतन्त्रता' की चर्चा के बहाने पश्चिम के लोग कभी गदी हरकतें करने के लिए

बरतना प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।"[1]

अब यह स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय मसलों तथा सूचना के क्षेत्र में क्या स्थिति है। लेकिन मारतः इस मसले मुद्दे को अधिक-से-अधिक भ्रमपूर्ण बनाने की इच्छा की वजह से बूर्जा प्रचार तब प्रायः 'वैचारिक संघर्ष' और 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' की धारणाओं को एक साथ मिलाने की कोशिश करता है। प्रश्न को जितना शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है उतना ही वह अस्वाभाविक लगता है : या तो वह वैचारिक संघर्ष का परित्याग या 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' की निरंतरता। सिद्धांततः इस प्रकार का प्रस्तुतीकरण दिवालियापन ही प्रदर्शित करता है तथा व्यवहार में वह किसी-न-किसी रूप में जनगणों के बीच में शान्ति और सहयोग की प्रक्रिया को नुकसान पहुँचाता है।

वैचारिक संघर्ष ऐतिहासिक प्रक्रिया की हमेशा एक वस्तुगत-परस्परक्रिया बनी रहेगी। यह तब तक अनिवार्य है जब तक कि विरोधी वर्ग कायम रहते हैं। किन्तु यदि किसी के लिए यह संभव नहीं कि वह 'वैचारिक संघर्ष को समाप्त कर दे' तो इसके लिए वे सरकारें और शासकीय राजनैतिक पार्टियाँ, जिनके ऊपर इसे अंजाम देने की जिम्मेवारी है, सोचें और चुनें कि उन्हें क्या साधन और कौन से तरीके काम में लेने होंगे। यह एक बात है कि विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय, उनके लाभों को सिद्ध किया जाय और व्यावहारिक अनुभव को इस दृष्टि से फैलाया जाय कि जनमत को जीता जा सके (वैचारिक संघर्ष) तथा इससे पूरी तरह भिन्न बात यह है कि जनता को गलत सूचनाएँ दी जाएँ, दूसरे देशों को लांछित किया जाय और उनकी वर्तमान व्यवस्था में सैद्धांतिक दृष्टि से तोड़-फोड़ की जाय (मनोवैज्ञानिक युद्ध)।

तनावशैथिल्य किसी भी रूप में वैचारिक संघर्ष के ह्रास का सूचक नहीं होता। यह नितांत आवश्यक है कि ऐसे ठोस सिद्धांत और निर्धारित किए जाएँ जो बिना-शर्त 'मनोवैज्ञानिक युद्ध' के तरीकों को प्रतिबंधित कर दें क्योंकि मनोवैज्ञानिक युद्ध के इन तरीकों ने लम्बे समय से अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को जहरीला बना रखा है।

अन्तर्राष्ट्रीय तनाव-शैथिल्य पूँजीवाद और मजदूर वर्ग की प्रकृति को और न उनके उद्देश्यों को ही संशोधित करता है। पूँजीवाद और समाजवाद के बीच का संघर्ष अनिवार्य है।

लियोनिद ब्रेझनेव ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस में इस बात पर ध्यान आकृष्ट किया—"विश्व की घटनाओं और तनाव-शैथिल्य में सकारात्मक

---

1 यूरोप में शांति, सुरक्षा, सहयोग और सामाजिक प्रगति के लिए, पृ० 16

परिवर्तन समाजवादी विचारों के व्यापक फैलाव के लिए अनुकूल अवसरों क निर्माण करते हैं। लेकिन, दूसरी ओर दो व्यवस्थाओं के बीच का वैचारिक मुक़ाबल पहले से कहीं अधिक तीखा, तथा साम्राज्यवादी प्रचार पहले से कहीं अधिक धूर्तत पूर्ण होता जा रहा है।"[1]

प्रतिक्रियावाद के अड़ियल प्रतिरोध के बावजूद विश्व में वैचारिक और राज नैतिक वातावरण लोकतांत्रिक शक्तियों के पक्ष में परिवर्तित हो रहा है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 24वीं कांग्रेस के निर्णयों के आधार पर सोविय संघ द्वारा शक्तिशाली शान्ति प्रयासों के तेज़ किये जाने, शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा जनमुक्ति संघर्ष के लिए आगे का संघर्ष कार्यक्रम—सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस में स्वीकृत किया गया था—तथा सोवियत संघ द्वारा युद्ध शुरू किये जाने की सारी चर्चा की कलई खोल दी थी। इस परिस्थिति ने सोवियत-विरोध के सबसे महत्त्वपूर्ण वैचारिक मूलाधार—कम्युनिज्म की आक्रा- मक प्रकृति के बारे में प्रचारित मिथक—की धज्जियाँ उड़ा दी।

यह बहुत महत्त्व की बात है कि व्यापक जनमत के द्वारा समर्थित तनाव- शैथिल्य का मार्ग दुनिया भर में राजनैतिक सक्रियता को प्रेरित और त्वरित करता है। *नितांत भिन्न सैद्धांतिक और राजनैतिक उन्मुखताओं से अधिकाधिक संयुक्त* जनशक्तियाँ शान्ति के लिए विशाल और व्यापक संघर्ष में सम्मिलित हो रही हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक सचमुच की लोकतांत्रिक प्रणाली के निर्माण हेतु एक समान कार्यक्रम के आधार पर एकता कायम करने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। इससे प्रतिक्रियावादियों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सैद्धांतिक और राज- *नैतिक काम गहनता से जटिल बन जाता है, अर्थात् प्रतिक्रियावादियों द्वारा विकट* राजनैतिक समस्याओं के समाधान में जनभागीदारी को यथासंभव रोकने के काम और संयुक्त साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चे में लोकतांत्रिक शक्तियों की एकजुटता को भटकाने या बिखराने के काम को प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है।

साथ ही, दुनिया के मज़दूर वर्ग की समझ में यह आने लगा कि *अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा राष्ट्रीय मुक्ति और सामाजिक प्रगति से अलग नहीं की जा सकती।* व्यव- हार में दुनिया के सभी हिस्सों के नए जनगण इस बात से सहमत हो रहे हैं कि वास्तविक सतत शान्ति असली लोकतांत्रिक आधार पर ही टिकी रह सकती है अर्थात् उन सिद्धांतों पर जिन्हें हमेशा कम्युनिस्ट पार्टी और सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों ने मान दिया है। इस सत्य की चेतना और *मनर्वता उस व्यापक सिद्धांत को काट देती है, जिसे पूँजीवादी प्रचार ने बहुत वर्षों से इस्तेमाल किया है।*

---

1 दस्तावेज़ और प्रस्ताव, सो सं क पा की 25वीं कांग्रेस, पृ॰ 89

कि शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति की 'अंतर्विरोधी' प्रकृति और इसके शांति के नारों और वर्गीय क्रान्तिकारी उद्देश्यों में 'असंगति' है।

ये सब तथ्य समकालीन वैचारिक संघर्ष में गम्भीर परिवर्तन पैदा करते हैं। इसके केन्द्र में युद्ध और शांति, अंतर्राष्ट्रीय संबंध और भिन्न सामाजिक राजनीतिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के प्रश्न हैं—यह एक ऐसा तथ्य है जिसे इस युग की नियमितता के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। संसार के विकास की हरेक अवस्था एक या दूसरे प्रकार के संघर्ष को आगे बढ़ा देती है अथवा एक विशेष समस्या को उपस्थित कर देती है जो अधिकतम मात्रा में सारी मानवता के हितों से सम्बन्धित होती है। वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रकार का मुख्य मुद्दा शांति के लिए संघर्ष और आन्दोलन है जो प्रमुख रूप से सामाजिक प्रगति और मानवता के अस्तित्व की ही संभावनाओं को निर्धारित करता है। अतः यह स्वाभाविक है कि सबसे अधिक भयंकर वैचारिक संघर्ष इस पर लड़े गए हैं और लड़े जाते हैं।

तनाव-शैथिल्य के माध्यम से

तनाव-शैथिल्य की नीति ने अब तक जटिल अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया है। इससे इस सच्चाई की पुष्टि होती है कि हथियारों की दौड़, विरोधी पक्षों के किसी अस्थिर 'संतुलन' के निर्माण अथवा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के 'सैद्धांतिकीकरण' के जरिए शांति की सुरक्षा और उसकी सुदृढ़ता के महान् कार्य को पूरा किया जा सकता, बल्कि यह सब भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं वाले राज्यों के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धांतों के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है। समकालीन विश्व में शक्तियों के वास्तविक सहसम्बन्ध को प्रतिबिंबित करते हुए मात्र यही सिद्धांत ऐतिहासिक प्रगति की महान् आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है।

बहुत बार पश्चिम में इस प्रकार की बातें करने वाली आवाज़ों को सुना जाता है कि तनाव-शैथिल्य से पूँजीवाद की अपेक्षा समाजवाद को अधिक फ़ायदा पहुँचता है।

किन्तु वे इसे चाहे या न चाहें, यह दावा कम्युनिस्ट-विरोधियों द्वारा प्रसारित एक बुनियादी झूठ को ही उलट कर रख देता है, और वह है समाजवाद की तथाकथित आक्रामकता में सन्निहित है। बहुत-से दशकों तक पूँजीवादी सिद्धांतकार सोवियत 'प्रसारवाद' और 'सोवियत खतरे' के बारे में बढ़-चढ़कर बातें करते रहे। दर असल यह वही सिद्धांत था जिसे तनाव के ज़ोरवाली स्थितियों की रीति और अनेक शीत-युद्ध के दौर की साम्राज्यवादी आक्रामक नीतियों को एक सैद्धांतिक दलील के रूप में काम में लिया जाता रहा। अब यह इस रूप में उलट गया कि

समाजवाद शांति के विषय में अधिक चिंतित है और वह पूँजीवाद से अधिक इसमें फायदा उठाता है। अंतर्विरोध बिल्कुल स्पष्ट है।

कम्युनिस्टों ने अपनी शान्ति की इच्छा को कभी छिपाकर नहीं रखा है। इसके साथ ही उन्होंने हमेशा इस धारणा को बनाए रखा है कि शांति और अंतर्राष्ट्रीय तनाव शैथिल्य आवश्यक हैं और सारे ही राष्ट्रों के लिए फायदेमंद हैं। हेलसिंकी सम्मेलन के निष्कर्षों को आधार बनाते हुए, लियोनिद ब्रेझनेव ने इस बात पर जोर दिया है कि शांति का सुदृढ़ीकरण एक ऐसा उद्देश्य है जिसके लिए, न तो विजेता न ही पराजित, मैदान मारने वाले या मैदान खोने वाले महत्वहीन हैं। यह विवेक की जीत है। हरेक लाभान्वित होगा : पूर्व और पश्चिम के देश, समाजवादी और पूँजीवादी राज्यों के सभी लोग, चाहे गठबन्धनों में शामिल हों या तटस्थ, चाहे बड़े हों या छोटे। यह उन सबके लिए फायदेमंद है जो हमारे ग्रह पर शांति और सुरक्षा की भावना को अपने हृदय में धरोहर के रूप में बनाए रख रहे हैं।"[1]

यह वक्तव्य इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि मानवता का शांतिपूर्ण विकास, जो युद्ध का एक विकल्प है, केवल एक आकांक्षा ही नहीं है किन्तु वह इतिहास की एक आवश्यकता भी है और एक ऐसा उद्देश्य है जिसे प्राप्त किया जा सकता है। इसे अनवरत और दृढ़ उपायों की एक ऐसी ठोस योजना का स्वरूप दिया गया है, जो परिणामतः अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक नई प्रणाली का निर्माण कर सकती है और उसे करना चाहिए।

उदाहरण के लिए, हेलसिंकी के सुझावों और निष्कर्षों ने यूरोप के वातावरण को सुधारने के लिए बहुत कुछ किया। सम्प्रभु अधिकारों के प्रति पारस्परिक सम्मान और राज्यों की सीमा सम्बन्धी एकसूत्रता के प्रति आदर, जो हेलसिंकी सम्मेलन के भागीदारों की मूल भावना थी, ने उनके घरेलू और विदेशी मामलों में अहस्तक्षेप और शक्ति के उपयोग तथा धमकी के परित्याग आदि ने अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण पर अनुकूल प्रभाव डाला। सभी यूरोपीय राज्यों की सीमाओं की अलंघनीयता पर हुई सहमति ने यूरोपीय सुरक्षा को आश्वस्त करने में विशेष भूमिका अदा की। विज्ञान, प्रविधि, संस्कृति और कला के विभिन्न क्षेत्रों में बहुविध सहयोग स्वभावतः उपयोगी और लाभदायक है।

इस प्रकार हेलसिंकी सम्मेलन के पश्चात् का यूरोप यह जाहिर करता है कि शीतयुद्ध के अवशेष को समाप्त किया जा सकता है। इस प्रक्रिया का गहरा होना इस बात को संभव बना देगा कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में से पृथकतावाद और संदेह को दूर किया जा सके और ऐसा करना सारी मानवता को लाभ पहुँचाएगा।

---

1. एल० आई० ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण', मास्को, 1975, पृ० 582

सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी सबसे बढ़कर इस बात को महत्व देती है कि राजनैतिक तनाव-शैथिल्य के लिए संघर्ष को जारी रखना इस दृष्टि से आवश्यक है कि तनावों की शेष स्थितियों को समाप्त किया जा सके, अन्तर्राष्ट्रीय विरोधों का न्यायसंगत हल प्राप्त किया जा सके तथा आपसी समझ और विश्वास को मजबूत किया जा सके। यह आवश्यक है। ब्रेझनेव ने कहा, "संसार में ऐसा वातावरण बनाने के लिए, जिसमें शक्तिशाली हमलावरों—जो तलवारें खींचने और दु.साहस करने में खुशी महसूस करते हैं—का मुकाबला करने के लिए प्रत्येक जनगण संकल्पबद्ध हो, तथा जिसमें विश्व के सभी भागों के अधिकाधिक जनगण के लिए शांति, सुरक्षा और एक शांतिपूर्ण भविष्य में विश्वास एक यथार्थ बन जायेंगे।"[1]

इस समस्या का समाधान बहुत महत्वपूर्ण है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की नई व्यवस्था के निर्माण में सिर्फ पहली अवस्था है। आज गुणात्मक रूप से नए दौर की आवश्यकता जहाँ राजनैतिक तनाव-शैथिल्य का पूरक सैनिक तनाव-शैथिल्य हो तेजी के साथ व्यक्त हो रही है। हथियारों की दौड़ को समाप्त करना अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का अहम मसला बन रहा है, क्योंकि मानवता और अधिक युद्ध के प्रसार तथा उसके भौतिक आधार के पुख्ता करने को सहन नहीं कर सकती। तनाव-शैथिल्य की आगे की प्रगति हथियारों में कटौती और क्रमशः सार्वभौम और पूर्ण नि.शस्त्रीकरण पर निर्भर करती है। लियोनिद ब्रेझनेव ने सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस को बताया—"आज, यह उद्देश्य पहले से कहीं बहुत बड़ा है।"[2]

इस दिशा में पहलकदमी की जा चुकी है। तीन स्तरों में आणविक हथियारों पर प्रतिबन्ध लगाने की सन्धि पर हस्ताक्षर करने, उनका आगे उत्पादन न करने, रणनीतिक, सुरक्षात्मक और आक्रामक हथियारों के परिसीमन पर सोवियत-अमरीकी समझौतों का निष्कर्ष और आणविक युद्ध को रोकने, युद्धकारक आक्रामक हथियारों के परिसीमन पर नई सन्धि का प्रारूप तैयार करने पर सहमति और इसी प्रकार के दूसरे कार्मों को नि.शस्त्रीकरण के मार्ग पर एक सफलतापूर्वक आरम्भ माना जा सकता है तथा यह एक अच्छा उदाहरण भी है कि इस जटिल और तात्कालिक आवश्यकता वाली समस्या को जिसने अपने आपको इससे पहले कभी मानवता के सामने भयंकर रूप से प्रस्तुत नहीं किया था किस प्रकार हल किया जा सकता है।

निष्कर्षतः, राजनैतिक और सैनिक तनाव शैथिल्य को आगे चलकर तमाम देशों के बीच समानता, सम्प्रभुता और एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के आधार पर उपयोगी सहयोग की स्थापना करने की ओर अग्रसर होना चाहिए। यह इस प्रकार का सहयोग है जो उस अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की नई प्रणाली की मूल

1. एल० आई० ब्रेझनेव, 'लेनिन के मार्ग का अनुसरण', मास्को, 1975, पृ० 547
2 दस्तावेज और प्रस्ताव, 'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 25वीं कांग्रेस', पृ० 27

अन्तर्वस्तु का निर्माण करता है जिसे सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी स्थापित देखना चाहती है।

यह सीधा किंतु शानदार परिदृश्य आर्थिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक सहयोग के लिए, सांस्कृतिक मूल्यों के आदान-प्रदान के लिए और आज की और भविष्य की विश्वव्यापी समस्याओं को सुलझाने हेतु संयुक्त प्रयासों के लिए भरपूर अवसर प्रदान करता है।

शांति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की यही सम्भावना है। किन्तु वर्ग-शांति से इसकी कहीं समानता नहीं है न यह और किसी भी प्रकार से, सिद्धांतों और राज्य की राजनैतिक प्रणालियों की मौलिक भिन्नताओं को मिटाती ही है। इसकी क्रियान्विति का यह कतई अर्थ नहीं है कि मजदूर वर्ग का पूंजीवादी प्रणाली के दमन के साथ किसी भी प्रकार का समझौता या मेल हो जाय। इसके विपरीत यह एक वर्गहीन समाज के निर्माण के उनके वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जन-समुदाय को सर्वाधिक अनुकूल अवसर प्रदान करती है और इसके साथ ही ताप-नाभिकीय युद्ध की लपटों में अपने आत्म-विनाश की आशंका को दूर करती है।

इस सम्भावना को न पलटी जा सकने वाली सम्भावना होना है, क्योंकि यह इस समसामयिक युग की—जो मानवता के पूंजीवाद से समाजवाद की ओर संक्रमण का युग है—अन्तर्वस्तु को अभिव्यक्त करती है।

अध्याय : 11

भविष्य की देहलीज़ पर

"सभी आदमियों की जिन्दगियों में होता है एक इतिहास, दिवंगत युगों की प्रकृति को अंकित करते हुए; उसे समझकर कोई भी व्यक्ति भविष्यवाणी कर सकता है लगभग सटीक, घटनाओं के प्रमुख रूपों की जीवन में अभी तक अघटित, जो अपने बीजों में, और निर्बल प्रारम्भों में, पड़ी अन्त:पोषित !
काल इन घटनाओं को सेता है···जन्म देता है···"

—विलियम शेक्सपीयर—'किंग हेनरी IV'

आगामी कल आज में शुरू

शायद पहले के किसी युग में विगत कल, आज और आगामी कल इतने घनिष्ठ रूप में अन्तर्ग्रथित नहीं रहे जितने कि समकालीन—तेज़ी के साथ विकसित होती हुई वैज्ञानिक, तकनीकी और सांस्कृतिक प्रगति के—युग में। जैसा कि पहले कभी नहीं हुआ, भविष्य वर्तमान में विकसित हो रहा है, तथा यह अतीत अनुभव के उचित आकलन के आधार पर निर्मित होता जाता है। यह वर्तमान ही है 'भूत-वर्तमान-भविष्य' की त्रयी में जिसका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

इस दृष्टिबिन्दु से देखने पर लगता है कि जनगण के कार्यकलाप आज एक विशेष ऐतिहासिक अर्थ ग्रहण कर रहे हैं और साथ ही विशेष उत्तरदायित्व भी। यही कारण है कि लोगों के कार्यकलाप के पूर्वानुमान और उनके सम्भव परिणामों की समस्या ने आज के हमारे युग में इतनी महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली है। मनुष्य ने इतनी विराट् उत्पादक शक्तियों पर स्वामित्व हासिल कर लिया है और प्रकृति की इतनी विशाल शक्ति को अपने अधीन बना लिया है, कि उसके क्रिया-कलाप भविष्य में अपूरणीय विपत्तियों को जन्म दे सकते हैं, यदि उनके आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक और नैतिक परिणामों को वैज्ञानिक आधार पर पूर्वकल्पित

नही किया गया तो। एक वस्तुगत और सर्वग्राह्य अर्थात् वैज्ञानिक पूर्वानुमान में सामाजिक प्रगति को अलग नहीं किया जा सकता। आगे बढने के लिए यह आवश्यक है कि भविष्यवाणी करने की सामर्थ्य अर्जित की जाय और आज के लिये हुए निर्णयों के सम्भावित परिणामो का लेखा-जोखा लिया जाय।

इसका मतलब है कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति के युग ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि जिसमें लोगों के लिए यह लाजिमी हो गया है कि वे न केवल भूत और वर्तमान के आधार पर भविष्य का नक्शा तैयार करें, अपितु भविष्य की अपनी पूर्वदृष्टि के आधार पर वर्तमान को परिभाषित करें। मानवता की वैज्ञानिक एव प्राविधिक क्षमताएँ इतनी विशाल हो चुकी हैं कि उनकी अधिकतम एवं निरापद सिद्धि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन गया है।

निस्सन्देह, यह प्रश्न भूतकाल में भी उपस्थित हुआ था, लेकिन उतना तीव्रता के साथ पहले कभी सामने नहीं आया था, जितना कि आज, क्योंकि मनुष्य पहले कभी इतना शक्तिशाली नही था जितना कि वह आज है। दूसरी तरफ़, दशकों और सदियों मे फैले हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन ने कई पीढ़ियों के जीवन को अपने मे समेट लिया। इसके बदले में इसने व्यक्तियों के सामाजिक उत्तरदायित्व को उनके वंशजों की तुलना मे कम कर दिया। अपनी सक्रियता से सीधे आर्थिक फायदे हासिल करने की शीघ्रता में हमारे समय से पूर्व के लोगों ने इस तथ्य पर कोई ध्यान ही नही दिया कि उनकी भूलों और उनके त्रुटिपूर्ण अनुमानों की कीमत आखिर भावी पीढ़ियो को चुकानी पड़ेगी। सदियों बाद उक्त क्रियाकलाप के परिणाम मानवता पर प्राकृतिक विपत्तियों के समान आ पड़े। फ्रेडरिक एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता' मे लोगों के ऐसे क्रियाकलापों के अप्रत्याशित परिणामो के कई उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जोकि उन्होने मात्र तत्काल फल प्राप्ति की क्षणिक प्रेरणा के वशीभूत होकर किये थे।

"उन लोगो ने, जिन्होने मैसोपोटामिया, ग्रीस, एशिया माइनर मे तथा अन्यत्र जगलो को इसलिए नष्ट कर दिया था कि उन्हें उपजाऊ जमीन मिल जाय, कभी स्वप्न में भी नही सोचा था कि वे इन देशों की मौजूदा दयनीय स्थिति की आधार-शिला रख रहे थे।...वे जिन्होंने यूरोप मे आलू फैलाया यह नही जानते थे कि इन माँडयुक्त कन्दो के साथ वे गंडमाला भी फैला रहे हैं।...जब अरबों ने स्पिरिट का भबका लगाना सीख लिया, यह उनके मस्तिष्कों मे नही आया कि ऐसा करके वे उस समय तक अज्ञात अमरीकी महाद्वीप की आदिवासी जातियो के जन-संहार के हथियारो में से एक प्रमुख हथियार का निर्माण कर रहे हैं।"[1]

इसका परिणाम यह होता है कि सीधा भौतिक लाभ उठाने की फिराक में

1. एंगेल्स, 'प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता', मास्को, 1976, पृ० 180-81

लोगों ने, केवल प्रारम्भिक और स्पष्टतम परिणाम पर ही ध्यान देकर, इस आदिम सिद्धान्त को ही निर्देशक आधार बनाया था कि 'मेरे जीवन भर के लिए काफ़ी है", तथा इसे सहजवृत्ति में स्वीकार कर लिया था।

समकालीन युग इस दर्शन को हमेशा के लिए उलट देता है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति, जो समाज के विकास को एक असाधारण मात्रा में बढ़ा रही है, ने मानवता को इक्कीसवीं तूफान के बीच में डाल दिया है—जैसा कि अमेरिकन विद्वान् एल्विन टॉफलर का मानना है। एक बार जिसके प्रकट होने में सदियाँ लग जाती थीं, अब उसी के व्यवस्थित होने में दशक या केवल कुछ वर्ष ही लगते हैं। लोग तेज़ी से यह जानने लगे हैं कि वे स्वयं, न कि उनके वंशज, अपने क्रिया-कलाप के फलों का भोग करेंगे।

हेगेल ने एक बार यह विचार प्रकट किया था—"विश्व-इतिहास में यह अक्सर घटित होता है कि सामान्यतया मानवीय क्रियाकलाप से भिन्न परिणाम भी उत्पन्न होते हैं, बजाय उनके जिन्हें कि लोग हासिल करना चाहते हैं और दर-असल जिन्हें हासिल करते हैं, बजाय उन परिणामों के जिन्हें वे सीधे तौर पर जानते हैं और उनके जिन्हें वे चाहते हैं; वे अपने हितों को प्राप्त करने की व्यवस्था कर लेते हैं, किन्तु इससे और आगे के नतीजों को भी पैदा करते हैं—ऐसे जो उनमें छिपे हुए थे, किन्तु जिसके विषय में उन्हें अन्दाज़ तक नहीं था और जो उनकी योजनाओं में ही निहित नहीं थे।"[1] यह आधार वाक्य कुछ अर्थ रखता है जो किसी भी अर्थशास्त्री, परिस्थिति वैज्ञानिक, समाज-वैज्ञानिक आदि के लिए स्पष्ट होना चाहिए, खास कर आज के समकालीन गतिशील युग के आलोक में तीव्र गति से हो रहे विश्व-विकास तथा मनुष्य की बढ़ी हुई शक्ति की स्थिति में लोगों ने अपने क्रियाकलाप में वह भी देखना प्रारम्भ कर दिया है 'जोकि उनमें छुपा हुआ है'—उनकी प्रारम्भिक योजनाओं में जो परिणाम सम्मिलित नहीं होते।

इन परिस्थितियों में भविष्य में अभिरुचि को मौजूदा कार्य व्यापार की अन्तिम स्वीकृति के रूप में मान लेने की बात अब अटकलबाज़ी का प्रश्न नहीं रहा और सबसे बढ़कर वह प्रतिदिन की ज़िंदगी के लिए व्यावहारिक महत्त्व का आधिक मुद्दा बन चुका है। हमारी दुनिया में ज़बरदस्ती घुसकर सामाजिक-आर्थिक तथा वैज्ञानिक शिखर पर बैठा भविष्य, एक प्रकार से, समकालीन पीढ़ियों को अपनी तथा आगे आने वाली पीढ़ियों, दोनों की, नियतियों की सामाजिक रूप से ज़िम्मेवारी सौंपता है।

---

1 हेगेल, 'फ़िलासाफ़ी दर जेशिख़्ते', खण्ड 2, स्टुगर्ट 1928, पृ॰ 56-57

जर्मनी के विद्वानों, हेगेन बेनहॉर और अर्नेस्ट श्माक ने लिखा—" दुनिया में हम रहेंगे, कोई 'प्रतिश्रुत भूमि' नहीं होगी। *यह सोचना असम्य होगा कि भविष्य के कई सकारात्मक पहलू, जो हमारे सामने 1970 के द की देहलीज पर प्रकट हो रहे हैं, हमारे कामों और फैसलों के लिए हमें जिम्मे से बरी कर सकते हैं।* यह हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हम विज्ञान एवं प्रौ के द्वारा दिये गये अवसरों का लाभ उठाने के लायक भी रहेंगे कि नहीं। भवि प्रत्येक व्यक्ति, समूह, राज्य और राष्ट्र को समान रूप से जिम्मेवार बनाता है यहाँ स्वाभाविक रूप से हम यह जोड़ना चाहेंगे कि हमारे समय में भविष्य विषय में चिंतन *पहले से कहीं अधिक बड़े आयाम प्राप्त कर रहा है। पहले तुलना में कहीं अधिक पक्ष इसमें निहित है तथा यह निरन्तर जटिल बनता जा र* है। यह चिंतन प्रमुखतया सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित है।

भविष्यविज्ञान एवं विचारधारा

सन् 1817 में जब रॉबर्ट ओवन[2] ने—जो एक 46 वर्षीय सफल कारखाने दार उत्पादक थे, *जिन्हें लन्दन के सर्वाधिक विशिष्ट घरानों में जिसमें बकिंघ पैलेस भी सम्मिलित है, सम्मान दिया जाता था—'टाइम्स' के पृष्ठों के माध्य* से और उस शहर की मीटिंगों में, जो शहर व्यापारिक दुनिया का हृदय था, अपने कम्युनिस्ट कल्पना लोक की घोषणा की थी, तो उसे *व्यापक प्रचार मिला, किन्* व्यावसायिक समुदाय ने उसकी योजना को आकस्मिक पागलपन की एक क्रिया मात्र माना।

यह नया डॉन क्विग्ज़ोट कौन था? एक भद्र और उदार हृदय व्यक्ति, या एक ऐसा व्यवसायवादी जो लोगों की आत्माओं के ऊपर प्रसिद्धि और शक्ति की अपनी प्यास को शांत करना चाहता हो? या एक पागल आदमी जिसने अपने आपको खुदा या एक पैगम्बर के रूप में कल्पित कर लिया हो? व्यवसायी दुनिया ने स्वयं को असमंजस में पाया। इसमें आश्चर्य की बात थी ही क्या? बूर्ज्वा वर्ग तब एक उभरता हुआ वर्ग ही था, अभी तो ठीक अपनी क्षमताओं का दोहन शुरू

---

1. हेगेन एच० बेनहॉर/अर्नस्ट श्माक, 'फ्यूचर प्लान इन डाई जुकुन्फ्ट शाइबेरट', 1970, पृ० 11

2. रॉबर्ट ओवन—उस कल्पनावादी समाजवाद के संस्थापक जो एक सामाजिक शिक्षा के रूप में मार्क्सवाद के सैद्धांतिक स्रोतों में से एक था। पूंजीपति उत्पादक ओवन ने अपने कारखाने में कुछ प्रगतिशील सुधार लागू करने की कोशिश की। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने आगे मान लिया कि मजदूरों की दशा सुधारने के लिए केवल सुधार लागू कर देना ही काफी नहीं है बल्कि जीवन की सारी प्रणाली का पुनर्गठन आवश्यक है।

ही कर रहा था। उत्पादन करो, उत्पादन करो और फिर बार-बार उत्पादन करो : उन दिनों में बड़े व्यापार का यही आधारभूत सिद्धान्त था तथा व्यापारी-वर्ग वर्तमान में इतना तल्लीन था कि भविष्य के बारे में वह सोच ही नहीं सकता था। उसके फलस्वरूप तमाम पूर्व कथनों और भविष्यवाणियों को समय की बरबादी समझा जाता था तथा यह माना जाता था कि उनका निजी उद्योग के हितों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ओवन के विचारों को गम्भीरता से नहीं लिया गया, मानो वे किसी स्वप्नद्रष्टा या पागल आदमी के अनर्गल प्रलाप हों।

स्थितियाँ बदल चुकी हैं, तथा कोई आधुनिक व्यापारी विशुद्ध राजनैतिक मामलों और सामाजिक जीवन के व्यापक क्षेत्रों, दोनों में आँखें मूँदकर या भविष्य-कथनों की उपेक्षा करके व्यवसाय करने को पागलपन ही मानेगा। दीर्घकालिक पूर्वकथन प्रतियोगितात्मक संघर्ष का एक हिस्सा है जो इजारेदारियों के क्रिया-कलापों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक रुझानों का मूल्यांकन और आगे की सम्भावनाओं का पूर्वानुमान एक साधन है जिसके आधार पर अनुकूल अवसरों का उपयोग किया जाता है तथा जहाँ कहीं सम्भव हो, अप्रत्याशित स्थितियों का मुकाबला किया जाता है।

बहुत-सी बातों में आज का स्पर्द्धापूर्ण संघर्ष उससे भिन्न है जिसका एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'इंग्लैंड में मजदूर वर्ग की दशा' में वर्णन किया है—"यद्यपि कारखानेदार उत्पादक जान सकता है कि प्रत्येक देश में वार्षिक तौर पर प्रत्येक वस्तु की कितनी मात्रा की खपत होती है," उन्होंने लिखा, "वह यह नहीं जान सकता कि किसी भी समय वहां कितना माल उपलब्ध है, तथा यह जानने की सम्भावना तो और भी कम है कि उसके प्रतिद्वंद्वियों ने वहाँ कितना निर्यात कर दिया है। वह क़ीमतों में लगातार उतार-चढ़ाव के आधार पर लगा सकता है, वस्तुओं की उपलब्ध मात्राओं और उस समय की आवश्यकताओं के आधार पर अनिश्चित एवं कामचलाऊ अन्दाज़ ही लगा सकता है। उसे अपने माल के निर्यात में भाग्य पर ही भरोसा करना पड़ता है। अपने हर काम में वह अनुमान—जोकि संयोग पर आश्रित होता है—को आधार बनाता है।"[1]

यह स्थिति—जो कि इजारेदारी पूर्व के पूंजीवाद की लाक्षणिक है—आज भिन्न नजर आती है। कोई भी व्यापारी आँख मूंद कर—सब कुछ संयोग पर छोड़ कर—धन विनियोजित नहीं कर सकता। वे चोटी पर पहुँचने के लिए उत्पादन के विषय में पूर्व कल्पना करनी होगी और बाजार की आवश्यकताओं और भावों के उतार-चढ़ावों को पूर्वानुमानित करना होगा। इन समस्याओं को कमोबेश सही रूप से सुलझाने के लिए अनेक कारकों को मद्दे नजर रखना होगा, और न केवल विशुद्ध

1. मार्क्स-एंगेल्स, सकलित रचनाएं, खंड 4, पृ० 331-82

आर्थिक कारकों मात्र को ही, अपितु व्यापक सामाजिक प्रवृत्ति के कारकों को भी इसका अर्थ है कि इजारेदारियाँ दोनों प्रकार की—आर्थिक और सामाजिक—भविष्यवाणियों में अभिरुचि रखती हैं।

यहाँ एकाधिकार पूर्व के पूंजीवाद से भिन्न, जिसका चारित्रिक लक्षण उस क्षण की आवश्यकताओं की ओर उन्मुखता था, आज का समकालीन एकाधिकारवादी पूंजीवाद, इसके अतिरिक्त, भविष्य को दृष्टि में रखकर भी अपनी गणना लगाता है। इसकी अभिव्यक्ति सामाजिक-आर्थिक पूर्वानुमान के लिए बुर्जुआ राज्यों द्वारा तेज़ी से बढ़ाए जाने वाले आवंटनों में दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमरीका में लगभग 9 करोड़ डालर वार्षिक इस उद्देश्य के लिए एक दशक पहले खर्च किए जाते थे। ज़ाहिर है, यह कोई संयोग नहीं था कि इजारेदारियों द्वारा सब प्रकार के पूर्वानुमान—जिनमें आर्थिक व सामाजिक भी सम्मिलित थे—से सम्बन्धित अनेक समूह, आयोग, संस्थान और एजेंसियाँ इजारेदारियों द्वारा स्थापित किये गये थे।

अब सामाजिक पूर्वानुमान सबसे पहले इजारेदारियों की व्यावहारिक आवश्यकताओं के रूप में दिखाई दिए, और समकालीन पूंजीवाद की भविष्योन्मुखता के लिए भी बुनियादी कारण यही है।

कम्युनिज़्म का उठता हुआ ज्वार, जिसके आगमन को पूंजीवाद अधिकाधिक स्पष्टतया महसूस करने लग गया है, उत्पादन के पुराने सम्बन्धों की सारी प्रणाली को ही ध्वस्त कर देगा, यह मान कर पूंजीवादी दुनिया [illegible] तथा भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में कठिनाई अनुभव कर रही है। यह सामाजिक क्रान्ति का पूर्वाभास था जिसने पूंजीवाद को अपने भविष्य के विषय में सोचने को विवश कर दिया और, यदि सम्भव हो तो, कम्युनिस्ट भविष्य के विरुद्ध दूसरे प्रकार के युद्ध छेड़ देने की स्थिति बना दी ताकि वह अपने अस्तित्व की अवधि सीमा तक लम्बा कर सके।

[illegible]

आसमानों तक पहुँचाया जाता है—बिल्कुल भिन्न अर्थ था और उसका निशान 'मार्क्सवादी कल्पनालोकी चिंतन' था। इसी सन्दर्भ में 'भविष्य विज्ञान' शब्द का प्रचलन अमरीकी विद्वान, ओसिप फ्लैक्थीम द्वारा प्रारम्भ किया गया। भविष्य विज्ञान के आविष्कारक समस्त घटनाओं के ऐतिहासिक प्रवाह की भविष्यवाणी करने के सारे प्रयत्नों को 'छद्म वैज्ञानिक' कहकर अभिशप्त करते थे। उन्होंने लिखा—"चाहे किसी भी दृष्टिकोण से कोई इतिहास की प्रक्रिया को पूरी तरह तर्कसंगति देने की कोशिश करे, उसे ईश्वरीय शास्त्र प्रमाण के रूप में निर्मित करना असम्भव होगा। इसकी अपेक्षा हमें मनुष्य के इतिहास को मानव जातियों की एक अनन्त भ्रमण यात्रा के रूप में चित्रित करना पड़ेगा वह इधर-उधर यात्रा करते हुए बार-बार अपरिचित समुद्री किनारों पर उतरा।"[1] इसको सरलता से प्रस्तुत करने के चक्कर में फ्लैक्थीम ने न केवल सामाजिक पूर्वकथन की सम्भावना को ही त्याग दिया है, अपितु इतिहास की प्रक्रिया के नियतिवाद को भी त्याग दिया है।

1970 के दशक में इस चित्र में काफी हद तक परिवर्तन आया। समाजवादी देशों की आर्थिक उपलब्धियों और पूँजीवादी अन्तर्विरोधों के बढ़ने में न केवल समाज की बढ़ती हुई शक्ति का ही प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत किया, अपितु दूसरों को अपने से सहमत करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि कम्युनिस्टों का ऐतिहासिक भविष्यकथन सही रहा है। इन तथ्यों के प्रकाश में पूँजीवाद के ऐतिहासिक परिदृश्य से सम्बन्धित प्रश्न नई शक्ति के साथ उभरा। इस विषय में जर्मन विद्वान् ऐरिक फ्रोम ने चिल्लाकर कहा—"पश्चिमी दुनिया एक अन्धी गली में है, इसने अपने बहुत-से आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया है और जीवन में अपनी सार्थकता और लक्ष्य को खो दिया है। बिना इस लक्ष्य के पश्चिमी समाज को भूतकाल के अन्य किसी समाज की तरह अपना तेजस्विता और आन्तरिक शक्ति को भी खोने को मजबूर होना पड़ेगा।"[2]

इस 'तेजस्विता और आंतरिक शक्ति' को वापस प्राप्त करने के प्रयास में, पश्चिमी सिद्धांतकार भविष्य-विज्ञान का सहारा लेते हैं तथा पूँजीवाद और समाजवाद के बीच के ऐतिहासिक विरोध को भविष्य में स्थानान्तरित कर देते हैं। पहले यह कहा जाता था कि इतिहास के प्रवाह के विषय में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, वह असम्भव है और इसलिए दुनिया के लिए कम्युनिस्ट परिदृश्य स्वप्नदृष्टाओं के आविष्कार से अधिक और कुछ नहीं, और इसलिए कम्यु-

---

1 ओसिप के० फ्लैक्थीम, 'हिस्ट्री एण्ड फ्यूचरोलोजी', मैसेनहैम, 1966, पृ० 60

2. एरिक फ्रोम, डेर मार्क्स मेन्श अन्ड सेन फ्यूचर, फ्रेंकफर्ट, 1969, पृ० 323

निस्टों पर विश्वास नही किया जा सकता क्योंकि भविष्य को पहले से नही देखा जा सकता। अब इस बात पर जोर दिया जाता है कि मानवता के भविष्य के विषय में पूर्वकथन सम्भव है, बशर्ते, किसी तरह 'कम्युनिस्ट कल्पनालोकों' को नकार दिया जाय और पूर्वानुमान या भविष्यवाणियाँ पूजीवादी प्रतिमानों के आधार पर की जाएँ।

इन प्रतिबन्धों के साथ भविष्य-विज्ञान कम्युनिस्ट-विरोधी धारणाओं को सूचित करने में अपनी भूमिका अदा करता है। जहाँ कि पहले भविष्य की खोजबीन करना किसी व्यक्ति विशेष कल्पना विहारियों का क्षेत्र माना जाता था, आज भविष्य-वैज्ञानिक अध्ययन व्यापक और सुव्यवस्थित आधार पर किया जाता है। रिचर्ड निक्सन ने एक बार यह घोषणा की थी कि : "अमरीका का स्वप्न इतना महत्वपूर्ण है कि उसे स्वप्नदर्शियों के हवाले नही छोड़ा जा सकता है।"

अब लगभग सभी पूजीवादी देशों में भविष्यता ज्ञान की दर्जनों सरकारी और निजी संस्थाओं में धूम मची है तथा इससे जुड़े हुए कर्मचारियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है।

संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसे अध्ययन हडसन संस्थान, स्टैनफोर्ड विश्व-विद्यालय, दि अमेरिकन एकेडेमी ऑफ आर्ट्स एंड साइंसेज कमीशन ऑन दि इयर 2000 (सन् 2000 पर कला और विज्ञान आयोग की अमरीकी अकादमी)। रिसोर्सेज फ़ार द फ्यूचर, रैंड निगम तथा अन्य में; फ्रांस में—स, एसोसिएशन इंटर-नेशनल द फ्यूचरिबल्स, वर्किंग ग्रुप फॉर द ईयर 1985 ब्रिटेन; में—मैनकाईंड—2000, कमिटी फॉर द नेक्स्ट थर्टी ईयर्स; जर्मनगण परिसंघ में—गेसेलशाफ्ट फर जुकुन्फ्टफ्रागेन एण्ड म्यूनिख और ट्यूबिंगन में भविष्य-विज्ञान के संस्थानों आदि में किये जा रहे है।

रोम, वियना, टोक्यो, ओस्लो और अन्य नगरों में भी ऐसे केंद्र हैं जो भविष्य की समस्याओं का अध्ययन कर रहे हैं। अकेले संयुक्त राज्य अमरीका 600 से अधिक भविष्य विज्ञान के संगठन हैं।

इन संगठनों—जिन्हें राज्य तथा शक्तिशाली इजारेदारियों की आर्थिक सहायता प्राप्त है—के समस्त सनातन कम्युनिस्ट भविष्य के *विकल्प तथा पूँजीवाद* के 'भविष्य-वैज्ञानिक औचित्य' की खोज पर संकेंद्रित कर दिये गये हैं। कम्युनिज्म-विरोध के विचारकों ने अनेक ऐसे सिद्धान्तों का सूत्रपात किया है जिनके बारे में यह दावा किया जाता है कि वे भविष्य के वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते है। वे वस्तुतः पूँजीवाद के समर्थन में प्रचारात्मक मूल्य ही रखते हैं।

पूँजीवादी-भविष्य-वैज्ञानिक इन उद्देश्यों को छिपाते नहीं। *जैसे उनमें से एक अोलिम डडे हडन, "जब मानसिक विश्लेषण की कोई रचना हो—भविष्य के*

चिन्न से मुक्त है—आस्था जगाती है तो वह विचारधारा बन जाती है, इसमे आस्था रखने वाले लोग इसके बौद्धिक एवं नैतिक कैदी बन जाते हैं।"[1] इन सिद्धातो मे से कुछ तो आशा को बनाए रखते हैं, तथा कुछ लोगो मे भ्रम पैदा करते हैं, तीसरे नैतिक दृष्टि से उनको हताश करते हैं, जबकि कुछ और है जो आतंकित करने के लिए काम मे लाये जाते हैं। किंतु उन सबका उद्देश्य मजदूर वर्ग को आध्यात्मिक रूप मे निहत्था कर देना है।

एच० जी० वेल्स के भावुक नायक जो शुद्ध उत्सुकतावश अपनी 'टाइम मशीन' पर खतरे से भरी यात्रा आरम्भ करता है, से भिन्न आधुनिक पूंजीवादी भविष्य-ज्ञानी वास्तव मे बड़े व्यावहारिक होते हैं। वे भविष्य मे अपने भ्रमणो पर हमेशा एक तैयारशुदा फार्मूला साथ रखते हैं जिसके अनुसार वे अपनी कम्युनिस्ट-विरोधी अटकलबाजियो को प्रमाणित कर सके। भविष्य की वैज्ञानिक भविष्यवाणियाँ करने के बहाने वे आमतौर पर या तो सामाजिक यथास्थितिवाद का पूर्वानुमान करते हैं या समाजवादी आदर्शों की हार के विषय मे भविष्यवाणियाँ बघारते हैं।

इस भ्रम में तसल्ली तलाश करते हुए कि किसी तरह भविष्य मे बहिर्वेशित राज्य-इजारेदारी पूंजीवाद कम्युनिज्म के विरोध मे खड़ा करके सामाजिक क्रांति के आगमन को विलम्बित किया जा सकेगा, पूंजीवादी विज्ञान एक बार फिर कोशिश करता है कि भविष्य के विषय मे क्रांतिकारी मार्क्सवादी शिक्षण को चुनौती दी जाय।

लेकिन इन प्रयत्नो के माध्यम से पूंजीवादी विद्वान एक खतरनाक साहसिक कार्य, जो पहले ही उनमे से कुछ के लिए गम्भीर घबराहट पैदा कर चुका है, अपने सिर पर ले लेते हैं।

ऐतिहासिक प्रक्रिया का पूर्वानुमान

बहुत से लोगो ने भविष्य को पढने की कोशिश की है। केवल बहुत ही कम महान् विचारक वास्तव मे घटनाओ के क्रम का पूर्वानुमान करने मे समर्थ हो सके हैं, जबकि एक अनिश्चित सख्या के सभी प्रकार के पूर्वानुमान मृतजात भविष्य-वाणियों के रूप मे प्रकट होकर समाप्त हो चुके हैं।

एल्विन टॉफलर ने अपनी पुस्तक 'फ्यूचर शॉक' मे कुछ उदाहरणों को सूचीबद्ध किया है। "सन् 1865 में एक अखबार के सम्पादक ने अपने पाठकों को बताया कि 'सुविज्ञ लोग जानते हैं कि तारो के माध्यम से आवाज को प्रसारित करना असम्भव है'''।' मुश्किल से एक दशक बाद मिस्टर बेल की प्रयोगशाला से

1 'द पब्लिक इटरेस्ट', अक 17, 1969, पृ० 107

टेलीफोन की आवाज फूट निकली और उसने दुनिया को बदल दिया।

"उसी दिन जबकि राइट बन्धुओं ने उड़ान भरी, अखबारों ने उस घटना रिपोर्ट देने से इन्कार कर दिया क्योंकि उनके सम्पादक—जो गम्भीर व विवेक थे तथा जिनके पाँव ज़मीन पर टिके हुए थे—आसानी से इस बात पर विश्व नहीं कर सके कि ऐसा हो चुका है। क्योंकि कुछ दिनों पूर्व ही तो एक प्र अमरीकी खगोलज्ञ, साइमन न्यूकोम्ब, ने संसार को भरोसा दिलाया था कि 'ज्ञ वस्तुओं का कोई भी सम्भव मिश्रण, मशीनरी के ज्ञात स्वरूप और शक्ति के ज्ञ स्वरूप को किसी भी व्यावहारिक यंत्र में एक जगह इस रूप में संयोजित व व्य स्थित नहीं किया जा सकता कि उसका उपयोग करके आदमी लम्बी दूरियों त उड़ पाए।"

"इसके कुछ समय बाद ही एक दूसरे विशेषज्ञ ने सार्वजनिक रूप से घोष की कि घोड़ाविहीन गाड़ी के चलन के प्रयोगों से किसी प्रकार की अपेक्षा कमज़े दिमाग वाले ही कर सकते हैं। छः साल बाद दस लाखवीं फोर्ड एक एसेम्ब लाइन पर चल पड़ी।"[1]

वैज्ञानिकों को प्रकृति विज्ञान और प्रविधि में एक या दूसरी प्रवृत्ति व सम्भावनाओं का सही मूल्यांकन करने से और भविष्य की झलक प्राप्त करने वैज्ञानिकों को किसने रोका है?

सर्वप्रथम, उनकी आत्मपरकता तथा उनके व्यावहारिक पूर्वाग्रह ने रोका है ज भविष्य के भीतर प्रक्षेपित हैं। वे अनिवार्यतः भूतकाल की धारणाओं के वशीभूत है, उन मतांधों के, जो प्रतिदिन को वास्तविकता के द्वारा थोपे गए हैं और मान सिकता के कुछ प्रतिरूपों को निर्धारित करते हैं।

इसे पहले से देख पाने के लिए यह आवश्यक है कि *आत्मपरकता* को और पुरानी रूढ़ियों को दूर फेंका जाय, अन्यथा *पूर्वकथन* और *भविष्यवाणी* के सारे प्रयास घोर असफलता में समाप्त हो जाएँगे।

यह प्रकृति विज्ञान और तकनीकी ज्ञान और उत्पादन के विकास पर तो लागू होता ही है, किन्तु इससे भी अधिक समाज के जीवन पर भी लागू होता है जहाँ पूर्वानुमान के प्रयासों में बहुत सारे तथ्यों का विश्लेषण आवश्यक बन जाता है, तथा जो काफी अधिक मुश्किल काम है।

भविष्य केवल उनके लिए खुलता है जो वास्तविकता की समूची जटिल यंत्र-विधि को समझने की योग्यता रखते हैं, उसके दृश्य और अदृश्य उत्तोलकों का ज्ञान रखते हैं।

सामाजिक प्रगति के सन्दर्भ में इस पद्धति का विकास मार्क्स, एंगेल्स और

---

1. एल्विन टॉफ्लर, 'फ्यूचर शॉक', न्यूयॉर्क, 1970, पृ॰ 19।

निन द्वारा किया गया। इतिहास उनके विचारों एवं उनकी धारणाओं की विजय को प्रमाणित करता है और उनकी पद्धति के सही होने की पुष्टि करता है। जो न बड़े-से-बड़े विज्ञान कथालेखकों की आँखों से छिपी रहीं उसे यह पद्धति प्रकाश में ले आती है।

लेनिन के साथ अपनी मुलाकातों, तथा रूस के भविष्य के सम्बन्ध में उनके विचारों का स्मरण करते हुए, एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक 'रशा इन द शैडोज़' में लिखा—"गहरे स्फटिक सरीखे रूस में मुझे उस तरह का घटित होता कुछ नहीं दिखता जो कि क्रेमलिन में बैठे इस छोटे से आदमी को दिखता है वह देखता है कि सड़ी गली रेलों की जगह नए विद्युत् यातायात के साधन लगाए जा रहे हैं, वह देखता है कि नई सड़कों का जाल सारे देश की धरती पर पूरी तरह फैल रहा है, वह देखता है कि फिर से एक नया और अधिक खुशहाल कम्युनिस्ट औद्योगीकरण उदित हो रहा है।"[1] क्रांति के नेता ने उससे भी काफी दूर तक देखा : दस साल गुजरे और सोवियत संघ दुनिया के औद्योगिक उत्पादन के कुल परिमाण की दृष्टि से दूसरे नंबर पर पहुँच गया।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी पूर्वानुमान भूत और वर्तमान के वस्तुगत नियमों और प्रवृत्तियों की गहन वैज्ञानिक समझ से प्रस्फुटित होता है। लियोन लावाली, जो 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' को सामाजिक भविष्यवाणी का उदाहरण मानते हैं, की मान्यता है कि "मार्क्स और एंगेल्स ने, इसके मूलभूत सिद्धांतों को (भूतकाल के) पूर्वगामी समाजों के अध्ययन, तथा पूँजीवादी समाज—वे जिसमें जी रहे थे (वर्तमान) के विश्लेषण के आधार पर सूत्रबद्ध किया था।" इसके बाद वह आगे कहते हैं—"इस आधार पर उन्होंने, उन नियमों की खोज की जो एक नीचे की सामाजिक अवस्था से ऊपर की सामाजिक अवस्था में संक्रमण को संचालित करते हैं और इस प्रकार उन्होंने पूँजीवाद की समीक्षा निर्मित की तथा सामाजिक विकास के विज्ञानसम्मत मार्ग पर चलकर उन्होंने सामाजिक विकास की अगली अवस्था—कम्युनिज्म—की भविष्यवाणी की।[2]

अपने समय के पूँजीवादी समाज की ऐतिहासिक प्रक्रिया और सामाजिक उत्पादनतंत्र का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करते हुए, मार्क्स और एंगेल्स ने उत्पादक शक्तियों के विकास की सामान्य प्रवृत्ति को उद्घाटित किया जो देर-सवेर उत्पादन के पूँजीवादी सम्बन्धों को अनिवार्यतः समाप्त कर देगी। इसके मायने हैं कि कम्युनिज्म एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है।

---

1. एच० जी० वेल्स, 'रशा इन द शैडोज़', लंदन, पृ० 135-36
2. लियोन लावाली, 'पोअर अन कनेप्शन मार्क्सिस्ट डे ला प्रॉस्पेक्टिव', पेरिस, 1970, पृ० 25

अतः मार्क्सवाद की [illegible] अभिज्ञान की द्वन्द्वात्मक और भौतिकवादी पद्धति के लागू करने में निहित है। यह पद्धति किसी भी अध्येता से अपेक्षा रखती है कि सामाजिक घटना क्रियाओं की पड़ताल उनके विकास की प्रक्रिया में ही की जाय। लेनिन ने लिखा—"कौन नहीं जानता कि किसी भी सामाजिक घटना-क्रिया की, उसके विकास की प्रक्रिया में, परीक्षा करेंगे तो उसमें अतीत के अवशेष, वर्तमान की बुनियाद तथा भविष्य के बीज अनिवार्य रूप से प्रकट होंगे।"[1]

उन उत्पादक शक्तियों का जिन्हें उनके विकास की प्रक्रिया में पूंजीवादी समाज ने एकत्रित किया, अध्ययन करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने यह बताया कि कम्युनिज्म न तो एक कल्पनालोक है और न ही एक स्वप्न, किन्तु उनके विकास का चरम लक्ष्य तथा आवश्यक परिणाम है।

लेनिन के शब्दों में, "मार्क्स का सिद्धांत विकास के सिद्धांत—जोकि सर्वाधिक सुसंगत, सम्पूर्ण, सुविचारित एवं सारगर्भित रूप में प्रस्तुत है—का आधुनिक पूंजीवाद के सन्दर्भ में व्यावहारिक रूप है। मार्क्स के सामने स्वाभाविक तौर पर जो प्रश्न था वह पूंजीवाद के अवश्यंभावी अधःपतन तथा भावी कम्युनिज्म के भविष्य के सन्दर्भ में इस सिद्धांत के उपयोग से जुड़ा हुआ था।"[2]

लेनिन की दृष्टि में ये इस बात में निहित हैं कि कम्युनिज्म ऐतिहासिक रूप से पूंजीवाद से विकसित होता है तथा यह पूंजीवाद से उत्पन्न सामाजिक शक्ति के कार्य-व्यापार का परिणाम है। भविष्य के बारे में मार्क्स ने कोई अटकलबाजी नहीं की। उन्होंने कम्युनिज्म की समस्या को एक प्राकृतिक विज्ञानवेत्ता के तरीके से प्रस्तुत किया जो जैवीय संरचना के विकास का अध्ययन इस आधार पर करता है कि यह कैसे पैदा हुई और किस दिशा में विकसित हो रही है।

मार्क्स और एंगेल्स, दोनों, ने जोर देकर कहा कि उनकी भविष्य सम्बन्धी धारणाएँ अपने समय की तथ्यात्मक, ऐतिहासिक, भौतिक एवं सामाजिक घटना-क्रियाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है—"हमारे दृष्टिकोण तथा समकालीन समाज और भविष्य के गैर-पूंजीवादी समाज की भिन्नता को प्रकट करने वाले लक्षण स्पष्टतया वे निष्कर्ष हैं जो ऐतिहासिक तथ्यों और विकास की प्रक्रियाओं से निकाले गए हैं, तथा उनका कोई भी सैद्धांतिक या व्यावहारिक मूल्य नहीं है यदि इन प्रक्रियाओं के सन्दर्भ से हटाकर नये रूप में अलग से

---

1 वी० आई० लेनिन 'लोगों के दोस्त कौन हैं और वे सामाजिक जनवादियों से कैसे लड़ते हैं', संकलित रचनाएं, खंड 1, पृ० 179

2 लेनिन, 'राज्य और क्रांति' संकलित रचनाएं, खंड 25, पृ० 457-58

देखा जाय तो।"[1]

मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शक्ति इस बात में निहित है कि यह घटनाक्रियाओं को उनके विकास की प्रक्रिया में परीक्षित करता है। निम्नांकित उदाहरण इस प्रयास को यथेष्ट से अधिक रूप में चित्रित करता है। मार्क्स ने विश्वव्यापी पैमाने पर सर्वहारा क्रांति की बात कही, जो कि पूर्व-इजारेदारी पूंजीवाद की परिस्थितियों के अधीन पूर्णतया सही अवधारणा थी। किन्तु जब पूंजीवाद देश विकास की साम्राज्यवादी अवस्था में प्रविष्ट हो गए तो एक नई सामाजिक प्रवृत्ति—उनके असमान विकास—ने स्वयमेव अपने-आपको प्रकट कर दिया। इसकी जाँच करने पर लेनिन ने सुन्दरी के साथ यह भविष्यवाणी की: "असमान आर्थिक और राजनैतिक विकास पूंजीवाद का चरम नियम है। अतः पहली बार अनेक या किसी अकेले पूंजीवाद देश में समाजवाद की विजय सम्भव है।"[2]

इस प्रकार मार्क्सवाद-लेनिनवाद समाजशास्त्रीय पूर्वकथन की जटिल पद्धति को अपनाता है। इससे न केवल परिमाणात्मक संशोधन का पूर्व कथन ही सम्भव होता है अपितु एक या दूसरी घटनाक्रिया के गुणात्मक संशोधन के विषय में भी पूर्वकथन सम्भव हो जाता है। परिणामस्वरूप किसी घटनाक्रिया को उसकी प्रगति के रूप में जाँचा जाता है, जबकि वह अभी अपने सबसे ऊँचे बिन्दु को ओर बढ़ ही रही है, *जब परिमाण गुण में बदल ही रहा है और सामाजिक घटनाक्रिया अपनी* विपरीतता में बदल रही है। इस पद्धति को धन्यवाद कि इसके आधार पर नितांत नई सामाजिक घटनाक्रियाओं के विषय में भी भविष्यवाणी की जा सकती है।

मार्क्सवादियों ने अपने-आपको कभी भी भविष्य में उत्पादक शक्तियों के सामान्य वहिर्वेशन तक सीमित नहीं रखा। कुछ मर्यादाओं के साथ यही बात प्राविधिक प्रक्रियाओं और आर्थिक रुझानों के विषय में भी की जा सकती है, किन्तु सामाजिक घटनाक्रियाओं के बारे में नहीं। उदाहरण के लिए, जब उत्पादक शक्तियों के विकास की विश्व-व्यापी और ऐतिहासिक दृष्टि से जाँच करते हुए, इसको अनंतता में नहीं डाल दिया जाता जैसा कि भविष्यविज्ञानी प्रायः करते हैं। विचारणीय बिन्दु यह है कि अपने विकास की प्रक्रिया में उत्पादक शक्तियाँ उत्पादक सम्बन्धों के साथ सामाजिक अंतःक्रिया करती रहती हैं जो उनकी प्रगति में गतिरोध पैदा कर देता है या उसे एकदम रोक देती है।

इसीलिए, न तो मार्क्स-एंगेल्स ने और न लेनिन ने ही भविष्य—उसकी समस्त विशिष्टताओं के विस्तृत विवरण सहित—को जानने की आकांक्षा पाली और न

1. मार्क्स-एंगेल्स, वर्क्स, खंड 36, पृ० 429
2. लेनिन, 'यूरोप के संयुक्त राज्यों के नारे के सम्बन्ध में', संकलित रचनाएं, खंड 21, पृ० 342

तिथियार भविष्यवाणियाँ करने का इरादा व्यक्त किया। मार्क्सवाद ने ऐतिहासिक विकास की सामान्य प्रवृत्तियों व मुख्य आकृतियों पर ही जोर दिया। मार्क्सवादियों के लिए कम्युनिस्ट समाज की विजय ऐतिहासिकतः पूर्वनिर्धारित है और उत्पादक शक्तियों के विकास की तर्कसंगत परिणति है। लेकिन जैसा कि लेनिन ने लिखा—"किन अवस्थाओं से गुजरकर व किन व्यावहारिक साधनों के जरिए मानवता इस सर्वोच्च लक्ष्य तक आगे बढ़ेगी हम नहीं जानते और जान भी नहीं सकते।[1] "एक अन्य स्थान पर लेनिन ने इस विचार को आगे बढ़ाते हुए कहा—" हम यह दावा नहीं करते कि मार्क्स जानते थे या मार्क्सवादी जानते हैं कि 'अ' से 'ज' तक समाजवाद का यही रास्ता है। इस प्रकार का कोई दावा करना निरी मूर्खता होगा। जो कुछ हम जानते हैं वह है उस रास्ते की दिशा, और वे वर्ग शक्तियाँ जो इसका अनुसरण करती हैं; विशिष्ट व्यावहारिक विस्तार केवल लाखों लोगों के अनुभवों के बीच में से होकर प्रकाश में आएगा जब वे सब कुछ अपने स्वयं के हाथों में ले लेंगे।"[2]

जहाँ तक ऐतिहासिक प्रक्रिया की मुख्य दिशाओं का सम्बन्ध है, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की प्रस्थापनाओं ने, दुनिया को बदलने वाली बड़ी ऐतिहासिक घटनाओं के विषय में आश्चर्यजनक रूप से सही भविष्यवाणी की : जैसे—दुनिया के क्रांतिकारी आन्दोलन के केन्द्र को बदलकर उसे पूर्व की ओर कर देना, सर्वहारा क्रांति का रूस के द्वारा उद्घाटित किया जाना, प्रथम विश्वयुद्ध का चरित्र और उसके नतीजे, संक्रमण काल की आवश्यकता, और सर्वहारा वर्ग की तानाशाही, पूंजीवाद का इजारेदारी के रूप में विकास, विज्ञान का सीधे तौर पर उत्पादक शक्ति के रूप में रूपांतरण, समाजवाद में संक्रमण के स्वरूपों की विविधता, 'आणविक गतिरोध' की स्थिति आदि के बारे में।

ये सब पूर्वकथन किसी भविष्यवक्ता अथवा किसी प्रतिभा की कल्पना की उपज नहीं थे, किन्तु सामाजिक पूर्वानुमान की उस वैज्ञानिक पद्धति के परिणाम थे जिसे मार्क्सवाद के आदर ग्रन्थों ने प्रतिष्ठित किया था। बूर्ज्वा भविष्य विज्ञान भी वैज्ञानिक आधार रखने का दावा करता है। इसके पास बहुत शानदार गणक केन्द्र हैं जिनकी सेवाओं का वे उपयोग करते हैं तथा भविष्य वैज्ञानिकों ने सामाजिक पूर्वानुमान की अनेक पद्धतियाँ विकसित कर ली हैं।

कुल मिलाकर, बूर्ज्वा वैज्ञानिकों का अनुभव जो इन पद्धतियों के (जो निस्सन्देह

1. लेनिन, 'राज्य और क्रांति', पृ० 472
2. लेनिन, 'जनवादी की डायरी से', संकलित रचनाएँ, खण्ड 25, पृ० 281

शुद्ध रूप से परिमाणात्मक है) लागू करने में उन्हें मिला, आर्थिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक भविष्यकथन के रूप में काफी महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में भविष्य वैज्ञानिक बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध कराते हैं तथा वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रश्न प्रस्तुत करते हैं। किंतु इन पद्धतियों को अधिरचना के स्तर पर स्थानांतरित करने तथा सामाजिक सम्बन्धों के विकास को रूपायित करने के प्रयास समीक्षा की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। कोई भी गुणात्मक पद्धतियाँ पूंजीवादी भविष्यवक्ताओं की कमजोरियों अर्थात उनके चिंतन की क्षुद्रता को जो पूंजीवाद की पक्षधरता से पैदा होती है, को दूर नहीं कर सकती हैं। फलस्वरूप, कोई भी उपकरण और कोई भी पद्धति विज्ञान चाहे उनको उनके सूक्ष्मतम विस्तारों के द्वारा कितना ही विस्तृत करके क्यों न रखा गया हो—सकारात्मक परिणाम नहीं दे सकता। निष्कर्षतः बुर्ज्वा भविष्य वैज्ञानिक अनिवार्यतः या तो 'दुनिया के अन्त' का योग बताकर, सामाजिक सम्भावनाओं की क्षति की घोषणा करके, अवैज्ञानिक एवं धूर्ततापूर्ण भविष्यवाणियाँ करके, या प्रकट रूप से प्रचारात्मक स्वभाव की पक्ष समर्थक भविष्यवाणियाँ करके अपने कार्य की इतिश्री कर देंगे।

पश्चिमी भविष्यज्ञानियों की वैज्ञानिकों के रूप में यह त्रासदी है कि उनके प्रस्थान मार्ग पर ही उन्हें वर्गों की सामाजिक व्यवस्था को बरकरार रखना पड़ता है, और इसलिए उनकी भविष्यवाणियाँ जीवन के सम्पर्क में आने पर ताश के पत्तों के मकान की तरह ढह पड़ती हैं। उनमें से बहुत-सी तो इसी क्षण ढह रही हैं, यानी सन् 1974-75 के संकट के सन्दर्भ में भविष्यज्ञानियों ने जिसकी न तो 'पूर्व कल्पना की थी' और न भविष्यवाणी ही की थी। इस संकट के सामने बेल, काहन, गॉल्ब्रेथ, टॉफ्लर तथा अन्य विचारकों द्वारा चित्रित उज्ज्वल प्राविधिक सम्भावनाएँ हवाई किलों से अधिक सिद्ध नहीं हुई।

इन स्थितियों में बुर्ज्वा भविष्यशास्त्र ने अपना अधिकांश आत्मविश्वास खो दिया, तथा यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि इसके विशेषज्ञ अपनी कार्यनीतियों में सुधार करने को विवश हुए हैं। आज उनके शकुन नाना प्रकार के अस्पष्ट वक्तव्यों से शुरू होते हैं। पहले जो आत्मविश्वास और सफाई के साथ अभिव्यक्त किया जाता था, वही अब अधिक बारीकी से, पूर्व के कपटी भाग्य फल बताने वालों के तरीके को अपनाते हुए, प्रस्तुत किया जाता है।

इस दृष्टि से अमरीकी भविष्यशास्त्री हरमन काहन की ताजा पुस्तक, जिसका शीर्षक 'आगामी 200 वर्ष' है, बेहद दिलचस्प है। रैंड कॉर्पोरेशन के निदेशक तथा एक अन्य पुस्तक—'सन् 2000 का साल' के लेखक काहन वस्तुतः इस बात को जानते थे कि उनके पहले के पूर्व कथनों का क्या हश्र हुआ, तथा सम्भवतया इसीलिए उन्होंने अपने शकुनविचारों में एक रोचक नव-प्रयोग जोड़ दिया। उनके वैचारिक सिद्धांत वही रहे, तथा अमरीका के भविष्य के विषय में उनका आशावाद 1970

के दबाव के संकट के बावजूद बना रहा। वह आश्वासन करने की चेष्टा करते हैं कि आगामी 200 वर्षों में अमरीकी लोग 'समृद्धि' एवं दौलतमंदी प्राप्त कर लेंगे। किन्तु काहन काफी सतर्कता बरतते हुए कहते हैं कि उनकी भविष्यवाणी सच्ची साबित नहीं होगी, यदि युद्धनीति पर नियंत्रण नहीं हासिल किया गया तो।

फ्रांसीसी भविष्यशास्त्री एडमंड स्टिलमैन अपने भविष्य कथन में कि फ्रांस सन् 1980 तक आर्थिक क्षेत्र में यूरोप का नेतृत्व करेगा, इसी प्रकार की शर्त लगा देते हैं। और ब्रिटिश अर्थशास्त्री रिचर्ड बैली का कहना है कि सन् 2000 तक ऊर्जा उपभोग के सम्बन्ध में उनकी भविष्यवाणी सही सिद्ध होगी यदि अगले दो दशकों में *राजनैतिक स्थिति में स्थिरता रही और ब्रिटेन तथा दूसरे पूंजीवादी देशों की आर्थिक* वृद्धि लगातार जारी रही।[1]

यह है भविष्यवाणी का एक सरल और भरोसेमंद तरीका जिसे अक्सर काम में लिया गया।

पश्चिमी भविष्यशास्त्रियों द्वारा किये गये असाधारण दावों से पाठक का प्रायः सामना होता है। जैसे अमरीकी राजनीतिवेत्ता बी० पी० बैकविद ने बहुत बड़ा निबंध लिखा जिसको उन्होंने एक अर्थगर्भित शीर्षक—"आगामी 500 वर्ष: प्रमुख सामाजिक प्रवृत्तियों की वैज्ञानिक भविष्यवाणियाँ" दिया। वह इस बात में सुरक्षा अनुभव करते हैं कि वह अपने शकुनों के लिए जिम्मेवारी उठाने के वास्ते उपलब्ध नहीं होंगे, और इस तरह उनका सम्मान पूरे पाँच सौ वर्षों तक के लिए सुनिश्चित हो जाएगा।

अन्य अमरीकी भविष्यशास्त्रियों ने अपने पूर्वकथनों की अन्य प्रकार से 'गारंटी देने' के तरीके खोजे। उनकी भविष्यवाणियों के अनुसार सन् 1980 में मानवता के लिए कम-से-कम एक सौ विश्वविपत्तियों के आने के कारण उसके समाप्त होने का योग है। इनमें विश्व प्रलयप्रवाह, एक और हिमयुग का आगमन, ताप नाभिकीय युद्ध, जनसंख्या विस्फोट, परिस्थितिजन्य संकट, यंत्रमानवों (रोबोटों) के द्वारा मानव का दासकरण और उसी प्रकार की अन्य प्रकार की *महा-विपत्तियाँ शामिल* हैं। और जब उनमें से प्रत्येक सौ में से एक की संभावना है, तथा जब वे कुल मिला कर सौ बतायी गयी हैं, तो यह तो माना ही जा सकता है कि उनमें से कम-से-कम *एक तो निश्चित ही घटित होगी।*[2]

पश्चिम के भविष्यज्ञानियों में अग्रणी एल्विन टॉफलर भी इन स्पष्टोक्ति, नितांत

1. रिचर्ड बैली, *'ट्रैडिशनल इनर्जी रिसोर्सेज, प्रेज़ेंट स्टेट एण्ड फ्यूचर डिवेलपमेंट', फ्यूचर्स,* खंड 4, सं० 2, जून 1972, पृ० 103-114
2. देखिए, ई० ए० अरब ओग्ली *'भविष्यशास्त्रियों की भूल-भुलैया में',* मास्को, 1975, पृ० 216

ठोस भविष्यवाणियों के औचित्य पर संदेह व्यक्त करते हैं और अपने सहयोगियों का अधिक सावधान और सतर्क बनने के लिए आह्वान करते हैं। वह लिखते हैं "कोई भी गंभीर भविष्यवादी 'भविष्यवाणियों' में नहीं उलझता। वे दूरदर्शन की देववाणियों और समाचारपत्रों के ज्योतिषियों के लिए छोड़ दी जाती हैं। कोई भी, जो हल्के तौर पर भी पूर्वकथन की जटिलताओं से परिचित है, दावा नहीं कर सकता कि उसे आगामी कल का एकान्तिक ज्ञान है...।

"इसका मतलब है कि भविष्य के विषय में कोई भी वक्तव्य इस रूप में होना चाहिए कि उसमें इसकी विशेषक शर्तें—'अगर, मगर, और दूसरी ओर' आदि भी साथ में रहें।"[1]

अस्पष्ट तथा द्विअर्थी शर्तों की सहायता से अपने पूर्वकथनों की विश्वसनीयता एवं संभाव्यता में वृद्धि करने के बूर्ज्वा भविष्यवक्ताओं के प्रयास बूर्ज्वा भविष्य-विज्ञान के संकट तथा विश्वव्यापी ऐतिहासिक परिदृश्य को प्रमाणित करने की उनकी असमर्थता को ही उजागर करते हैं। 'देल्फी की देववाणियों' से नाम मात्र को अलग, भविष्य विज्ञान नीमहकीमी में परिवर्तित हो रहा है।

बहुत से सीधे-सादे लोगों ने इन देववाणियों की द्विअर्थी भविष्यवाणियों को सही ढंग से न समझ पाने व उनकी आदिम तथा सपाट व्याख्या करने के कारण भारी मूल्य चुकाया है।

"क्या मैं फ़ारसियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दूं?" लीडिया के राजा क्रोसस ने देल्फी में अपोलो के मंदिर के पादरियों से पूछा और सीधा उत्तर प्राप्त किया : "यदि तुम हैलीज नदी को पार करोगे तो एक बड़ा साम्राज्य नष्ट हो जाएगा।" क्रोसस इस उत्तर से खुश था और उसने एक बड़े साम्राज्य को नष्ट कर दिया। यह दूसरी बात है कि वह उसका खुद का ही बड़ा साम्राज्य था। क्या कोई इस गलत समझ के लिए किसी देववाणी को लांछित कर सकता है?

क्या पूंजीवाद और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति एक-दूसरे के अनुकूल हैं?

पूंजीवादी भविष्यशास्त्र ने सामाजिक रूपांतरणों की अनिवार्यता से इन्कार करके अपने आपको एक बंद गली में फंसा दिया है, यद्यपि ये रूपांतरण निरंतर बढ़ती हुई तीव्रता के साथ घटित होते जा रहे हैं। जॉन बर्नाल की मान्यता थी कि विज्ञान और कंप्यूटरों का युग अपरिहार्य रूप से समाजवाद का युग है।

"समकालीन प्रगति के सबसे महत्वपूर्ण परिणामों में से एक विज्ञान का प्रत्यक्ष उत्पादक शक्ति के रूप में रूपांतरण है। तो भी निजी उद्योग की परिस्थितियों के

[1] एल्विन टॉफ़लर, 'फ़्यूचर शॉक', पृ० 6-7।

अंतर्गत इस नयी विशेषता का मानवता के विशाल हितों में पूरी तरह से दोहन नहीं किया जा सकने का समर्थन तथा शक्ति के उपयोग के लिए उत्पीड़क मार्गों का उत्पादन एक ही चीज नहीं है। अपने सामाजिक प्रयोजन एवं प्रकार्य की दृष्टि से ज्ञान सारे समाज से सम्बन्धित है, इसका कारगर उपयोग और इसकी क्रियान्विति केवल सामाजिक मानदंडों के आधार पर ही संभव है जो वस्तुतः उन मानदंडों से भिन्न है जो पूँजीवादी समाज द्वारा निर्धारित है।

जहाँ तक समाज का सम्बन्ध है विज्ञान पर किए जाने वाले खर्च हमेशा अथवा लगभग हमेशा कारगर साबित होते हैं। ये आर्थिक दृष्टि से उस स्थिति में भी न्याय संगत है जबकि यह ज्ञात हो कि किसी पीढ़ी विशेष के जीवनकाल में किसी प्रकार के व्यावहारिक शोध-परिणामों के निकलने की आशा नहीं की जा सकती। संभाव्य सामाजिक परिणाम के निकलने की स्थिति में, तथा तात्कालिक निजी लाभ के न होने पर भी सत्य की खोज का अपना औचित्य है, चाहे उसकी सफलता की न्यूनतम संभावना ही क्यों न हो। पौधे (जो दूसरों को खाने के लिए फल उपलब्ध करेंगे) रोपते हुए बूढ़े आदमी की परंपरागत छवि विज्ञान की समकालीन प्रगति तथा इसके विकास की आवश्यकताओं के आवश्यक सद्भाव की प्रतीक ही है।

वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति के युग में विज्ञान के प्रति रुख, पहले से कहीं अधिक, समाज के विकास को निर्धारित करता है और भविष्य के प्रति इसके दृष्टिकोण को भी तय करता है। विज्ञान के लिए समाज का जितना अधिक सरोकार आज व्यक्त होगा, उतने ही अच्छे फल वह कल प्राप्त करेगा। इसलिए समाज की ओर से विज्ञान की तरक्की के लिए जो प्रयास आज किए जा रहे हैं वे एक प्रकार से सुरक्षित पूँजीनिवेश हैं जो कभी व्यर्थ नहीं होंगे तथा जो भविष्य में लाभांशों की गारंटी करते हैं।

पूँजी का दृष्टिकोण क्या है? विनियोग के औचित्य के इसके अपने मानदंड हैं। सर्वाधिक सामान्य मापदंड है 'लागत-खपत' अर्थात् यथाशीघ्र खर्चों की पूर्ति जिसके साथ अधिकतम विश्वसनीय गारंटियाँ हों। व्यापार इस सुनहरे नियम, जिसने बूर्ज्वा वर्ग को कभी निराश नहीं किया, को वैज्ञानिक विकास पर भी लागू करता है तथा ज्ञान को वह एक माल के रूप में समझता है जिसे उत्पादित किया जा सकता है, खरीदा जा सकता है और बेचा जा सकता है।

सामान्य विनियोजन की अपेक्षा वैज्ञानिक शोध में लगाये गये धन से लाभ-प्राप्ति देर से होती है। इसमें बहुत बड़ी जोखिम निहित है क्योंकि कोई भी वैज्ञानिक अपने काम की भूल-चूक के विषय में कोई गारंटी नहीं देता। और यद्यपि समकालीन पूँजीवाद इस जोखिम को उठाने को विवश है, क्योंकि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रान्ति ने ज्ञान के सचय को किसी भी उत्पादन की आवश्यक कड़ी बना दिया है, इसका तात्कालिक लक्ष्य सदैव मुनाफा कमाना है। विज्ञान एवं प्रविधि की

उपलब्धियों के प्रति—प्रतियोगितात्मक सघर्ष पर आधारित—नजरिया अन्तत उनके विकास को अवरुद्ध कर देता है। यह खासतौर पर दीर्घकालिक वैज्ञानिक शोध के लिए सही है।

पूंजीवाद के अन्तर्गत विज्ञान एव प्रविधि के विकास के लिए सैन्यवाद अपनी सारी शाखा-प्रशाखाओ के साथ सबसे अधिक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक है। किन्तु जैसा कि मार्क्स ने अपने समय में इगित किया था कि हथियारो की दौड पर किये हुए खर्च "आर्थिक दृष्टि से, राष्ट्र द्वारा अपनी पूंजी के एक हिस्से को पानी मे बहाने के समान होते हैं।"[1] सैन्य प्रेरणा समाज को समृद्ध नही बनाती, बल्कि उसे लूटती है, अर्थव्यवस्था का सैनिकीकरण वैज्ञानिक विकास को एकपक्षीय तथा विरूपित कर देता है, कुछ अध्ययनो को प्रेरित करके व अन्य को बाधित करके, वैज्ञानिक शोध की प्रणाली मे असतुलन का कारण बनता है। उत्पादन की अन्य शाखाओ की भाँति, हथियारो के निर्माण के उद्योग मे भी व्यापक उद्देश्य मुनाफाखोरी ही है।

"यह एक ऐसा युग है जिसमे मुनाफाखोरी का उद्देश्य अक्सर प्रमुख होता है, दरअसल इस सीमा तक, कि दूसरे उद्देश्यों को ताक पर रख दिया जाता है', नॉर्बर्ट वीनर ने लिखा, "जनसमुदाय के लिए विचारो का मूल्य डॉलर और सेंट के आधार पर अनुमानित किया जाता है, तो भी डॉलर और सेंट नए विचारो की तुलना में अस्थायी मुद्रा है। कोई भी नई खोज, जो नए प्रयोग का मार्ग-दर्शन करने की स्थिति तक पहुँचने मे पचास साल लगा देती है अक्सर उन लोगो को लाभ नहीं पहुँचा पाती जिन्होंने उसके लिए खर्च किया था, फिर भी यदि ये खोजें न की जाएं तथा हम उन्हीं पर निर्भर करते रहे जो कि पहले ही की जा चुकी हैं तो इसका अर्थ यही होगा कि हम अपने बच्चो तथा उनके भी बच्चो (अगली दो पीढ़ियों) के भविष्य के साथ खिलवाड कर रहे हैं।[2]

यह एक बहुत सही टिप्पणी है, फिर भी यह नोट किया जाना चाहिए कि समकालीन पूंजीवाद ने विज्ञान की प्रगति को अवरुद्ध नही किया है। इसके विपरीत, वह विभिन्न वैज्ञानिक शोधो को जोर-शोर से प्रेरित करता है। किन्तु एक तो यह विकास अत्यधिक असमान होता है तथा दूसरे यह है जो निजी उद्यम की प्रणाली से ही पैदा एक अन्य विरोधी प्रकृति का सामना करता है। बड़े व्यापार वैज्ञानिक और तकनीकी क्रांति के परिणामो पर एकाधिकार कायम करने की फिराक में रहता है और मुनाफो को एकत्रित करने के लिए ही उनका उप

---

1. मार्क्स-एगेल्स, कारयाख्य, खड IV, पृ. 29 (रूसी मे)
2 नार्बर्ट वीनर, 'आइ एम ए मैथेमेटिशियन', न्यू यॉर्क, 1956, पृष्ठ 161-62

करता है। बहुत प्राय: इजारेदारियाँ वैज्ञानिक एवं प्राविधिक उपलब्धियों को संवारने व छिपाने की जीतोड़ कोशिश भी करती हैं उनसे जितना ज्यादा अतिरिक्त मूल्य बटोर सकती हैं बटोरती हैं और बाजार में अपने प्रतिद्वन्द्वी व्यापारियों को कुचलती हैं।

फिर भी, शोध और विकास में प्राप्त उपलब्धियों पर एकाधिकार केवल एक अल्पजीवी और स्थानीय आर्थिक प्रभाव ही पैदा करता है। विज्ञान की प्रगति और तदनुरूप सारे समाज की प्रगति को धीमा करके यह बाद वाली प्रवृत्ति अनिवार्यतः कीमत वसूल करती है। पूंजीवाद विज्ञान के विकास और पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक मूल्य और प्रगति के मानदंडों के बीच की असमाधानीय विरोधमूलक भ्रांति की ओर तेजी से प्रवृत्त हो जाता है। पूंजीवादी प्रणाली स्वदमेव पुराने उत्पादन सम्बन्धों और वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति द्वारा पैदा की गई नई उत्पादक शक्तियों के सतत विकास की आवश्यकता के बीच में फंस जाती है।

"जो निश्चित है वह सिर्फ एक बात है," अमरीकी विद्वान् रॉबर्ट हेलब्रॉनर अनुभव करते हैं, "वह है समाज के भीतर विज्ञान के सक्रिय उपयोग के नए विचार और सामाजिक प्रणाली के रूप में पूंजीवाद के विचार के बीच गंभीर असामंजस्य का होना है...। अंत में पूंजीवाद को विज्ञान की तराजू में तोला जाता है और उसे न केवल एक प्रणाली के रूप में किन्तु एक दर्शन के रूप में भी दरिद्र पाया जाता है।"[1]

विज्ञान का सीधे तौर पर उत्पादक शक्ति के रूप में रूपांतरण प्रक्रिया का केवल एक पक्ष है। व्यक्ति की नई मांगों के स्तर पर दूसरा पक्ष विकसित हो रहा है। वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्रांति काम में और अधिक प्रतिभा को समाहित कर देती है; आज का मजदूर अब केवल मशीन का पुर्जा मात्र नहीं रह सकता—एक विचारशून्य स्वचालक के रूप में। स्वचालित नियंत्रण प्रणालियों को चलाना देने के लिए उसे एक उन्नत कुशल विशेषज्ञ के रूप में उपस्थित होना चाहिए, जो, इसके अतिरिक्त अपने काम के परिणामों के विषय में भी बढ़-चढ़ कर रुचि रखता हो।

अतः पूंजीवाद के सामने शिक्षा की संपूर्ण प्रणाली को आमूलचूल पुनर्गठित करने तथा कर्मियों को प्रशिक्षित करने का चुनौती भरा काम उपस्थित हो जाता है। बहुत से पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने इस विषय में लिखा है। अमरीकी विद्वान पीटर ड्रकर की राय में, वास्तविक रूप में नया तथ्य यह है कि समाज और अर्थ-

1 रॉबर्ट एल० हेलब्रनर 'द लिमिट्स ऑफ अमेरिकन कैपिटलिज्म' न्यू यॉर्क, 1966, पृ० 132-133

व्यवस्था का विकास तब तक पूरी तरह प्रभावशाली नहीं होगा जब तक कि सभी को उनकी योग्यताओं व सामर्थ्य के अनुरूप शिक्षा न मिले। एक अशिक्षित व्यक्ति शीघ्र ही अनुत्पादक हो जाता है, और आज के समाज को 'शिक्षित समाज' होना चाहिए ताकि वह उन्नति एवं विकास कर सके तथा जीवित रह सके। लेकिन इकर द्वारा निरूपित समय की यह माँग एक बार फिर पूँजीवाद के मूलतः मानवता-विरोधी सामाजिक मानदंडों से रू-ब-रू होती है। शिक्षा-प्रणाली परंपरागत पूँजीवादी समाज के साँचे में प्रारंभिक जन शिक्षा के रूप में ढली है। 'जनशिक्षा', एल्विन टॉफलर लिखते हैं, "एक ऐसा उम्दा यंत्र था जो औद्योगिकवाद के द्वारा अपनी आवश्यकता के अनुकूल प्रौढ़ों को ढालने के लिए पैदा किया था।"[1]

इसका मतलब है कि पूँजीवादी उत्पादन को आवश्यक जानकारी रखने वाले शिक्षित मजदूरों की आवश्यकता थी। कुछ समय तक इससे अधिक और किसी बात की आवश्यकता नहीं। किन्तु अब अधिक बौद्धिक कार्य ने स्थिति को वस्तुतः बदल दिया है। एक आधुनिक मजदूर को अब और अधिक मांसपेशियों की ताकत की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु जटिल और कभी-कभी रचनात्मक उत्पादन समस्याओं को सुलझाने की योग्यता की आवश्यकता होती है। शारीरिक श्रम के स्थान पर एक खास तौर से प्रशिक्षित ऑपरेटर द्वारा नियंत्रित स्वचालित प्रणालियाँ तेजी से प्रवेश पा रही हैं। इसका तात्पर्य है कि प्रारंभिक शिक्षा की पुरानी प्रणाली अब इस काबिल नहीं है कि उत्पादक शक्तियों के आगे के विकास को आश्वस्त कर सके। 'शिक्षा में क्रांति' एक तात्कालिक आर्थिक आवश्यकता में बदल रही है और सामाजिक उत्पादन की महत्वपूर्ण शर्त का रूप धारण कर रही है।

भविष्य में व्यक्तित्व के सर्वतोमुखी विकास, मनुष्य की क्षमताओं और बौद्धिक योग्यताओं के कार्यान्वयन की अपेक्षा रखेगा। पूँजीवाद के अधीन ऐसे श्रमिकों का उदय नितांत समस्यामूलक है, क्योंकि इसने न तो ऐसे हालात पैदा किए हैं और न ही वह ऐसा कर सकता है जिससे इस प्रकार व्यक्तित्व का विकास हो। दर-असल, एक विरोधी प्रवृत्ति दिखाई दे रही है और इजारेदारियों की यह इच्छा कि हिंसा और कत्ल के प्रचार के द्वारा व्यक्ति को नष्ट किया जाए और उसको अति तुच्छ सिद्ध किया जाए, उपभोक्ता मनोविज्ञान पैदा किया जाए और तथा-कथित लोक-संस्कृति को विकसित किया जाए। मानवी व्यक्तित्व के इसके आध्यात्मिक तत्व को जान-बूझकर भ्रष्ट-भ्रष्ट करना एक प्रकार के संघर्ष का वह रूप है जिसे वर्तमान साम्राज्यवाद सामाजिक क्रांति के विरुद्ध जारी रखना है, यह मजदूर वर्ग को बौद्धिक रूप से निहत्था करने का ही एक तरीका है। यदि पूँजी-वादी इस रुख को बदल देते और व्यक्ति के सर्वतोमुखी विकास को प्रोन्नत करने

1. एल्विन टॉफलर, 'फ्यूचर शॉक' पृ॰ 354

की चेष्टा करते तो उनके लिए यह अपनी ही मौत की सजा पर दस्तखत करने समान होता। अतः ऐतिहासिक संदर्भ में श्रम का बौद्धिकीकरण पूंजीवादी उत्पा प्रणाली के साथ नितांत असंगत ठहरता है। पूंजीवाद न केवल एक आर्थिक प्रणा के रूप में अपनी उम्र से अधिक जीवित रह लिया है, अपितु आध्यात्मिक मूल्य की प्रणाली के रूप में भी, जिसका दिवालियापन वर्तमान वैज्ञानिक और तकनीक क्रांति द्वारा लाये गए सामाजिक बदलावों की स्थिति में जिसका दिवालियाप प्रकट हो रहा है, व्यर्थ सिद्ध हो चुका है।

बौद्धिकीकृत श्रम के लिए परंपरागत पूंजीवादी प्रणाली में दिए जाने वाले प्रोत्साहनों की बजाय दूसरे प्रकार के अन्य प्रोत्साहनों को दिए जाने की आवश्यकत पैदा होती है। उदाहरण के लिए एक मशीन चालक का काम बड़े स्नायविक औ मानसिक तनाव से जुड़ा होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि गुणात्मक रूप से नए मनोवैज्ञानिक स्रोत का निर्माण किया जाए जो उत्पादन के दौर में स्नायविक प्रणाली में निरंतर होने वाली क्षतियों की पूर्ति करने में समर्थ हो। श्रमशक्ति के पुनरोत्पादन की समस्या अपने आपको एक नए आलोक में प्रस्तुत करती है, अतः श्रम के भौतिक और नैतिक प्रोत्साहनों से संबंधित प्रश्नों का एक नया समाधान ढूंढा जाना चाहिए।

सामाजिक मूल्य लोगों के क्रियाकलापों को प्रेरित करते हैं। किन्तु वे उत्पादक शक्तियों के विकास और मानवता के एक सामाजिक-आर्थिक स्वरूप से दूसरे में संक्रमण के साथ बदलते हैं तथा प्रत्येक ऐसा संक्रमण लोगों के बीच नए संबंध पैदा करता है। मार्क्स ने ऐसे संबंधों के तीन प्रकारों के बारे में लिखा—"*व्यक्तिगत निर्भरता के संबंध, पहले नितांत आदिम—समाज के ये पहले रूप थे जब लोगों* की उत्पादकता एक नगण्य सी सीमा तक और अलग-अलग स्थानों में विकसित थी। व्यक्तिगत निर्भरता जो भौतिक निर्भरता पर आधारित थी, वह समाज का दूसरा बड़ा ऐसा रूप है जिसके अतर्गत सार्वभौम सामाजिक विनिमय की, सार्वभौम संबंधों, सामाजिक जरूरतों और सार्वभौम योग्यताओं की व्यवस्था निर्मित होती है। स्वतंत्र व्यक्तित्व जो व्यक्तित्वों के सार्वभौम विकास पर आधारित हो, सबकी सामूहिक सामाजिक उत्पादकता की अधीनता को सबकी सामाजिक संपदा के रूप में स्वीकार्य हो—ऐसी है तीसरी अवस्था।"[1]

इन तीनों में से प्रत्येक के तदनुरूप उत्प्रेरक होते हैं जो कि जनता के कार्य व्यापार के लिए उत्तरदायी होते हैं : ग़ैर-आर्थिक दबाव, भौतिक पारिश्रमिक तथा नैतिक प्रोत्साहन।

भौतिक पारिश्रमिक, सामंतवाद के साथ संघर्ष में पूंजीवाद का तुरुप का पत्ता,

---

1. कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, 'आर्काइव्ज' खंड IV पृ० 87-91 (रूसी भाषा में)

वह प्रोत्साहन था जिसने इस श्रम उत्पादकता की कल्पनातीत वृद्धि सभव बनाई, जो, निष्कर्ष रूप से, जैसा कि लेनिन ने इसको वर्णित किया है, सबसे अधिक महत्वपूर्ण और प्रमुख प्रमाण है एक सामाजिक प्रणाली पर विजय पाने का। अब यह प्रोत्साहन काफी नहीं है। ठीक जैसे पूँजीवाद गैर-आर्थिक दमन पर भरोसा करते हुए अपने आपको सफलतापूर्वक विकसित नहीं कर सकता था, सामाजिक रूप से उपयोगी क्रियाशीलता आज पूरी तरह प्रभावशाली नहीं हो सकती यदि वह केवल आर्थिक दमन पर ही भरोसा करके चले तो।

समाजवादी देशों में यह बात नहीं है जहाँ अधिक महत्व आत्माभिव्यक्ति के अवसर को किसी के काम से संतोष प्राप्त करने को और किसी व्यवसाय की सामाजिक प्रतिष्ठा को दिया जाता रहा है। ये प्रोत्साहन, न केवल विज्ञान, शिक्षा और कला के क्षेत्रों में ही अपनी प्रमुख भूमिका अदा कर रहे हैं, अपितु भौतिक उत्पादन की उन समस्त परंपरागत शाखाओं में भी जहाँ श्रम का बौद्धिकीकरण जारी है। ये प्रोत्साहन ही उत्पादकता की सर्वोच्च मंजिल—जहाँ केवल भौतिक प्रोत्साहन ही अपना प्रभावी न हों—तक पहुँचने को सभव बनाते हैं।

मानवीयता और न्यायसंगत सिद्धांतों के आधार पर आधारित समाज ही ऐसे प्रोत्साहन पैदा कर सकता है। पूँजीवाद, जिसने सदियों से धनसचय, बनियापन और उपयोगितावाद के दर्शन को पैदा किया है, सामाजिक प्रोत्साहन—जो प्रगति के लिए आवश्यक है—को पैदा करने में असमर्थ है। इस प्रकार के मूल्य तो केवल कम्युनिस्ट समाज के द्वारा ही पैदा किए जा सकते हैं।

भविष्य : वह किसका होगा ?

यह हमारे युग का विरोधाभास है कि मानवता, प्रकृति की मूल तात्विक शक्तियों के ऊपर जबरदस्त अधिकार प्राप्त कर पाने के बावजूद, हमारे ग्रह के अधिक बड़े भाग पर, तात्विक सामाजिक शक्तियों के अधीन है। इस अंतर्विरोध के फलस्वरूप मानव-मस्तिष्क की सबसे बढ़िया उपलब्धियाँ जिन्हें सबसे उदात्त इरादों से निर्देशित किया गया था वे, अपने आप ही मानवता के विरुद्ध हो गईं, जैसे किसी शैतान की इच्छा के परिणामस्वरूप। और इसके पीछे जो कारण है वह है पूँजीवादी व्यवस्था।

नाभिकीय ऊर्जा की खोज का परिणाम यह निकला कि एटम बम का जन्म हो गया, रसायन विज्ञान का विकास नई जहरीली गैसों के विकास की ओर उन्मुख हो गया, रॉकेट इंजीनियरी और अंतरिक्ष अनुसंधान ने नाभिकीय प्रक्षेपास्त्रों और बाधीय अंतरिक्ष गुप्तचरी के अड्डों के उत्पादन को गति दी। यह भी पूँजीवाद की सक्रियता है।

अमरीकी लेखक कुर्त वौनगट की तीखी व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी, कि "वैज्ञानिक किसी

[illegible] हैं, उनके [illegible] इमारतों के निर्माण में लगी हैं"—[illegible] है। [illegible] के लिए—[illegible] [illegible] दिखाई देती है [illegible] मशीनों को [illegible] करने की आश्चर्यजनक शक्ति रखती है और उसे [illegible] बना रही है, लोगों के लिए भूख और थकान लाती है। [illegible] धन के स्रोत भी [illegible] के [illegible] में बदल जाते हैं। यह ऐसा है, मानो [illegible] पर हावी हो गई हो।"[5] यह टिप्पणी इतनी सामयिक है कि ऐसा लगता है जैसे यह आज ही व्यक्त की गई हो।

लेकिन अतीत में ये उपकरण, चाहे वे लोगों को [illegible] तात्कालिक देते थे फिर भी उनके जीवन के लिए खतरा नहीं पैदा करते थे। आज उनके पास सम्पूर्ण मानवता का [illegible] है, वह अनियंत्रित बन चुकी है और सभ्यता के अस्तित्व को ही खतरा पैदा कर रही है। पहले पूँजीवाद की बीमारियाँ, जबकि वे करोड़ों-करोड़ों के लिए कष्टों और गरीबी के अभिशाप का कारण हुआ करती थीं, या स्वरूप स्थानीय हुआ करता था, वे आज ऐसी घातक बीमारियों में परिवर्तित हो चुकी हैं तथा विनाशकारी महामारियों का रूप धारण कर चुकी हैं कि पृथ्वी पर प्रत्येक जीवित प्राणी मृत्यु की आशंका से ग्रस्त है।

युद्ध और शांति की समस्या को लें। निरंतर बना हुआ नाभिकीय खतरा भी पूँजीवाद के पुराने नासूर को बहुत बढ़े हुए रूप को ही प्रकट करता है—उसकी आक्रामक प्रकृति को। नाभिकीय गतिरोध, जो कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक की क्रांति का ही परिणाम है। हथियारों की दौड़ की वह ऐतिहासिक सीमा है जिसके पर पूँजीवाद का आत्म-विनाश मँडराता है। ऐसा लगता है कि फिर भी किसी आसुरी शक्ति की वजह से वह डाॅनेड्स के बेंदे के पीपों को—युद्ध की भौतिक और तकनीकी तैयारी के रूप में भरता चला जाता है। और इसलिए जो निष्कर्ष निकलता है वह विरोधाभास पूर्ण तो है ही, एक उजागर तथ्य भी है: कि पूँजीवादी व्यवस्था हथियारों की दौड़ को बढ़ाती चली जा रही है, तथा इस प्रकार एक ओर तो मानवता को एक ताप-नाभिकीय महाविपत्ति की तरफ धकेल रही है तथा दूसरी ओर आत्म-विनाश के रास्ते को साफ कर रही है।

विश्व-व्यापी महत्त्व की एक अन्य सामयिक समस्या, भौगोलिक वातावरण जन्य विपत्ति, को लें। प्राकृतिक संसाधनों का अनैतिक दोहन, सैन्यवाद की ही भाँति, पूँजीवाद का एक अन्तर्निहित नियम है। प्रकृति के बारे में, धरती को [illegible] की पूँजीवादी रणनीति में पर्यावरण जन्य संकट को मानवता के असली

5. गेल्स, वर्क, खंड 12, पृ० 3

खतरे के रूप में बदल दिया है। ऐसा कहने के पीछे एक तर्कसंगति है कि नियोजित वैज्ञानिक प्रयास के अभाव में और सर्वाधिक संकल्पबद्ध अंतर्राष्ट्रीय उपायों के लागू करने की कमी की वजह से इसे असमाधानीय समझा जा सकता है।

पश्चिम में इन दिनों इस बात की व्यापक चर्चा चल पड़ी है कि वातावरण की रक्षा करने की आवश्यकता है। यह उन शक्तियों के द्वारा प्रोत्साहित है जो प्रायः असली सामाजिक सारतत्व तथा समस्या के कारणों में मिलावट करने में संलग्न हैं अपनी सारी राजनीतिक सट्टेबाजी में इसका उपयोग कर सकें। 22 जनवरी सन् 1970 के अपने संघीय संदेश में, संयुक्त राज्य अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति निक्सन ने (उनके देश पर जीवमंडल के प्रदूषण के लिए सबसे बड़ी जिम्मेवारी आयद होती है) जनता के नाम एक अलंकारिक अपील करते हुए कहा—"1970 के दशक की भीषण समस्या है—क्या हम प्रकृति के साथ शांति कायम करें तथा हमारे द्वारा अपनी हवा, धरती व पानी को पहुंचाई क्षति का प्रायश्चित करें?"[1]

समस्या के इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण के विरोध में कुछ भी कहना कठिन ही होता यदि यह साफतौर पर इतना पाखंडपूर्ण न होता। निस्संदेह जिस क्षति की चर्चा निक्सन ने की है वह बड़ी है और महामारी की गति से बढ़ रही है। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि संयुक्त राज्य अमरीका जिसकी जनसंख्या 1970 के दशक के आरंभ में दुनिया की जनसंख्या सिर्फ 5.7 प्रतिशत थी, उसने दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों के 40 प्रतिशत का उपयोग किया और पृथ्वी ग्रह के कुल 50 प्रतिशत को प्रदूषित किया। विशेषज्ञों के अनुसार अब तक संयुक्त राज्य अमरीका उस आलोच्य रेखा को पार कर चुका है जबकि उपभोगशुदा प्राकृतिक साधनों का पुनर्भरण स्वाभाविक प्रक्रिया में नहीं होता तथा उसके लिए विशेष उपाय आवश्यक होते हैं।

कोई यह सोच सकता है कि इसने अमरीका के शासक तंत्र को इन वास्तविक कारणों को उन्मूलित करने के लिए तथा जीवमंडल की रक्षा के लिए प्रभावशाली संघर्ष छेड़ने को उत्साहित किया होगा।

तो भी, इस क्षेत्र में वांछित परिणाम, जैसा कि सर्वत्र सभी स्वीकार करते हैं, अब तक असंतोषजनक है। पूंजीवादी देशों में प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करने के निमित्त जो भावपूर्ण अपीलें की गईं वे मुंगफ्त बनकर रह गईं। स्पष्ट है कि तब तक किसी प्रगति की आशा नहीं की जा सकती जब तक कि उन पूंजीवादी इजारेदारियों के विरुद्ध कोई संकल्पबद्ध उपाय नहीं किए जाते जो प्रकृति को खोखला करने और उसे प्रदूषित करने की आपराधिक सक्रियता के लिए सीधे तौर पर जिम्मेदार हैं। पूंजीवादी प्रचार तंत्र, किसी पर भी दोष मढ़ सकता है—जनसंख्या

---

1 यू० एस० न्यूज एंड वर्ल्ड रिपोर्ट, अंक 5, 2 फरवरी 1970, पृ० 40

पर, औद्योगीकरण, विज्ञान और प्रविधि के विकास पर—ताकि वह इजारे
पूंजीवाद को अपराध से बरी कर सके। गाइ वायोलैट, जिन्होंने इस समस्या
अध्ययन किया है, लिखते हैं: "हम हर वस्तु से प्रदूषण पैदा करते हैं—अपनी चि
के धुएँ से, अपनी कारों के धुएँ से, अपने भोजन की जूठन और बचे-खुचे से, अ
स्नानघरों के पानी से, अपनी लांड्री के धोवन से, अपने अखबारों के कागज
प्लास्टिक बोतलों से, टिन के डिब्बों से—सभी लोगों को दोष दिया जाना चा
क्योंकि सब उपभोक्ता हैं—साथ ही सबसे बड़े प्रदूषक वही करते हैं जो औद्यो
करण के हितों के अनुकूल होता है।"[1]

'घर' में पर्यावरण संबंधी संकट की व्याख्या अधिकांशतः मिथ्या दुविधा
रूप में की जाती है; *या तो सादगी भरे मितव्ययता के उपाय काम में लो*
प्राकृतिक संसाधनों को निःशेष कर दो; या तो आर्थिक विकास को धीमा कर दो
'जीवन स्तर' को नीचा बना लो। साम्राज्यवादी सिद्धांतकारों में से सर्वाधिक
तथ्य के छिपाने के प्रति चिंतित हैं कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, जो खासतौर
संकीर्ण कोटि के विशेष प्रयास पर आधारित है तथा जिसका आधार तत्का
मुनाफा कमाना है, का सामना प्राकृतिक संपदा के वैज्ञानिक दोहन से ऐसा विरो
है जिसका समाधान संभव नहीं है। इसलिए भौगोलिक वातावरण के संकट
दोष औद्योगिक विकास के मत्थे मढ़ दिया जाता है। 'वैदेशिक' उपयोग के लि
वातावरण की रक्षा से संबंधित सिद्धांत को अन्य अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों के समाधान
स्थगित करने के लिए काम में लिया जाता है तथा इस विश्वजनीन समस्या प
चिंतित होने का ये बहाना मूलभूत सामाजिक प्रश्नों से जनसमूह को काट दिय
जाता है।

यहाँ कुछ और भी कहने की आवश्यकता है। यद्यपि ऊपरी तौर पर अमरीक
प्रचार तंत्र इस बात से चिंतित-सा लग रहा है कि आधुनिक औद्योगिक विकास
कारण वातावरण को नुकसान पहुँच रहा है, पेंटागन (खासकर निक्सन के राष्ट्र
पतित्व के दौर में) ने *हिंदचीन में व्यापक तौर पर निष्पत्रकों और अद्भुत नाशक*
को काम में लिया। प्रोफेसर मैथ्यू मिसेल्सन के नेतृत्व में गठित जीववैज्ञानिकों
दल, जिसने मौके पर जाकर इस समस्या का अध्ययन किया, द्वारा तैयार किए गए
प्रतिवेदन ने यह रहस्य उद्घाटित किया कि दक्षिणी वियतनाम की सीमा का 1
प्रतिशत क्षेत्रफल, जो संयुक्त राज्य अमरीका में मैसाचुसैट्स राज्य की अपेक्षा बड़ा
होता है—*निष्पत्रकों के भयंकर विनाशात्मक प्रभावों से ग्रस्त हो गया।*

यह स्वाभाविक ही है कि, अमरीकी प्रचार तंत्र इन तथ्यों के विषय में बिल्कुल
चुप है और पर्यावरण की इस समस्या को वर्ग-संघर्ष में किसी के कोढ़े के रूप में

1. गाइ वायोलैट, "[illegible]" पेरिस,

में ले रहा है। साम्राज्यवादी प्रचार सेवाएँ वातावरण प्रदूषण को एक ऐसी
समस्या के रूप में प्रस्तुत करती हैं जो, उनकी योजना के अनुसार सामाजिक
विरोधों को पृष्ठभूमि में डाल देगी।

यह इस तथ्य के बावजूद किया जाता है कि वातावरण सकट एक नई सामाजिक और राजनीतिक समस्या के रूप में विकसित हो रहा है जो अन्य राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं से घनिष्ठता के साथ गुथा हुआ है। यह सकट - जो समस्त मानवता के विशाल क्रियाकलाप के लिए खतरा उत्पन्न करता है और जिसने अब तक लाखों श्रमिकों को नुकसान पहुँचाया है—पूँजीवादी प्रणाली की विवेकहीनता को ही और अधिक प्रमाणित करता है।

पश्चिम में इस तथ्य को तेजी से स्वीकारा जा रहा है। "तो हम एक निर्णायक प्रश्न की ओर आते हैं—आधुनिक प्रविधि का सोलोमन कौन होगा जो उस सारी अच्छाई को तराजू में तोल सके जो परिस्थिति विज्ञान और सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध इसमें से पैदा होती है?"[1] ब्रिटिश परिस्थिति वैज्ञानिक बेरी कॉमनर लिखते हैं और निम्नांकित निष्कर्ष निकालते हैं—"दरअसल, हम जानते हैं कि आधुनिक प्राविधिक ज्ञान, जिसे निजी तौर पर हथिया लिया गया है, यदि उस सामाजिक अच्छाई—परिस्थितिमंडल—को ही नष्ट कर देता है जिस पर यह आश्रित है तो यह अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता।

"अत: एक ऐसी आर्थिक प्रणाली जो सामाजिक लेन-देन के मुकाबले मूलत निजी लेन देन पर आधारित है अधिक समय तक उपयुक्त नहीं रहती और इस विशाल सामाजिक भलाई की व्यवस्था करने में तेजी से प्रभावहीन हो रही है। अतः इस प्रणाली के परिवर्तन की आवश्यकता है।"[2] महत्वपूर्ण भौगोलिक वातावरण के कारणों के द्वारा भी यह अनिवार्य बनाया जा रहा है कि मानवता का संक्रमण पूँजीवाद से साम्यवाद में हो।

हमने केवल दो विश्वव्यापी मुद्दों पर बहस की है। किंतु यदि हम अनेक अन्य समस्याओं को लें—असमान आर्थिक विकास, पुरानी चली आ रही बेरोजगारी संस्कृति का पतन और व्यक्तित्व का विनाश, नागरिक सकट, विकासमान देशों की गरीबी और उनका पिछड़ापन, और इस सूची को और आगे तक ले जाने पर, हम उसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे, यानी कि उनमें से किसी बिंदु को पूँजीवाद से अलग नहीं किया जा सकता। उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति को समाप्त करना ही निस्संदेह एकमात्र प्रभावशाली तरीका है जिसके तहत जनसमुदाय के हितों और मानव प्रगति के हक में हम उन समस्याओं को सुलझा सकते हैं।

1. बेरी कॉमनर, 'द क्लोजिंग सर्किल, नेचर, मैन एण्ड टेक्नोलोजी', न्यूयार्क, 1972, पृ० 197
2. वही, पृ० 287

वर्तमान और भविष्य की विश्वव्यापी समस्याओं के सामने पूंजीवाद
नपुंसकता बुर्ज्वा विचारधारा के उस संकट की पुष्टि करती है जो उसकी
नितांत असहायता और हताशा को अभिव्यक्ति देता है। बुर्ज्वा साहित्य, फि
रेडियो और टेलिविज़न घोषणा करते हैं कि सामाजिक, सांस्कृतिक और
वंशिक अभियांत्रिकी के परिणामस्वरूप, ताप-नाभिकीय युद्ध के अनियंत्रित
वैज्ञानिक कारकों के प्रभाव के कारण पर्यावरण से उत्पन्न घुटन और इसी प्र
की अन्य स्थितियों आदि की वजह से मानवजाति का विनाश अवश्यंभावी
संक्षेप में, मानवजाति अपनी समस्याओं को काबू करने में असमर्थ है, वह अंधी
में अटक गई है और उसका विनाश अवश्यंभावी है।

अमरीकी विद्वान डब्लू० वागर लिखते हैं कि प्रतीकात्मक अर्थ में बीसवीं
का आदमी उस एक बच्चे के समान है जो टोकरी में अंतिम फ़ैसले की देहलीज
पड़ा बिलबिला रहा है। अपनी आवेगपूर्ण निष्कपटता में वह ऐसी नियति की
पर फेंक दिया गया है जो कल्पना से भी परे है।

*ये निराशावादी भावनाएँ अभिशप्त एवं हताश पूंजीवादी दुनिया के विचार
की खास भंगिमाएँ हैं, जो इसके सन्निकट विनाश को सारी मानवता के लिए म*
विपत्ति मानते हैं। जैसाकि लेनिन ने लिखा—"वे लोग हताश ही हो सकते
जो बुराई के कारणों को नहीं समझते, सुलझाव का कोई मार्ग नहीं देख पाते, अ
संघर्ष के लिए असमर्थ होते हैं।"[1]

कम्युनिस्ट भविष्य को भिन्न आलोक में देखते हैं। श्रमिक मानवता की खु
हाली के लिए संघर्ष के अनुभव पर विश्वास रखते हुए, और महान् अक्तूब
समाजवादी क्रांति के बाद के छः दशकों में प्राप्त अनुभव पर भरोसा करते हुए,
जनकल्याण पर आधारित आशावाद के साथ भविष्य की ओर आगे देखते हैं
सोवियत लोग आगे के लिए विश्व-शांति की सुदृढ़ता और स्वतंत्रता, लोकतंत्र औ
समाजवाद के लिए संघर्ष में भावी प्रगति के लिए किए जाने वाले तेजस्वी ऐति
हासिक कामों को संपूर्ण आत्मविश्वास के साथ करते चले जा रहे हैं।

1. वी० आई० लेनिन, "एल० एन० तॉलस्तॉय एंड द माडर्न" रचनाएं"
खंड 16, पृ० 332

उपसंहार

आधुनिक विश्व अत्यधिक असमान है। हमारे समय और हमारे युग की मौलिक समस्याएं, भावी पीढ़ियों की ऐतिहासिक नियति दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओं पूंजीवाद और समाजवाद—और दो शत्रुतापूर्ण वर्गों—बूर्ज्वा और सर्वहारा के जटिल और विरोधपूर्ण संघर्ष में निर्णीत होने जा रही हैं।

शांति, स्वतंत्रता और सामाजिक प्रगति के लिए महान् संघर्ष में एक विशाल और लगातार बढ़ती हुई भूमिका वैचारिक संघर्ष के द्वारा अदा की जा रही है। इसका नतीजा, कम्युनिस्ट विश्व-दृष्टिकोण की निर्णायक जीत इतिहास द्वारा पूर्व-निर्धारित है। मरणासन्न वर्गों की द्वेषपूर्ण प्रतिरोध तथा प्रत्याक्रमण के उनके अड़ियल किंतु निरर्थक प्रयासों का यही कारण है।

बौद्धिक क्रिया व्यापार हमेशा से ही मानव जीवन का सबसे जटिल और भावुक क्षेत्र रहा है और रहेगा। प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः यह विविध प्रकार के, और अक्सर अन्तर्विरोधपूर्ण, सामाजिक, राजनैतिक, सैद्धांतिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और अन्य कारकों के प्रभाव में आ जाता है। प्रत्येक व्यक्ति, सामाजिक समूह और स्तर के सैद्धांतिक विचारों की जटिल सरगम में एक वर्ग द्वारा निर्धारित, समाज द्वारा अनुकूलित और स्वयं की आत्मपरकता के द्वारा भावात्मक क्षणों से उद्वेलित स्थितियों का एकांतिक सम्मिश्रण होता है। यह सब किसी अवधि विशेष के विशिष्ट सामाजिक जीवन को अनुपम संयोगों और वर्गों को पैदा करता है।

आज के समकालीन वैचारिक संघर्ष की विरोधात्मक प्रकृति का यही कारण है। फिर भी यह अपनी न उलटी जा सकने वाली तर्क संगति के अधीन होती है: विचारों के संघर्ष में अनिवार्यतः उन्हीं की जीत होती है जो शब्दों में ही नहीं लेकिन काम में भी जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं से सामंजस्य व संगति रखते हैं और जन-समुदायों की तात्कालिक समस्याओं के सुलझाने के ठोस तरीके अपनाते हैं। यह साधारण सत्य कम्युनिस्ट विचारधारा की सफलता और गति-शीलता को पूर्व-निर्धारित करता है।

यह निर्विवाद है कि इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना बाकी है जैसा कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के निर्णय किया गया है,

—"सैद्धांतिक और राजनैतिक शिक्षा के भावी सुधार के विषय में" (1979) में कहा गया है। देश के लगभग सभी लोगों ने इसे पढ़ लिया है और यह मूलभूत महत्त्व की बात है।

वैचारिक और शैक्षिक कार्य को आगे बढ़ाना इसलिए भी आवश्यक है ताकि इस अवधि के उन बड़े कामों को पूरा किया जा सके जिनको सोवियत संघ के नए संविधान में सुनिश्चित किया गया है और जो विकसित समाजवाद की अवधि तथा सोवियत जनवाद की स्थितियों से उत्पन्न हो रहे हैं।

लेनिन का यह सूत्र, कि राज्य जन-चेतना से ही अपनी शक्ति हासिल करता है, इतना प्रासंगिक पहले कभी नहीं रहा जितना कि आज है, जब जन-समुदाय हर चीज को समझता है और प्रत्येक का मूल्यांकन करने में समर्थ है, और हमेशा सचेतन और सतर्क होकर काम करता है। दूसरी ओर, वैचारिक और राजनैतिक शिक्षा को और अधिक ऊँचे स्तर तक ऊपर उठाना पड़ेगा क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर वैचारिक संघर्ष की पैनी तीव्रता पहले से कहीं अधिक बढ़ी है। यह एक तथ्य है कि साम्राज्यवादी प्रचारतन्त्र खुलकर पेकिंग के आधिपत्यवादियों के सोवियत-विरोधवाद के साथ घुल मिल कर काम करता है। अपने प्रयत्नों का एकत्रीकरण करते हुए उन्होंने सोवियत लोगों के चिन्तन पर एक दुष्ट आक्रमण कर दिया है और अपने आपे से बाहर होकर दुनिया के लोगों की आँखों में सोवियत यथार्थ को लांछित कर रहे हैं।

इन परिस्थितियों में लोगों की सैद्धान्तिक शिक्षा कम्युनिस्ट निर्माण के कामों को पूरा करने के प्रयत्नों में तथा विश्व में शान्ति और प्रगति के लिए संघर्ष का एक प्रमुख तत्व है। सफल सैद्धान्तिक कार्य सोवियत संघ के आर्थिक, सामाजिक-राजनैतिक और सांस्कृतिक विकास के मार्ग को एक बड़ी हद तक निर्धारित करता है। बहुत प्रकार से यह सोवियत संघ को इस बात में समर्थ बनाता है कि वह विकसित समाजवाद की अन्तर्निहित सम्भावनाओं का उपयोग कर सके और अपनी शांति-पूर्ण विदेश नीति का अनुसरण कर सके। इस प्रयास में समाजवादी समुदाय के देशों की भागीदारी है।

नए समाज की खोज के विषय में पूँजीवादी-अवसरवादियों के बावजूद समाजवाद क्यों [illegible] हासिल करता चला जा रहा है? समाजवाद ही [illegible] के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्नों के इन समाधानों की खोज में इतना सफल क्यों हो रहा है जबकि [illegible] अपने लम्बे इतिहास के दौरान [illegible] में असफल रहा? पूँजीवाद सभी राष्ट्रों और देशों को [illegible] और [illegible] के [illegible] को विवश क्यों करता है जबकि समाजवाद [illegible] की [illegible] पथ का अनुसरण करता है? [illegible] की सब [illegible] करने में असमर्थ क्यों। [illegible] अर्थात

समाजवाद एक अन्य ऐतिहासिक अवधि में ही जनगण का एक नया ऐतिहासिक समुदाय बनाने में सफल हो गया जो कि अब कम्युनिस्ट समाज का निर्माण कर रहे हैं। और अंत में, यह ऐसा क्यों है कि समाजवाद की विदेश नीति ही हमलावर ताकतों के खिलाफ संघर्ष में लोगों के लिए शांति और लाभदायक सहयोग के अवसर प्रदान करती है?

ये प्रश्न, अपने सही स्वरूप में पूँजीवाद के लिए चुनौती है, क्योंकि सामाजिक व्यवहार अकाट्यरूप से यह पुष्ट करता है कि हमारे इस युग के लिए मात्र वैज्ञानिक कम्युनिज्म का सिद्धान्त ही मानवता के लिए सामाजिक और राजनैतिक मुक्ति का रास्ता प्रदर्शित करता है और केवल समाजवाद ही आज के समकालीन विश्व की मूलभूत समस्याओं का समाधान करने में समर्थ है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के वैचारिक झंडे के नीचे सोवियत लोगों ने साठ वर्षों में ही समस्त क्षेत्रों—आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक—के क्रिया-कलाप में ऐतिहासिक जीतें हासिल की हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचार अनेक यूरोपीय, एशियाई और लेटिन अमरीकी देशों में जिन्होंने समाजवाद का रास्ता अपनाया, राज्य विकास को प्रेरित करने वाले सैद्धांतिक आधार बन चुके हैं। मार्क्सवाद-लेनिनवाद ही पूँजीवादी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों की विचारधारा है, जो शान्ति, लोकतन्त्र और सामाजिक प्रगति के लिए संघर्ष कर रही हैं। आज की वास्तविक वर्तमान कठिन परिस्थितियों में केवल कम्युनिस्ट आन्दोलन ही इस सम्मान का हकदार है कि उसने ऐसी समस्याओं को उभारा है जिनका हल विलम्ब सहन नहीं कर सकता, अर्थात् द्वितीय विश्वयुद्ध के दुष्परिणामों का विलीनीकरण, विश्व शांति को सुदृढ़ करना और मजदूर वर्ग की आर्थिक, सामाजिक और लोकतांत्रिक उपलब्धियों का विस्तार करना। इस सूची में ये मूलभूत मुद्दे भी हैं, जैसे, सभी लोकतांत्रिक ताकतों की एकजुटता, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का आगे का विकास और इसी प्रकार के अन्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु। यही वजह है कि विचारों के संघर्ष में वैज्ञानिक कम्युनिज्म का सिद्धान्त और व्यवहार दुनिया भर के लगातार बढ़ते हुए बहुसंख्यक मजदूर लोगों के दिलो-दिमाग को, पहले से कहीं ज्यादा, जीतता जा रहा है।

कम्युनिस्टों के पास, स्वभावतः, सारे प्रश्नों के कोई तैयारशुदा जवाब नहीं हैं। लेकिन उनके पास ऐतिहासिक विकास की मूलभूत प्रकृति के सम्बन्ध में एक बहुत स्पष्ट विचारधारा है। वे अभिज्ञान की विज्ञान-आधारित पद्धति पर अपने क्रांतिकारी सिद्धांत और एक नई दुनिया बनाने के साठ से अधिक सालों के प्राप्त अनुभव पर विश्वास करते हैं। उन्हें यह कहने का पूरा हक है कि वे जानते हैं कि मानवजाति का कहाँ और कैसे मार्गदर्शन किया जाता है और यह घोषणा करने की उनके पास हर प्रकार की सर्वसंपत्ति है कि यह रास्ता श्रमिक जनगण को शांति

और सामाजिक न्याय की प्राप्ति की तरफ ले जाएगा।

"कवियों की कल्पना ने प्रारम्भिक युगों के अज्ञान और भद्देपन में स्व को मानव जाति के शुरू में रख दिया है; किन्तु इस युग को लौह युग के माना जाना चाहिए'''।" महान् फ्रेंच विचारक हेनरी द सेंट-साइमन ने लि "मानव जाति का स्वर्णयुग हमारे पीछे नहीं है, वह आगे आने वाला है, भवि स्थित है, वह समाज व्यवस्था के पूर्ण होने में है; हमारे पूर्वजों ने इसे नहीं दे हमारे बच्चे एक दिन उसे प्राप्त करेंगे और यह हमारा कर्तव्य है कि हम उ लिए मार्ग प्रशस्त करें।"[1]

कम्युनिस्ट समस्त श्रमजीवियों का इस लक्ष्य की उपलब्धि के लिए सकि से काम करने का आह्वान करते हैं।